रूस में
पच्चीस मास

[यात्रा]

राहुल सांकृत्यायन

लेखक राहुल सांकृत्यायन,
हर्न क्लिफ, हेपी वैली,
मसूरी।

प्रकाशक चम्पालाल रांका,
प्रबन्धक, आलोक प्रकाश।
के० ई० एम० रोड,
बीकानेर।

चित्रकार कृष्णचन्द्र श्रीवास्तव,
इलाहाबाद—

मुद्रक भारतीय मुद्रण मन्दिर
बीकानेर।

प्रथम संस्करण] [आठ रुपए

दो शब्द

यह यात्रा १७ अगस्त १९४७ में समाप्त हुई थी, किन्तु इसके लिखने का काम २५ नवम्बर १९५१ में खतम हुआ। ४ साल बाद इसको लिखा गया, यह आश्चर्य की बात नहीं है। शायद अब भी इसमें हाथ नहीं लगता यदि डायबिटीज़ ने मुझे मसूरी के साथ चिपका न दिया होता। डायबिटीज़ को मैं रोग नहीं मानता, यदि यह रोग है तो वैसे ही जैसे अधापन और लगड़ापन। वह मेरे काम में बाधक नहीं हो रही है, इसका एक उदाहरण तो यही पुस्तक है। रूस के २५ मास के निवास में मैंने जो सामग्री मध्य-एसिया के इतिहास के लिखने के लिये जमा की थी, और जिसके ही कारण एक तरह मैं लन्दन के रास्ते आने के लिये मजबूर हुआ, उसका उपयोग भी मैंने इसी साल मसूरी में किया और इस यात्रा से दूने आकार की प्रथम जिल्द "मध्य एसिया का इतिहास" लिखकर तैयार हो गया है। इसलिये डायबिटीज़ से मुझे शिकायत करने का कोई हक नहीं। यात्राओं का आकर्षण अब भी मेरे हृदय में कम नहीं है, लेकिन सदा से लिखने पढ़ने का भी आकर्षण कम नहीं रहा है। यह यात्रा किन परिस्थितियों में और कैसे हुई, इसके बारे में पुस्तक में ही काफी आ चुका है। ईरान से आगे तो मैंने शृखलाबद्ध यात्रा लिखने की कोशिश की है, ईरान रास्ते में आया था, और वह यात्रा का कोई मुख्य लक्ष्य भी नहीं था, इसलिये उसके बारे में ज्यादा विस्तार से नहीं लिखा।

यात्रा करने में सहायक होनेवाले कितने ही इष्ट मित्र रहे, जिनके प्रति कृतज्ञ रहते हुए भी सबका नाम देना यहाँ मुश्किल है। भाइ सरदार पृथ्वीसिंह ने ईरान की निराशा की अवस्था में केवल पैसे भिजवाकर ही सहायता नहीं दी, बल्कि वह, और दो एक और मित्रों का अगर आग्रह न होता, तो शायद मैं उतने दिनों तक ईरान में ठहरने के लिये तैयार न होता। मिज़ा

महमूद अस्फहानी जैसे असाधारण बन्धु के गुणों के बारे में मैं काफी कह चुका हूँ। भारत म आकर मैंने कलकत्ता म उनसे मिलने की कोशिश की, लेकिन वह मिल नहीं सके। इतना मालूम हुआ, कि उनकी नव परिणिता बीबी इज्जतखानम भारत आयीं थीं और यहां से चली भी गई। एक दो बार पुराने पते पर चिट्ठी लिखी, लेकिन कोई जवाब नहीं मिला। इसमें सदेह है कि वह अब भारत में हैं। शायद पाकिस्तान में हों, या उससे भी अधिक संभावना उनके ईरान में जाने की है। एक पुराने मित्र के उपकारों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने में भी बहुत आनन्द आता है, लेकिन मिर्जा महमूद के प्रति वैसा करने को भी मेरे पास साधन नहीं हैं। यह भी बहुत सदिग्ध है, कि वह मेरी इस पुस्तक में लिखा अपने सम्बन्ध की पक्तियों को पढ सकेंगे। तो भी महमूद को मैं उन महृदय रत्नों में मानता हूँ, जिनके जैसे बहुत थोड़े लोगों से मुझे मिलने का मौका मिला।

क्वेटा में कागज-पत्र ठीक कराने के लिये मुझे अक्तूबर १९४४ में ठहरना पडा था, उस वक्त अपने १०–११ वर्ष के सहचर कैमेरे को मैं आज्ञा न मिलने के कारण छोड गया था। १०–११ वर्ष काम कर चुकने के बाद उस पुराने मोडल के रोलेफ्लैक्स कैमेरे का मूल्य निकल आया था, लेकिन उसके साथ कई बार तिब्बत, फिर जापान, कोरिया, रूस, ईरान आदि की यात्रा की थी, इसलिये उसके प्रति एक तरह का कोमल सबध स्थापित हो गया था। जिसके पास उसे अमानत रूप में रख गया था, उसने हमारे बतलाये स्थान पर लौटाने की तकलीफ नहीं की। अब उससे भी क्या शिकायत हो सकती है। क्वेटा के हजारों हिन्दू जिस तरह अपनी सम्पत्तियों को छोडने के लिये मजबूर हुए और जहा तहां बिखर गये, वही हालत उसकी भी हुई होगी। अब तो वह मेरे दुर्भाव नहीं, बल्कि महृदयता के पात्र हैं।

यात्रा में मैंने इस बात को स्वीकार किया है, कि सोवियत के साथ की मेरी मैत्री ३३–३४ वर्षों पुरानी है। यह मेरी तीसरी यात्रा उस देश में थी। यदि मैं कहूँ कि मैं वहां के लोगों के बहुत घनिष्ट सबध मे आया, तो शायद इसम अतिरजन से काम नहीं ले रहा हू। मैंने अपनी यात्रा में ऐसी बातों को

भी लिखने में संकोच नहीं किया है, जिनको कि अच्छा नहीं कहा जा सकता। लेकिन यह पृष्ठभूमि का ही काम देती हैं, जिसमें कि वहां के गुणों को अच्छी तरह से देखा जा सकता है। मैंने मुक्तकण्ठ से अपने इस ग्रन्थ में भी स्वीकार किया है और यहां भी स्वीकार करता हूं, कि सोवियत जीवन, सोवियत के विशाल निर्माण कार्य से न केवल सोवियत शासनयुक्त देशों को ही लाभ हुआ है, बल्कि वह नवीन सोवियत राष्ट्र सारी मानवता की आशा है। आज या कल सभी देशों की सारी समस्याओं का हल उसी रास्ते होगा, जिस रास्ते पर १९१७ में रूस पड़ा और जिस रास्ते को उससे ३२ वर्ष बाद चीन ने पाने में सफलता पाई। जो पार्टियां और जननायक अपने को नवीन मानवता का पक्षपाती मानते हैं, संसार को सुख और शान्ति के मार्ग पर लेजानेवाला कहते हैं, यदि वह सोवियत रूस और चीन के साथ शत्रुता रखकर वैसा करना चाहते हैं, तो मैं समझता हूं, वह अपने को और अपने पीछे चलनेवाली जनता को धोखा देते हैं। यह पढ़कर आश्चर्य होता है कि हमारे कितने ही सोसिलिस्ट पार्टी के महानेता पृथ्वी पर सोसिलिज्म लाने के लिये रूस चीन को बाधक और अमेरिका को साधक समझते हैं।

मैंने जगह जगह पर दिखलाया है, कि कैसे साल भर पहिले कुछ चीजों का अभाव और कुछ बातों में दुर्व्यवस्था देखी जाती थी, लेकिन साल भर बाद ही उसमें भारी परिवर्तन हो गया। मेरे भारत लौटने के ४ महीने बाद सोवियत में राशनिंग हट गई। युद्धोपरान्त की पचवार्षिक योजनायें आज मात्रा से अधिक पूरी हो चुकी हैं। पिछले ४ वर्षों में जहां सुख-समृद्धि के साधनों में रूस ने भारी प्रगति की है, वहां अणुबम जैसे घोर अस्त्रों का भी उसने आविष्कार कर लिया है। सैनिक तौर से वह अब दुनिया की सबसे सबल शक्ति है, लेकिन शान्ति का पक्षपाती जितना आज वह है, उतना दुनिया का कोई देश नहीं है। यह मानवता के लिये बड़ी प्रसन्नता की बात है, कि मानवप्रगति का सबसे बड़ा समर्थक और सहायक देश समृद्धि और शक्ति में दिन प्रतिदिन आगे बढ़ता जा रहा है। अब वह अकेला नहीं है बल्कि उसके साथ चीन जैसा महान् राष्ट्र है, जो कि दो

पंचवार्षिक योजनाओं को समाप्त करने के बाद रूस की तरह ही समृद्ध और सबल राष्ट्र हो जायेगा ।

अंत में मैं इस यात्रा के लिखने में सहायक श्री हरिश्चन्द्र गुप्त के प्रति भी कृतज्ञता प्रकट करना चाहता हूं, जिन्होंने मेरे बोलने पर जल्दी जल्दी टाइप करके पुस्तक की लिपि समाप्त करने में सहायता की ।

हैपीवेली, मसूरी

सूची–

अध्याय — पृष्ठ

१ ईरान म — १
  (१) परदेश में खाली हाथ — १
  (२) तेहरान में — ८
  (३) अकारण बंधु — १५
  (४) दो दोस्त — २३
  (५) ईरानी ब्याह — ३१
२ रूस में प्रवेश — ४०
३ लेनिनग्राद में — ५१
४ नून तेल-लकड़ी — ६८
५ प्रोफेसरी — ७१
६ मध्यवर्ग की मनोवृत्ति — ८४
७ मास्को में एक पखवारा — ९६
८ पहिले तीन मास — ११४
९ वसंत की प्रतीक्षा (१९४ — १५७
१० मास्को में सवा महीना — १८०
११ सोवियत अस्पताल में — १९२

अध्याय	पृष्ठ
१२ प्रनाला और निराशा	१६०
१३ फिर लनिनग्राद में	२१७
१४ निर्योकी म	२३/
१५ काला न दुरतिक्रम	२६६
१६ पुन हिमवान	२६७
१७ १६४७ का आरम्भ	३१७
१८ अतिम महान	३४४
१६ लदन क लिये प्रस्थान	३६१
२० इंग्लैंड में	३७३
२१ भारत क लिय प्रस्थान	३६८

★ ★ ★

लेखक :

लनिनग्राद के जाडों (१९४६) में
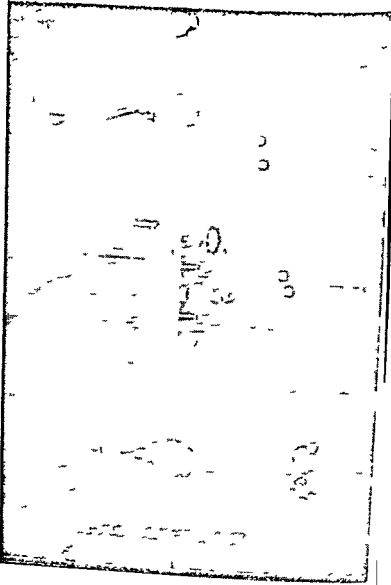
लेनिनग्राद युनिवर्सिटी में 'रवीन्द्र दिवस' पर भाषण देते हुए लेखक

१—ईरान में

परदेश मे खाली हाथ :

१९४४ के अक्तूबर के अन्त में किसी तरह पासपोर्ट पाकर मैं रूस के लिए रवाना हुआ। स्थल-मार्ग ही सस्ता तथा उस वक्त निरापद था, इसलिये मैंने ईरान की ओर पैर बढाया। वैसे मेरी कोई यात्रा पैसे के बल पर कभी नहीं हुई, किन्तु उनमे यह सुभीता अवश्य था, कि "तेत पाव पसारिये, जेती लांबी सौर" की नीति का पालन कर सकता था। युद्ध के कारण विदेशी विनिमय का मिलना बहुत मुश्किल था, जो मिलता था वह भी खर्च करने की देश के नाम निर्देश के साथ। मुझे सवा सौ पौंड विनिमय मिला था, जिसमे मैं १०० पौंड रूस मे खर्च कर सकता था और २५ ईरान में। सोचा था दस-पाच दिन तेहरान में रहना होगा, जिसके लिये २५ पौंड पर्याप्त होंगे, फिर तो वीज़ा लेकर सोवियत भूमि में चल देना है, जहां लेनिनग्राद विश्वविद्यालय में संस्कृत की प्रोफेसरी प्रतीक्षा कर रही है।

उस वक्त करांची से ट्रेन सीधे ईरान की सीमा के भीतर जाहिदान (पुराना नाम दुज्दाबनाबाद) तक जाती थी। रजाशाह ने जर्मन नात्सियों की विजय पर विजय देखकर उदीयमान सूर्य का स्वागत करना चाहा, किन्तु जर्मन भुजायें इतनी लम्बी नहीं थीं, कि ईरान तक पहुँच पाता। रजाशाह पकड़ लिए गये, किन्तु दक्षिणी अफ्रीका में नजरबन्दी पुरुष ही मरदाना की रही, अंग्रेज मियों ने बचारे को अपने यहाँ बुला लिया और उनके शाहजादे को तख्त पर बैठा दिया गया। अब ईरान के अलग अलग भागों पर अंग्रेज, अमरिकन और रूसी सत्तायें नियन्त्रण कर रही थीं। जर्मन सेना की विजय यात्रा पराजय यात्रा में परिणत हो चुकी थी। इसी समय २ नवम्बर (१९४४ ई०) को सबेरे ६ बजे हमारी ट्रेन जाहिदान पहुँची। हम समझते थे, पिछली दो यात्राओं की भाँति कस्टम वालों से अभी भारी भुगतना होगा, किन्तु राज्य की असली बागडोर परदेसियों के हाथ में हो, तो ईरानी अफसरों को बहुत परेशानी उठाने की क्या आवश्यकता? मैं अभी भी कस्टमपरीक्षा की प्रतीक्षा कर रहा था, इसी समय साथ के भाई ने कहा—वह तो मीरजावा (स्टेशन) में ही खतम हो गया। स्टेशन से लोग ने नगर में पहुँचा दिया। १९३७ से जाहिदान अब बहुत बढ़ गया था—युद्ध की बरकत। भारत से कितनी ही चीजें भी इस समय इसी रास्ते से रूस भेजी जा रही थीं। लारी ने एक सुरक्षित सी जगह में ला उतारा था। ऐसी लॉरी में सामान रखकर पासपोर्ट, मोटर टिकट आदि के प्रबन्ध के लिए इधर उधर की दौड़ धूप करने जाना बुद्धिमानी की बात नहीं थी। मैं अपने दूसरे ही पूर्व परिचित के ख्याल से सरदार मेहरसिंह (चकवाल) के मकान पर जा पहुँचा। अपरिचित होने पर भी वह बहुत प्रेम से मिले। बड़े की कुड़माई (सगाई) थी, दो कमरों में मिठाइयों और फल की तश्तरियाँ सजी हुई थीं। "मान न मान मैं तेरा मेहमान" तो मैं बनना नहीं चाहता था, किन्तु सुरक्षित स्थान में सामान रखने के लिए लाचार था।

चीजें भारत में भी बहुत महँगी हो गई थीं, किन्तु यहाँ तो हमारे यहाँ का २० रुपयों का बूट २०० में बिक रहा था। चीजों का दाम भारत से

चौगुना पाँच गुना था। उस पर "जोई राम सोई राम" अराग। मैं उसी दिन मशहद के लिये रवाना हो जाना चाहता था। दोपहर तक शहरवानी (कोतवाली) के कई चक्कर लगाये, किन्तु वहाँ पासपोर्ट का पता नहीं था। बतलाया गया, अभी कोन्तीन से आया ही नहीं। कोन्तीन के डाक्टर गबी ने कहा—न मिले तो लारी छूटने से घंटा पहिले आना, मैं तुम्हारा पासपोर्ट दे दूँगा। लेकिन काम इतना आसान नहीं था। किसी ने सरदार लालसिंह का पता दे दिया। उन्होंने ५० तुमान पर (तुमान=एक रुपया, यद्यपि इरानी बैंक उसे एक रुपये से कुछ अधिक का मानता था) लारी का टिकट खरीद दिया। अगले दिन (२ नवम्बर) को भी सरदार लालसिंह ने दौड़ धूप की, तब दस बजे पासपोर्ट मिल सका, उसके बिना जाहिदान से आगे नहीं बढ़ा जा सकता था। आदमी अतीत के तरद्दुदों को जल्दी भूल जाता है, किन्तु इरान की बस और लारी की यात्रा तो पूरी तपस्या है—शोफर (ड्राइवर) मुसाफिर की जान-माल के बादशाह हैं, जब मर्जी हुई चल पड़े, जब मर्जी हुई खड़े हो गये। रजाशाही कड़ाई हट गई थी, इसलिये फिर सड़कों पर बुर्का (पर्दा) आम दिखाई देता था, कितनी ही पगड़ियाँ भी दिखलाई पड़ती थीं, यद्यपि हैट बिल्कुल उठ नहीं गई थी।

लारी आठ बजे रात को चली। हमारी लारी में ११ बल्ती (काश्मीर) तीर्थयात्री भी थे, जो तिब्बती भाषा ही बोल सकते थे। मुझे कभी कभी दुभाषिया बनना पड़ता था, वैसे अपनी प्रभुता से वह २६ तुमान में ही लारी का टिकट पा गये थे। ड्राइवर की सीट कह कर मुझ से ८० तुमान लिया गया था, किन्तु वहाँ भी चार मुसाफिर ठुँस गये थे। तकलीफ भी बड़े महँगे भाव मोल लेनी पड़ी थी। नंगी पहाड़ियों की मानसून-वंचित भूमि थी। सड़क बनाने की सामग्री सब जगह मौजूद थी किन्तु सड़कों का भाग्य युद्ध ने ही खोला था। चार बजे रात तक लारी चलती गई, फिर दो घंटे के लिए खड़ी हो गई। हम लोग बैठे बैठे ऊँघे। सूर्योदय को फिर चले। चाय के लिए एकाध जगह जरा देर ठहरते एक बजे दिन को बिरजन्द पहुँचे। मील डेढ़मील आगे जाते ही लारी बिगड़ गई, एक बार तो निराशा छा गई, किन्तु घंटे भर बाद वह फिर चेतन हो

गई। रातों-रात मशहद पहुँचने की बात थी, लेकिन ड्राइवर पर नींद सवार हो गई, हमारे दम में दम आई, अर्थात् दो बजे रात (८ नवम्बर) को उसने कुनाबाद में विश्राम लेने का निश्चय किया। वह १० बजे दिन तक सोता रहा। फिर चलते यात्रियों से बारी-बारी के लिए भजन शुरू हो गया, उन्होंने कुछ सुन रक्खा होगा। उसने सुनने २७ ने दोपहर तक बिगड़ा घुमाया, फिर लारी आगे बढ़ी। लारी पर यह तीसरा दिन था। एक एक बार के खाने पर साढ़े तीन रुपये खर्च हो रहे थे।

अँधेरा हो गया था। दूर मशहद नगर के चिराग दिखलाई देने लगे। ड्राइवर ने यात्रियों को दिखला कर कहा—"शागिर्द (क्लीनर) को चिराग-दिखाई की दक्षिणा दो।" ड्राइवर मानो साथ ही साथ पंडा भी था। लेकिन गरीब बनियों ने बड़ी कमाने की कमाई में से कुछ बचाकर मशहद शरीफ में इमाम रजा की समाधि के दर्शन के लिये यह यात्रा की थी, चीजों का दाम भी महँगा था, फिर वह कैसे हर जगह दक्षिणा देते फिरते? उनके इन्कार करने पर शोफर ने "वहशी, जानवर, बर्बर" जाने क्या क्या उपाधियाँ उन्हें दे डालीं। एक जगह रूसी सैनिक ने लाल रोशनी दिखा गाड़ी खड़ी करवाई, फिर चलकर नौ बजे रात को हम मशहद शरीफ पहुँचे। पन्द्रह तुमान और सामान का देना पड़ा। दो एक जगह भटकने पर जब होटल में जगह नहीं मिली, तो पंडाजी मूसा साहिब के प्रस्ताव को स्वीकार करना पड़ा। दुरेशी (फिटन) ने चार तुमान और मजूर ने दो तुमान लेकर गली में पंडाजी के घर पर पहुँचा दिया। हर जगह के पंडों की भाँति यहाँ के पंडे भी यजमान के आराम का ख्याल रखते हैं और तुरंत ही सारे सोने के अंडों को निकलवाने की बात न करने पर भी अधिक से अधिक दक्षिणा पाने की कोशिश करते हैं। मैंने कह दिया— यथाशक्ति तथाभक्ति।

सवेरे (९ नवम्बर) रूसी कौन्सल के पास गया। सोचा कहीं यहीं से अशगाबाद होकर वीजा मिल जाये, तो दिक्कत से बच जाऊँ, किन्तु वह कहाँ होने वाला था। रुपये के रूप में लाये सिक्के खतम हो गये थे, अब ईरान में खर्च

करने के लिये प्राप्त २५ पौंडों पर हाथ डालना था। १० पौंड के चैक के बदले शाहंशाही से १२८ तुमान मिले, जिसमें ७५ तुमान तो तेहरान की बस का किराया देना पड़ा, तीन तुमान मूसा साहेब की और साढ़े चार तुमान मजूरों की भी। पैसों के पर उग आये थे, उनके उड़ते देर नहीं लग रही थी। सूर्यास्त के समय बस रवाना हुई। ७ नवम्बर के दिन और रात चलते रहे। अचारी गाँव में बारह बजे रात को आराम के लिए ठहरे। उताक़ (कमरे) का किराया दो तुमान (रुपया) दे दिया, लेकिन पीछे पिस्सुओं से परास्त हो बाहर लौटना पड़ा।

सवेरे फिर चले। समनान की मँड़इयों का पता नहीं था, अब तो वहाँ बड़े-बड़े पक्के घर खड़े थे, पेट्रोल जो निकल आया था। रेल भी आ गई थी, किन्तु हमें तो बस ही से तेहरान पहुँचना था। दोपहर बाद हाजियाबाद में रूसी चौकी आई। सोवियत कौंसल का दिया पास यहाँ दे दिया। पास लेने वाला रूसी सैनिक बहुत रूखा था, यद्यपि वही बात उसके एसियाई साथी की नहीं थी।

हमारी बस में अधिकतर यात्री तब्रेजी तुर्क थे, जिनमें टोपवालों से पगड़ीवाले अधिक थे। साथ में कारतूस मालाधारी एक सरकारी अफसर साहेब थे जो अपने तिरियाक (अफीम) को बड़े दिखलावे के साथ पीना पसन्द करते थे—कानून के बाबा जो थे। ३०-३२ किलोमीतर तेहरान रह गया था, जब कि उनका तिरियाक पकड़ा गया। पहिले उन्होंने कुछ रोब दिखलाना चाहा, किन्तु उससे कुछ बननेवाला नहीं था। बस रुकी रही। कारतूसी माला डाले अभिमान के पुतले तिरियाकी साहब ने ५०० तुमान रिश्वत के गिन दिए और साथ ही उन्हें अफीम से भी हाथ धोना पड़ा, फिर जाकर छुट्टी मिली। हम सात बजे रात को ईरान की राजधानी (तेहरान) में पहुँचे।

पहिले तो कहीं पैर रखने की जगह बनानी थी, फिर सोवियत वीज़ा की फिकर में पड़ना था। चिराग़बर्क़ सड़क पर ५ कह कर ६ तुमान रोज का एक कमरा "मुसाफिरखाना तेहरान" में मिला। उसी रात पता लगा, यहाँ २० तुमान (रुपया) रोज से कम खर्च नहीं पड़ेगा, और हमारे पास थे केवल १

पौंड या १६२ तुमान अर्थात् सिर्फ दस दिन की खर्चा। बग से यहां पहुँचाने वाले एक सहयात्री शमी और आशा बांधे हुए थे। अगले दिन ५ तुमान देकर उनसे पिंड छुड़ाया।

अगले दिन हम्माम-च्योरवी के पास कूचा-उस्तो में अपने पूर्वपरिचित आगा शमी अली दामियाद से मिलने गये। छ ही साल में इतने बूढ़े मालूम होने लगे! फिर सोवियत कौंसल के यहां गये। कहा गया—पहिले अंग्रेजी दूतावास की सिफारिशी चिट्ठी लाओ, फिर बात करो। मनमारे पहुँचे अंग्रेजी दूतावास में, और भारतीय विभाग के मुखिया मेजर नक्वी के सहायक रिज्वी साहेब से मिले। रिज्वी प्रयाग (शाहगंज) के रहने वाले थे, इसलिये प्रदेशभाई और नगरभाई के तौर पर बड़े प्रेम से मिले, अगले सात महीनों तक उनका वैसा ही सौहार्द रहा। उन्होंने सोवियत वीजा का मिलना आसान नहीं बतलाया।

हमारे सामने बड़ी समस्या थी—१६२ तुमान और रोजाना २० तुमान का खर्च! वहां अब्बासी उर्फ बौम महाशय बैठे थे, उनसे भी परिचय हो गया। वह स्वयं अपनी बीबी-बच्ची (ईरानी) दिखाने आये थे। महीना बात जाने पर भी कहीं कूल किनारा नहीं दिखाई पा रहे थे। मेरी चिन्ता में उन्होंने बड़ी संवेदना प्रकट की। रास्ते में उन्होंने अपने ३० तुमान मासिकवाले कमरे को मेरे हवाले करने का प्रस्ताव किया। मैंने सोचा १५० की जगह मकान का ३० ही तो हुआ। उन्हीं के साथ टैक्सी में सामान रखवा के मैं खयाबान फरिश्ता के उस घर में चला आया। दामियाद साहब का मकान भी पास ही था यह और प्रसन्नता की बात थी। यद्यपि १६२ तुमानों के १८ पौंड के चेक तथा आगे के अनिश्चित समय को देखकर हृदयकम्पन दूर नहीं हुआ था, किन्तु इतना तो समझ गये कि अब २० तुमान से कम शायद १० तुमान में ही रोज का खर्च चल जाये। ६ नवम्बर की रात को बहुत इतमीनान से सोये। अब्बासी अपनी ससुराल में रहते थे, वह वहां चले गये।

अगले दिन चिन्ता दुगने जोर से बढ़ी, जब मालूम हुआ, कि अब्बासी ने दो महीने का किराया मकान, मालकिन को नहीं दिया है। तो भी "दुनियां

था-उम्मीद कायम !" हम हिसाब बांध रहे थे "रोज डेढ़ तुमान की रोटी, मक्खन, खजूर पर गुजारा और इन्सान के बेटे पर भरोसा। चार तुमान रोज से ज्यादा नहीं खर्च करना होगा। १६० तुमान से १० दिसम्बर तक चलायेंगे। तब भी ३० तुमान बच जायेंगे। अंगूठी और रिस्टवाच की जंजीर के तीन तोले सोने पर तीन मास और खपा देंगे। १० फरवरी तक यहां इन्तिजार कर सकते हैं।" बीजा न मिला तो ? भविष्य प्रकाशमान नहीं था।

अगले दिन (११ नवम्बर) १० पौंड भुनाना जरूरी था। अब्बासी का १४ तुमान उधार था, भुनाकर १२८ में से अब्बासी को १५ देने लगा, तो उन्होंने ४० तुमान किसी जल्दी के काम के लिये माग लिये और मैंने सहज भाव से दे दिये। अब हाथ में ६३ तुमान तथा ८ पौंड का चेक रह गया। बीजा के बारे में दौड़-धूप करने पर उस दिन की डायरी में लिखना पड़ा, "अपने आगे में तो अभी आशा की किरण नहीं दिखलाई पड़ती।"

डेढ़ तुमान रोज पर गुजारा करने का निश्चय कर चुका था, किन्तु (१२ नवम्बर) को तीन तुमान गर्माबा (स्नानागार) को ही देना पड़ा। १३ नवम्बर तक अब्बासी से परिचय चार दिन का हो गया था और उनके कई दोष-गुण मालूम हो गये थे। उनको दिए पचास तुमानों के लौटने की आशा नहीं थी, ऊपर से दो मास के बाकी किराये के ६० तुमान के देनदार भी बनने जा रहे थे। लेकिन अब्बासी का दूसरा भी पहलू था, जिसमे वह सच्चे मानवपुत्र जंचते थे। वह बहुत अधिक नहीं बोलते थे, साथ ही बहुत अल्पभाषी भी नहीं थे। "न चैव अपि सत्य स्यात्, पुरुषे बहुभाषिणी" के अनुसार उनकी बातों में बिल्कुल सत्य का कोई अंश ही नहीं था, यह बात नहीं थी, तो भी उस जंगल में से सत्य को ढूंढ निकालना मुश्किल काम था। यदि ९ नवम्बर को अब्बासी मिले थे, तो अगले दिन आगा दौलियाद के यहां दूसरे मानवपुत्र मिर्जा महमूद अस्पहानी से भी परिचय प्राप्त हुआ।

———

तेहरान में :

मैं सन् १९४४ के जाड़ा म तेहरान पहुँचा था। ७ नवम्बर (१९४४) से २ जून (१९४५) तक वहीं इस आशा में पड़ा रहना पड़ा, कि बीज़ा मिले और सोवियत के लिए रवाना हो जाऊँ। यद्यपि यह आवश्यक तथा बहुत कुछ दुर्भर प्रतीक्षा थी, लेकिन करता तो क्या करता? सोवियत बीजा तभी मिला, जब यूरोप म युद्ध समाप्त हो गया, और जर्मनी ने हथियार डाल दिया, लकिन इस सात महीने की प्रतीक्षा को बिल्कुल बेकार भी नहीं कहा जा सकता। तेहरान उस वक्त अतराष्ट्रीय अखाड़ा केवल राजनीतिक बल्कि सैनिक अखाड़ा भी था। राजनीतिक अखाड़ा बल्कि ही नहीं तब नहीं कहा जा सकता था, क्योंकि ईरान क बिल्कुल अमेरिका क हाथ की कठपुतली हो जाने के कारण खेल बराबर पर नहीं हो रहा था।

तेहरान मेरे देखते देखते बहुत बढ गया। प्रथम विश्व युद्ध के बाद वह एक लाख से कुछ ही अधिक का पुराने ढग का नगर था। उसकी गलियां तग और अंधेरी थीं। चौड़े रास्तों को हा सड़क कहा जाता था, पक्की सड़कों का उस समय कहीं पता नहीं था। १९३५ म जब पहलेपहल मैं तेहरान पहुचा, तो वह दो लाख से कुछ उपर का शहर था। सड़कें चौड़ी, सीधी और पक्की हो चुकी था। सड़कों पर विशेष कर केन्द्रीय स्थानों में आधुनिक ढग की इमारतें खड़ी थीं। १९३७ की द्वितीय यात्रा म शहर का आकार काफी बढ गया था, भारत से लौटे मेरे इरानी मित्र आगा दीमियाद न अपना मकान शहर क छोर पर बनवाया था, जहा आसपास बहुत सी खाली जगह पड़ी हुई थी। ७ वर्ष बाद तीसरी यात्रा म अब उनका मकान घनी बस्ती के भीतर था, और आबादी

७ ८ लाख से उपर हो चुकी थी, जिसमे मित्र शक्तियो की सेनायें और वृद्धि कर रही थीं। यद्यपि अग्रेजी, अमेरिकन और रूसी सेनाओं के रहने के लिये शहर से बाहर अलग अलग स्थान नियत थे, किन्तु तो भी सेना का शहर से सम्बध तो था ही। साधारण नहीं तो असाधारण शौकीनी की चीजें खरीदने के लिए सैनिको को वहा जाना पड़ता था। सिनेमा और दूसरी मनोरजन की सामग्री भी वहीं थी। सड़को पर अपने अपने देश की वर्दियां पहिने सैनिक घूमा करते थे।

ऊँचे स्थानो की राजनीति तो यही थी, कि रजाशाह–जिसे नये ईरान का निर्माता कहा जाता है—जर्मन जातियों का पक्षपाती था। उसने मुल्लाओ की धर्मान्धता के विरुद्ध इरान के जातीय अभिमान को खड़ा किया। हके रजा शाही इरानी तरुण अरबों और अरबी संस्कृति पर ४ लात लगाकर अपने को कोरोश और दारयोश के आर्यत्व का उत्तराधिकारी मानने लगा। हिटलर के आर्यत्व के प्रचार के पहिले ही रजाशाह न अपने यहां उसकी ध्वजा गाड़ दी थी, इसलिये कोई आश्चर्य नहीं, यदि हिटलर की नीति के साथ इरान ने भी अपनी नीति को जोड़ दिया। लेकिन यह नीति का जोड़ना केवल आर्यत्व की भावना क कारण नहीं हुआ। जर्मनी ने जिस तरह यूरोप के प्राय सारे भाग को हड़प कर अफ्रीका की ओर पर फैलाया था, उसम रजाशाह को विश्वास हो गया था, कि अबकी विजय जर्मनी की होगी। इसीलिय उसने उगते सूर्य को नमस्कार करना चाहा। चाहे इगलैंड और अमेरिका अभी अफ्रीका म हिटलर के बढाव को न रोक सकते हो, किन्तु रजाशाह की रक्षा के लिए हिटलर की बाह अभी उतनी बडी नहीं थी, इसीलिये एक ही भोक में मित्र शक्तियों की सेनाओं ने ईरान को अपने अधीन कर लिया, रजाशाह को बन्दी बना उसे दक्षिण अफ्रीका भेज दिया। रजाशाह ने एक साधारण तुर्क-परिवार से बढ़कर एक राजवश की स्थापना का, इसलिये उसका गद्दी से वंचित होना कोई बडी बात नहीं थी, लेकिन उसका लड़का (वर्तमानशाह) तो शाहजादा था। हिटलर को हराने के लिये रूस की सहायता की आवश्यकता भलेई मालूम होती हो, किन्तु इगलैंड और अमेरिका रूसी राजव्यवस्था को छूत की बीमारी समझते थे। जिस समय जर्मन सेना रूस के भीतर बढ

रही था, उस समय रूस इस स्थिति में नहीं था, कि अपना किसी बात के लिये जिद करे। ब्रिटिश तथा अमेरिकन साम्राज्यवादी सिर्फ उस समय हमारी लड़ाई को जीतने की ही फिक्र में नहीं थे, बल्कि युद्ध के बाद के अपने साम्राज्य की भी चिन्ता करते थे। इसलिये वह किसी तरह का मार्ग हमेशा नहीं होने देना चाहते थे। इस प्रकार रजाशाह युद्ध की भेंट हुआ, किन्तु उसका राजवंश बचा लिया गया।

तेहरान की सड़कों पर सकड़ों की तादाद में घूमते इन विदेशी सैनिकों को देखकर मालूम हो जाता था, कि ईरान अपने वश में नहीं है। लेकिन जहाँ तक गैर-राज के शासन का सम्बन्ध था, वह ईरानियों के ही हाथ में था। रजाशाह की हकूमत एक तानाशाही या आभिजात्य तानाशाही हकूमत थी। उसमें साधारण जनता या साधारण बुद्धिजीवियों को अपनी आवाज बुलन्द करने का कोई अधिकार अथवा अवसर प्राप्त नहीं था। सारे देश में खुफिया पुलिस का जाल बिछा हुआ था। ईरानी स्त्री पुरुष देश के भीतर भी एक जगह से दूसरे नगर जाते गिरफ्तार होते रहते, यदि उनके पास अपने चित्र सहित जावाज (पासपोर्ट) न रहता। एक तरफ रजाशाह ने इस तरह सारे देश को जकड़बन्द कर रखा था—जिससे उसके शत्रुओं का सर्वथा उच्छेद भी नहीं हो गया था—, लेकिन दूसरी ओर वह कभी कभी अपनी निर्भीकता को भी दिखलाना चाहता था। १९३७ में एक बार मैं सरकारी सचिवालय के पास से जाने वाली सड़क पर जा रहा था, उसी समय एक कपड़े के हुडवाली साधारण मोटर पर ड्राइवर के पास बैठे एक आदमी को जाते देखा। तस्वीर देखने से चेहरा परिचित था, इसलिए मुझे सदेह हुआ लेकिन सन्देह की गुजाइश नहीं रही, जबकि आसपास और कितने ही लोगों को उधर गाड़ी में देखते तथा "आला हजरत" का नाम लेकर इशारा करते देखा। अब भी जावाज आदि के सम्बन्ध में रजाशाही कानून का ही पालन हो रहा था, किन्तु युद्ध ने बहुत सी बन्धी हुई मुहरों को खोल दिया था। २०-२० बरस तक जेल में सड़ रहे अनेक देश-भक्त बाहर निकल आये थे। सोवियत की सेनाएं पास में मौजूद थीं जिनसे मजूरों और बुद्धिजीवियों का साहस बढ़ गया था। उनका

संगठन तूदे (जनता) बहुत मजबूत होता जा रहा था। बुद्धिजीवियों पर उसका भारी प्रभाव था—आज तूदा अवैध संस्था है। साम्यवादी असर को बढ़ते देखकर भी एंगलो अमेरिकन साम्राज्यवादी युद्ध के वक्त उस दबाने के लिये कुछ नहीं कर सके। युद्ध के बाद उन्होंने ईरान को अपने लिये सर्वथा सुरक्षित बनाना चाहा, लेकिन सोवियत के कारण उसमें सफल नहीं हो रहा था। ईरानी आजुर्बायजान—कारकाश पर्वतमाला तथा कास्पियन समुद्र के बीच में अवस्थित विशाल आजुर्बायजान का ही एक अंश है। इसका उत्तरी भाग अर्थात् सोवियत आजुरबायजान एक स्वतन्त्र प्रजातन्त्र के तौर पर सामूहिक खेती और उद्योग धंधों से सम्पन्न सुशिक्षित राष्ट्र हो गया है, जब कि ईरानी आजुरबायजान सब तरह से पिछड़ा हुआ प्रदेश था। युद्ध के समय सोवियत के नागरिकों के साथ साक्षात् सम्पर्क हुआ। उन्होंने देखा कि सोवियत सेना में किस तरह आजुरबायजानी, तुर्कमान, उजबेक, कजाक, रूसी या उक्रैनी सभी एक समान पूर्ण बन्धुता के साथ रहते हैं। इसका असर इन पर पड़ना जरूरी था। ईरानी आजुरबायजान ने स्वतन्त्रता की मांग नहीं की, बल्कि अपना स्वायत्त शासन स्थापित कर लिया; जिसे अमेरिका की मदद से ईरानी सरकार ने बड़ी बुरी तरह से दबा दिया। जब देख लिया, कि सोवियत राष्ट्र युद्ध को आगे बढ़ाने का कारण नहीं बन सकता, तो अमेरिका के शह में पड़ कर ईरानी सरकार ने सभी तरह के वामपक्षी संगठनों को नष्ट करने का निश्चय कर लिया। आज जिन संगठनों को लुक छिप कर ही काम करने का मौका मिलता है, उस समय उन में जान थी।

मित्र शक्तियों के सैनिकों के सम्बन्ध में ईरानियों की क्या राय थी, इसके बारे में मैं एक ईरानी भद्र महिला की बात सुनाता हूँ। उनके पिता भारत में कई साल से रह रहे थे, और शायद अब भी यहीं हैं। अपनी शिक्षा-दीक्षा से उक्त महिला को अर्ध-भारतीय कहा जा सकता है। वह कह रही थीं, जिस फुटपाथ पर मैं चल रही हूँ, अगर उसी पर सामने से अमरिकन या ब्रिटिश सैनिक आता देखूंगी, तो मैं पहिले ही उसे छोड़ कर दूसरी ओर के फुटपाथ से चलने

लगेंगी, लेकिन अगर सामने से कोई रूसी सनिक आता हो, तो मैं जरा भी नहीं हटूँगी। मैंने कहा—तब तो आप उसको धक्का देती चली जायेंगी। महिला ने हँसते हुए कहा—हां बिल्कुल ठीक है, धक्का लग जाने पर भी कोई डर की बात नहीं है। रूसी सैनिकों के बारे में वहां तरह तरह की दंत-कथायें प्रचलित थीं। एक दिन भारत से लौटे एक दूसरे ईरानी विद्वान की वृद्धा पत्नी कह रही थीं—हम लोग माजन्दरान के रहने वाले हैं, जो रूसी सीमा के पास है। वहां रूसी सैनिक छावनियां डाले पड़े हुये हैं। एक बात उनके बारे में अभी सुनी, किसी रूसी सनिक ने किसी के बाग से बिना पूछे बिना दाम दिए एक सेब तोड़ लिया था, जिस पर उसे भरे बाजार कोड़ा लगाने की सजा हुई थी। क्या यह अति नहीं है? मुझे इस घटना की सत्यता असत्यता का क्या पता था, कि जवाब देता। लेकिन रूसी सैनिकों को लोग भ्रष्ट होने की सीमा से परे समझते थे। अमेरिकन सैनिक दोनों हाथ से पैसे लुटाते थे। ईरानी और उनमें भी ज्यादा रूसी-भ्राति के वक्त भागे श्वेत रूसी तो समझते थे कि उनके पास सोने की खान है। पहिले महीने-दो-महीने तक जिस घर में मैं रहता था, उसके पास के कमरे में एक श्वेत रूसी वृद्धा अपनी तरुणी पुत्री के साथ रहती थी। उनके यहां जब तब कोई अमेरिकन सनिक आता रहता था। वह तो मना रही थीं, कि मेरी लड़की किसी अमरिकन के साथ ब्याह कर लेने का सौभाग्य प्राप्त करे, तो भाग्य खुल जाये।

तेहरान में भारतीय सैनिक भी कई हजार थे। प्रथम विश्वयुद्ध के समय भी इरान में कहीं कहीं भारतीय सनिक रहे थे, किन्तु तब भारतीय केवल सिपाही भर होते थे। अब तो कितने ही कप्तान, मेजर और कर्नल थे। लेकिन अभी हिन्दुस्तान अंग्रेजों का गुलाम था, इसलिये भारतीय सैनिकों के प्रति किसी का कोई मान-दुर्भाव नहीं था। उनका वेतन भी कम था, इसलिये पैसा खर्च करने में उतनी मुक्तहस्तता नहीं दिखला सकते थे, जितने कि अंग्रेज और अमेरिकन सैनिक।

युद्ध ने सभी जगह चीजों का मोल बढा दिया था। भारत में भी रुपये

का दो सेर आटा हो गया था, १० रुपये के जूते २० रुपये में बिक रहे थे, लेकिन तेहरान में तो वह जूता सौ पर भी नहीं मिलता। वहां सभी चीजें बहुत महंगी थीं। १६३५ में दो आना या छ पैसा सेर बढ़िया अंगूर बिकता था, और अब वह उसी भाव बिक रहा था, जिस भाव में बम्बई या लाहौर में। खान की चीजें भी बहुत मँहगी थीं। विदेशी सेनायें अपने देश से पैसा मंगाकर यहां खर्च कर रही थीं, इसलिये पैसा की कमी नहीं थी। रोजगार की भी कमी नहीं थी। सैनिकों के उपयोग की भी बहुत सी चीजें बाजार में चली आती थीं। वहां ब्रिटिश, अमेरिकन, फ्रेंच, भारतीय सभी देशों के बने सिगरेट मिलते थे। सिनेमा खोलने में तो इन देशों ने एक दूसरे से होड़ सी लगा रखी थी। कितने ही सिनेमाघरों को अमेरिकनों ने किराये पर ले लिया था, जहां उनके फिल्म चलते थे। अंग्रेजों के भी दो या तीन सिनेमा चल रहे थे। रूसी भी अपना सिनेमा हाल खोले हुये थे। भारत ने अपनी ओर से कोई सिनेमा नहीं खोला था, क्योंकि भारत की उस वक्त पूछ ही क्या थी, लेकिन हमारे यहां के फिल्म तेहरान में कई सिनेमाहालों में दिखाये जाते थे, और वह होते थे, ज्यादातर "पिस्तौलवाली" "हन्टरवाली" टाइप के। यद्यपि इस तरह के फिल्मों को देखने के लिये और नगरों से अधिक भाड़ रहती थी, किन्तु भारत के लिए वह गौरव की बात नहीं था।

———

: अकारण बन्धु :

८ नवम्बर १९४४ की शाम को करीब करीब खाली हाथ में ईरान की राजधानी तेहरान में बड़ा आशावान पहुँचा था। सोचा था जल्दी ही सोवियत वीजा मिल जायगा और मैं लेनिनग्राद पहुँच जाऊँगा। उस वक्त कहाँ मालूम था, कि ३ जून १९४५ को प्रायः सात महीने बाद मैं तेहरान से आगे बढ़ सकूँगा। तेहरान में जो प्रथम भारतीय मित्र मिले थे, उनका असल नाम तो था अभयचरण, किन्तु वह बने थे अब्दुल्लाह या मुहम्मदशाह अब्बासी। उस गाढ़ के समय हाथ में बचे कुछ तुमानों में से भी कितने ही को बात बनाकर ऐंठ लेने से उनके बारे में कोई निर्णय कर बैठना भारी गलती होगी। उनमें परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों का अद्भुत सम्मिश्रण था। कभी वह साक्षात् करुणापूर्ण देवता बन जाते थे और कभी उनका रूप कुत्सित शैतान जैसा मालूम होता था। उनके बारे में आगे कहूँगा। पहिली यात्रा के परिचित वृद्ध आगा अमीरअली दामियाद हमारे उस घर से नजदीक ही थे, जिसमें कि अब्बासी ने मुझे ले जाकर टिकाया था और जिसके बारे में आगे मालूम हुआ, कि महीनों का बाकी किराया अब मुझे चुकाना पड़ेगा। ९ तारीख को ही दौड़ धूप करने से पता लग गया, कि वीजा इतनी जल्दी मिलने वाला नहीं है। उसी दिन दामियाद साहब से मिल आया था। १० नवम्बर को ४८ घंटा तेहरान में रहने के बाद अब अपनी आर्थिक कठिनाइयाँ सामने नंगी खड़ी मालूम हो रही थीं। घबराने से कोई लाभ नहीं था, किन्तु कहीं से भी आशा की किरण दिखलाई नहीं पड़ती थी। मैं १० नवम्बर को सबेरे दामियाद साहब के घर गया था। वहाँ एक हँसमुख प्रौढ़ गोरे चेहरे वाले पुरुष से मुलाकात हुई। उसकी काली आँखों में एक तरह की विशेष चमक दिखलाई

पड़ती थी, जिससे स्नेह और बुद्धि दोनों का आभास मिलता था। दीमियाद साहब, उनकी लड़की ताहिरा और उक्त सज्जन (मिर्जा महमूद अस्पहानी) से दो घंटे तक बातचीत करते मैं अपनी सारी चिंताएं भूल गया था। उन्हीं के साथ मैं सैयद मुहम्मद अली "दाइउल इस्लाम" के घर गया। दाइउल इस्लाम कई सालों से हैदराबाद में रहते थे, जहां रहकर उन्होंने "फरहंगे निज़ाम" नामक एक फारसी कोश लिखा था। उनकी तीन लड़कियां यद्यपि ईरान के पक्षपात के कारण अपने पितृदेश में आ गई थीं, किन्तु उनमें हिन्दुस्तानियत की बू इतनी अधिक थी कि वह ईरानी बन जाने के लिये तैयार नहीं थीं। दो बड़ी लड़कियों में एक एम० ए० और दूसरी एम० एस्० सी० थी। छोटी जुनियर केम्ब्रीज पास थी। पिता का मकान हैदराबाद में भी था, किन्तु वह चाहते थे, अपनी लड़कियों का ब्याह ईरानियों से करना। मिर्जा महमूद ईरानी हिन्दुस्तानी थे, इसलिये वह दामाद बनने के योग्य थे। उनकी हिन्दुस्तानी बीबी मर गई थी, इसलिए वह शादी करना चाहते थे, किन्तु बड़ी लड़की से नहीं, जिसे कि दोस्त लोग पूरी गो कहते थे। वह सदा नमाज रोजे रखने वाली भोलाभाली तथा रूप में भी कुछ कम लड़की महमूद को क्यों पसन्द आने लगी? बाकी दोनों में से किसी के साथ विवाह करने को वह तैयार थे, किन्तु पिता अपनी जेठी कन्या को कुमारी रख कर दूसरी का विवाह करने के लिए तैयार नहीं थे। अन्त में उन्हें मझली लड़की का विवाह पहिले करना पड़ा, और महमूद को भी इच्छा या अनिच्छा से अपनी सौतेली मां की छोटी बहन के साथ निकाह करना पड़ा।

उस दिन हम दोनों आठ-दस घंटे साथ साथ रहे। आठ दस घंटा आदमी के पहिचानने के लिए काफी नहीं है, लेकिन जान पड़ता है खुलकर बातें करते सुनते एक दूसरे के ऊपर विश्वास करने की भूमिका तैयार हो गई थी। महमूद के पिता बड़े व्यापारी थे। कलकत्ते के अस्पहानी आदमी के पिता और वह दोनों सगे भाई थे। दोनों का कारबार भी बहुत दिनों तक साझे में था। उनका कारबार विलायत तक था। रुपया कमाने और उड़ाने दोनों में वह बड़े बहादुर थे। मदिरा, मदिरेक्षणा के अनन्य साधक थे, जिनके लिये अत्यन्त उपयुक्त स्थान

समझकर बुढ़ापे में उन्होंने तेहरान का निवास स्वीकार किया था। उड़ाते-पढ़ाते भी उन्होंने चार-पाँच लाख की जायदाद तहरान नगर में अपने मरने के समय (१६४३ ई०) छोड़ी थी। लड़ाई के समय चीनी का भाव बहुत बढ़ गया, *दाम कर ईरान में तो वह सोने के मोल बिक रही थी।* बूढ़े सौदागर को इसका आभास पहले ही मिल गया था, और उन्होंने दसियों हजार बोरा चीनी हिन्दुस्तान से मँगाली, जिसमें तेरह चौदह लाख रुपये का नफा हो गया। चीनी के बोरे हिन्दुस्तान की सीमा (नोक्कुंडी) में आकर अटके हुए थे, जहां से निकाल लाने के लिये पिता ने कलकत्ते से महमूद को बुलाया। महमूद ने चीनी पार कराई। *वह रहे थे, यदि वह चीनी आज रही होती, तो नफा एक करोड़ का होता।* महमूद के तेहरान पहुँचने के पाँच मास बाद पिता मर गये। अब उनकी जायदाद को बेचने और उसमें से अपना हिस्सा लेने की समस्या महमूद के सामने थी। उनके सौतेले भाइयों और बहनों की संख्या काफी थी, जिनमें से कुछ भारत में और कुछ ईरान में थे।'

१७ नवम्बर तक हम दोनों का परिचय घनिष्ठ मित्रता में परिणत हो गया था। महमूद खुले दिल के आदमी थे, जिसका यह अर्थ नहीं, कि समझ में कमी रखते थे। मेरे भीतर भी उन्होंने कुछ समानता देखी और यह जानने में भी दिक्कत नहीं हुई, कि मैं किस कठिनाई में पड़ा हूँ। मेरे पास दो तीन तोले सोने, तथा एकाध और चीजें थीं, जिनके बेचने की मैं सोच रहा था। इसी समय महमूद ने कहा—चलो फकीरों की झोंपड़ी में, संकोच मत करो। उनके फक्कड़ स्वभाव से भी मैं परिचित हो चुका था। तेहरान विश्वविद्यालय के समीप ही तिमहले पर दो कोठरियाँ उन्होंने ले रखी थीं। *बहुत मामूली सामान* था। एक नौकरानी (रूसेया) थी जो खाना बना दिया करती थी। महमूद नौ बजे दफ्तर चले जाते थे, उन्होंने एक ईरानी सौदागर के साथ कुछ कारबार शुरु किया था। मैं या तो वीजा के लिए कोशिश करने ब्रिटिश तथा सोवियत दूतावास का चक्कर लगाता, *या कहीं से कुछ पुस्तकें पैदा करके पढ़ता।* महमूद के आने पर कभी हम दीमियाद साहब के यहां जाते और कभी दाइउल

इस्लाम के यहाँ। उनकी सोतला मां और पिता के घर भी जाते थे। उस समय युद्ध के कारण तेहरान म भारतीय सेना भी काफी संख्या में मौजूद थी, इसलिए कभी कभी भारतीयों से भी मिलने चले जाते। तेहरान म अमेरिकन, अंग्रेजी, फ्रेंच और रूसी ही नहीं कुछ हिन्दी फिल्म भी दिखाये जाते थे। हिन्दी फिल्मों मे "पिस्तौलवाली" जैसे बहुत नीचे दर्जे क फिल्म ही अधिक थे।

एक दो सप्ताह तो मुझे यह बहुत बुरा मालूम होता था,— कि मैं क्यों अपने दोस्त पर अपना भार डाल रहा हूँ, किन्तु पीछे उनके स्वभाव से अधिक परिचित होने के बाद वह संकोच जाता रहा। दाइउल् इस्लाम की ज्येष्ठ कन्या जाहिरा ने एक दिन उस्मानिया विश्वविद्यालय के एम० ए० के अपने निबंध को सुनाया। मुल्लों या पुराने पंडितों जैसी खोज थी—अशोक एकेश्वरवादी था। वह ईरान क अखामनी (दारा) खानदान म पैदा हुआ था। उसने पर्सेपोलिस के कारीगरों को बुलाकर भारतवर्ष म इमारत बनवाई थीं। अशोक का दादा चन्द्रगुप्त ईरान क नगर मुरु से भाग कर आया था, जो कि पर्सेपोलिस (तख्तेजम्शीद) का ही दूसरा नाम था। अशोक बौद्ध नहीं था। अजन्ता की गुफायें बौद्ध विहार नहीं थे, बल्कि पुलकेशी और दूसरे दक्खिनी राजाओं की चित्रशालायें हैं, जिनमें उनकी वास्तविक जीवनी और इतिहास लिखा हुआ है। उनका बुद्ध और बौद्ध भिक्षुओं से कोई सम्बन्ध नहीं, बुद्ध ने तो चित्र और मूर्तियां बनानी मना कर दी थीं, फिर बौद्ध भिक्षु इन्हें कैसे बना सकते थे? यह शृंगारी मूर्तियां और चित्र बौद्ध भिक्षुओं के बनाये कभी नहीं हो सकते। मैंने बड़े धैर्य से जाहिरा खानम् के निबन्ध को सुना। मुझे आश्चर्य होता था, उसमानिया विश्वविद्यालय क उस प्रोफेसर क ऊपर, जिसकी देखरेख में यह निबन्ध लिखा गया।

दाइउल् इस्लाम साहेब अरबी फारसी ही नहीं, संस्कृत भी काफी जानते थे। वह तेहरान विश्वविद्यालय म संस्कृत पढ़ा सकते थे, किन्तु "धोबी बस के का करे, दीगम्बर के गांव" वाली कहावत थी। उनके पास भी काफी समय था, मेरे पास भी कोई काम नहीं था और महमूद को भी थोड़ा ही काम था।

इसलिये हर दूसरे तीसरे हम लोग दाइउल्-इस्लाम के यहां पहुँच जाते थे। अभी भी लोग महमूद से निराश नहीं थे। महमूद की बीवी मर चुकी थीं, किन्तु उनके बच्चे कलकत्ते में थे, जिनसे पिता का काफी प्रेम था। वह विवाह करने के लिये पहिले एक परी की आँखों के शिकार हुए। उसने भी कई महीने उन्हें अपने प्रेम-पाश में बाँध रखा, किन्तु उसके मां-बाप राजी नहीं हुए। लाचार हो उसे उनकी आज्ञा के सामने झुकना पड़ा। अब महमूद के सामने पाँच लड़कियाँ थीं। ताहिरा को वह ज्यादा पसंद करते, किन्तु मेरे आने पर वह समझने लगे, कि वह स्वतंत्र प्रकृति की नारी है, उससे नहीं निभेगी। जाहिरा को वह कहते थे—यह काठ का कुन्दा है जिसे नमाज पढने से ही फुर्सत नहीं। हमारी उसके साथ संवेदना थी क्योंकि वह पैंतीस साल की हो चुकी थी। उसका एक इरानी चचेरा भाई, जो बढ़ई का काम करता था, विवाह करने के लिए तैयार था, किन्तु जाहिरा ने उसे इन्कार कर दिया। मझली सिद्दीका (एम ए म सी) शुद्ध इरानी श्वेत रक्त को चाहती थी, और पिता तो "बड़ी लड़की की शादी हुए बिना उसकी शादी कैसे करें" का बहाना कर देते थे। सौतेली मां की छोटी बहन पढी लिखी नहीं थी, किन्तु अठारह वर्षीया सुन्दरी गोरी थी। महमूद का ख्याल उस पर नहीं जाता था। क्योंकि सौतेली मां के परिवार पर उनका विश्वास नहीं था, बयालीस तथा अठारह बरस के अंतर का भी ख्याल आता था। मैं बाज वक्त कह देता था—कि आदर्श पत्नी तो जाहिरा ही हो सकती है। किन्तु जब तक दूसरी नवतरुणियां हैं, तब तक इस शुष्क चिरतरुणी को कौन पूछेगा? दाइउल् इस्लाम के पड़ोस में एक और सुशिक्षित संस्कृत महिला थी जिसे मधुस्राविणी काव्यमयी सुन्दरी कहा जा सकता था, किन्तु उनका सम्बन्ध हुआ था ऐसे आदमी के साथ जिसे देखकर महमूद आश्चर्य करते थे। मैंने कहा—अल्लामियां अपने गदहों के सामने अंगूर फेंकता है, इसमें हमारा तुम्हारा क्या?

मेरे आने के महीने भर बाद महमूद की सौतेली मां से सुलह हो गई। यद्यपि वह चाहते थे, कि भाइयों की सहायता करें, किन्तु वह जायदाद के

सम्बंध में चाल चल रहे थे। फिर उनको क्या पड़ी थी, खामख्वाह परदेश में आकर झगड़ा मोल लेते? सुलह का मतलब था— अब शादी इज्जत से होगी। वह मानते थे— कि वह सुन्दर तरुणी है, शिक्षित न होने पर भी और गुण उसमें हो सकते हैं, किन्तु वह शीराज के उसके खानदान पर विश्वास करने के लिए तैयार नहीं थे। लेकिन उनके पिता आगा हाशिम अस्पहानी भी तो उसी खानदान में शादी कर चुके थे।

दिसम्बर के अन्त तक मैं आर्थिक तौर से अब निश्चिन्त हो चुका था। मेरे मित्र सरदार पृथ्वीसिंह ने बम्बई से हजार रुपये भेज दिये थे, उधर प्रकाशक से भी ५०० रुपये आ गये थे। जरूरत पड़ने पर और भी रुपये आ सकते थे। जब सुलह हो चुकी, और छोटी बहन के साथ ब्याह की भी बात तै भी हो चुकी, तो सौतेली माँ जोर देने लगी— कि यहीं चले आओ, क्या अलग रह कर अपना खर्च बढ़ाते हो। १९ दिसम्बर को चारों ओर बरफ फैली हुई थी। आठ-नौ बजे तक हिमवर्षा जारी थी। उसी दिन ग्यारह बजे सामान घोड़ागाड़ी पर लदवा कर हम नाजिमुत्तुज्जार आगा हाशिम अली अस्पहानी के घर पर चले आये। अब से पाँच महीने के लिये इस्मत खानम् का यह मकान मेरा भी निवासस्थान बन गया। महमूद अकेले रहते थे, तब तो उनके स्वभाव से परिचित हो जाने के कारण सकोच का कारण नहीं था, किन्तु यहां मेरे सामने फिर समस्या आई—अनिश्चित काल के लिये कैसे मेहमान बनूं। मेरे पास अब पैसा भी था, किन्तु भारतीय शिष्टाचार की तरह पैसा देने वाला मेहमान रखना वहां भी शान के खिलाफ समझा जाता है। भवितव्यता के सामने सिर झुकाना पड़ा। मैं इस्मत खानम् की मेहमानी का प्रतिशोध रुपये पैसे में नहीं कर सकता था। वस्तुतः वह घर थोड़े ही दिनों बाद मेरा घर हो गया। घर के सभी लोगों के बारे में तो नहीं कहा जा सकता, किन्तु गृहस्वामिनी का बर्ताव बहुत ही गम्भीर और मधुर था। इन पाँच महीनों में एक ईरानी मध्यमवर्गीय परिवार में चौबीसों घंटे रहकर मैंने उन्हें बहुत नजदीक से देखा। इस्मत खानम् सितार बहुत सुन्दर बनाती थीं, जिसमें

माय रोज ही रात के भोजन के बाद हमारा मनोरंजन हुआ करता था। महमूद जब इज्जत के साथ विवाह करने को तैयार हो गये, तो फिर उनकी बड़ी बहन ने सौदा करना शुरू किया। यह कोई बुरी बात नहीं कही जा सकती। जिस देश में पुरुष किसी भी वक्त स्त्री को तलाक दे सकता है, वहां यदि आर्थिक सुरक्षा की चिन्ता की जाये, तो क्या आश्चर्य है? दिसंबर के अन्त में मोहर्रम का पवित्र महीना आ गया। ईरान शीया देश है। वहां इमाम हुसैन की शहादत (वीरगति) का बहुत मातम मनाया जाता है। २५ दिसम्बर को उस साल इमाम हुसैन का "रोजेकत्ल" और ईसा का भी जन्म दिन था। नवीन ईरान में अब मोहर्रम के लिये स्त्रियों का "गिरिया" (रोदन) और पुरुषों की "सीनाज़नी" (छाती पीटना) अब बन्द कर दिया गया है। खानम् के घर में एक दिन एक मुल्ला १५ मिनट के लिए आया। उसने कुछ मर्सिया गाये और खानम् ने कपड़े में मुंह छिपा कर रोदन किया।

अब मेरी दिनचर्या थी। सबेरे सात-साढ़े सात बजे उठ कर हाथ मुँह धोना, हजामत से निबट, फिर परिवार के साथ पनीर मक्खन-रोटी और तीन गिलास बिना दूध की मीठी चाय पीना। आठ नौ बजे के करीब मैं उस कमरे में पहुंच जाता था, जहां "कुर्सी" के नीचे परिवार के लोग बैठे रहते थे। सरदी के कारण मकान को गरम करने की आवश्यकता होती है, किन्तु मध्य एसिया, अफगानिस्तान और ईरान में लकड़ी दुर्लभ है, इसलिये लोगों ने "कुर्सी" का तरीका निकाला। गज भर लम्बी गज भर चौड़ा हाथ भर ऊँची चौकी "कुर्सी" है, जिसके ऊपर चौकी से दो दो हाथ बाहर निकला मोटी रजाई रख दी जाती है। चौकी के नीचे अंगीठी में कोयले की आग रहती है, जिससे कुर्सी गरम हो जाती है। लोग उसी चौकी के चारों ओर मसनद के सहारे बैठकर छाती तक शरीर को रजाई के नीचे डुबा देते हैं। बहुत कम खर्च में गरम रखने का यह सुन्दर तरीका है। कुर्सी के नीचे बैठे बैठे पढ़ना या गप्पें मारना यही काम था। मेरे लिये तो इन गप्पों से भी बहुत लाभ था, क्योंकि वहां केवल फारसी में ही बात हो सकती थी। एक बजे रसोईदारिन भोजन तैयार करके

जाती थी, जिसमें तंदूर की मोटी रोटियाँ, चावल या पुलाव, गोश्त या माही, कच्ची हरी पत्तियाँ, सिरका या सिरकावाली प्याज मुख्य तौर से रहते थे। यदि बाहर जाना नहीं होता, तो मध्याह्न भोजन के बाद, फिर वहीं पढ़ना लिखना या बातें करना; तीन-चार बजे फिर दो-तीन गिलास मीठी चाय पीने को मिलती। शाम को सात आठ बजे रात्रि-भोजन होता था, जिसमें चावल, मांस, सबजी, सिरका, रोटी, कलबासा (सॉसेज) मुख्य होता। भोजन के बाद पोर्तगाल (मुसंबी) या कोई दूसरा फल भी रहता। फिर ग्यारह बारह बजे रात तक संगीत या गप छिड़ी रहती। महमूद के साथ मेरा और मेरे साथ महमूद का दिल बहलाव ही नहीं होता था, बल्कि हम एक दूसरे की चिन्ता में सहायक होते थे। ब्याह का सौदा कभी कभी पकड़ कर ले लेता, उस वक्त महमूद बहुत घबड़ा उठते।

जनवरी के अंत में अभी भी सरदी काफी थी। ईरानी बच्चे सूर्य देवी से प्रार्थना करते थे—

खुर्शीद ख़ानम् आफ़ताब कुन्। यक्मेर बिरंज तूये-आब कुन्।
(सूर्य देवी धूप कर। एक सेर चावल पानी में डाल)
मा बच्चहाय-गुर्ग एम्। अज़- सरमाय मे मुरेम।
(हम बच्चे भेड़िया के हैं। सरदी से मर रहे हैं)

लेकिन खुर्शीद ख़ानम् में अभी इतनी शक्ति नहीं थी, कि बच्चों को आफ़ताब (धूप) दे सके। २५ मार्च को भी चिनार, सफेदे, अंगूर आदि में कहीं पत्ता का चिह्न नहीं था। ६ अप्रैल को सफेदे के वृक्षों में अभी पत्ते कलियों की शक्ल में फूट रहे थे। हाँ कुछ दूसरे वृक्षों में हरे पत्ते निकल आये थे।

एक दिन इस्मत ख़ानम् महमूद के नमाज न पढ़ने की शिकायत कर रही थी—"गुनाह अस्त, बराय हर मुसलमान नमाज लाजिम अस्त" (पाप है, हर एक मुसलमान के लिए नमाज पढ़ना कर्त्तव्य है)। मेरे मुँह से निकल गया,— "हर कसे कि शराब न मीख़ुरद, बराय उन नमाज माफ़ अस्त।"

(जो कोई शराब नहीं पीता, उसके लिये नमाज माफ है)। मुझे नहीं मालूम था कि मैंने खानम् के किसी मर्मस्थान पर चोट पहुँचाई। उन्होंने बड़े उत्तेजित स्वर में कहा—"तू पैगम्बर हस्ती," (तुम पैगम्बर हो?) उस वक्त ३४ ३५ वर्षीया सुन्दरी का तमतमाता चेहरा देखने लायक था। अभी सबेरे की चाय का वक्त था, श्रोठों पर अधर राग नहीं चढ़ा था, न गालों पर पौडर और रूज ने अपना रंग जमाया था। गाल लाड़े में घुंघराले किये बालों में रची नहीं फिरी थी श्रौर न मोती की लड़ी तथा हारे की गुच्छेदार मर्कटीनिया सीने पर रखी गई थी। चेहरा फीका होना ही था, क्योंकि उसे चमकाने के लिये अपेक्षित बनाव शृंगार चाय पीने के बाद का चीज थी। खानम् की अलाप्लुत बड़ी बड़ी आँखों में सुर्खी उतर आई थी। उनके उत्तेजित स्वर में कुछ क्रोध का भी भास हो रहा था। उनको कहना चाहिये था, "शुमा (आप)"। और मैं खुदा नहीं था, क्योंकि नमाज माफ करने का काम खुदा का ही है। फिर वह सँभल कर नरमी से कहने लगी—"दुनियाँ में इस्लाम सबसे अच्छा और अन्तिम मजहब है।" फिर क्या क्या खुदा और इस्लाम पर उपदेश देने लगी। महमूद और आगा दीमियान जानते थे, कि मैं बज्र नास्तिक हूं, किन्तु खानम् को यह बात मालूम नहीं थी। वह जानती थी, कि मैं शराब नहीं पीता, बुद्ध मजहब का मानने वाला हूं। बुद्ध मजहब क्या है, इसका भी उन्हें पता नहीं था। मुझे तो अपनी असावधानी पर अफसोस हो रहा था। छैलछबीली इस्मतखानम् शराब की बहुत शौकीन थीं, किन्तु नमाज प्रायः रोज एक दो बार पढ़ लेती थी। नमाज पढ़ने वाले के लिये शराब पीना माफ है, यदि यह कहता तो वह पसन्द करतीं। वैसे वह बड़े कोमल हृदय की महिला थीं। इमाम हुसैन के सम्बन्ध में मर्सिया सुनते बहुत रोया करती थीं। जब मैंने अन्त में किसी दूसरी ही जगह जाकर रहने का निश्चय कर लिया—पाँच महीने रहने के बाद भी अभी वाजा का कहीं ठौर ठिकाना नहीं था— तो वह बड़ी चिन्तित हो गईं और जरा सा ज्वर आजाने पर अपनी नौकरानी को मेवा के लिये भेजा।

: दो दोस्त :

दो दोस्त से मतलब यह नहीं कि वह आपस में दोस्त थे। शायद मेरे मिलने से पहले दोनों ने एक दूसरे को देखा भी नहीं था। दोनों का जन्म बंगाल में हुआ था, एक का कलकत्ता में और दूसरे की तीन चार पीढ़ियों की कब्रें हुगली में यहीं पर हैं। सोलह-सत्रह साल से कोडेक कैमरा मेरा अभिन्न सहचर हो गया था, किन्तु १९४४ के अक्तूबर में जब हिन्दुस्तान की सीमा पार करने लगा, तो कैमरे को क्वेटा में ही छोड़ जाना पड़ा। इस प्रकार मैं तीसरी बार ईरान में अबके बिना कैमरे ही के दाखिल हुआ था। और अपने इन दोनों दोस्तों का चित्र नहीं ले सका।

(१) दीमियाद—दोनों में एक सत्तर के करीब पहुंच रहा था, और दूसरा तीस साल से कुछ ही ऊपर। बूढ़े आगा अमीरअली दीमियाद सौजन्य और सरलता की साक्षात् मूर्ति थे, किन्तु साथ ही कुछ आदर्शवादी टाइप के आदमी थे, जिसके कारण बुढ़ापे में हिन्दुस्तान को छोड़ कर उन्हें ईरान जाना पड़ा। माना कि वह मूलतः ईरानी थे, यही नहीं अपने ईरानीपन को जागृत रखने की उनके खानदान में कोशिश की गई थी। कह नहीं सकता, उनके घर में हिन्दुस्तान में भी फारसी बोली जाती थी या नहीं। स्वयं दीमियाद साहेब तो फारसी ऐसे बोलते थे, जैसे कि वह उनकी मातृभाषा हो। उनकी पत्नी बेगम दीमियाद उम्र में उनसे बीस-बाईस बरस कम मालूम होती थीं। हो सकता है दोनों की आयु में इतना अन्तर न हो, और अपनी काठी के कारण खानम् दीमियाद कम उम्र की लगती हों। वह भी हिन्दुस्तान ही से पैदा हुई थीं। मैं जब उनके यहां जाता, तो वह कोशिश करतीं कि कोई

हिन्दुस्तानी खाना सिखायें। एक दिन हँसी हँसी में कह रही थी—मेरा तो अवध के एक ताल्लुकेदार से विवाह होने वाला था। तकदीर में निराश हो कर सुन्दरी होगी। दीमियाद-दम्पती की सतानें एक लड़का और एक लड़की थीं, जिनकी नसों में माता पिता ने अधिक ईरानी खून जोड़ रखा था। जब उन्होंने सुना और पढ़ा कि रजाशाह पहलवी नया ईरान का निर्माण कर रहा है, सासानियों और अखामनियों का ईरान फिर से प्रकट हो रहा है, तो उन्हें भारत में रहना पसन्द नहीं आया। संतान के आग्रह से आखिर दीमियाद साहब अपनी संपत्ति को बेच बाच कर तेहरान चले गये। वह व्यवहार-कुशल थे, इस पर मेरा कम विश्वास है, किन्तु उन्होंने यह अच्छा ही किया, जो तेहरान में अपने लिये एक घर बनवा लिया। अपनी पहिली ईरान-यात्रा (१९३५) में जब मैं उनसे मिला, तो अभी घर पूरा नहीं बन सका था। उस समय घर के आसपास उजाड़ भूमि पड़ी हुई थी। लेकिन नौ बरस बाद अब तेहरान बहुत बढ़ चुका था और यहाँ एक अच्छा खासा मोहल्ला आबाद हो गया था। अब इस दुनिया में भाई दीमियाद के होने की आशा नहीं है, और यदि उनका खुदा गवाह है, तो वह उसके बहिश्त में कहीं अच्छे घर में होंगे, जो उनके तेहरान वाले घर से बुरा तो नहीं होगा। मेरा उनके साथ बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया था। आश्चर्य तो यह, कि हम दोनों के विचारों में जमीन-आसमान का अन्तर था। उन्हें कट्टर मुसलमान तो नहीं कहना चाहिये, क्योंकि उनमें असहिष्णुता छू नहीं गई थी, लेकिन पक्के खुदा के बन्दे थे। बुढ़ापे में उनके लिये चलना फिरना आसान काम नहीं था, तो भी शायद ही कभी नमाज नागा जाती हो। उधर मैं खुदा को सीधे फटकारता था। वह जानते थे कि यदि खुदा मुझे मिल जाता, तो मैं उसके मुँह पर भी चार सुनाये बिना नहीं रहता। तब भी वह मुझे अपना सगा सा समझते थे। जब सात महीने की प्रतीक्षा के बाद मैं रूस जाने लगा था, तो उन्होंने एक लिफाफा मेरे हाथ में चुपके से रख दिया, उसमें अंग्रेजी में लिखी एक कविता थी, जिसे दीमियाद साहब ने स्वयं रचा था, उसमें मेरे बारे में कसीदाख्वानी की गई थी।

दीमियाद साहेब सुपण्डित और सुसंस्कृत पुरुष थे। उनके पिता एक अच्छे डाक्टर थे, अच्छी सरकारी नौकरी में थे। पुत्र को विलायत भेजा था कि वहां से बैरिस्टर होकर आयेंगे, लेकिन पिता की मृत्यु के बाद लड़के की पढ़ाई बीच ही में छोड़ कर चला आना पड़ा। अधिकतर उनका सम्बन्ध कलकत्ता से था, किंतु अन्त में वह लखनऊ में चले आये थे। फारसी तो उनके घर की भाषा थी। लखनऊ शिया वातावरण में रहते ख्याल आया, कि उर्दू में एम० ए० कर लें। लखनऊ या आगरा युनिवर्सिटी से एम० ए० करना मुश्किल था। दीमियाद साहेब कह रहे थे—मैंने सोचा कि कलकत्ता अच्छा रहेगा। पढ़ा तो था तेरह-बाइस ही, लेकिन परीक्षार्थी कम थे, अध्यापक को उनका उत्साह बढ़ाना था, अन्यथा परीक्षार्थियों के अभाव में कहीं उनके अपने सिर पर आफत न आवे। खैर, दीमियाद साहेब पास हो गये और कॉलेज छोड़ने के शायद बीस बरस बाद। एक दिन कह रहे थे—कमबख्त ट्रेन ने धोखा दे दिया, नहीं तो बैरिस्टर न सही, पी० एच्० डी० तो बन ही जाता। जर्मनी या हालैंड के किसी शहर का नाम बतला रहे थे, जहां पी० एच्० डी० की डिग्री डाकखाने के टिकट की तरह सुलभ थी।

नौ साल पहले मिलने पर दीमियाद साहेब में अभी पूरा क्रिया-शक्ति थी। उस वक्त मैं उनके घर से दो साल पर ठहरा हुआ था, और वह वहां मेरे पास संस्कृत पढ़ने आते थे। बंगला बहुत अच्छी बोलते थे, संस्कृत भी कभी स्कूल में थोड़ी सी सीखी थी। तेहरान विश्वविद्यालय को ख्याल हुआ था, कि संस्कृत को भी पाठ्य विषय बनाया जाय, उसी सिलसिले में दीमियाद साहेब को शौक हुआ कि संस्कृत थोड़ी-सी सीख लें। लेकिन अब वह अशक्त हो गये थे। आंखों पर भी बुढ़ापे का असर था, स्मृति भी जवाब देती जा रही थी, इन्द्रियां शिथिल थीं; यहां तक कि लघुशंका का रोकना भी अपने हाथ में नहीं था। तेहरान युद्ध के दिनों में दुनियां के बहुत महंगे स्थानों में था। वहां वह किस तरह गुजर कर रहे थे, यह समझना भी मुश्किल था। बेटे का विवाह हो गया था। अंग्रेजी पढ़ने के कारण उसे एंग्लो ईरानियन पेट्रोल

कम्पनी में नौकरी मिल गई थी, जिससे वह मुश्किल से अपना गुजारा कर पाता था, और पिता से दूर कहीं रहता था। लड़की ताहिरा ने लखनऊ विश्वविद्यालय से बी० ए० कर लिया था, किन्तु तेहरान में जाकर, उसे फिर से पढ़ना पड़ा, क्योंकि यहां सब कुछ फारसी में पढ़ा जाता था। पिता ने यदि नास्तिक राहुल के लिये कविता की थी, तो पुत्री ने अपने बचपन की सुपरिचिता "रूदगोमती" (गोमती नदी) पर फारसी में एक कविता की थी, जिसे मैंने यहां के एक ईरानी पत्र में पढ़ा था। पिता को खींच कर ईरान पहुँचाने में बेगम-बेटी का बहुत हाथ था। खैर, बेटा तो अब वहीं विवाह करके ईरान का बन गया था, किन्तु ताहिरा ईरान में दस बरस के करीब रह कर इसी निश्चय पर पहुँची थीं—मैं ईरान में शादी नहीं करूँगी। मेरे रहते समय ही हैदराबाद के एक कैप्टन से उनकी शादी हो गई। रह रह कर मेरा ध्यान आगा दीमियाद की ओर जाता था। उनका जीवन बचपन से प्रौढ़ावस्था तक कितना सुखमय रहा, यद्यपि उसका यह अर्थ नहीं, कि वह विलासमय भी था। आज जीवन की सन्ध्या में वह अपने को निस्सहाय पा रहे थे। पत्नी की उपेक्षा करने का दोष नहीं दिया जा सकता, किन्तु जब अमीरी जीवन में पली एक महिला को नौकर-बावर्ची मिलते तक सबका काम करना पड़े, तो कुछ नीरसता तो आ ही जाती है। दीमियाद साहब के कपड़े कुछ अच्छे नहीं थे, वह जीवन भर बड़े आत्मसम्मान वाले व्यक्ति थे, इस वक्त अब यह प्रेम ही मित्रों से मिलना चाहते थे, जो कपड़ों को नहीं बल्कि हृदय को देखें।

(२) अब्बासी—वह हमारे दूसरे दोस्त थे, जिनका परिचय तेहरान पहुँचने के दूसरे ही दिन (८ नवम्बर १९४४) हो गया था। अंग्रेजी दूतावास में रिजवी महाशय ने अब्बासी का परिचय कराया। वहां से हम दोनों साथ बाहर निकले। न उनको कोई काम था, न मुझे, इसलिये बात करते कुछ दूर गये और इतने ही में अब्बासी मेरे गहरे दोस्त हो गये। मेरे पूछने पर उन्होंने कहा, कि पत्नी अपनी मां के साथ रहती हैं, और आजकल मैं भी वहीं रहता हूँ। यह उनका खाना पका हुआ है। जिसका किराया तीन रुपया

मालिक है। होटल खाने का रात भर रहने के लिए १३) रु० (उस समय ईरानी तुमान और रुपया एक ही भाव था) किराया दे टेक्सी पर सामान रख छायाबान फरिश्ता के उस मकान में चला आया। कमरा बुरा नहीं कहा जा सकता। मैंने इतमीनान की सांस ली। तीसरे दिन से मैंने अपना खर्च घटा दिया, और सूखी रोटी पनीर और थोड़े से मक्खन से काम चलाना चाहा, लेकिन उसी दिन बैंक से भुनाकर आये १२८ तुमान में से ७० तुमान उधार और १८ तुमान अपना कर्ज ले लिया। मेरे पास रह गये ६३ तुमान। उस वक्त यह नहीं जानता था, कि जेब में ६३ तुमान और सामने ७ महीने खड़े हैं। एक ही दो दिन बाद मालूम हुआ, अब्बासी ने किराया भी बाकी रखा है। मुझे हँसी भी आने लगा और साथ ही मीठी मीठी टीस भी—रोजा बख्शवाने गये और नमाज गले पड़ी। अब्बासी पर कुछ झुंझलाया, लेकिन व्यर्थ था, क्योंकि यदि अब्बासी ने ७० तुमान नहीं भी लिया होता, तब भी सामने का अंधेरा उजाला नहीं हो जाता।

अब्बासी का यह रूप उस समय कुछ अच्छा तो नहीं लगा।

अब्बासी को कभी आदमी ईमानदारी में पूरा शैतान कह सकता था। क्योंकि वह अंधेरे में छलांग मारने वाला तरुण था। जिस वक्त छलांग मारने की धुन में रहता, उस वक्त उसको परवाह नहीं होती, कि उसके धक्के से कोई दूसरा भी अंधेरी खंदक में ढकेला जा रहा है। अभी उसकी आयु ३०–३२ से अधिक नहीं होगी, किन्तु इतने ही दिनों की अपनी जीवनी को अगर वह लिख डाले, तो वह बहुत रोमांचक होगी। हां, अब्बासी की बातों में से कितनी सच्ची हैं, कितनी झूठी, इसका पता लगाना किसी आदमी के लिए मुश्किल था, तो भी यदि ६–७ महीने तक संपर्क रहा हो, तो झूठ सच की परख आदमी कर सकता था। उसका शैतान होना तस्वीर का एक ही पहलू था, दूसरे पहलू में वह पूरा देवता भी था। पैसे कौड़ी का लोभ उसे छू नहीं गया था। यदि वह "परद्रव्येषु लोष्ठवत्" था, तो अपने धन को भी ढेले से बढ़कर नहीं समझता था। और तकलीफ या बीमारी में पड़े अपने परिचित या मित्र की सेवा में

वह एक पैर पर खड़ा रह सकता था। अब्बासी यह उसका अपना नाम नहीं था। वह घोम (बगाली) था। फौज में भर्ती होकर अस्पताली सेना के साथ जमादार हो तेहरान चला गया। उस समय लड़ाई के जमाने में माया बही जा रही थी, बस हाथ डालकर बटोरने की युक्ति आनी चाहिये थी। अस्पताली दवायें चोर बाजार में सोने के मोल बिक रही थीं, चीजों के खरीदने में बनियों से मोटी रकम मिल सकती थी। अब्बासी ने इस प्रथा को चलाया हो, यह बात नहीं थी। वह तो उस सारी मशीन में व्याप्त हो गई थी, जिसका कि वह पुर्जा था। अब्बासी ने कुछ हजार पैदा किये। उसकी बात पर विश्वास करें, तो वह रकम लाख से कुछ ही कम होगी। किन्तु १०-२० हजार तो जरूर ही उसने पैदा किये और उसको उसी तरह उदारतापूर्वक तेहरान में खर्च किया। उसी समय तेहरान की किसी तरुणी से उसका प्रेम हो गया। अब्बासी ने उसके नाम एक मकान भी खरीदवा दिया, कुछ और रुपये भी दे दिये। लेकिन इस तरह ज्यादा दिन तक चल न सका। खैरियत यही हुई, कि पल्टन से उसका नाम काट दिया गया, और वह खुशी खुशी कलकत्ता चला आया। कलकत्ता बैठे बैठे फिर सिरदर्द पैदा हुआ, क्योंकि उसको एक लड़की हुई थी, और पत्नी भी प्रेम का सागर खाती थी। अब्बासी ने ईरान जाकर पत्नी और पुत्री को लाने का निश्चय किया, लेकिन घोम रहते वह अपने विवाह को वैध मनवा नहीं सकता था। कलकत्ता में वह मुसलमान बना, मुसलमान होने की सूचना गजेट में छपवाई। नाम पड़ा अब्बासी। इसी नाम से उसने फिर पासपोर्ट बनवाया और पांच-सात सौ रुपये, कुछ कपड़े-लत्ते और दूसरे सामान के साथ तेहरान पहुँच गया। ईरानी पत्नी कभी आने के लिये तैयार बतलाती, और कभी मुकर जाती। इसी धूप छांह में उसके तीन-चार महीने गुजर गये थे। पास का पैसा खर्च हो चुका था। कपड़े-लत्ते में से बेच बच कर किसी तरह काम चलाता था। बेचारा मकान का किराया कहां से देता? यह समय था, जब मैं भी किस्मत का मारा तेहरान में आ फँसा।

अब अब्बासी के जीवन को जरा और पीछे देखिये। जैसा कि मैंने

कहा, अब्बासी की बातों में से झूठ ही सच को अलग करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य था, इसलिये यह नहीं कह सकता, कि सत्य समझ कर जिसे मैंने लिखा, उसमें झूठ का कुछ भी अंश नहीं होगा। बीस मैट्रिक पास कर कलकत्ता के किसी कालेज में पढ रहा था, लेकिन उसकी सैलानी तबियत ने पुस्तकों में मन नहीं लगने दिया। खाते-पीते घर का लड़का था। घर से कुछ रुपये उड़ाये और सिंगापुर जा पहुँचा। शारीरिक परिश्रम के काम के लिये तो अब्बासी उतना तैयार नहीं था, किन्तु कोई काम कर लेना उसके लिये कठिन नहीं था। अब्बासी को चुप्पा नहीं कह सकते, किन्तु वह बहुत बातूनी भी नहीं था। उसके चेहरे पर एक सहज भोलापन छाया रहता। उदारता के विराट प्रदर्शन में उसके लिये यदि कोई रुकावट हो सकती थी, तो हाथ का खाली होना। सिंगापुर मे कुछ महीने रहने के बाद उसने आगे का रास्ता लिया और सिंदबाद जहाजी की तरह दक्षिण पूर्वी एसिया में चक्कर मारने लगा। जावा भी गया, फिलिपाइन भी, हांगकांग भी गया शांघै भी और शायद हिंदूचीन और स्याम भी। कभी किसी दूकान म सेल्समैन रहा, कभी फेरीवाला बना, कभी कहीं क्लर्की कर ली। जब हाथ खुला हो और अच्छे बुरे दोस्तों की संख्या काफी हो, तो खर्च करने के लिये वैध तरीके से ही पैसा कमाने से कैसे काम चल सकता था? सेल्समैन रहते वक्त उसने दो जगह गहरी रकम उड़ाई और कुछ दिनों में उसे खर्च भी कर डाला। लड़ाई से पहिले के पांच-सात सालों म जब वह सिंदबाद जहाजी बना हुआ था, कितनी ही बार हजारों उसके हाथ म आये और खर्च होते रहे। दुनिया का कड़वा-मीठा काफी अनुभव उसको हो गया था। लड़ाई शुरु होते प्राय खाली हाथ वह कलकत्ता लौटा। लेकिन वह एक जगह कहां ठहरने वाला था? फौज म आदमियों की बड़ी मांग थी। वह भरती होकर लखनऊ चला आया, जहां कुछ दिनों तक कवायद परेड सीखने के बाद तेहरान भेज दिया गया।

मैंने जब अब्बासी का किस्सा सुना, तो सोचने लगा—इस मजनू की लैला कोई साधारण नारी नहीं होगी, वह अवश्य कोई कोहकाफ की परी होगी।

लेकिन अब्बासी से परिचय के हफ्ते के भीतर ही एक दिन खानम् अब्बासी सड़क पर मिलीं। अब्बासी ने परिचय कराया। मैं दंग रह गया—ऐसी बदसूरत औरत पर भी मरने वाले मजनूं मिल सकते हैं और ऐसा मजनूं जो पचीसों घाट का पानी पी चुका है। खानम् का मुँह शरीर की अपेक्षा अधिक बड़ा और कुप्पे की तरह फूला हुआ था, ऊपर से चेचक के दाग ने उसे मिल बट्टा बना दिया था। रंग गोरा था, इसमें कोई संदेह नहीं।

किराया जारी रहने की बात सुनकर अब्बासी की कृपा द्वारा मिले घर को छोड़ने के लिए मैं उतावला हो गया और सौभाग्य समझिये, जो दो-तीन दिन ही बाद में अपने नये मिले अकारण बन्धु महमूद के यहां चला गया। अब्बासी से मुझे शिकायत नहीं हुई, वह बराबर जब तब मिलते रहते थे, मुझे यह समझने में कठिनाई होती थी, कि मेरे तेहरान छोड़ने के समय सात महीने बाद भी वह उसी अनिश्चित अवस्था में कैसे गुजारा कर रहे थे? अब भी उनको आशा थी, कि शायद पत्नी चलने के लिए तैयार हो जाय, लेकिन मुझे विश्वास नहीं था। अब्बासी कलमपेशा बंगाली परिवार के पुत्र थे, इसलिये खरीद-बेच का काम उनकी प्रकृति के अनुकूल नहीं था, नहीं तो तेहरान में भूखे मरने की आवश्यकता नहीं थी। तेहरान प्रवास के अंतिम सप्ताहों में मैं अपने मित्र की ससुराल के पास एक होटल में जाकर रहने लगा—अब भारत से मेरे पास पैसा आ चुका था। वहां कुछ ज्वर आ गया। देखभाल का इन्तिजाम न होने से अब्बासी मुझे अपनी ससुराल में ले गये। एक कमरा था, जिसमें ही उनकी बीवी, सास और एक साली रहती थीं। मेरे नहीं नहीं कहने पर भी वह मुझे वहां ले ही गये और उस वक्त रोगी सुश्रूषा करने में उनका रूप देखने लायक था। मुझे भी एक अत्यन्त गरीब निम्न मध्यमवर्गीय परिवार को नजदीक से देखने का मौका मिला। उनकी एक साली की शादी कुछ ही हफ्ते पहिले हुई थी, जिसमें मैं भी निमन्त्रित हुआ था। अब्बासी ने अपनी सास को बहुत मना किया था, कि ऐसे अफीमची से विवाह मत करो। लेकिन सास बेचारी भी क्या करती? कम से कम एक लड़की का बोझ तो सिर से उतर

रहा था। मेहरी खानम् (अब्बासी की साली) का विवाह हुए दो महीने भी नहीं हुये थे, कि अफीमची पति ने गाली मार शुरू कर दी। ३ जून १९४८ को, जब मैंने तेहरान छोड़ा, मेहरी खानम् को तलाक़ देने की नौबत आ चुकी थी। अब्बासी ने ५० तुमान जिस समय मेरी फाकामस्ती की हालत में लिये थे, उस समय तो कुछ अच्छा नहीं लगा था, लेकिन मैं मानता हूँ, अब्बासी का सौहार्द और सेवा मात्र उससे कहीं अधिक मूल्य रखता था।

ईरानी-ब्याह :

१९४४-४५ के जाड़ों में मुझे सात महीने ईरान की राजधानी तेहरान में रहना पड़ा। वहां अपने देशभाई किन्तु ईरानजातीय मिर्जा महमूद अकारणबंधु मिल गये, जिनके उपकार को किसी तरह मैं चुका नहीं सकता। इस सारे समय में अधिकतर मैं एक ईरानी मध्यवित्त परिवार में रहता था, जिसकी स्वामिनी महमूद की सौतेली मां थीं, जिनकी बहन महमूद की भावी पत्नी होने जा रही थी। महमूद के सम्बन्ध से उस परिवार का मैं भी एक व्यक्ति सा बन गया। खानम् तरुणाई में तेहरान की सुन्दरियों में रही होंगी। चालीस बरस के पास पहुँचते हुये भी अभी उनका सौंदर्य बहुत धूमिल नहीं हुआ था। उनकी बड़ी इच्छा थी कि छोटी बहन इज्जत का ब्याह महमूद से हो जाये। शर्तें बड़ी कड़ी थीं, कभी ब्याह बिल्कुल निश्चित हो जाता और फिर कोई शर्त रास्ते में आकर सारे निश्चय को तोड़ देती। ६ मार्च (१९४८) को ब्याह निश्चित हो गया, निमन्त्रण पत्र भी छपा कर भेज दिये गये, लेकिन ८ बजे शाम को जब मैं घूम कर लौटा, तो

मालूम हुआ, ब्याह टूट गया। शर्तें थीं—दुलहिन को दूसरे मुल्क (हिन्दुस्तान) न ले जाया जाय, और छ महीने तक खर्च-पानी न देने पर उसे विवाह विच्छेद का अधिकार हो। महमूद के पिता इस्फहान के किसी सौदागर वंश के थे, जो कि कुछ पीढ़ियों से भारत में बस गया था, तो भी उनका संबंध ईरान से बिल्कुल टूटा नहीं था। महमूद भारत में पैदा हुये, भारतीय माँ की संतान थे, और अपनी मातृभूमि को छोड़ने के लिये तयार नहीं थे, इसलिये कबाला (विवाह-पत्र) में ऐसी शर्तें लिखने के लिये राजी नहीं थे। अगले दिन महमूद के आग्रह को देखकर खानम् को और नीचे उतरना पड़ा, और महमूद ने यह शर्त मंजूर कर ली, कि बिना इज्जत की मर्जी के हिन्दुस्तान नहीं ले जायेंगे। १३ मार्च विवाह का दिन निश्चित हुआ।

भारत के मध्यवित्त परिवारों की तरह ईरान में भी ब्याह पर फूँक होली का तमाशा है। बड़ी शान शौकत से ब्याह हो, इस पर बड़ा जोर दिया जा रहा था। महमूद कंजूस हरगिज नहीं थे, किन्तु साथ ही वह फजूलखर्च होना भी पसन्द नहीं करते थे, लेकिन अब तो ओखल में सिर पड़ चुका था।

शादी का कमरा—इसमें एक ओर वरवधू के लिए दो मामूली कुर्सियां रखी थीं, एक मेज पर सुगन्धित द्रव्य, बुश, दर्पण तथा ड्रायर में जेवर की पेटी रखी हुई थी। कुर्सी के सामने मेज पर कुरान की एक पुस्तक, तस्बीह (माला) नमाज पढ़ने की मुहर और बाईं ओर वहीं प्याले में पानी, शमशाद के हरे पत्ते और फूल रखे थे। दाहिना ओर प्लेट में शीरीनी (बिस्कुट) थी। यहीं एक काठ की लम्बी रकाबी (तश्तरी) थी, जिसको विशेष तोर से सजाया गया था। इसके चारों कोनों पर मोमबत्ती जलाने के लिये चार फानूसी दीवटें रखी थीं और साथ ही उनके पास में शीशे के गुलदस्तों में शमशाद की हरी पत्तियां थीं। ब्याह के वक्त शमशाद की पत्तियों का ईरान में उतना ही महत्व है, जितना कि हमारे यहां आम की पत्तियों का। शादी में दर्पण-दान भी बड़ा शुभ माना जाता है। कुर्सी के सामने मेज पर चांदी के चौखटे में मढ़ा एक बड़ा शीशा रखा था, जिसकी दोनों ओर मोमबत्ती जैसे दिखाई देने वाले बिजली के

शमादान रखे थे। यहीं दाहिनी ओर मुसलमान होने से पहिले के ईरान की विवाह प्रथा के अवशेष स्वरूप काठ की नाव में खड्गाकार डेढ़ हाथ लम्बी रोटी रखी थी। रोटी पर अच्छी नक्काशी की हुई थी। बेल-बूटे और अक्षर हरे रंग के थे और जमीन लाल। हरियाली को जीवन का मूल (माया जिन्दगी) समझा जाता है। रोटी के नीचे और ऊपरी भाग में शमशाद के वृक्ष को अंकित करने की कोशिश की गई थी, जिसके बीच में तीन पंक्तियों में निम्न मंगल शब्द लिखे हुये थे—

शुक्र ईजद कि वख्त यार आमद। (धन्य भगवान्, मित्र का भाग्य आया)

मुबारक बाशद (मंगल अस्तु)

जोहा बा मुश्तरी क्नार आमद। (शुक्र देवी बृहस्पति के पास आई।)

दूसरा कमरा वरवधू और उनके चुने हुये मित्रों की दावत का था। यहां मेज पर दस आदमियों के लिये चमचे, कांटे, प्लेट आदि के साथ शराब की प्यालियां भी सजा कर रखी हुई थीं। तीसरा कमरा सोहाग-सेज (नहला) का था। दरवाजों पर सुन्दर रेशमी पर्दे टंगे हुये थे। नई चारपाई को तोशक-तकिये, रेशमी लिहाफ आदि से खूब सजाया गया था।

चौथे कमरे में मेहमानों के स्वागत के लिये कुर्सियां रखी थीं।

१३ मार्च को अभी सर्दी समाप्त नहीं हुई थी। इस साल कई बार हिमवर्षा हुई थी, जिससे ठंडक काफी थी।

हमारे यहां की तरह ईरान में भी शादी के नाच गाने कई दिन पहिले से ही शुरू हो जाते हैं। यह अधिकतर स्त्रियों का काम है, यद्यपि अब ईरान में पर्दा न रह जाने से पुरुषों को भी आनन्द लेने में बाधा नहीं है। बाजों में डफ और घड़े के मुँह जैसी एक ओर खुली चमड़े-मढी ढोल को इस्तेमाल किया जाता है। ईरानी स्त्रियों का कंठ कोकिल कंठ नहीं है, यह तो नहीं कहा जा सकता किन्तु उनका संगीत भारतीय कानों के लिये कुछ कर्कश जरूर मालूम होता है। गीतों की तुक बन्दी हमारे यहां ऐसी ही सरल थी, जो कभी कभी दो दल होकर

गाई जाती थी। एक गान की पंक्ति यहाँ थी—

कानम् थस्ते। मन ना मीदूनी की ए?
(श्रीमती दुल्हन, मैं नहीं जानती कौन है?)
आगे की पंक्तियाँ थीं—

जूजा सरुगे।	मन ना मिदूनी की ए?	(मुर्गी की बच्ची०)
आगा दामादे।	,,	(श्रीमान वर०)
शाघे शामगादे।	,,	(शमशाद की शाखा)
आगा सरहंगे।	,,	(श्रीमान मेजर०)
रईसे हंगे।	,,	(युद्ध के सरदार०)
आगा सरगुर्दे।	,,	(श्रीमान् कर्नल०)
दिले मा बुर्दे।	,,	(मेरा मन चुरा ले गये०।

सरहंग दुल्हन के बहनोई और सरगुर्द भी सम्बन्धी थे। कहने की आवश्यकता नहीं, कि इसी तरह वरवधू के जितने भी सगे सम्बन्धी थे, उनको सबको जोड़ जोड़ कर गीत बढ़ती जाती थी। थोड़ी देर गीत होकर, फिर कजल सार बनता और दस बारह बरस की लड़कियाँ अपना नाच दिखातीं थीं, जिसमें वर की छोटी बहन शमशी का नाच काफी अच्छा होता था। गाना समाप्त करते वक्त मुँह पर हाथ मारते स्त्रियाँ तिली-ली-ली की आवाज करती थीं। बंगाल में भी ब्याह के वक्त उलू ध्वनि की जाती है। इस ध्वनि का प्रयोजन है शुभअवसर पर भूत प्रेतों को घर के पास आने न देना।

विवाह के दिन का मुख्य कार्यकलाप स्नान से होता है। दुल्हन के लिये स्नानागार (हम्माम) में विशेष तैयारी हुई थी। ईरानी आमतौर से अधिक गोरे होते हैं, जिनमें १८ वर्षीया दुल्हन का रंग तो सचमुच ही गुलाबी था, जो सद्य स्नाता का और भी खिल गया था। विवाह के कमरे में ले जाने के लिये आज भी उसे सजाया गया था, किन्तु शय्यागार में ले जाकर सजाने का काम अगले दिन के लिये रख छोड़ा गया था, जब कि बड़ी दावत और विवाह-महोत्सव मनाया जाने वाला था। आज विवाह के समय दूल्हन (अरूस)

ने सफेद रेशमी लम्बा चोगा पहिना था, और सिर पर सफेद फूलों का अर्ध-चन्द्राकार ताज। दामाद (वर) काले सूट में थे, सिर नंगा रखने के कारण गंजेपन को ढाँकने का कोई उपाय नहीं था। दोनों को कुर्सी पर लाकर बैठाने के पहिले अस्पन्द (धूप) को वधू के सिर पर न्योछावर कर आग में डाल दिया गया। यह भी भूत प्रेत भगाने के लिये आवश्यक था। दोनों के कुर्सी पर बैठ जाने पर लड़कियों ने नाचना गाना शुरु किया, और औरतें ताली बजाती रहीं। "आगा दामाद" वाले गीत का कई बार दोहराना तो मामूली बात था। आज कुछ और भी जनगीत सुनने को मिले—

चिरा तु तर्के—आशनाई करदी ? बमन बगो चिरा जुदाई करदी ?
(क्यों तू ने मित्रता छोड़ दी ? मुझे बता क्यों जुदाई करदी ?)
नमूदी ख्वारे तु ऐ दिल्दारम्। बरो कि तर्के तू सितमगर करदम्।
(तूने बरबाद किया, मेरे प्रिय। चला जा तुझ जालिम को मैंने छोड़ दिया)
बरो कि फिक्रे—यारे-दीगर करदम्। बिया कनारम् तु ऐ दिल्दारम्।
(चला जा, मैंने दूसरे मित्र का ख्याल कर लिया। आ गोद में ऐ मेरे दिलदार)
चि रोजहा कि मन ब यादन्तू बूदम्। अनीस मन बूदी न तन्हा बूदम्।
(कैसे दिनों तक मैं तेरे याद में रही। तू मेरा मित्र था, मैं अकेली नहीं थी)
अज़ीज़त दारम् तु ऐ दिल्दारम्। बदामे इश्कन्तू आचिनाँ दरचदम्।
(मेरे प्रमी, तुझे प्रिय मानती हूँ। तेरे प्रेम के फांसने कितना बाधा है)
वले अज़ीं शिकृजे मन् खुर्सन्दम्। नमूदी ख्वार अम् तु ऐ दिल्दारम्।
(लेकिन इस बन्धन से मैं खुश हूँ। तूने तबाह कर दिया, किन्तु मैं प्रेम करती हूँ)
बादा बादा बादा। इंशा अल्ला मुबारक बादा।
(होवे होवे होवे। भगवान चाहे मंगल होवे)।

बिया बरवीम् अज़ीं वलायत मन् व तू । तू दस्ते मरा बगीर व मन् दामने तू ।
(आ, इस देश से मैं और तुम चलें । तू मेरा हाथ पकड़ और मैं तेरा अचल)
बिया बखुरीम् शराबे अगूरे सियाह । ऐ यार मुबारकबादा । बादा इशा -
(आ, काले अंगूरों की शराब पियें । हे मित्र, मगल होवे, होवे मगवान् चाहे)
इन् हयातो उन हयात् । बे पाचीम् तुक्लो नजात् ।
(यह जीवन और वह जीवन । आनन्द लें)
बरसरे अरुसो दूमाद । ऐ यार
(दुल्हा दुल्हन के सिर पर ऐ मित्र मगल हो)
गुल दर् आमद अज़् हमाम । सुबुल दर् आमद अज हमूम ।
(फूल स्नानागार से आया । सुबुल उन सबसे आया)
शाहे दामादरा बेबीं अरूसदर आमद अज हमाम । ऐ यार
(दुल्हा राजा को देख, दुल्हन हमाम से आई । ए मित्र, मगल हो)
अरुसेमा बच्चा-साले सरेशाब ख्वाबश मियायद । ऐ यार
(मेरी दुल्हन अल्पवयस्का है, रात को उसे नींद आती है । ऐ मित्र मगल हो)
गानों में एक था—
दुख्तरे शाराजी जानम्, जानम्, शीराजी । अब्रू तू बमा बनुमा ताशवम् राजी ।
(शाराज की लड़की, मेरी प्यारी शाराजा, अपने भौंहो को दिखला, कि मैं खुश होऊँ)
अब्रूम् मीख्वाही, चि कुनी बेहया पिसर । वमा दर् बाज़ार न दीदी ।
(मेरी भौंहों को क्यों चाहता है, निर्लज्ज लड़के ? धनुष बाजार में नहीं देखा क्या ?)

इहम् मिश्ल उ ऐ, वलेकिन् निर्खोश गिरान् ऐ।
(यह भी वैसा ही है, लेकिन इसका मूल्य अधिक है)
शब् बया नेस्तम् खाना रोज़ बया सूय बालाखाना।
(रात आवे, मैं घर में नहीं, दिन में आवे अटारी पर)
दुख्तरे शीराज़ी जानम् जानम् शीरज़ी। चश्मत् बमा बेनुमा ताराखश् गज़ी।
(शीराज़ की लड़की मेरी प्यारी शीरज़ी, अपनी आँखों को दिखला, कि मैं खुश होऊँ)
चश्मम् मीख्वाही, चि बुनी बेहया पिसर। नर्गिस दरबाज़ार न दीदी।
(मेरी आँखों को क्यों चाहता है, निर्लज्ज लड़के! नर्गिस को बाज़ार में नहीं देखा क्या!)
इसी तरह इस दोगाने में आगे वाक्य जोड़े गये हैं—
दुख्तर शीराज़ी ० मूरत् बमा बेनुमा ० मख़मल दरबाज़ार ०।
० मूयत्, बमा बेनूमा ०। हका दरबाज़ार ०,
० दमत् ०। क्लम दर्बाज़ार ०।
० लबत् ०। गुचा दरबाज़ार ०। (ओठ तेरा ०, बाज़ार में कली०)
० दनदानत् ०। सदफ़ दरबाज़ार ०। (दाँत तेरे ०, मोती बाज़ार में ०)
आगे सारा नखशिख इसी तरह उपमा देकर गाया गया है।

ब्याह विधि—साढे चार बजे सायंकाल पुरोहित (अखुन) अपने सहायक के साथ पधारे। यद्यपि ईरान के नर-नारी अब यूरोपीय पोशाक पहनते हैं, किन्तु मुल्ला पुरोहित पुरानी पोशाक को कायम रखे हुये हैं। अखुन के शरीर पर काला चोग़ा और काली पगड़ी थी। दाढ़ी मुड़ी तो नहीं थी, किन्तु तराश कर काफ़ी छोटी कर दी गई थी। कुर्सी पर बैठने ही उन्होंने पहिले वरवधू के पासपोर्ट (जावाज) को देखा, फिर छपे हुये दो ब्याह रजिस्टरों में लिखना शुरु किया। अखुन ने विवाह की शर्तों को पढ़ा—"एक सौ

चालीस हज़ार रियाल नक़द है, जिसमें तीन हज़ार रियाल (तीन हज़ार रुपया) का गर्दन बन्द (हार) और दस हज़ार रियाल शाल के शमादान का दाम और पचास रियाल कलाम्-मजीद (कुरान की पुस्तक) का है। इसके बाद बाहर जाकर रहना वधू की मर्ज़ी से हो सकेगा।" ज़िया इमामी, तकी एजाज़ी और सादिक यमनी अकबर नहावंदी गवाह बने। घर की रजिस्ट्री हो जाने पर पुरोहित ने दरवाज़े से बाहर खड़े ही तीन बार वधू से पूछा—"वकीलम्-आन्, कबूल दारी" (दुल्हा देता, कबूल करती है) वधू ने धीमे से "बा!" (हाँ) कह दिया। हाफ़िज़ की जन्म भूमि शीराज़ में यदि ब्याह हुआ होता, तो मुल्ला पूछता—"वकीलम्-आनम्, कबूल करी" (दुल्हनदेवी, कबूल करती हो।)

मुल्ला अपनी दक्षिणा ले मुँह मीठा करके चला गया, और स्त्रियों ने फिर ढोल और डफ लेकर "मुबारकबादा" और "मगनामिदूनी" गाना शुरू किया। कुर्सी पर वरवधू बैठे। लालपीले कागज़ की कटी गोल-गोल पत्तियों की वर्षा वरवधू पर की गई। वरवधू दोनों ने एक दूसरे को मिठाई खिलाई, इस प्रकार विवाहविधि समाप्त हुई।

फिर एक कमरे में महफ़िल गर्म हुई। दो बुढ़ियाँ—वधू की माँ खानम् बुज़ुर्ग (बड़ी महिला) और खानम् जमशेदी का हुक्का चलने लगा। तीनों जमशेदी कुमारियाँ फैशन में बिल्कुल अपटूडेट थीं, और साथ ही गाने नाचने में भी। उनके कारण महफ़िल चमक उठी। तेहरान के प्रसिद्ध गायक अलारज़ा का गाना और तारची शाहनाज़ी का सितार छिड़ गया। उस्तादी संगीत में आलाप का होना अनिवार्य है। एक तो ईरानी कर्कश आलाप और उस पर से पुरुष कंठ से निकला, मेरे लिये तो वह असह्य मालूम होता था। लेकिन हाफ़िज़ और खैयाम के गीत बड़ी अच्छी तरह गाये जा रहे थे। कमरे में जितने आदमी बैठ सकते थे, उससे तिगुने बैठे थे, ऊपर से अस्पद की धूप बराबर दी जा रही थी, जिससे दम घुटने लगा था। गाने के बाद वहीं खानपान हुआ और अब के नाच में वरवधू भी शामिल हुये।

आज ईरानी वर्ष का अन्तिम बुधवार था। शाम के वक़्त लड़के

प्राचीन ईरान की होली मना रहे थे। आग जला कर उस पर से फांदते हुये बच्चे कह रहे थे—

"जदिये मन् अज तू। सुर्खिये तू अजमन्। (मेरी पीलिमा तुझमें। तेरी लालिमा मुझमें)

विवाह का अंतिम रस्म थी "दस्त बदस्त" (पाणिग्रहण)। रात को सोहाग कक्ष में ले आकर सम्बन्ध गाह ने वरवधू का हाथ एक दूसरे के हाथ में दे दिया। हमारे देश की तरह ईरान में भी नई रोशनी वालों ने बहुत से रीति रवाजों को छोड़ दिया। पहिले हनाबन्दा (मेंहदी) आदि कितनी ही और भी रस्म अदा की जाती थीं।

अगले दिन (१४ मार्च) बड़ी दावत हुई। कजार-राजवंश का पुराना बगीचा, जिसे वर के पिता हाशिम अस्पहानी ने खरीद लिया था, और जिसने कितनी ही रंगीन महफ़िलें देखी थीं, बरसों की उदासी के बाद आज फिर जगमगा उठा था। चित्रों, फूलों के गमले, बिजली के झाड़फानूस और सुन्दर ईरानी कालीन से सजावट की गई थी। आज साज-संगीत का विशेष प्रबंध था। तेहरान रेडियो की मशहूर गायिका रूहगीज विशेष तौर से बुलाई गई थी। एक प्रसिद्ध नर्तकी भी मौजूद थी। निमन्त्रित सौ मेहमान स्त्री पुरुष दावत में शामिल हुये थे। यद्यपि तीन बजे से मजलिस शुरु हो गई, किन्तु वरवधू को सिंगारहाट से लौटने में साढ़े छ बज गये। खाना-पीना और नाच रंग सात बजे तक रहा। वधू (इज्जत खानम्) सभी स्त्रियों में अधिक खूबसूरत मालूम होती थी, जिसमें सजावट का भी कारी हाथ था। वधू का नाचना लोगों ने बहुत पसन्द किया। वरवधू को भेंट सौगात देकर लोग अपने अपने घरों को जाने लगे। इन पंक्तियों का लेखक तो वर का नर्म सचिव था, जिसकी सम्मति की कदर दोनों घरों में था।

★ ★ ★

२—रूस में प्रवेश

तीसरी बार रूस जाने का निश्चय मैंने १९४३ में ही कर लिया था, किन्तु अंग्रेज सरकार ने पासपोर्ट देने में हीला हवाला करके एक साल बिता दिया। उसके बाद फिर ईरान के वीसा मिलने में कई महीने लगे। अंत में किसी तरह भारत छोड़कर ८ नवम्बर १९४४ को मैं ईरान की राजधानी तेहरान पहुँचा था। तेहरान पहुँचते पहुँचते पास का पैसा करीब करीब खतम हो चुका था। युद्ध के समय में चीजों का दाम ऐसे ही बहुत मँहगा था और मैं ईरान की राजधानी में एक [illegible] खाली हाथ पहुँचा, यह बतला चुका हूँ। लेकिन [illegible] देने के लिए तैयार देखा जाता है। [illegible] य होगया और फिर मुझे कोई तकलीफ [illegible] से पैसे मा[illegible] आगये, लेकिन तो भी जा[illegible] और तरह का सद्व्यवहार उनसे [illegible]

सर[illegible] म[illegible]

१९४४ से ३ जून १९४५ ई० तक सात महीने मुझे जिस स्थिति में रहकर काटने पड़े, उसे असह्य प्रतीक्षा ही कह सकते हैं। कभी कभी भारत लौट आने का मन करता था, तो हमारे भारतीय मित्र अपनी चिट्ठियों में और ठहरने को कहते। और यहाँ सोवियत-दूतावास की चौखट अगोरते अगोरते मन उकता गया था। यह भी पता नहीं लगता था, कि बीजा मिलेगा भी। लड़ाई के दिनों में चिट्ठियों का यह हालत थी कि मेरे मित्र सरदार पृथ्वीसिंह की २२ फरवरी १९४५ की चिट्ठी मुझे २४ मई को मिली अर्थात्—बम्बई से तेहरान ३ महीने के रास्ते पर था। हाँ, तार आसानी से मिल जाते थे, लेकिन तार में अधिक बातें नहीं लिखी जा सकती थीं।

२ मई (१९४५) को हिटलर और गायबल्स की आत्महत्या की भी खबर आगई। ८ मई को जर्मनी ने बिना शर्त हथियार डालने के कागज पर हस्ताक्षर भी कर दिया, किन्तु मैं अभी अनिश्चित अवस्था में ही था। हाँ, इसके बाद दूतावास के लोगों के कहने के अनुसार आशा कुछ ज्यादा बलवती हुई। तेहरान में भी रहना आसान नहीं था। खर्च के अलावा वहाँ सरकार से अनुमति लेते रहना पड़ता था। २९ मई को सोवियत कौंसलेट में गया। पता लगा बीजा आगया। आज ही मेरे पासपोर्ट पर मुहर भी लग गई। इन्तूरिस्त (सोवियत यात्रा एजन्सी) से पूछा तो उसने बताया कि मास्को तक हवाई जहाज का किराया ६६० तुमान (१ रु०=१ तुमान था) लगेगा और १६ किलोग्राम (२० सेर) के बाद हर किलोग्राम पर ६ तुमान सामान का लगेगा। अन्दाज से मालूम हुआ कि नौ सौ तुमान खर्च आयेगा। हम तो अब समझते थे, कि मैदान मार लिया। अब २९ मई को ईरानी दफ्तर में निर्यात का बीजा लेने गये, तो कहा गया—माल विभाग का प्रमाण-पत्र लाइये कि आपने यहाँ इतने दिनों रह कर जो कुछ कमाया, उसका टैक्स अदा कर दिया। माल विभाग में जाने पर कहा गया—दरख्वास्त दीजिये, जाँच की जायेगी। मैं तो सोवियत यात्रा एजन्सी (इन्तूरिस्त) से टिकट भी खरीद चुका था, ३१ मई को यहाँ से जाने के लिये तैयार था। वैसे सब जगह नौकरशाही की मशीन बहुत धीमी गति से चलती

है, जिसमें इसकी सामान तो अपना माना नहीं जाता। उधर मेरे रहने के चार मास सिवाय साल तेरह दिन और रह गई थी। यदि उसके बाद रहना पड़ता तो, फिर वीजा लेने का दिक्कत उठानी पड़ती। ब्रिटिश दूतावास में जाने पर ब्रिटिश साहब ने पासपोर्ट की भाँति प्रमाण पत्र दे दिया, कि मैंने यहाँ कोई अपराध नहीं किया। लेकिन, अभी तो उस फार्मों में तरह भर कर दे देना था। अगले दिन अनुवाद लेकर फिर इसकी दफ्तर में गया। बहुत दौड़ धूप करनी पड़ी और अकेले ही। मास महीने तेहरान में रहने में भाषा की दिक्कत खतम हो गई थी। तीन-तीन ऑफिसों में चक्कर लगाना पड़ा और जब १ बजे दिन को सही-सलामत कागज पर हस्ताक्षर हो गये, तो ऑफिस वालों ने कहा—"कौंसल की मुहर यहाँ नहीं है। इस पर हस्ताक्षर भी करवा लाइये।" खैर, उस दिन चार बजे तक सभी झगड़ों से छुट्टी पा जाने पर बड़ा संतोष हुआ। किराये से बचे हुए पैसे को रूस ले जाना बेकार था। रूस में खर्च करने के लिये सो पौंड का चेक अलग था ही, इसलिये बाकी बचे रुपयों से चमड़े का ओवरकोट और दूसरी चीजें खरीदीं। अगले दिन (३१ मई) फिर कुछ और भी दफ्तरों की खाक छाननी पड़ी, जिनका काम दोपहर तक खतम हो गया।

हवाई जहाज मंगलवार (३ जून) को जानेवाला था, लेकिन सामान तुलवाना और दूसरे कामों को दो दिन पहले (१ जून को) ही खतम कराना था। १६ किलोग्राम छोड़कर ७१ किलोग्राम सामान और मेरे पास था, जिसका ३२१ तुमान देना पड़ा। सामान में आधी ऐसी चीजें थीं, जिनको यदि मैं जानता होता, तो साथ न लिये होता। विमान दो जून को ही जाने वाला था, लेकिन पहली जून को चार बजे बतलाया गया कि मौसम खराब होने से कल विमान नहीं जा सकेगा। पचास-पचपन तुमान अब पास में रह गये थे, और एक दिन रहने का मतलब था उसमें से और खर्च करना, लेकिन मैंने तो घटा देख कर धन्ना पकड़ लिया था। २ तारीख को पूछने पर मालूम हुआ कि कल को जाना पक्का (पक्का) है। भारतीय संगीत से परिचय के लिये मैं अपने साथ कुछ

रिकार्ड लेकर चला था, लेकिन उसे बकेंग में रोक दिया गया। तेहरान में युद्ध के समय बहुत से माननीय थे, जिनमें कुछ का मुझ से परिचय हो गया था, इसलिये दो रिकार्ड भी मिल गये।

प्रयाण— ३ जून का दिनमार आया। अभी अंधेरा ही था कि पौने चार बजे इंतूरिस्त की मोटर मेरे पास आयी। घरस सामान उठा कर अन्वामी महाशय न मोटर तक पहुँचाया। अन्वामा मे सात महाने का परिचय था, और बोस उपनाम अव्वामी नामक साहसी तरुण क गुण और अवगुण सभी मुझे मालूम हो गये थे। मुझे अवगुणों से अधिक उनमें गुण दिखायी पडे, इसलिये बिछुडते वक्त दोनों को अफसोस हुआ। वमानिक अड्डा शहर से दूर था, जहां हम चार-मोटे चार बजे पहुँचे। एजेंसी की ओर से चाय पीने को मिली। फिर सामान विमान पर रक्खा गया। वह यात्रा का विमान नहा था। फौजी विमान ऐसे बनाये जाते हैं, जिसम वह आदमी और सामान दोनों को आसानी स ढो सकें। यह मेरी पहली विमान-यात्रा थी, जिसके बारे म बहुतसी अच्छी बुरी बातें सुन रखी थीं। विमान म दोनों ओर दीवार क सहारे लकड़ी के बच रखे हुए थे, जिन पर हम पन्द्रह मुसाफिर आ बैठे। घरघराहट की क्या बात् है ? कान फटा जा रहा था। हमारे बगल म शीशे लगी खिड़की थी, जिससे भूतल को देखा जा सकता था। यद्यपि विमान में तीस आदमियों की जगह थी, लेकिन जब यात्री को इतनी तपस्या के बाद वीज़ा मिले, तो जगह कैसे भरती ? अधिकतर मुसाफिर मास्को के विदेशी दूतावासों के कर्मचारी थ। उनके पास सामान भी काफी था, इसलिये मैं समझता हूँ विमान ने अपना पूरा बोझा ले लिया था। गोलाकार छत बीच म मेरे सिर से एक हाथ ऊँची थी। मुझे तो विमान सोवियत की सादगी का प्रतीक मालूम हुआ, सीटों और पैरों के नीचे बिछी कालीन भी न होती तो कोई बात नहीं। लेकिन जो विदेशी यात्री चल रहे थे, वह इस बेमरोमामानी पर नाक भौं सिकोड़ रहे थे। चढ़ाने से पहले इंतूरिस्त क आदमी ने हमारा पासपोर्ट देख लिया—*कहीं कोई उसे भूल न आया हो*। सवेरे पाच बज कर दस मिनट पर विमान अपने तीनों पहियों पर खिसकते

गनगनाहट के साथ धरती छोड़ने लगा। पहिले तो वैसे ही मालूम हुआ, जैसे तरंगित समुद्र पर जहाज का चढ़ना-उतरना। हिमालय से जैसे नीचे दूर के खेत दीखते हैं, वैसे ही यहां भी नीचे कहीं कहीं खेत थे। लेकिन हिमालय तो हरा भरा है, ईरानी पहाड़ नंगे हैं, भूमि भी नंगी है। मनुष्यों ने कहीं कहीं परिश्रम से नहर लाकर खेतों को हरा भरा किया है। उन्हीं के पास घरौंदों जैसे छोटे छोटे गांव दिखाई पड़ते थे। शायद यह विमान अमेरिका का बना था, क्योंकि इसमें सारे संकेत अंग्रेजी में थे। लड़ाई के वक्त सामान और सैनिकों की ढुलाई करता रहा होगा।

विमान उड़ रहा था। अब वह काकेशश की पर्वत शृंखला की ओर अग्रसर हो रहा था, इसलिये ऊपर चढ़ने लगा, यद्यपि रुक-रुक कर ही। कहीं कहीं नदियां मिलीं, जो छोटी छोटी नालियां सी मालूम होती थीं। पर्वत तो तालाबों के मिट जैसे दिखायी देते थे। कानों में इंजन की घोर घनघनाहट सुनायी दे रही थी। और कोई दिक्कत नहीं थी। हमारी सह यात्रिणी एक महिला के कानों से खून भी निकला, दूसरी के पेट में दर्द हुआ। पता लगा समुद्र रोग की भांति आकाश रोग नाम की भी कोई चीज है, किन्तु अधिकांश यात्री ऊंघ रहे थे। उसी तरह एक दूसरे के कंधे और शरीर की परवाह किये बिना, जैसे भारत की रेलों के तीसरे दरजे के यात्री। मौत का ख्याल क्यों आने लगा? विमान से मौत तो यात्रियों की मौत होती है—मौत के बारे में सोचने भर का भी तो समय नहीं मिलता।

विमान बहुत ऊपर उठ चुका था। जमीन से सटे कहीं कहीं घरौंदों के गांव आ जाते थे। हम से काफी नीचे उलटी गति से कुछ बादल तैर रहे थे। विमान को पूंछ की ओर मूत्रस्थान बनाया गया था। यात्रियों में अंग्रेज, अमेरिकन और रूसी ही अधिक थे, एसिया या भारत का प्रतिनिधित्व मैं अकेला कर रहा था।

बादल कम थे। कहीं कहीं तो वह हिमक्षेत्र से मालूम होते थे। मैं मानव की शक्ति पर कभी आश्चर्य करता और कभी शीशे की ओर से बाहर

देखने का कोशिश करता। जब विमान ऊपर नीचे की ओर अधिर गति मे चढता उतरता, तो पेट ही नहीं कलेजा भी हिलता सा मालूम होता। जून का आरम्भ उत्तरी गोलार्द्ध मे सरदी का समय तो नहीं है, लेकिन हम दस हजार फुट की ऊँचाइ पर उड रहे थे, इसलिये सरदी क्यों न जोर करती। वैसे हमने गरम कपडे पहन रखे थे। कहीं कहीं बादलों क भीतर से पहाड़ों का दृश्य बहुत ही सुन्दर मालूम होता था। वही स्थान दूर तक हमारे सामने रहता था, जिसमे मालूम होता था, कि विमान बहुत धीमी गति से चल रहा या ठहरा हुआ है।

६ बज रहा था, जबकि हम कास्पियन समुद्र के ऊपर पहुँचे। कास्पियन प्राक् ऐतिहासिकों क काल से इसी नाम से मशहूर है, यद्यपि वह इस्लामिक देशों मे इसे खिज्र समुद्र कहा जाता है। ईसाकी सातवीं आठवीं शताब्दी में इसके पश्चिमी तट के स्वामी हूणवशी खाजार (काजार) लोग थे, जिन्हीं के कारण अरबो ने इस समुद्र का नाम बहर-खाजार रखा, जिसको लालबुझक्कडों ने खाजार जाति से हटा कर खिज्र देवदूत क साथ जोड़ दिया। समुद्र के नीले जल पर हमारे नीचे जहां तहां बादल की पुटकियां दिखायी पड़ी। बायीं ओर हिमाच्छादित काकेशश पर्वत-माला दूर तक चली गयी थी। दाहिनी ओर दूर तक समुद्र ही समुद्र दिखलायी पड़ रहा था। विमान तट के पास से चल रहा था। समुद्रतल समतल सा था, जिस पर लहरें गज चर्म का रेखा जैसी दीख पड़ रही थीं। पौने आठ बजे बाकूनगर और उसके पास मीलों तक तेलकूपों क ढांचों का जगल दिखलायी पड रहा था। आठ बजने म दस मिनट रह गया था, जब हम बाकू के बाहर विमान भूमि मे पहुँचे। विमान-भूमि बिलकुल कच्ची थी। सोवियत वाले जानते हैं कि जब तक बिना श्रम और पैसे के खर्च किये काम चल सकता है, तब तक, विशेषकर लड़ाई के समय अड्डे पर लाखों मन सीमेंट डालने से क्या फायदा? विमान जमीन पर उतरा। यहा विमान बदलने वाला था। हमारा सब सामान कस्टम कार्यालय म गया। सामान की बहुत छानबीन नहीं की गइ। फिर चार रूबल में एक प्याला चाय और दो टुकडे

रोटी व खाने को मिले।

दस बज कर पाँच मिनट पर हम फिर जहाज से उड़े। बारू के पर्गेदों और तेलकूप की झाड़ियों को पीछे छोड़ा। पहिले जितना ही दूर तक कास्पियन के पश्चिमी किनारे पर ही उड़ते गये, फिर वोल्गा के दाहिने तट पर आगये। यहाँ भी भूमि बहुत जगह गैर आबाद था। यह वही भूमि थी, जिसने जर्मन सेनाओं की विनाश-लीला को थोड़े ही समय पहिले देखा था। अब कहीं कहीं हरे हरे पचायती खेत और उनके सुविशाल चक दिखायी पड़ने लगे। ढाई बजे हम स्तालिनग्राद पहुँचे।

स्तालिनग्राद— स्तालिनग्राद सारे विश्व के लिये एक पुनीत ऐतिहासिक स्थान है। *सारे विश्व पर जर्मन जाति के विजयी झंडे के साथ* दासता के झंडे को भी गाड़ने के लिये आगे बढ़े अपराजेय समझे जान वाले जर्मन फासिस्तों को यहीं पर सब से पहिले करारी हार खानी पड़ी थी। ऐसी जबर्दस्त हार कि उसके बाद फिर जो वह पीछे की ओर भागने लगे, तो कहीं भी सुस्ताने के लिये उन्हें मौका नहीं मिला। स्तालिनग्राद में देखने को क्या था? उसकी तो ईंट से ईंट बज गयी थी। जर्मनों को पराजित हुए एक महीना भी नहीं बीता था। अभी वस्तुतः नगर के आबाद करने का काम नहीं हो रहा था, हाँ, *नगर निर्माताओं के आबाद करने की तैयारी हो चुकी थी। अधिकांश* घर धराशायी थे, किसी किसी के कंकाल कुछ कुछ दिखाई पड़ते थे। दूर तक हजारों ध्वस्त मोटरों और विमानों का ढेर लगा हुआ था। प्रायः सभी जर्मन विमान थे। एक विमान की दुम कट कर अलग पड़ी हुई थी, जिसे देख कर वह दृश्य सामने आ खड़ा हुआ, जब कि यह विमान अपने और बहुत से साथियों के साथ स्तालिनग्राद पर मृत्यु वर्षा कर रहा था। उसी वक्त किसी साहसी सोवियत वैमानिक ने उनमें से एक की दुम तराश कर उसे नीचे गिरने के लिये मजबूर किया। स्तालिनग्राद में भी हमारे विमान के उतरने की भूमि कच्ची थी। आस पास स्वूब घास को हरियाली अत भूमि सरस थी, यह उसका वानस्पतिक वैभव बतला रहा था। यहाँ कहीं पर्वत नहीं थे। कहीं कहीं एकाध कारखाने आहत

और सुप्त से पड़े थे, उनकी चिमनियां मृत थीं। केवल एक बड़ी फेक्टरी की चिमनी धुआं दे रही थी, जो आंशिक तौर से चालू हो गई थी। पास में दूसरा बड़ा कारखाना निष्क्रिय पड़ा था। नगर बसाने वालों ने छोटे घरों में थोड़ीसी मरम्मत कर के आश्रय ग्रहण किया था। हम यात्रियों ने भोजन किया, कुछ इधर-उधर घूम फिर कर देख भी आये। अभी सैलानियों के सैर करने का बाकायदा इंतिजाम कहां हो सकता था? लेकिन स्तालिनग्राद की अजेय भूमि पर पैर रख के यह कैसे हो सकता था, कि मैं कल्पना जगत में न चला जाऊँ। सोवियतभूमि एक ऐसी भूमि है, जिसके बारे में दुनियां में दो ही पक्ष हैं—या तो उसके समर्थक या प्रशंसक होवें, या उसके कट्टर शत्रु। मध्यका रास्ता कोई अत्यन्त मूढ़ ही पकड़ सकता है। मैं सदा सोवियत का प्रशंसक रहा हूँ, बल्कि कह सकता हूँ, कि जिस वक्त घोर निद्रा के बाद अभी मुझे जरा ही जरा अपनी राजनैतिक आंख खोलने का अवसर मिला, उसी समय मुझे विरोधियों के घनघोर प्रचार के भीतर से रूसी क्रांति की खबर सुनायी पड़ीं, जिन्होंने मेरे दिल में नये प्रकाश को देकर इस भूमि के प्रति इतना आकर्षण पैदा कर दिया, या कहिये दिल को इतना छीन लिया, कि मुझे इस जबर्दस्ती का कभी अफसोस नहीं हुआ। मैं वर्षों उस भूमि में रहा हूँ, वहाँ के लोगों और सरकार को बहुत नजदीक से देखा है। कड़वे-मीठे सभी तरह के अनुभव किये हैं। गुणों को जानता हूँ, साथ साथ उनके दोषों से भी अपरिचित नहीं हूँ। लेकिन मैंने उन दोषों का पाया कभी इतना भारी नहीं पाया। सोवियतभूमि के प्रति जो अनुराग या आशायें मानवता के लिये मैंने बांधीं, उसमें किसी तरह की बाधा नहीं हुई। इतिहास मानता है और सदा मानता जायगा, कि मानवता की प्रगति में एक सब से बड़ी बाधक शक्ति हिटलरी फासिज्म के रूप में पैदा हुई थी, उसको नष्ट करने का सब से अधिक श्रेय सोवियत की जनता को है। आज (१९५१) छ वर्ष बाद भी मानवता की प्रगति के रास्ते में फिर जबर्दस्त बाधायें डाली जा रही हैं, लेकिन साथ ही मानवता बहुत आगे बढ़ चुकी है, बहुत सबल हो चुकी है। उस समय जर्मन पराजय के बाद स्तालिनग्राद में घूमते हुए मेरे मन में तरह

रातों के खाने को मिले।

दस बज कर पांच मिनट पर हम फिर जहाज में उड़े। बालू के घरोंदों और तेलकूप की भाड़ियों को पीछे छोड़ा। पहिले कितनी ही दूर तक कास्पियन के पश्चिमी किनारे पर ही उड़ते गये, फिर वोल्गा के दाहिने तट पर आगये। यहां भी भूमि बहुत उजाड़ और ग्राबाद थी। यह वही भूमि थी, जिसने जर्मन सेनाओं की विनाश-लीला को थोड़े ही समय पहिले देखा था। अब वहीं कहीं हरे हरे पचायती खेत और उनके सुविशाल घर दिखायी पड़ने लगे। ढाई बजे हम स्तालिनग्राद पहुँचे।

स्तालिनग्राद— स्तालिनग्राद सारे विश्व के लिये एक पुनीत ऐतिहासिक स्थान है। सारे विश्व पर जर्मन जाति के विजयी झंडे के साथ दासता के झंडे को भी गाड़ने के लिये आगे बढ़े अपराजेय समझे जाने वाले जर्मन फासिस्टों को यहीं पर सब से पहिले करारी हार खानी पड़ी थी। ऐसी जबर्दस्त हार कि उसके बाद फिर जो वह पीछे की ओर भागने लगे, तो कहा भी सुस्ताने के लिये उन्हें मौका नहीं मिला। स्तालिनग्राद में देखने को क्या था? उसकी तो ईंट से ईंट बज गयी थी। जर्मनों को पराजित हुए एक महीना भी नहीं बीता था। अभी वस्तुत नगर के आबाद करने का काम नहीं हो रहा था, हां, नगर निर्माताओं के आबाद करने की तैयारी हो चुकी थी। अधिकांश घर धराशायी थे, किसी किसी के कंकाल कुछ कुछ दिखाई पड़ते थे। दूर तक हजारों ध्वस्त मोटरों और विमानों का ढेर लगा हुआ था। प्राय सभी जर्मन विमान थे। एक विमान की दुम कट कर अलग पड़ी हुई थी, जिसे देख कर वह दृश्य सामने आ खड़ा हुआ, जब कि यह विमान अपने और बहुत से साथियों के साथ स्तालिनग्राद पर मृत्यु वर्षा कर रहा था। उसी वक्त किसी साहसी सोवियत वैमानिक ने उनमें से एक की दुम तराश कर उसे नीचे गिरने के लिये मजबूर किया। स्तालिनग्राद में भी हमारे विमान के उतरने की भूमि कच्ची थी। आस पास खूब घास की हरियाली और भूमि सरस था, यह उसका वानस्पतिक वैभव बतला रहा था। यहां कहीं पर्वत नहीं थे। कहीं कहीं एकाध कारखाना आहत

आज की उड़ान तेहरान से बाकू २ ४० घंटे, बाकू से स्तालिनग्राद ४ / ५ घंटे, स्तालिनग्राद से मास्को ३ ४५ घंटे अर्थात् कुल १० ४० घंटे हुई। विमान बाकू मे २ १५ घंटा और स्तालिनग्राद मे ८० मिनट ठहरा।

विमान के अड्डे पर उतरते वक्त आशा थी, कि तेहरान से इन्तूरिस्त ने लिख दिया होगा, इसलिये मास्को मे उसका आदमी लेने के लिये आया रहेगा, किन्तु यहाँ किसी का कोई पता नहीं था। भाषा की दिक्कत थी, क्योंकि दूसरी यात्रा में जो कुछ सीखा था, वह भी करीब करीब भूला जा चुका था। तेहरान के विश्राम का उपयोग रूसी सीखने के लिये कर सकते थे, किन्तु वहाँ दुविधा मे पड़े थे। किसी तरह सामान विश्रामगृह मे पहुँचाया। इन्तूरिस्त के पास फोन करना चाहा, तो किसी को उसका पता नहीं था। वस्तुत युद्ध के कारण सैलानियों के लिये यात्रा की व्यवस्था करने का काम रह नहीं गया था, इसलिये पिछली दो यात्राओं मे इन्तूरिस्त के जिस उत्तम प्रबन्ध को हमने देखा था, उसका इस वक्त नहीं पाया। बहुत पूछ-ताछ करने पर वहाँ किसी आदमी की प्राइवेट कार मिल गई, जिसके ड्राइवर ने दो सौ रूबल (प्राय सवा सौ रुपये मे) होटल तक पहुँचा देने का जिम्मा लिया। दो एक जगह पूछ-ताछ करने पर अन्त मे इन्तूरिस्त के होटल मे पहुँच गये। कमरा खाली नहीं है—अंग्रेजी दूतावास में चले जाइये—कहा गया। उस समय भारतीय दूतावास नहीं था, अंग्रेजी दूतावास में किस परिचय के बल पर मैं जा सकता था। खैर, जरा ठहरने पर एक कमरा मिल गया। चीजें बहुत महगी थीं, किन्तु वही जो राशन में नहीं थीं। मैंने सोचा था, राजधानी के नर-नारियों पर युद्ध का बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा होगा। लेकिन सड़कों पर भीड़ मे मैंने किसी के शरीर पर फटे कपड़े नहीं देखे, और नहीं चेहरों पर चिन्ता की छाप थी। अपने बारे में सोचने लगा— सौ पौंड का चैक लेकर मैं आया हूँ, जिसमे आठ पौंड तो मोटर के ही निकल गये। चीजें जितनी महगी थीं, अगर अपने पौंडो के भरोसे रहना होता, तो उनका क्या बनता? रात को रहने के लिये जो कमरा मिला, वह बहुत साफ-सुथरा था। उसमे तीन बत्तियाँ थीं, शीशेदार अलमारी, मे

तरह की कल्पनायें आई थीं। इस महान् विजय के बाद साम्यवाद के क्षेत्र के बढ़ने की पूरी संभावना थी। आज हम स्वतंत्र चीन का नवनिर्माण देख रहे हैं। और उसकी प्रगति के वेग को देख कर दाँतों तले उंगली दबाना पड़ता है। लेकिन क्या स्तालिनवाद ने अगर अपने कृतित्व को न दिखलाया होता, तो ऐसा हो सकता था ?

मास्को को— पन्द्रह बज कर बीस मिनट पर हम फिर उड़े। कास्पियन के किनारे से यहाँ तक प्राय वोल्गा को हम अपना मार्ग प्रदर्शक बना कर आये थे, लेकिन अब हमारा पुष्पक विमान बायीं ओर मुड़ा। नीचे गाँवों के विशाल खेत शतरंज जैसे फैले हुये थे। कहीं कहीं रास्ते में बादल आजाते, तो विमान उसके ऊपर से होकर चलने की कोशिश करता और कुछ समय के लिये भूमि का सुन्दर दृश्य आँखों से ओझल हो जाता। पांच बजे के बाद अब हम ऐसी भूमि में आये, जहां देवदार के जंगल दिखायी पड़ते थे। मालूम होता था, धान के हरे हरे खेत हैं। काकेशश की बड़ी बड़ी पहाड़ियाँ यदि छोटे भिंडों जैसी मालूम होती थीं, तो यहाँ की छोटी छोटी पहाड़ियों के बारे में तो कहना ही क्या है। गाँवों के घर अब लम्बे राजपथ के किनारे पांती से बसे दिखायी पड़ रहे थे। राजपथ काफी चौड़े भी होंगे, किन्तु हम ऊपर से सरल रेखा जैसे ही मालूम होते थे। बड़े बड़े जलाशय छोटे छोटे डबरों जैसे दीख पड़ रहे थे। हाल ही में जुते और फसल वाले खेत रंग से साफ मालूम होते थे। नदियाँ सर्पाकार दीख पड़ रही थीं। नीचे रेल की चलती ट्रेन मालूम होती थी, कोई बड़ा साँप जारहा है। एक जगह कुछ दूर तक बादल में चलना पड़ा। हमारे विमान के पंख पर कुछ छींटें भी पड़ीं। जगह जगह बड़े-बड़े कस्बे आये। देवदार के जंगल और घने हुए। सात बज कर पाँच मिनट पर शाम के वक्त हम मास्को के विमान अड्डे पर पहुँच गये। शहर पार होने में पांच सात मिनट लगे थे। मास्को के विशाल प्रासाद भी पहिले घरौंदे जैसे ही मालूम हुए, किन्तु जैसे जैसे विमान नीचे उतरा वैसे वैसे उनकी सुन्दरता और विशालता बढ़ती गई।

चारपाइयां, तीन कुर्सियां, दो मेज़, नीचे अच्छा कालीन बिछी हुई थी। हां, एक लिहाफ कुछ पुराना जरूर था। दीवार पर एक सुन्दर तस्वीर भी टंगी हुई थी। संक्षेप में स्वच्छता और आराम की कोई कमी नहीं थी। मैं अगले दिन (४ जून) स्तैला (शहर) डाक से जाने का निश्चय करके आराम से सो गया।

३—लेनिनग्राद में

मास्को से लेनिनग्राद की एक बहुत सीधी रेलवे है, जिसके ऊपर चलने वाला तेज डाकगाड़ी का नाम स्त्रेला है। यह ट्रेन ६८१ किलोमीतर की यात्रा १७ घंटे में पूरी करता है। २०१ रूबल (प्राय १०० रु०) में दूसरे दरजे का टिकट मिला था। तार हमने लेनिनग्राद नहीं दिया, किन्तु इतूरिस्त वालों ने विश्वास दिलाया, कि वह अपने आफिस को फोन कर देंगे। पिछली यात्रा में मैं जाड़े के दिनों में इस रास्ते से गुजरा था। उस समय सब जगह बरफ ही बरफ थी और केवल देवदारों के दरख्त हरे दिखाई पड़ते थे। अब हम गरमी में चल रहे थे, लेकिन इस गर्मी का हमारी गरमी से कोई वास्ता नहीं। यह गरमी हिमालय के बदरीनाथ केदारनाथ जैसे स्थानों की गरमी थी। बरफ कहीं नहीं थी। चारों ओर हरियाली ही हरियाली दिखाई पड़ती थी। बिना देखे विश्वास करना मुश्किल होता कि उत्तरी रूस इतना हरा-भरा देश है। ग्यारह बजे रात तक रात का कहीं पता नहीं था। लेनिनग्राद में तीन महीने वाली सफेद रात आजकल चल रही थी। मास्को पर जर्मनों ने बम वर्षा की थी, किन्तु वह उनके अधिकार में नहीं आ सका। मास्को से कुछ ही मील दूर चलने

चारपाइयां, तीन कुर्सियां, दो मेज, नीचे अच्छा कालीन बिछी हुई थी। हां, पर लिहाफ कुछ पुराना जरूर था। दीवार पर एक सुन्दर तस्वीर भी टंगी हुई थी। संक्षेप में स्वच्छता और आराम की कोई कमी नहीं थी। मैं अगले दिन (४ जून) स्वेला (शार) डाक से जाने का निश्चय करके आराम से सो गया।

★ ★ ★

३—लेनिनग्राद में

मास्को से लेनिनग्राद को एक बहुत सीधी रेलवे है, जिसके ऊपर चलने वाला तेज डाकगाड़ी का नाम स्त्रेला है। यह ट्रेन ६८१ किलोमीतर की यात्रा १७ घंटे में पूरी करती है। ३०१ रूबल (प्राय २०० रु०) में दूसरे दरजे का टिकट मिला था। तार हमने लेनिनग्राद नहीं दिया, किन्तु इतुरिस्त वालों ने विश्वास दिलाया, कि वह अपने आफिस को फोन कर देंगे। पिछली यात्रा में मैं जाड़े के दिनों में इस रास्ते से गुजरा था। उस समय सब जगह बरफ ही बरफ थी और केवल देवदारों के दरख्त हरे दिखाई पडते थे। अब हम गरमी में चल रहे थे, लेकिन इस गर्मी का हमारी गरमी से कोई वास्ता नहीं। यह गरमी हिमालय के बदरीनाथ केदारनाथ जैसे स्थानों की गरमी थी। बरफ कहीं नहीं था। चारों ओर हरियाली ही हरियाली दिखाई पड़ती थी। बिना देखे विश्वास करना मुश्किल होता कि उत्तरी रूस इतना हरा-भरा देश है। ग्यारह बजे रात तक रात का कहीं पता नहीं था। लेनिनग्राद में तीन महीने यानी सफेद रात आजकल चल रही थी। मास्को पर जर्मनों ने बम वर्षा की थी, किन्तु वह उनके अधिकार में नहीं आ सका। मास्को से कुछ ही मील दूर चलने

पर युद्ध की ध्वस लीला दिखाई पड़ने लगा। कालिनिन (त्वेर) नगर के मकान ध्वस्त और कारखाने पस्त पड़े हुए थे। उनके निर्माण का काम अभी तेजी से नहीं हो रहा था। त्वेर का नाम आते ही मुझे यहां का प्राचीन नागरिक निकितिन याद आगया, जो कि पहिला युरोपीय था, जिसने भारत की दशा, वहाँ छ साल (१४६६ ६२ ई०) रहा और उस पर एक पुस्तक लिखी। सोवियत की रेल—विशेषकर दूर जाने वाली ट्रेनें बड़े आराम की होती हैं। यहां की सभी रेलवे लाइनें बहुत चौड़ी हैं और डब्बे कुछ अधिक ऊँचे। श्रेणियां—प्रथम, द्वितीय, तृतीय नरम, तृतीय कड़ा। प्रथम श्रेणी में यात्रा करने वाले बहुत ही कम होते हैं। तृतीय श्रेणी का नरम हमारे यहां के ड्योढे की जगह है, किन्तु आराम देने में वह हमारे यहां की द्वितीय श्रेणी से भी अच्छा है। वैसे तो कठोर तृतीय श्रेणी हमारे यहां के ड्योढे दर्जे से अच्छी है, उसमें गद्दा बाहर से मिलता है, रात के लिये तकिया और ओढना भी मिल जाता है। सब से बड़ी बात यह है, कि यात्री को लम्बी यात्रा में भीड़ के मारे परेशान होना नहीं पड़ता। हर कम्पार्टमेंट में दो नीचे और दो ऊपर सीटें होती हैं। एक सीट एक आदमी के लिये टिकट लेते ही रिजर्व हो जाती है, क्योंकि रेलवे टिकटों में ट्रेन नम्बर, गाड़ी नम्बर, कम्पार्टमेंट नम्बर और सीट नम्बर दर्ज रहता है। आपने जिस सीट का टिकट ले लिया, उस पर कोई और नहीं आ सकता। हरेक डब्बे में एक एक कंडक्टर होता है, जो टिकट लेकर आपकी जगह ही नहीं बतला देता, बल्कि डब्बे की सफाई और चाय बनाकर भी पिला देता है। हमारे कम्पार्टमेंट में मुझे लेकर चार आदमी थे, जिनमें एक साइबेरिया की रूसी लड़की छुट्टियों में अपनी सखी से मिलने लेनिनग्राद जा रही थी। वह मेडिकल कालेज की छात्रा थी। अभी भाषा के कुछ दर्जन शब्द ही मालूम थे, इसलिये साथियों से अधिक बात क्या कर सकता था? वैसे रूसी लोग बहुत मिलनसार होते हैं, वह अंग्रेजों की तरह अपरिचित के साथ मुंह फुला कर यात्रा नहीं करते। अभी बाजार-दर का भाव नहीं मालूम हुआ था, न यही पता था कि राशन कार्ड और बिना कार्ड से मिलने वाली चीजों के भाव में अन्तर है। एक लेमीनाद की बोतल के लिये जब

सोलह रूबल (दस रुपया) देना पड़ा, तो न जाने कैसा सा मालूम हुआ।

रात को सो गये। सवेरे चार बजे उठे, तो मालूम हुआ न जाने कब से सवेरा हुआ है। अब लेनिनग्राद ६ घंटे का रास्ता और रह गया था। युद्ध का भीषण दृश्य वर्षों बाद भी दिखाई पड़ रहा था। गांव उजड़े हुये थे। जहां नहीं मोर्चेबन्दियां अब भी खड़ी थीं। जहां कभी देवदार के जंगल रहे होंगे, वहां आज छिन्न-मस्तक कितने ही ठूंठ दिखाई पड़ रहे थे। इन देवदार वनों को अपने स्वाभाविक रूप में आने में वर्षों लगेंगे। ट्रेन लेनिनग्राद के उपनगर में पहुँची। युद्ध के पहिले लेनिनग्राद तीस लाख से अधिक आबादी का एक विशाल नगर था, उसका उपनगर दूर तक फैला हुआ था। लेनिनग्राद पर भीषण बम-वर्षा हुई थी। प्रायः नौ सौ दिन तक जर्मन सेनाओं ने इस नगर को घेरे रक्खा और ऐसी बमबारी तथा नाकेबन्दी कर रक्खी थी, कि यदि दूसरा नगर होता, तो उसने कब का आत्मसमर्पण कर दिया होता। उपनगर में सचमुच ही ईंट से ईंट बज गई थी। दीवारें भी शायद ही कोई कुछ जहां खड़ी थीं। अगर दीवारें कहीं दिखाई भी पड़ती, तो उन पर छतों का पता नहीं था। अधिकांश घर तो भूमिशात् हो गये थे। रेलवे लाइन के आस-पास उल्टी मालगाड़ियां, या उनके डब्बे पड़े हुए थे। जगह जगह कितने ही हथियार के लोहे भी मौजूद थे।

आखिर दस बजे ट्रेन लेनिनग्राद नगर में पहुँचा। उस समय आसमान में बादल घिरा हुआ था, कुछ हल्की सी बूंदें भी पड़ रही थीं। मुझे डर लग रहा था, कि कहीं यहां भी इतूरिस्त का आदमी नहीं आया, तो परेशान होना पड़ेगा। किन्तु ट्रेन के प्लेटफार्म पर खड़े होने के साथ ही इतूरिस्त का आदमी हमारे डब्बे के पास मौजूद था। उसने अपनी टैक्सी में हमारा सामान रखवाया और सीधे अस्तोरिया होटल के १२० नं० वाले कमरे में पहुँचा दिया। जारशाही के जमाने में यह बहुत ऊँचे दरजे का होटल था, जहां सामन्त और शाही मेहमान ठहरा करते थे। अब भी साज-सजावट का सामान काफी था। पिछली बार जब मैं लेनिनग्राद आया था, तो इतूरिस्त का दफ्तर युरोपा होटल

में था। शारीरिक और मानसिक श्रम की आमदनी को छोड़ कर और किसी भी आय को वैध नहीं मानने से यह कहने कि आवश्यकता नहीं, कि यहाँ की दूकानें ही नहीं होटल भी किसी व्यक्ति या व्यापारिक कम्पनी की सपत्ति नहीं है। इन्तूरिस्त एक बहुत मालदार सरकारी एजेन्सी है, जिसके पास शहरों में बड़े-बड़े होटल सैकड़ा बसें और कारें तथा हजारों कर्मचारी मौजूद हैं। होटल में अपने कमरे में पहुँच कर अब अनिश्चित अवस्था से निश्चित अवस्था में तो मैं पहुँच गया था। लोला मौजूद थी। लेकिन मैंने इतना भर खबर तेहरान से दी थी, कि मैं अब आ रहा हूँ। तारीख जब निश्चित मालूम हुई, तो तार नहीं दे सका। होटल से लेनिनग्राद विश्वविद्यालय के रेक्तर (चांसलर) के पास अपने आने की सूचना फोन से दिलवा दी। फिर सोचा, प्रतीक्षा करने से अच्छा यही है, कि लोला के घर ही हो आयें। मोस्कोपरान्त इन्तूरिस्त की कार ली और स्ताचेक मुहल्ले में ढूँढते ढूँढते उस घर में पहुँच गये। यह डर था कि मंगल का दिन होने से लोला विश्वविद्यालय में काम करने गयी होगी। उसके गृह नियंत्रण कार्यालय में पता लगाया। मालूम हुआ, ईगर बालोद्यान में है। इन्तूरिस्त की दुभाषिया महिला ने पूछा—तुम ईगर को पहचानती हो? उसने हसते हुए मजाक के स्वर में कहा—उसे कौन नहीं पहिचानेगा, ऐसा ही काला जैसा बाप। सचमुच ही हमारे भारत में जिनको गोरा कहते हैं, वे भी गोरों के समुद्र में जाकर काले मालूम होते हैं। हमने बालोद्यान देखने की जरूरत नहीं समझी और तीन बजे होटल लौट आये। तब तक लोला को पता लग गया था और वह होटल में आकर मेरी प्रतीक्षा कर रही थी। हमने अपना सामान वहीं छोड़ दिया और ट्राम्वाय पकड़ कर स्ताचेक का रास्ता लिया। घंटे भर का रास्ता था। ट्रामों के अलग अलग नंबर रहते हैं, यदि अपनी ट्राम न पकड़ते, तो कई जगह बदलना पड़ता। पहिले हम दोनों बालोद्यान गये। ईगर अपने समवयस्क लड़कों में खेल रहा था। रूस में लड़के हों या सयाने उनमें वर्ण भेद की भावना नहीं पाई जाती। एक एंग्लो-इंडियन महिला एक दिन बतला रही थीं— एक युरोपियन स्कूल में शिक्षिका रहते समय उनको कैसे कड़वे अनुभव

हुए। लड़के वाली औरत पढ़ के मजाक करते थे। एक छोटा सा बच्चा समझ नहीं पाता था कि हमारी शिक्षिका जब हमारी तरह अंग्रेजी बोलती हैं, तो इनका रंग दूसरा कैसे है। वह उनके हाथ पर उंगली रगड़ कर देख रहा था, कि कहीं रंग ऊपर से पोता तो नहीं है। यही नहीं अंग्रेज बच्चे उसे काली कह कर आपस में परिहास करते थे। सोवियत में इस तरह की हीन भावना की गुंजाइश न बड़ों में है न छोटों में। ईगर के बालोद्यान के सौ-सवा-सौ लड़कों में वही एक था, जिसके बाल काले थे, जिसका रंग दूसरों के रंग से फरक रखता था। रोमनी (जिप्सी) लोग शताब्दियों पहिले भारत से गये, तो भी उनके बाल काले और रंग प्रायः हमारे यहां के गोरे रंग के आदमियों जैसा होता है। लड़के ईगर को चिढ़ाने (रोमनी) कहते, तो वह इन्कार करते हुए अपने को "इंदुस" (हिंदू) कहता। ईगर अपने समवयस्क लड़कों में सबसे अधिक लम्बा था, यद्यपि उतना मोटा-ताजा नहीं था। हम बात क्या कर सकते थे, अभी तो भाषा की पूंजी बहुत कम थी, किन्तु स्नेह प्रकट करने के लिये भाषा की आवश्यकता नहीं होती।

लोला अब वहां लोला नहीं थी, जिसे सात बरस पहिले हमने देखा था। लेनिनग्राद के नौ सौ दिनों के घिरावे का प्रभाव पुराने परिचित प्रायः सभी चेहरों पर दिखायी पड़ता था। लोला बूढ़ी मालूम होती थी। सौंदर्य और स्वास्थ्य में फूल की जैसी खिली दसमाइ की बीवा ल्यूबा की भी यही हालत थी। नगर का दीर्घकालव्यापी घिरावा क्या होता है, इसका अनुमान दूसरा आदमी मुश्किल से कर सकता था। १९४१-४२ के जाड़ों में घिरावे ने बड़ा भीषण रूप लिया था, उस समय का राशनकार्ड चार्ट बतला रहा था, कि सितम्बर में प्रति व्यक्ति ३०० सौ ग्राम रोटी मिली, अक्तूबर में २०० ग्राम, नवम्बर में १८० और फिर १२५ ग्राम। जहां आदमी के लिये और बच्चों के साथ हजार बारह सौ ग्राम रोटी की आवश्यकता होती है, वहाँ सवा सौ ग्राम में कैसे गुजारा हो सकता है? लेकिन किसी तरह जीवन रक्षा करती थी। लोला बतला रही थी—राशन में मिली रोटी के खंड को लाकर मैंने मेज पर चाकू से काटा। बड़ा टुकड़ा इगर को दिया और छोटा भी उसे दे दिया। काटते

यहां रोटी के टुकड़े कनके मेज पर गिर गये। इगर ने जीभ से अगुली तर कर के उसको भी चुन चुन कर खालिया। लोग जूतों के तल्लों को उबाल कर खाते थे। सरेस भी नहीं बचता था। एक महिला ने कितने ही दिनों तक वार्निश उबाल कर खाया, जिसके कारण उसकी अतड़ी हमेशा के लिये खराब हो गई। लेनिनग्राद का कोई घर नहीं था, जिसके अनेक आदमी उस समय न मरे हों। लोला की बहन भूखों मर गई। उसका बहनोई भी भूखा मर गया।

यद्यपि उपनगर में जितना प्रलयलीला देखी थी, उतनी नगर के भीतर नहीं थी, किन्तु तो भी घने बसे मुहल्लों में भी कितने ही मकान गिरे, जले या छतों के बिना खड़े थे। त्काचेई की अट्ठाईसवीं गृहश्रेणी में हम रहते थे। हमारे पीछे कई एकड़ जमीन खाली पड़ी थी, जहाँ किसी वक्त दुमजिले लकड़ी की दीवारों वाले घर खड़े थे। बम-वर्षा में सब जल गये। लंदन में होता, तो यह भूमि खाली पड़ी रहती। लेकिन रूस में यह संभव नहीं है। सारी जमीन को क्यारी-क्यारी बना के लोगों ने बांट लिया था। कहने को त्काचेई अपने नाम से जुलाहों (त्काच) का मुहल्ला जान पड़ता है, लेकिन यहां केवल जुलाहे ही नहीं रहते। मजदूर काफी सख्या में रहते हैं, लेकिन उन्हीं के पड़ोस में प्रोफेसर, डाक्टर, इंजीनियर, क्लर्क सभी तरह के लोग रहते हैं। जो पहिले नगर में पहुँचे, उन्होंने एक एक टुकड़ा जमीन का ले लिया। लोला के पास भी एक छोटी सी क्यारी थी, जिसमें कुछ प्याज और गाजर लगा था। डेढ मन आलू की आशा विफल नहीं हुई। रोज घंटा भर अपने खेत में दे देना किसी के लिये मुश्किल नहीं था।

मुझे अब भाषा सीखने की चिन्ता थी। युनिवर्सिटी तथा दूसरे शिक्षणालय अब बन्द हो चुके या हो रहे थे। सभी शिक्षण-संस्थायें एक सितम्बर को खुलने वाली थीं। तीन महीने का समय मेरे पास था, जिसमें मैं रूसी भाषा का ज्ञान बढ़ा लेना चाहता था, क्योंकि मालूम था, छात्रों को पढ़ाने के लिये रूसी छोड़ दूसरा कोई माध्यम नहीं है। ? जून को युनिवर्सिटी के रेक्टर के पास आवेदनपत्र दे दिया। सब अच्छा था, लेकिन युनिवर्सिटी हमारे रहने की जगह

से पाच छ मील से कम दूर नहीं थी। रोज आने जाने में ढाई तीन घंटे ट्राम वाय में लगने जा रहे थे, सबेरे और शाम तो उसमें इतनी भीड़ होती थी, कि भीतर घुस जाने पर भी बैठने की जगह मुश्किल से मिलती। बीस घंटे की रात और चार घंटे का दिन तो हम अपनी पिछली यात्रा में भी देख गये थे, लेकिन इस वक्त तो बीस घंटे का दिन और चार घंटे की रात भी नहीं कह सकते थे, क्योंकि चार घंटे की रात को भी गोधूलि और उषा ने आपस में बांट लिया था। लम्बा दिन होने पर भी गर्मी और पसीने का पता नहीं था। इतना लम्बा दिन होने पर भी मुझे तो वह छोटा ही मालूम होता था। अधिकतर समय मेरा घर पर ही बीतता था, और कभी कभी बाहर निकलता था। युद्ध का प्रभाव घरों पर ही नहीं दिखायी पड़ता था, बल्कि उसी के कारण पुरुषों से स्त्रियों की संख्या अधिक थी। युनिवर्सिटी अभी बन्द नहीं हुई थी। नहीं तो इस समय बीस सैकड़ा भी लड़के नहीं थे। ट्राम चलाने वाली स्त्रियां थीं। टिकट काटने वाली स्त्रियां थीं। दुकान और दफ्तर का काम स्त्रियां कर रही थीं। यहां तक कि चौरस्ता पर रास्ता दिखाने वाली पुलिस में भी मुश्किल से ही कहीं पुरुष दिखायी पड़ता। काले चमड़े नहीं काले बाला तो भी अब पता मुश्किल से मिलता था। रूसी लोगों के बाल पीले, या भूरे होते हैं। उनके चेहरे का रूप रंग भी अपना होता है—नाक छोटी और नोक पर कुछ उठी, चेहरा चौड़ा और गोल।

लेनिनग्राद विश्वविद्यालय ने ही मुझे पढ़ाने के लिये बुलाया था, लेकिन नियुक्ति के लिये कितनी ही कागजी कार्यवाही करनी थी, जिसमें स्वस्थ होने के लिये डाक्टरी सर्टीफिकेट भी देना पड़ा—छूत की बीमारी कहीं न हो।

२७ जून को लेनिनग्राद पहुँचे मुझे २२ दिन हो गये थे। अब मैं उसे अपना नगर सा मानने लगा था। एक दिन पता लगा, कि डाक्टर मेघनाथ साहा आये हुए हैं और मुझे ढूँढ रहे हैं। मुझे चार बजे यह भी पता लगा कि वह पांच बजे ही लेनिनग्राद छोड़ने वाले हैं। दौड़ा-दौड़ा अस्तोरिया होटल पहुँचा, जहां उनसे भेंट हुई। बहुत लम्बी बात करने का अवसर नहीं

था। डा० साहा दो सप्ताह के लिये रूस आये थे, और देखने के लिये इतना समय अपर्याप्त था। सोवियत साइंस अकदमी की २२० वीं जयन्ती थी, इसी महोत्सव के लिये साहा दुनिया के और बड़े बड़े साइंस-वेत्ताओं की तरह सोवियत द्वारा निमंत्रित होकर आये थे।

मेरे पास अभी रेडियो नहीं था, भारत की खबरों के पाने का कोई साधन नहीं था, रूसी पत्रों में शायद ही कभी दो चार पंक्तियां देखने में आतीं। वैसे चौबीस घंटे में २०—२१ घंटे बराबर बोलते रहने वाला रेडियो लेनिनग्राद के हजारों घरों की तरह हमारे घर में भी लगा था, लेकिन भारत की खबर जानने की उत्सुकता पूरी नहीं होती थी। डा० साहा ने बतलाया—"कि कांग्रेस नेता जेलों से छोड़ दिये गये हैं। जिस वक्त मैं भारत से चला, उस वक्त कांग्रेसी नेता शिमला में *वाइसराय से बातचीत करने में व्यस्त थे।"* अंग्रेजों ने जिस चाल के साथ समझौता करने के लिए बातचीत शुरू की थी, और जो शर्तें रक्खी थीं, उनको बतलाते हुए डा० साहा ने कहा—" पूंजीवादी ढांचे में इससे और अधिक क्या उम्मीद की जा सकती है।" भिन्न भिन्न देशों के जो विद्वान् अकदमी की जुबली में शरीक होने के लिये आये थे, वह अपना संदेश लाये थे। डा० साहा को पहिले ख्याल नहीं आया। यहां आने पर जब उन्हें संदेश देने के लिये कहा गया, तो उन्होंने एक संदेश तैयार किया। भारत की उन खूसट खोपड़ियों में डा० मेघनाथ साहा नहीं है, जो दूसरे देशों में जाकर अंग्रेजी को सर्वे-सर्वा मानने में जातीय अपमान का ख्याल नहीं करते। उन्होंने अपने संदेश की अंग्रेजी कापी मुझे देकर कहा—मैं नहीं चाहता, कि मेरा संदेश अंग्रेजी में जाय। इसे हमारी भारतीय भाषा में होना चाहिये—चाहे हिन्दी में हो या बंगला में, किन्तु मैं पसन्द करूँगा कि यह संस्कृत में हो। उन्होंने कहा, कि इसे संस्कृत में अनुवादित कर यहीं अच्छी तरह छपवा कर दे दें। मैंने अनुवाद तो कर दिया, किन्तु नागरी अक्षरों की उतनी सुन्दर छपाई का यहां प्रबन्ध नहीं हो सकता था, इसलिये उसे डाक्टर साहा के पास भेज दिया। उनका संदेश निम्न प्रकार था—

———

भारत का अभिनन्दन

" भारत की जनता, एक सौ इकसठ बरस पहिले स्थापित बंगाल रायल एसियाटिक सोसायटी और भारतीय वैज्ञानिक परिषदों और सभाओं के संघ के रूप में स्थित राष्ट्रीय विज्ञान प्रतिष्ठान की ओर से सोवियत समाजवादी गणराज्य संघ की विज्ञान अकदमी का अपने अस्तित्व के दो सौ बीस बरस पूरा करने के उपलक्ष में अभिनन्दन करता हूँ। क्रांति के पहिले भी विज्ञान और साहित्य के क्षेत्र में अकदमी ने जो सफलतायें प्राप्त की थीं, उन्हें विज्ञान के इतिहास में सुनहले अक्षरों में लिखा गया है। भारतीय विद्या के क्षेत्र में रूसी प्रतिभाओं की अद्वितीय देन, राथ और बोथलिंक के महान् वैदिक कोश को—जो कि लेनिनग्राद में करीब सत्तर बरस पहिले प्रकाशित हुआ—भारत बड़ी कृतज्ञता पूर्वक याद करता है। बौद्ध शास्त्र के महान् विद्वान् अकदमिक श्चेर्बात्स्की—जिन्होंने दो साल पूर्व निर्वाण प्राप्त किया—की गंभीर देना को भी भारत बड़ी कृतज्ञता पूर्वक याद करता है।

" क्रान्ति के बाद अकदमी को जो बल और उत्तरदायित्व प्रदान किया गया, उसमें उसने रूस में महान् टेक्नोलाजिकल क्रांति लाने में बड़ा ही महत्वपूर्ण हिस्सा लिया। पिछले पच्चीस बरसों में सोवियत रूस ने जो महत्वपूर्ण सफलतायें प्राप्त की हैं, वह भारत के लिये एक महती प्रेरणा का काम देती हैं। हमारे हृदयों में वह इस बात की नई आशा और प्रेरणा देती हैं, कि हम अपने त्रिविध शत्रुओं—दरिद्रता, रोग और निरन्तर खाद्याभाव के संयुक्त बल से लड़ें। भारत सोवियत समाजवादी गणराज्य संघ की गौरवशाली और सफलता पूर्ण सिद्धियों तथा राजनीतिक, आर्थिक, टेक्नालोजिकल और धार्मिक इन चार प्रकार की क्रांतियों में सोवियत समाजवादी गणराज्य संघ की गौरव शाली साधनाओं के लिये साधुवाद देने में दुनिया के दूसरे देशों के साथ है।"

अपने सात महीने की तपस्या के बाद लेनिनग्राद में पहुँच कर पुराने मित्रों कलियानोफ, विस्कोन्नी, सुलेमिन आदि से मिल कर खुशी होनी ही चाहिए थी, किन्तु इस बात का खेद होता था, कि अकदमिक श्चेर्बात्स्की

था वह प्रसन्न मुख और वह गंभीर सलाप अब प्राप्त नहीं होगा। अपनी सोवियत भूमि की द्वितीय यात्रा मैंने उन्हीं के निमंत्रण पर की थी। उस समय मैं कुछ ही महीनों रह सका था, लेकिन उतने ही में हमारी घनिष्टता इतनी बढ़ गई थी, कि मालूम होता था, हम युगों से एक दूसरे के साथ अत्यंत घनिष्ठ संबंध रखते आये थे। मेरे भारत लौटने के बाद भी उनका बार बार आग्रह था, कि मैं अबकी दीर्घकाल के लिये लेनिनग्राद आऊँ। वह इसकी कोशिश भी कर रहे थे, कि इसी मे महायुद्ध छिड़ गया। रूस पर भी हिटलर ने आक्रमण कर दिया। लेनिनग्राद घिर गया। उस समय सोवियत सरकार ने अपनी दूसरी बहुत सी कला तथा विद्या संबंधी निधियों के साथ डाक्टर श्चेर्वात्स्की जैसी प्रतिमा निधियों को भी हवाई जहाज से दूर हटाया और साल ही भर बाद उत्तरी कजाकस्तान के रम्य स्थान बरोवा में उन्होंने अपनी जीवन-लीला समाप्त की।

मैं यूनिवर्सिटी का प्रोफेसर नियुक्त हो गया था। अब पहिली सितम्बर तक के समय को मुझे भाषा की तैयारी तथा दूसरे कामों में बिताना था। प्रोफेसर से आशा की जाती है, कि वह अपने अनुसंधान का काम भी करेगा, जिसके लिए उसको समय मिलना चाहिये, इसीलिये समय देने में इसका ख्याल रखा जाता है। मुझे हफ्ते में बारह घंटे पढ़ाना था। जिसको भी इस तरह से रखा गया था, कि तीन दिन ही युनिवर्सिटी जाने की जरूरत पड़े। रविवार का दिन तो साधारण छुट्टी का था ही।

डा० श्चेर्वात्स्की से मेरा जो संबंध था, उसके कारण डाक्टर बरान्निकोव का भाव मेरे प्रति पहिले कुछ अच्छा नहीं था। उनका और डा० श्चेर्वात्स्की का कुछ परस्पर सी थी। उनको यह मालूम नहीं था, कि मैं उनके काम को बड़े महत्व की दृष्टि से देखता हूँ। बरान्निकोव यद्यपि संस्कृत और पश्चिम की दूसरी पुरानी भाषाओं के भी अच्छे पण्डित हैं, लेकिन उन्होंने अपने अनुसंधान का काम अधिकतर आधुनिक भारतीय भाषाओं—रामनी, हिन्दी आदि के बारे में किया है। पश्चिमी देशों में संस्कृत जैसी प्राचीन और मृत भाषाओं के अनुसंधान को ही उच्चश्रेणी का समझा जाता है। इसलिये डा० बरान्निकोव के अनुसंधानों को पुराने ढंग के विद्वान् उतना महत्व नहीं

देते थे। किन्तु यह ठीक नहीं था आजकल जीवित भाषाओं का भी भाषातत्व, इतिहास और समाजशास्त्र के अनुसंधानों में बहुत महत्व है। मैं स्वयं हिन्दी साहित्य का एक लेखक ठहरा, फिर कम हो सकता था, कि मैं डा० बरान्निकोफ के काम को महत्व न देता। लेकिन यह सम्भव थ, कि डा० श्चेर्बात्स्की की तरह दोस्त, संस्कृत का पंडित और संस्कृत-संबंधी अनुसंधान में संबंध रखनेवाले तिब्बती और पाली साहित्य का विशेषज्ञ होने से मेरे भाव भी उनके काम के प्रति वैसे ही होंगे। डा० बरान्निकोफ बड़े प्रतिभाशाली विद्वान् हैं और साथ ही बड़े परिश्रमी भी। तरुणाई में जब उन्हें जेप्सी भाषा के अध्ययन का शौक हुआ, तो कितने ही दिन रोमनियों के डेरों में बिताये। लेकिन वह बड़े लज्जालु प्रकृति के हैं। बाज वक्त तो मालूम होता, कि उनके मुँह में जबान ही नहीं है। मैं पहिले भी उनकी कुछ कृतियों को पढ़ चुका था और अब की तो और पढ़ने तथा साथ काम करने का मौका मिला था, इसलिये मैं उनका प्रशंसक रहा।

पौने तीन महीने की इस छुट्टी में रूसी भाषा और दूसरी पुस्तकों के अध्ययन के अतिरिक्त कुछ इधर उधर घूमना, लेनिनग्राद के भिन्न भिन्न स्थानों को देखना तथा मित्रों से मिलना यही काम था। जुलाई अगस्त में यद्यपि विश्वविद्यालय बंद हो गया था, किन्तु अध्यापकों और विद्यार्थियों को पुस्तकों की आवश्यकता छुट्टी के दिनों में भी हो सकती है, इसलिये युनिवर्सिटी के प्राच्य और दूसरे विभागों के पुस्तकालय बराबर खुले रहते थे। इससे पुस्तकों का बड़ा सुभीता था। युनिवर्सिटी का एक केन्द्रीय पुस्तकालय था, फिर उसके विभागों के अलग अलग पुस्तकालय भी थे। जिनमें से हमारे प्राच्य विभाग के पुस्तकालय में चार लाख से भी ऊपर पुस्तकें थीं। तुलना कीजिये इसकी इलाहाबाद विश्वविद्यालय के पुस्तकालय से, जिसमें पुस्तकों की संख्या मुश्किल से आधे लाख है। पुस्तकों के सिलसिले में मैं अक्सर प्राच्य पुस्तकालय में जाता था। सारे विश्वविद्यालय में स्त्री-राज्य था। जब छात्रों में लड़कों की संख्या पंद्रह और बीस सैकड़ा हो, तो पुस्तकालय के बारे में क्या कहना है—पुस्तकालय तो खास तौर से स्त्रियों का विभाग समझा जाता है। ३० जुलाई

को मैं पुस्तकालय में था, वहां की महिलायें पत्र में छपा एक कहानी को बड़े गौर से पढ रही थीं। उन्होंने आग्रह पूर्वक लोला को भी उस पढने को कहा। मैं भी दो महीने में कुछ कुछ टो टा कर पढने लगा था और कुछ दूसरों ने भी सहायता की, इसलिये कहानी का सरांश मालूम हो गया। कहानी का नायक एक सैनिक अफसर युद्ध क्षेत्र में था। वहां किसी तरुणी से उसका प्रेम होगया। लडाई के समय तक तो दोनों प्रेमी मिलते रहे। लडाई खतम हो गई, सैनिक घर लौटने लगे। अफसर घर आया। तरुणी आशा करती थी कि उसका प्रेमी अवश्य उसके पास आयेगा, किन्तु देर तक प्रतीक्षा करने पर भी जब नहीं आया, तो तरुणी अपने प्रेमी के घर पहुँची। देखती है, वहां एक ४५ वर्षीया प्रौढ़ा अफसर की पत्नी मौजूद है। वह बहुत निराश हुई और अपने प्रेम का स्मरण दिलाते हुए अनुनय विनय करने लगी, मगर अफसर अपनी प्रौढा पत्नी को छोडने के लिए तैयार नहीं था। उसकी एक लडकी बच गयी थी, दो बच्चे लेनिनग्राद के घेरे के समय मर चुके थे। अफसर अपनी पत्नी को छोड़ कर उसे असहाय बनाने के लिये तैयार नहीं था। तरुणी को सावधान रहने की शिक्षा मिली और पुरुषों की निष्ठुरता के लिये गाली देते वह घर लौट गयी।

सारी महिलायें इतने चाव से उस कहानी को क्यों पढ रही थीं? चार साल के खूनी युद्ध में स्त्री कहीं और पुरुष कहीं बिखर गये थे। बहुतसे सैनिकों के परिवार गांव छोड़ कर दूसरी जगह चले गये थे, जहां से भेंट-मुलाकात की तो बात ही क्या चिट्ठी-पत्री भी मुश्किल से आती थी। कितनी ही स्त्रियों ने समझ लिया, कि हमारा घरवाला अब जीवित नहीं होगा। उक्त कहानी जैसी घटनायें हर जगह पायी जाती थीं। वेर्या के सैनिक पति ने लाम पर जा दूसरी तरुणी से प्रेम कर लिया और बेचारी मुँह ताकती रह गई। जेनिया का पति भी नये प्रेम में फँसकर न जाने कहां चला गया। श्रुरा का पति महीनों से पत्र नहीं भेज रहा था, इसलिये वह भी चिंतित थी। इस कहानी में ऐसी अभागी पत्नियों के पक्ष का समर्थन किया गया था, इसलिये कहानी इतने ध्यान से पढी जा रही थी।

अगस्त के पहिले हफ्ते में हमारे मकान के पीछे की क्यारियाँ बड़ी हरी

भरी थीं। यद्यपि खेतिहरों म स कुछ ने परिश्रम ही नहा अधिक किया था बल्कि अच्छी खाद के साथ दिमाग भी लगाया था। किन्तु लोला ने तो किसी तरह स फावड़े से जमान को खुरोच कर उसी तरह आलू काट कर दाऊ दिये थे, जैसे बाढ़ के हटने पर बढ़ैया टाल (मुगेर जिला) क किमान साल म एक ही बार हल बैल लेजा कर बीज डाल आते हैं और फिर काटने के ही समय उसका ध्यान रखते हैं। यद्यपि मकानों के सीमेंट के चूरन तथा दूसरी चार्ज भी हमारी क्यारियों में पड़ी थीं, लेकिन जमीन स्वभावत उर्वर थी, इसलिये आलू अभी ही दो-दो तीन तीन तोले के हो गये थे।

८ अगस्त को शाम के वक्त ११ बजे रेडियो ने कहा—अभी हम मास्को से एक महत्वपूर्ण खबर देने वाले हैं। लोला ने पूछा—क्या महत्वपूर्ण खबर होगी? मैंने जरा भी विलम्ब किये कह दिया—जापान के साथ युद्ध घोषणा। दो मिनट बाद ही मास्को रेडियो को युद्ध घोषणा करते सुन कर लोला को बहुत आश्चर्य हुआ। पूछा—कैसे तुमने बतलाया? मैंने कहा—"इदुस् (हिन्दू) होने का फायदा क्या, यदि मैं इतना भी न बतला सकूँ?"

—नहीं नहीं, सच बताओ।

मैंने कहा—यह कोई जोतिस का चमत्कार नहीं है। अन्तराष्ट्रीय परिस्थिति ऐसी ही है, बर्लिन में मित्र शक्तियों के प्रतिनिधियों ने स्तालिन की मांगों का समर्थन किया है। इंगलैंड की अन्तराष्ट्रीय नीति में भी परिवर्तन हुआ है। चीन के प्रधान मन्त्री और विदेश-मन्त्री दो दो बार मास्को पधार चुके हैं। मंगोलिया क प्रधान मन्त्री का अभी अभी मास्को म आगमन हुआ। हिटलर के पराजय क बाद जापान की पराजय निश्चय है। पूर्वी यूरप में जिस तरह रूस ने अपना प्रभाव बढ़ाया, यदि पूर्वी एसिया म भी वह अपना प्रभाव उसी तरह बढ़ाना चाहता है, तो चीन से भगाकर जापान से घुटना टिकवाने के लिये रूस को उसके विरुद्ध युद्ध घोषणा करनी आवश्यक है।

बाहरी दुनिया की खबर जानने का साधन इस वक्त मेरे पास केवल स्थानीय रेडियो और रूसी दैनिक थे। भाषा की कठिनाई के कारण बहुत माथापच्ची करने पर भी पचास प्रतिशत से अधिक मैं नहीं समझ पाता था।

४—नून-तेल-लकड़ी

नून तेल लकड़ी मानव की सबसे बड़ी समस्या है। देवता इसीलिये मनुष्य से बड़े हैं, कि उनको नून तेल लकड़ी की चिंता नहीं है। भारत में तो आज (१९४५ के अंत में) युद्ध के छ वर्षों बाद भी यह सबसे बड़ी समस्या है। राशन में पर्याप्त चीजें नहीं मिलतीं, जान पड़ता है अब अतिथि सेवा धर्म इस देश से उठ जायेगा। चीजें सभी मिल सकती हैं, यदि आप दुगना तिगुना दाम देने के लिये तैयार हों। खाने-पीने की चीजों में शुद्धता का सवाल ही नहीं है। मैं अपनी दूसरी रूस यात्रा से लौटते समय अफगानिस्तान और रूस की सीमा पर अनरेयन वक्षु नदी के दाहिने किनारे पर अवस्थित तेरमिज नगर में ठहरा हुआ था। व्यापार के सिलसिले में कुछ अफगान भी उसी सराय में ठहरे थे। बेचारे हलाल हराम का विचार कर के मांस तथा बहुत सी खाने की चीजें अपने साथ लाये थे, क्योंकि वह जानते थे कि सोवियत मध्यएसिया में यद्यपि अब भी अब्दुल्ला, रहीम और करीम जैसे ही नाम सुनने में आते हैं, किन्तु वहां अब हलाल किये हुये जानवर का गोश्त मिलना मुश्किल है। लेकिन घरका लाया गोश्त कितने दिन ठहरता। जब वह खतम हो गया, तो उन्हें चिन्ता पड़ी।

वह ऐसे देशके रहनेवाले थे, जहां आदमी अभी पूरी तौरसे घासखोर नहीं बना है। सरायके चौकीदार से मिन्नत करने पर उसने बड़े तपाकसे कहा— हां, हम कसाईखाने से ताजा गोश्त ला देते हैं। मैंने चौकीदार से हंसकर पूछा— दोस्त, तुम कसाईखाने से हलाल गोश्त ला दोगे?

उसने हंसते हुए कहा— बेवकूफ हैं, जानवर को तकलीफ दे देकर मारके जो गोश्त तैयार हो, उसका हलाल कहते हैं। अब ऐसे माननेवाले हमारे देशमें शायद कोई बिरला ही हो। इसी तरह हमारे यहां भी अभी शहरों के कुछ लोग शुद्ध घी की बात करते हैं और शुद्ध घी के नामपर उनको मिलता है अशुद्ध वनस्पति। *हिमालय के जौनसार और जौनपुर जैसे सीधे-सादे पहाडी भी जब दिन के दिन दलदा इस अभिप्राय से ढोये लिये जाते हैं, कि दूध में इसे मिलाकर मक्खन निकाल के घी बना लेंगे और शुद्ध घी के नाम पर दुगुने दाम पर बाबू लोगों को बेच देंगे* तो हमारे नीचे के अधिक होशियार नागरिकों और ग्रामीणों की बात ही क्या करनी है। मैं तो मानता हूं— यदि दलदा ही खाना है, तो बेवकूफ बनकर घी के नाम से क्या खाया जाय।

मैं रूसमें, जर्मनी की लड़ाई के समाप्त होने के थोड़ी ही देर बाद पहुंचा था। रूस का अन्नदायिका भूमि का बहुत बड़ा भाग जर्मनों के हाथ में चला गया था। अब उनके हाथ से मुक्त हो जाने के बाद भी वह युद्ध की ध्वंसलीला के कारण अभी इस अवस्था में नहीं थी, कि पहिले का आधा भी अन्न दे। लेकिन रूसियों ने "अधिक अन्न उपजाओ" का मजाक करके प्रोपेगंडा पर करोड़ों रुपया बेकार खर्च नहीं किया, बल्कि उन्होंने अन्न उपजाने के लिये नहरों के पानी और खादकी आवश्यकता होती है, इसे समझ कर, उस ओर पूरा ध्यान दिया। बाबर की जन्मभूमि फरगाना के इलाके के किसानों ने कहा— हम अपना आगार (शारीरिक परिश्रम) देने के लिये तैयार हैं, हम इंजिनियर, और सिमेंट लोहा आदि सामग्री सरकार दे, तो हम यहां एक बड़ी नहर खोद डालें। *सरकार ने इंजिनियर और सीमेंट-लोहा लकडी का ही इंतजाम नहीं कर दिया, बल्कि देश के जन्म और मृत्यु* के बीच में लटकते रहने के समय भी अपनी आंखों के सामने से विदा और

कला के महत्व को हटने नहीं दिया। उन्होंने कुछ इतिहासज्ञ और पुरातत्त्वज्ञ भी वहां भेज दिये, किर्गाना की समझने के लिये उनकी मातृभाषाओं में छोटे छोटे पम्फ्लेट छापकर बांटे, जिसमें कहा गया था—साथियो, ध्यान रखना यह नहर उस भूमि पर से जा रही है, जहां से कि चीन से युरोप जानेवाला रेशम-पथ डेढ़ हजार वर्षों तक चलता रहा। उस समय यहां अच्छे अच्छे नगर थे, जो पीछे की लड़ाइयों में ध्वस्त हो गये। यहां पर ऐसी ऐतिहासिक पुरातात्विक महत्त्व की चीजें मिलेंगी, जिनसे हमारे इतिहास के ऊपर नया प्रकाश पड़ेगा, इसलिये खुदाई करते समय ध्यान रखना, जिसमें यहां से निकली कोई इंट, मृत्पात्र, मूर्ति या और कोई चीज फावड़े कुदाल से टूटने न पाये। इतना ही नहीं बल्कि सरकार ने पुरातात्विक सामग्री इकट्ठा करने के लिये वहां बाईस लोरियां रखीं, जो सामग्री को सुरक्षित स्थान पर पहुंचाती थीं। फर्गाना जैसी और भी कितनी नहरें लड़ाई के समय में सोवियत राष्ट्र में बनाई गईं, जिनके कारण वहां अन्न की उपज बढ़ाने में खूब सफलता मिली। राशन का प्रबन्ध इतना अच्छा था, कि आदमी के लिये आवश्यक चीजें सस्ते दामों में मिल जाती थीं। जुलाई का जो राशनकार्ड हमें मिला था, उसमें महीने भर के लिये निम्न परिमाण में चीजें मिलती थीं—

चीनी ६०० ग्राम ८० (ग्राम के १८ टुकड़े)
कुपा (खिचड़ी के लिये गेहूं या चना) १६६० ग्राम
मांस मछली १८०० ग्राम
मक्खन ८०० ग्राम
रोटी (काली) १२४०० (४०० ग्राम के इकतीस टुकड़े)
रोटी (सफेद) ६२०० ग्राम।

यह हमारे जैसे वयस्कों के लिये थे। अगर जैसे पांच छ सालके बच्चों के लिये चीजें निम्न प्रकार मिलती थीं—

कुपा १२०० ग्राम
मक्खन ४० ग्राम

गही (काली) ६२००

गेहूं (सफ़ेद) ६२००

चीनी ५०० ग्राम।

बड़ा का प्रतिमास २२ २ किलोग्राम रोटी मिलती थी, और बच्चों को १४ किलोग्राम—किलोग्राम हजार ग्राम या प्रायः सवा सेर के बराबर होता है।

चार बनाग का वहां नाम निशान नहीं था, क्योंकि अपनी उपजाई चीजों के अतिरिक्त दूसरे का चीजों को खरीदकर अधिक नफे के साथ बेचनेवाला (बनिया) अपराधी समझा जाता था। राशन से चीजें सस्ती मिलती थीं, लेकिन यदि कोई राशन से अतिरिक्त खरीदना चाहता था, तो उसके लिए सरकार ने राशनवाली दूकानों के अतिरिक्त बहुत सा बिना राशन का दूकान भी खोल रखी थीं, जहां आदमी दस-गुनी बीस-गुनी कीमत पर चाहे जितनी मात्रा में चीजों को ले सकता था। इसी तरह अगर कोई अपने राशन का चीज को बेचकर बदले में दूसरी चीज खरीदना चाहता, तो उसमें कोई रुकावट नहीं थी। आप सिगरेट के शौकीन हैं और दूसरा चीनी का शौकीन है। आप अपनी सिगरेट को हाट में जाकर किसी आदमी को बीस गुने दाम पर दे दीजिये, और स्वयं भी चीनी की इच्छा न रखनेवाले आदमी से बीस-पचीस गुने दाम पर चीनी खरीद लीजिये। चीजों में मिलावट करना वहां संभव नहीं था, क्योंकि जनता के खाद्य में मिलावट करना भारी अपराध समझा जाता था, जिसके दंड से आदमी अपने को किसी तरह भी बचा नहीं सकता था। राशन की दूकानों और हाट की (रीनक) अथवा कलखोज (पंचायती खेती) वाली चीजों के दामों में कितना अन्तर था यह मैं अपनी डायरी जुलाई १९४५ की डायरी से देता हूं—(दाम रूबल में हैं)

चीज		राशन	रीनक या कलखोज
मांस	१ किलो	१२	२५०
मछली	”	१२	
मक्खन	”	२७	४००

पनीर (अमरिकन)	"	२५	१..
(देशी)	"	२१	..
चीनी	"	५	२००
अंडा (दजन)		६ ५०	६६
रोटी (सफेद)	१ किलो	२ १२	५०
रोटी (काली)	"	१ १०	२५
सूपा	"	२	
चावल	"	६ ५०	१००
आलू	"	२	६०
कपुस्ता (खट्टी गोभी)	"	१ ५०	३०
चबीन (सोया)	"	४ ६०	५०
मना (जौ चूर्ण)	"	४ ४०	८०

इसी प्रकार वस्त्र भी राशन और बेराशन का था—

स्त्री पोशाक (रेशम)	३००	१०००
स्त्री-पोशाक (सूती)	६०	
गोलोश (रबर)	२५	१००
मोजा (रेशमी)	२०	१५०
मोजा (सूती)	५	५०

वहां कम से कम वेतन वाला ढाई-तीन सौ रूबल महीने में पाता था, और प्रत्येक घर में कम से कम दो कमानेवाले तथा साथ ही तीसरी या चौथी संतान के बाद का खर्च सरकार बर्दाश्त करती थी। लड़ाई के समय की असाधारण अवस्था में राशन के कार्ड को देखने से मालूम होगा, कि मनुष्य की अत्यावश्यक खाने-कपड़े जैसी चीजों को बहुत सस्ता रक्खा गया था। वहां के शासक अच्छी तरह जानते थे, कि राशन में जो चीजें मिलती हैं, उतने ही से कितने ही लोग संतुष्ट नहीं हो सकते। जिनके पास अधिक पैसा है, वह और भी चीजें खरीदना चाहेंगे। यदि सरकार उनकी अतिरिक्त इच्छा और अतिरिक्त पैसे

का कोई ठीक प्रबन्ध नहीं करती है, तो चोर आजायेंगे या रास्ता भाग जायेगा, इसलिये सरकार ने अपनी बिना राशन की दूकानें भी खोल दी थीं। यदि आप अनिश्चित पैसा खर्च करना चाहते हैं, तो आइये इन बिना राशन की दूकानों में दस बीस गुना दाम चुकाइये और अपनी मनचाही चीज ले जाइये। शायद कुछ लोग इन बिना राशनवाली दूकानों की बात सुनकर झट कह उठेंगे— यह तो सरकार स्वयं चोर बाजारी करने लगी। लेकिन सरकार न आपको पैसा खर्च करने के लिये मजबूर करती है और न दस गुना बीस-गुना दाम किसी चोर बाजारी सेठ के पाकेट में जाता है। यह अरबों रुपया जमा हो कर सरकार की बड़ी बड़ी आर्थिक योजनाओं में खर्च होता है, जिससे सारे देशकी सम्पत्ति बढ़ेगा, उपज की वृद्धि से चीजों का दाम घटेगा, और पूरा लाभ उठाने का आपको मौका मिलेगा।

भोजन का प्रबन्ध लोग अपने घर में करते हैं। विश्वविद्यालय की वाइस चांसलर महिला से भी आप रोज अपने पाकशास्त्र का परिचय देने पायेंगे। तो भी ऐसा प्रबन्ध है, यदि आप किसी दिन या बराबर घरमें खाना न बनाना चाहें, तो आपको अपना कार्ड देकर सस्ता और पुष्टिकारक भोजन मिल सकता है। इसके लिये हरेक मुहल्ले में सामूहिक भोजनालय हैं। कारखाना और विश्वविद्यालय जैसी संस्थाओं में भी अपनी अपनी सामूहिक भोजनशालायें तथा बुफेत (उपाहारगृह) हैं। जून (१६४८) को हमने विश्वविद्यालय के भोजनालय के रादरस को चखने का विचार किया। सवा रूबल (बारह आना) में सूप और काशा (मक्खन सहित चीना की खिचड़ी) तृप्त होनेभर के लिये मिली। जहां एक ओर हम राशन टिकट पर बारह आने में पेटभर भोजन कर सकते थे, वहां राशन बिना सवा सेर मांस के लिए २१० रूबल, सवा सेर मक्खन के लिये ४०० रूबल, सवा सेर चर्बी लिये १०० रूबल, सवा सेर चीनी के लिये २० रूबल देना पड़ता। इन दोनों तरह के भावों को देखकर मेरी भी प्रसन्न चकित चकराई थी, लेकिन जब मैंने देखा कि राशनकार्ड पर आदमी ढाई रूबल में दो बक्त पेटभर खा सकता है अर्थात् ३८-४० रुपये में महीने भर भोजन कर सकता है,

तो सारा संदेह दूर हो गया। वहां कोई बेकार नहीं था, यही नहीं बल्कि काम के लिये जितने आदमियों की आवश्यकता थी, उतने मिलते नहीं थे।

१९४६ की बात है। पूरब पच्छिम दोनों तरफ की लड़ाइयां खतम हो चुकी थीं और सोवियत जनता अपने पुनर्निर्माण के कार्य में बड़े जोर से लगी हुई थी। हिसाब लगाने से मालूम हुआ, कि कई लाख ऐसी स्त्रियां हैं, जो स्वयं काम न कर अपने पति या दूसरों की कमाई पर जीती हैं। यदि उन चालीस पचास लाख कामचोर औरतों को काम में लगाया जा सके, तो हलके कामों से हटाकर चालीस पचास लाख पुरुषों को अधिक मेहनत के कामों पर लगाया जा सकता है। यह सोच सरकार ने नियम बना दिया कि अब से उन्हीं लोगों को राशन कार्ड मिलेगा, जो कि किसी राष्ट्रनिर्माण के कार्य में लगे हुए हैं, अथवा स्वास्थ्य, वार्धक्य आदि के कारण काम नहीं कर सकते। मेरे पड़ोस में एक जारशाही युग के मध्यवित्त कुल की प्रौढ़ा भी थीं। पुराना संस्कार था, इसलिये काम करने की जगह सिंगार पटार करके उपन्यास पढ़ना उन्हें अधिक पसंद था। इस नियम के लागू होते ही उन्हें काम करने के लिये मजबूर होना पड़ा, क्या कि अब पति की कमाई से पन्द्रह बीस गुना दाम देकर रोटी-मक्खन खरीदना बस की बात नहीं थी। हजार गाली देते हुए बेचारी को काम करने के लिए जाना पड़ा। काम भी कोई भारी नहीं था। किसी दफ्तर में लिखने-पढ़ने अथवा किसी राशन या बगसान की दूकान में बेचने के लिये आठ घंटे दे देना काफी था।

★ ★ ★

५—प्रोफेसरी

अबकी बार लेनिनग्राद विश्वविद्यालय में मुझे संस्कृत पढ़ाने के लिये निमंत्रित किया गया था। पहली बार मैं १९३५ में जापान से लौटते वक्त यात्री रूस को यात्रा खड़े खड़े कर आया था। उस समय मेरा वहाँ के विद्वानों से कोई संपर्क नहीं हो पाया, क्योंकि मास्को में एक दो दिन से अधिक मैं ठहर नहीं सका था। फ्रान्स में रहते समय (१९३२ में) प्रो० सेलवन लेवी ने डा० सर्जे ओल्देनबुर्ग के नाम एक परिचयपत्र दे दिया था, किन्तु मैं उस समय रूस नहीं जा सका। डा० श्चेर्वात्स्की की पुस्तकों से मैं परिचित था और मेरे ग्रन्थों तथा तिब्बत की खोजों से वह भी परिचित थे, इसलिए हम लोगों का पत्र व्यवहार द्वारा परिचय ही नहीं घनिष्ठता स्थापित हो चुकी थी। जब १९३५ में मैं मास्को से लेनिनग्राद नहीं जा सका, तो उनको बहुत अफसोस हुआ था। उन्होंने १९३७ में विशेष आग्रह से अकदमी की ओर से निमंत्रित करके मुझे बुलवाया था, किन्तु कई कारणों से मैं वहाँ कुछ ही महीने ठहर सका। अब युद्ध के समय तीसरी बार फिर मेरा जाने का इरादा हुआ और डाक्टर श्चेर्वात्स्की के पूर्व प्रयत्न के कारण लेनिनग्राद युनिवर्सिटी ने मुझे संस्कृत पढ़ाने के लिये बुलाया था।

अध्यापन का काम मैंने थोड़ा ही किया था। भारत में जहाँ-तहाँ एकाध साल संस्कृत के पढ़ाने के सिवाय लंका में अवश्य डेढ़ वर्ष से ऊपर संस्कृत पढ़ाता रहा। लेकिन यहाँ मैं यूरोप की एक बहुत प्रतिष्ठित युनिवर्सिटी में आधुनिक ढंग से संस्कृत पढ़नेवाले छात्रों का अध्यापक बना था। उसमें भी माध्यम न मैं संस्कृत को बना सकता था, क्योंकि विद्यार्थी अभी संस्कृत द्वारा पढ़ाने पर समझ नहीं सकते थे और न अंग्रेजी ही को। यद्यपि अंग्रेजी सभी कुछ कुछ पढ़े थे, किन्तु उनका ज्ञान अत्यंत अल्प था। मैं साधारण विद्यार्थियों के अतिरिक्त वहाँ के अध्यापकों को भी दर्शन या काव्य के उच्च ग्रन्थों को पढ़ाता था, जिनमें संस्कृत अवश्य सहायक होती थी। माध्यम की कठिनाई पहिले साल अवश्य रही, किन्तु वह ऐसी नहीं थी, जिसके कारण छात्रों को नुकसान होता। मेरी भाषा शुद्ध नहीं थी, कहीं कहीं वह खिचड़ी भी होती थी, जिसमें कुछ अंग्रेजी या साधारण संस्कृत के शब्दों को मिलाकर बोलता, किन्तु जहाँतक छात्रों के समझने का सवाल था, उसमें कोई दिक्कत नहीं हुई। पहिले साल मैंने प्राय प्रथम वर्ष को नहीं लिया। अगले साल उन छात्रों को भी पढ़ाने लगा। छात्र कहना गलत होगा, क्योंकि सारी युनिवर्सिटी में दो सैकड़ा लड़के होने का उल्लेख मेरी डायरी में है, अगर है २० की एक बिंदी छूट गई हो, तो भी पाँच छात्रों में चार का लड़की होना बतलाता है, कि लड़ाई की वजह से विद्यालय के छात्रों के ऊपर क्या प्रभाव पड़ा था। पहिले साल तो पंचम वर्ष में कोई छात्र नहीं था। चतुर्थ वर्ष में दो लड़कियाँ थीं। तृतीय में भी लड़कियों की संख्या अधिक थी।

सोवियत शिक्षाप्रणाली में सात वर्ष की पढ़ाई अपनी मातृभाषा में सोवियत के हरेक लड़के और लड़की के लिए अनिवार्य है। अनिवार्य शिक्षा चौदहवें वर्ष के साथ समाप्त होती है। फिर तीन वर्ष की शिक्षा के बाद हाइ स्कूल की पढ़ाई समाप्त होती है। यद्यपि हमारे यहाँ की तरह दस साल में वहाँ भी माध्यमिक शिक्षा समाप्त होती है, किन्तु दोनों के ज्ञान में बहुत अन्तर है। सोवियत के सात साला की पढ़ाई में विद्यार्थी का विषय ज्ञान हमारे यहाँ के हाइ स्कूल के बराबर होता है और हाइस्कूल की दस साल की पढ़ाई तो हमारे यहाँ

क कालेज के तृतीय चतुर्थ वर्ष के करीब। इसका कारण यही है कि वहां सारी शिक्षा अपनी मातृभाषा में होती है। अपनी मातृभाषा अर्थात जिस भाषा को लड़का बचपन से बोलता चला आया है। इसलिये विदेशी भाषा के माध्यम से पढने में विद्यार्थी का जो समय उस भाषा पर अधिकार प्राप्त करने में लगता है, वह बच जाता है। इसका यह मतलब नहीं, कि विदेशी भाषा वहा पढाई नहीं जाती। हरेक रूसी बालक को अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त यूरोप की आधुनिक तीन भाषाओं (जर्मन, फ्रेंच, और इंगलिश) में से एक को लेना पड़ता है। सोवियत शिक्षा प्रणाली में शिक्षा का अर्थ घोखना नहीं है। वहा घोखने या रटने की ओर परीक्षा में अधिक ध्यान नहीं दिया जाता। हमारे यहा की तरह वहा परीक्षा सग्राम क्षेत्र का रूप नहीं लेता, जिसमें आधे और दो तिहाई विद्यार्थी कतल किये जाते हों। वहा परीक्षा के लिये न प्रश्नपत्र छपते हैं, और न हजारा मन उत्तर की कापियां खर्च होती हैं। चाहे प्रारम्भिक कक्षायें हों, हाइस्कूल हो या विश्वविद्यालय, सभी की परीक्षायें अपने ही अध्यापक लेते हैं, प्रश्न भी जबानी होते हैं। उत्तर देने के लिये विद्यार्थी अपनी सारी पुस्तक अपने साथ रख सकते हैं। असल में जो विद्यार्थी बहुत ज्यादा अनुपस्थित नहीं रहा है, उसका फेल होना वहां सभव ही नहीं है।

हाइस्कूल (दशम कक्षा) पास करने के बाद विद्यार्थी यूनिवर्सिटी में या मेडिकल, इंजिनियरी या टेक्नीकल कालेजो में जा सकता है। हर जगह पाच साल का कोर्स है। हमारी कक्षा में जो विद्यार्थी पढने के लिये आये थे, वह सब हाइस्कूल पास करके आये थे। संस्कृत किसी हाइस्कूल में द्वितीय भाषा नहीं है, लेकिन आजकी जीवित भाषाओं में व्याकरण की दृष्टि से संस्कृत से सबसे नजदीक रूसी भाषा है, इसलिये रूसी छात्र छात्राओं को संस्कृत पढने में कुछ सुभीता जरूर होता है। जब छात्र पहिले पहल देखते, कि उनकी भाषा के चरा (प्याला) ब्रात (भ्राता), मात (माता) आदि शब्द संस्कृत में भी हैं, तो उनको आश्चर्य और कौतूहल होता था। लेकिन हाइस्कूल पास करने के बाद किसी छात्र को आगे की पढाई में किसे कौनसा विषय लेना चाहिये, यह उसकी इच्छा पर

निर्भर करता है। हमारे यहाँ हाईस्कूल तक जाना भी कठिन है, उसके आगे तो असम्भव है, लेकिन यहाँ पर ज्ञान का इतनी गौर चिन्ता हा नहीं है। यूनिवर्सिटी या कालेज के छात्रों में नब्बे प्रतिशत सरकारी छात्रवृत्ति से पढ़ते हैं। दस प्रतिशत वहां लड़के हैं, जिनके मां बाप अच्छा वेतन पाते हैं। इस प्रकार जिसकी इच्छा आगे पढ़ने की है, उसके रास्ते में कोई आर्थिक कठिनाई नहीं है। इसका परिणाम यह भी होता है, कि ... मेहनत करनेवाले लड़के भी आकर विश्वविद्यालय में दाखिल हो जाते हैं। मैंने पहिली सितम्बर (१९४६) को विश्वविद्यालय खुलते समय प्रथम वर्ष में बाइस तेइस लड़के लड़कियों को देखा, तो बड़ी प्रसन्नता हुई। किन्तु थोड़े ही दिनों बाद मालूम हुआ, कि उनमें से कितने ही व्यर्थ पढ़ने आये हैं। उनका संस्कृत जैसे रूखे विषय की तरफ कोई रुचि नहीं थी, न भाषा सीखने का कोई शौक था। पहिले का कोई तयारी तो थी ही नहीं। मैं सोचता था— सरकार क्यों इतने पैसे इन छात्रों के उपर बबाद कर रही है। मैं अपने साथी अध्यापकों से बहिक पूछता भी था। लेकिन, कुछ महीनों बाद मैंने देखा, कि कक्षा के सात आठ छात्र वहां से छोड़कर दूसरे विषय में चले गये। यद्यपि कुछ रुपया का अपव्यय जरूर होता है, लेकिन अनुभव द्वारा परखना किये बिना, पता ही कैसे लगेगा कि कौन छात्र भारतीय विद्या या भाषातत्त्व की ओर आगे बढ़ सकता है।

भिन्न भिन्न विषयों के अनुसार रूसी विश्वविद्यालय में भी अलग अलग विभाग (फाकुलतात, फेकल्टी) हैं। जिनमें एक फेकल्टी प्राच्य विद्याओं की है। इस फेकल्टी में मिश्र से जापान तक की भाषाओं, उनके साहित्य, इतिहास आदि के पढ़ने का प्रबन्ध है। रूसी विद्वान् पहिले पहल तिब्बती साहित्य द्वारा भारत से परिचित हुए। सोलहवीं सदी में ही रूसी राज्य बढ़ते हुए साइबेरिया के भीतर पहुँच गया था। सत्रहवीं अठारहवीं शताब्दियों में रूसिया का बौद्धधर्मी मंगोलों से परिचय हुआ, जिनकी धार्मिक पुस्तकें प्रायः तिब्बती भाषा में होती हैं। इस प्रकार तिब्बती भाषा से रूसी विद्वानों का परिचय हुआ और पीछे उन्हें मालूम हुआ, कि तिब्बती भाषा के विशाल साहित्य का बहुत बड़ा भाग संस्कृत से

अनुवाद होकर आया है। फिर उनका ध्यान संस्कृत की तरफ गया। अट्ठारहवीं शताब्दी के अन्त में पश्चिमी यूरोप के विद्वानों को पता लगा, कि भारत की एक प्राचीन भाषा संस्कृत है, जो उसी वंशकी भाषा है, जिसके वंशज आजकल के युरोपीय लोग हैं। बॉप और दूसरे भाषातत्व वेत्ताओं ने अपनी खोजों से असंदिग्ध रूप में इस बात का निश्चय कर दिया कि संस्कृत और भारत की और भी संस्कृत-वंशी आधुनिक भाषाओं का मूल स्रोत वही है, जो कि ग्रीक, लातिन और आधुनिक यूरोपीय भाषाओं का। इस आविष्कार के कारण यूरोप में एक भारी हलचल सी मच गयी और वहां के विश्वविद्यालय अपने अपने यहां संस्कृत पढ़ाने का प्रबंध करने लगे। यह बात जब रूसियों को मालूम हुई, तो उन्होंने भी अपने विश्वविद्यालयों में संस्कृत के पठन-पाठन का प्रबंध करना चाहा। उस समय लेनिनग्राद का नाम पितरबुर्ग था और यही रूस की राजधानी थी। तिब्बती और मंगोल भाषाओं का परिचय रूसियों को बहुत पहले से था और उन्हीं के साथियों द्वारा बौद्धधर्म से परिचय करके उन्होंने बौद्धधर्म पर पुस्तकें भी लिखी। यह भी उन्हें मालूम हो चुका था, कि बौद्धधर्म भारत से आया है और वहां का पुराना साहित्य संस्कृत में है। पहिले पहिल त्वर (आधुनिक कलिनिन) नगर निवासी अफानिउन निकितिन ईरान हो समुद्रमार्ग से दिव (काठियावाड़) में उतर कर १४६७ ई० में बिदर (बहमनी राजधानी) में पहुंचा और वहां छ साल तक रहा। निकितिन ने यद्यपि अपनी यात्रा के संबंध में एक पुस्तक भी लिखी, किन्तु वह कोई भाषा-तत्वज्ञ नहीं था, इसलिये उसने भाषा के बारे में अधिक परिचय करने में सफलता नहीं पाई। लेकिन गेरासीम लेबेदोफ नामक एक रूसी गायक अठारहवीं सदी के अन्त में लंदन के रूसी दूतावास में नौकर होकर गया था। उसे अंग्रेजों से पता लगा कि हिंदुस्तान में पगोदा का वृक्ष होता है, जिसको जरा सा हिला देनेपर सोने की अशर्फियां भर पड़ती हैं। कितने ही और अंग्रेज तरुणों की तरह गेरासीम भी ईस्ट इंडिया कंपनी का क्लर्क बन १७८५ ई० में फोर्ट विलियम (कलकत्ता) पहुंचा। पगोडा वृक्ष उसे कहां मिलता, लेकिन उसने अपनी जीविका के लिये कलकत्ता में एक नाट्यशाला

स्थापित की। वहाँ नाट्यशाला में शायद अमीरों के मनोरंजन के लिए अंग्रेजी नाटक भी खेले जाते थे, जिनमें लिविडेफ़ भाग लेता था, किन्तु उसने इतने से संतोष नहीं किया। कलकत्ता में रहकर उसने बंगला भाषा और संस्कृत भी पढ़ी, विदेशी नाटकों को बंगला में अनुवाद करके खेलने की कोशिश की। लिविडेफ़ पन्द्रह-सोलह वर्ष भारत में रहा। यह अपने साथ अशर्फियाँ तो नहीं लेकिन बंगला और संस्कृत का ज्ञान अवश्य ले गया। लंदन में जाकर १८०१ ई० में उसने भारतीय भाषा का एक व्याकरण लिखकर छपवाया। अब पीतर्बुर्ग में उसकी माँग थी, इसलिये वह अपनी जन्मभूमि को लौट गया। आज से १४६ वर्ष पहले उसने जार अलेक्सान्द्र की आज्ञा से १८०५ ई० में नागरी का टाइप ढाला। आज भी गेरासीम के बनाये वही टाइप रूस में इस्तेमाल किये जाते हैं, यद्यपि वह आज के टाइपों की दृष्टि से भद्दे मालूम होते हैं। गेरासीम ने हिन्दूधर्म पर भी रूसी में पुस्तकें लिखकर प्रकाशित कीं।

रूसी सरकार संस्कृत की महिमा को सुनकर इतने से संतोष करने के लिए तैयार नहीं था। यूरोप के विश्वविद्यालय धड़ाधड़ संस्कृत की गद्दियाँ स्थापित करते जा रहे थे, फिर पितर्बुर्ग कैसे पीछे रह सकता था? रूसी सरकार ने भी रावर्त लेंज (१८०८–३६ ई०) को संस्कृत पढ़ने के लिए छात्रवृत्ति देकर बाहर भेजा, उसने प्रसिद्ध भाषातत्त्वज्ञ बॉप से बर्लिन में संस्कृत पढ़ी। स्वदेश लौटने पर पितर्बुर्ग (लेनिनग्राद) विश्वविद्यालय में संस्कृत की गद्दी उसे तैयार मिली। १८३८ में वह संस्कृत का प्रथम प्रोफेसर नियुक्त हुआ। यद्यपि तरुण लेंज २८ वर्ष की उमर में ही मर गया, लेकिन उसकी परम्परा टूटी नहीं। पेत्रोफ़ (मृत्यु १८७६ ई०), कालोविस्क (१८७२), शिफ़नर (१८१७–७९ ई०), बोथलिंक (१८१५–१९०५ ई०), मिनियेफ़ (१८४०–९०) ओल्देनबुर्ग (१८६३–१९३४), श्चेर्वात्स्की (१८६६–१९४२) से लेकर आज बरान्निकोफ़ तक संस्कृत प्रोफेसरों की परम्परा चली आती है। प्रथम संस्कृत प्रोफेसर लेंज के ११० वर्ष बाद मैं वहाँ एक भारतीय संस्कृत प्रोफेसर नियुक्त हुआ था। लेंज मेरी अपेक्षा अपने छात्रों को अच्छी तरह समझा सकता था, किन्तु मेरे

छात्र छात्राए अपने प्रोफेसर की बातों को बड़े ध्यान और रुचि से मनन करते थे।

आजकल भारत में सभी स्कूलों और विश्वविद्यालयों के अध्यापक विद्यार्थियों से तंग आये हुए हैं। उस दिन एक तरुण विद्वान से बात हो रही थी। अध्यापकी करने की बात कहने पर उन्होंने कान पकड़ कर कहा— नहीं, छात्रों के सामने टिकना मेरे लिये मुश्किल है। वस्तुतः हमारे छात्रों की बुद्धि मारी गई है, या वह स्वभावतः उच्छृंखल हैं, यह बात मैं नहीं मानता। दस साल तक हाईस्कूल में पढ़कर आया छात्र अपने को निरा बुद्धू नहीं समझ सकता। हमारे यहां छः वर्ष में ही पढ़ाई शुरू करदी जाती है, इसलिये शायद ही कोई छात्र सोलह वर्ष से कम का कालेज में पढ़ने आता है। ऐसे छात्रों को दुधमुंहा बच्चा समझ कर उनके साथ व्यवहार करना वस्तुतः इस सारे झगड़े की जड़ है। पुराने आचार्य इस तथ्य को समझते थे, तभी तो उन्होंने कहा—"प्राप्तेतु षोडशे वर्षे पुत्रे मित्रवदाचरेत्।" अपने छात्रों को यदि अध्यापक बच्चा न समझ अपना मित्र मानें, तो बहुत सी बातें दूर हो सकती हैं। लेकिन रूसी विश्वविद्यालयों में तो अनुशासन कायम करने के लिये सबसे बड़ा साधन है, छात्रों की अपनी संस्था छात्र संघ (तरुण कम्युनिस्ट संघ), जो अपने सदस्यों पर भीतर से नियंत्रण रखती है। छात्र अपने स्वतंत्र विचारों को प्रगट करने में जरा भी नहीं हिचकिचाते। हर वार्षिक या त्रैमासिक परीक्षा के समाप्त होने के बाद अध्यापकों और छात्र प्रतिनिधियों की बैठक होती है, जिसमें पिछली तिमाही या वार्षिक पढ़ाई के गुण दोषों पर खुली आलोचना होती है। उस वक्त छात्रों के प्रतिनिधि भी अपने अध्यापकों की कमियां को खोलकर कहते हैं।

प्राच्य विभाग (फैकल्टी) में देश और भाषा के अनुसार अलग अलग उपविभाग थे। अरबी उपविभाग था, जापानी और चीनी उपविभाग भी था। इसी तरह का एक उपविभाग (काफेद्रा) इंदो तिब्बती भी था, जिसमें संस्कृत, भारत की आधुनिक भाषाओं तथा तिब्बती भाषा के पठन-पाठन का प्रबंध था। तिब्बती भाषा और बौद्धधर्म के द्वारा रूसियों को भारत का ज्ञान हुआ था इसलिये अलग अलग करने होने पर भी संस्कृत और तिब्बती को एक साथ जोड़

दिया गया। विद्यार्थियों को एक उप विभाग में दाखिल होकर केवल भाषा ही पढ़ना नहीं पड़ता, बल्कि साथ ही उस देशकी पूरी जानकारी के लिए और भी आवश्यक विषयों का अच्छा परिचय प्राप्त करना पड़ता है। उदाहरणार्थ हमारे उपविभाग के छात्रों को जहां पांच वर्षों तक संस्कृत हिन्दी पढ़ना अनिवार्य था, वहां साथ ही तथा भिन्न भिन्न वर्षों में एक-दो भारत का प्रादेशिक भाषाओं को भी पढ़ना पड़ता है। भारतीय इतिहास, भारतीय साहित्य, भारतीय धर्मों का ही नहीं बल्कि भारतीय नृतत्व एवं भारतीय अर्थशास्त्र भी अनिवार्य था। विश्वविद्यालय के यही स्नातक सोवियत रूस और भारत के बीच राजनीतिक, सामाजिक सांस्कृतिक, व्यापारिक आदि संबंध स्थापित करने में मुख्य तौरसे भाग लेंगे, इसलिए उनके लिये भारत और भारतीयों का पूरा ज्ञान आवश्यक समझ कर वैसी ही शिक्षा दी जाती है।

प्रोफेसर होने के कारण मुझे हफ्ते में बारह घंटे पढ़ाना पड़ता। मैं मंगल, बृहस्पति और शनैश्चर को पढ़ाने जाता। पहिले साल मुझे संस्कृत और हिन्दी पढ़ाना पड़ता था, दूसरे साल तिब्बती भी। हमारे विभाग में १९४७ के आरम्भ में चालीस के करीब छात्र छात्रायें थे और अध्यापिकाओं की संख्या सात आठ। अकदमिक बरान्निकोफ् उपविभाग के अध्यक्ष और मैं प्रोफेसर, बाकी लेक्चरर (दोसेंत) थे— श्री कैलियानाफ संस्कृत के, श्री बिस्कोवनी और श्रीमती दीना गोल्दमान हिन्दी के अध्यापक थे। इनके अतिरिक्त बंगला भाषा के भी अध्यापक थे। श्री सुलेकिन राजनीति और अर्थशास्त्र पढ़ाते थे।

सितम्बर अक्तूबर तक कुछ नयापन अवश्य मालूम हुआ, उसके बाद तो जीवन सरल रहा। मेरी उच्च कक्षा (चतुर्थ वर्ष) में दो लड़कियां थीं, जिनमें से एक (वर्या) साधारण शिक्षिता मध्यम वर्ग का यहूदी लड़की थी और दूसरी (तान्या) पुराने सामन्त कुल की। छात्र छात्राओं से निस्संकोच बातचीत करने और मिलने-जुलने से रूसके नागरिक जीवन की बहुतसी बातें मालूम होती थीं। उस वक्त लड़ाई के कारण बहुत से मकान गिर गये थे। यद्यपि मकानों के पुनर्निर्माण में बड़ा तत्परता था, लेकिन इसमें भी मकान

खट नहा हा सकते थ । लोगों को मकाना का कष्ट अवश्य था । कष्ट इस अर्थ म, कि सबका यथेच्छ कमरे नहा मिल सकते थे । मैं प्रोफेसर था । मुझे कमसे कम तीन कमरे तो मिलने ही चाहिये थे, लेकिन मेरे पास केवल दो थे । सरकार और दूसरे कोशिश कर रहे थे, लेकिन वह कठिनाई इतनी जल्दी दूर थोड़े ही हो सकती थी । मैं तो दो म भी सतुष्ट था । एक दिन मकानों की कठिनाई के बारे मे बातचीत होने लगी । मैंने कहा— एक कमरा दो व्यक्तियों क परिवार क लिय काफी है । साधारण वर्ग की लड़की ने भी इसम कोई आपत्ति नहीं की, लेकिन दूसरी तरुणी कहने लगी— मुझे तो पांच कमरे चाहिये । मैंने कहा— पाच कमरे लेकर तो उनको साफ सुथरा रखने म ही तुम मर जाओगी । उसने कहा— इसकी परवाह नहीं, मैं साफ कर लूगी ।

रूस साम्यवादी देश है । साम्यवादी अर्थनीति पर वहा चलना पड़ता है, और बरताव म भी समानता दिखलाना शिष्टाचार माना जाता है । जाड़ों म युनिवर्सिटी के कमरा को गरम करने क लिये आग जलाना पड़ता था । युनिवर्सिटी क हमारे विभाग की इमारत आजसे सौ-डेढ़-सौ वर्ष पहले बनी थी । उस वक्त केन्द्रीय तापन का आविष्कार नहीं हुआ था, और लकड़ी जलाकर मकान गरम किया जाता था । हमारे कमरे की लकड़ी डालकर गरम करनेवाला स्त्री, हमारे देश की मजूरिन जैसा थी । किन्तु उसके साथ भी प्रोफेसर हो चाहे अकदमिक बरनिकोफ, बराबर का बर्ताव करते हुए उससे हाथ मिलाना, उसके सामने टोप हटाकर शिष्टाचार प्रदर्शित करना कर्त्तव्य मानते थे । यहा नहीं मत्री के बराबर वेतन पानेवाले प्रोफेसर के लिये भी घरमे ईंधन के लिय लकड़ी फाड़ना, बर्तन मलना, झाड़ बुहार कर घरको साफ करना, तथा कितने ही कपड़ों को भी धोना करणीय था । लकड़ी चीरने का काम तो मुझे नहा करना पड़ा, उसम लाला निष्णात था, मुझे डर लगता था, कि कहीं कुल्हाड़ा पैर पर न चल जाय । लेकिन बर्तन मलना तो मेरी ड्यूटी थी । जाड़ों म इसमे बहुत तकलीफ होती थी, जबकि चालीस पचास डिगरी (फार्न०) के ताप मान के हाथ ठिठुरा देनेवाले पानी म बर्तनों को धोना पड़ता । लोला गरम पानी करके रख देती थी, लेकिन मुझे नलके के बहुत पानी म बर्तन धोने म

समय की बचत मालूम होती थी, इसलिये मुझे भी तरह घुमने वाला न बर्तन धोना चाहता था। घरके लिये नौकर रख सकते थे, और नौकर मिल भी जाते, लेकिन जिनको दूसरी जगह तीन सौ रूबल मिलता, वह छ सौ मांगता। यद्यपि हमने एक साल नौकर रक्खा भी, लेकिन राशन का चार्ज पर्याप्त नहीं थीं, कि नौकर का भी गुजारा हो, और मेहमानों का भी, इसलिये उसे हटा देना पड़ा। यह कहने की आवश्यकता नहीं, कि वहां के नौकर और किसी भी पूंजीवादी देश के नौकर में बहुत अन्तर है। वैसे इंगलैंड में भी घर के नौकर समय के अनुसार आते और काम करते हैं। हमारा नौकरानी माया समय के अनुसार आती थी। बड़ी भलीमानुस थी, आवश्यकता पड़नेपर और समय भी दे देती थी। इतवार को नौकर की छुट्टी रहती और मालिक-मालकिन को घरका सारा काम अपने ही हाथों करना पड़ता। जहांतक खान-पीने उठने बैठने का सवाल था, प्रोफेसर और उसके नौकर में कोई अन्तर नहीं था।

बर्तन, झाडू ही क्यों, राशन की दूकान से बाम पच्चास सेर सामान पीठपर ढो कर लाना भी प्रोफेसर के लिये कोई हतक-इज्जत नहीं थी। असल में वहां बहुत कम ही घरों में नौकर थे। किसी आदमी से अगर अस्थायी तौरसे काम लें, तो मजूरी बहुत देनी पड़ती। डेढ दो मन लकड़ी चीर देने के लिये जब पच्चास तीस रुपया देना हो, तो आप अपने हाथ लकड़ी चीरना पसंद करेंगे। इसीतरह बोझा ढोनेवाले को अगर दो घंटे के लिये पच्चीस-तीस रुपया देना पड़े, तो आप शारीरिक मेहनत का मूल्य समझने लगेंगे और खुद काम करना पसंद करेंगे।

इस यात्रा में रूस के अपने देखे हुए जानों के बारे में और भी बातें आगे आयेंगी। यहां यह कहकर समाप्त करना चाहता हूं, कि रूसी विश्वविद्यालयों का वातावरण हमारे यहां के वातावरण से बिल्कुल दूसरा ही होता है। वहां प्रथम श्रेणी के दिमागों को अधिक वेतन के लालच से दूसरी सरकारी नौकरियों की ओर दौड़ना नहीं पड़ता। जहां प्रोफेसर और मिनिस्टर की तनख्वाह एक हो, प्रोफेसर मिनिस्टर के बड़ेबड़े अफसरों से भी ज्यादा वेतन और सम्मान के साथ रहे

लेनिनग्राद युनिवर्सिटी के भारत-तत्व विभाग के अध्यापक और अध्यापिकाएं

बैठे—बाईं ओर से दूसरे और तीसरे राहुल और वरान्निकोफ।

अकदमिक आचार्य अलेक्सी पेत्रोविच् बरान्निकोफ़,
लेनिनग्राद

सकता हो, तो प्रतिभाशाली विद्वान् क्यों इधर उधर भटकता ?

मेरे निवास स्थान से विश्वविद्यालय जाने आने में ट्रामपर तीन घंटे लगते थे। युनिवर्सिटीवाले मोटर देना चाहते थे, किन्तु लड़ाई के प्रभाव के कारण जीप ही मिल सकती थी। एक दो दिन जीप लेने आयी भी, किन्तु मैं समय पर क्लास में पहुंचना चाहता था और ड्राइवर को उसकी परवाह नहीं थी, इसलिये ट्राम द्वारा जाना ही मैंने पसंद किया। कभी कभी मैं किताबों की खोजमें कबाड़ी दुकानों की धूल फांकता सारी यात्रा पैदल भी करता था। सोवियत में पुस्तकों का अकाल, तो जान पड़ता है, अभी सालों दूर नहीं होगा। सभी लोगों के शिक्षित तथा हाथ खाली न होने के कारण पुस्तकों के खरीददार वहां बहुत हैं। ५० हजार और १ लाख का संस्करण भी हाथोंहाथ बिक जाता है। महत्वपूर्ण नयी पुस्तकों की सूचना पहिले ही निकल जाती है। लेनिनग्राद जैसे बड़े बड़े शहरों में नाम रजिस्टर्ड कराने के आफिस हैं। यदि आपने नाम दर्ज करा लिया—जिसमें बहुत जल्दी करनी पड़ती है नहीं तो सूची बन्द हो जाती है—तो पुस्तक मिल जायेगी, लेकिन बरस छ महीने बाद और उसमें मध्य एसिया के इतिहास से संबंध रखनेवाली पुस्तकों के मिलने की संभावना नहीं। लेनिनग्राद की सबसे बड़ी सड़क नेव्स्की के पथ पर आधी दर्जन ऐसी दूकानें थीं, जिनमें पुरानी पुस्तकें बिका करती थीं। यह दूकानें किसी कबाड़ी की नहीं, बल्कि सरकारी या अर्ध-सरकारी संस्थाओं की थीं। दो चार बार जानेपर जब काम की कुछ पुस्तकें मिल गयीं, तो उनके देखने का मुझे चस्का लग गया। "मध्य एसिया का इतिहास" के लिये मैं अधिकांश पुस्तकें इन्हीं दूकानों से जमा कर मैं भारत लाया।

२८ सितम्बर को मैं पढ़ाने के लिये युनिवर्सिटी गया। एक बजे से पांच बजे तक दो कक्षाओं को हिंदी और उर्दू पढ़ाना पड़ा। पहले दो घंटे द्वितीय वर्ष के एक छात्र और पांच छात्राओं के लिये देने पड़े। फिर दो घंटे चतुर्थ वर्ष की दो छात्राओं बेर्था और तान्या के लिये। कायदा था— पचास मिनट पढ़ाइए फिर दस मिनट विश्राम, फिर (समय से) दस मिनट पहिले ही छुट्टी।

स्कूल की पढाई दस साल में खतम होती है, तब तक उम्र १७ साल या ऊपर हो जाती है। फिर पांच साल युनिवर्सिटी को ग्रेज्युयेट होने के लिये देने पड़ते हैं। फिर तीन साल एस्पेरान्त (के लिये)। इन दोनों परीक्षाओं में प्रमाण-पत्र मिलता है, डिग्री नहीं। एस्पेरान्त के बाद तीन या अधिक वर्षों में डाक्टर होने के लिए निबन्ध लिखना पड़ता है, तब डाक्टर की उपाधि (मिलती है)। २८ साल से पहले (कोई) डाक्टर नहीं हो सकता। स्कूल की पढाई में एक विदेशी भाषा जर्मन, फ्रेंच या अंग्रेजी लेनी पड़ती है, जिसे बहुतेरे लड़के आगे भूल जाते हैं। युनिवर्सिटी में प्राच्य विभाग की पढाई के विषय हैं— पहिले साल संस्कृत, हिन्दी उर्दू, फिर आगे के बरसों में उनके साथ ही बंगला मराठी, फारसी आदि भी लेनी पड़ती है। मुझे भाषाओं की इतनी अधिक भरमार पसन्द नहीं आती थी। लेकिन युनिवर्सिटी का पाठ्यक्रम बहुत वर्षों से ऐसा ही चला आया है। द्वितीय वर्ष के छात्रों को देखने से मुझे मालूम हुआ, कि सालभर में उन्होंने हिन्दी उर्दू का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया है।

२० सितम्बर (१९४५ ई०) को मैंने अपनी डायरी में लिखा— "आज ग्यारह से तीन बजे तक पढाई प्रथम और चतुर्थ वर्ष की रही। प्रथम वर्ष में (१९ लड़कियां ३ लड़के कुल २२) छात्र हैं, जिनमें सिर्फ ३ लड़के हैं। अधिकतर छात्र लेनिनग्राद के हैं, किन्तु एक छात्र बाकू से और तीन छात्रायें अल्माअता, बोरोनेज और रस्तोफ की हैं। सभी रूसी हैं। आज कक्षा पढाया। सब रूसी भाषा में बोलना पड़ता। एक बजे से तीन बजे तक चतुर्थ वर्ष को "अभिज्ञानशाकुन्तल" पढ़ाना पड़ा।"

उस दिन ६ से ८ बजे रात तक अध्यापकों की बैठक हुई, जिसमें विश्वविद्यालय के रेक्टर ने भाषण दिया। उस समय विश्वविद्यालय में ८ हजार छात्र थे। साढे तीन हजार अध्यापकों में चालीस से ऊपर अकदमिक या उप अकदमिक थे। पांच हजार छात्रों के लिये साढ़े तीन हजार अध्यापक अधिक हैं, इसमें शक नहीं, किन्तु छात्रों की संख्या लड़ाई के कारण घटी था और अब वह संख्या साल बढ़ रही था। तो भी इसमें शक नहीं कि सात आठ हजार छात्रों पर

६—मध्यमवर्ग की मनोवृत्ति

पूंजीवादी पत्रों और लेखकों ने इतना जोरका प्रचार कर रखा है, कि कितने ही इमानदार लोग भी बाज वक्त इस भ्रम में पड जाते हैं, कि सोवियत रूस में सचमुच ही विचार स्वातन्त्र्य नहीं है। वह समझते हैं कि वहां के लोगों का गला घोट दिया गया है। विचार स्वातन्त्र्य का मतलब बोलने, लिखने की स्वतन्त्रता माना जाता है। इसमें सदेह नहीं कि पुराने स्वार्थों के प्रतिनिधियों के लिये समाचारपत्रों का दरवाजा वैसे ही खुला नहीं है, जैसे कि बिड़ला आदि के पत्रों में हमारे जैसे स्वतन्त्र चेता लेखकों के लिये। इतना अन्तर जरूर है, कि जहां यहां के पत्रों को दस पांच करोड़पति अरबपति अपने हाथ में करके स्वतन्त्र विचारों का गला घोटे हुए हैं, वहां रूस में विरोधी प्रोपेगंडा के लिये यदि स्थान नहीं दिया जाता, तो किसी करोड़पति मालिक के कारण नहीं। वहां के दैनिक, मासिक या साप्ताहिक पत्र, या तो "इज्वेस्तिया" की तरह सरकार के मुखपत्र हैं, या "प्राव्दा" की तरह कम्युनिस्त पार्टी के, अथवा वह किसी नगरपालिका, युनिवर्सिटी, मजदूर संगठन, सैनिक-संगठन, छात्र संगठन की ओर से निकलते हैं। पत्रों की तो इतनी भरमार है, कि जितने ही स्कूल-खाने

(पचायती खेती वाले गांव) भी चार पन्ने की शीट निकालते हैं। यह निश्चय ही है, कि जिन सगठनों ने यह पत्र निकाले हैं, वह अपने विरुद्ध प्रचार करने म सहायता नहीं दे सकते। यही बात भाषण मचों की भी है। सभी भाषण मच किसी न किसी, ऐसी सस्था मे सबधित हैं जो कि पूजीवाद के विरोधी हैं। लेकिन इसका यह मतलब नहीं, कि लोग अपने विचारों को यदि सैकडों और हजारों के बीच प्रकट नहीं कर सकते, तो दस-बीस तक भी उन्हें नहीं पहुँचा सकते। यह समझ लेना चाहिये, कि सोवियत-शासन को आर्थिक, और शिक्षा-सबधी क्षेत्रों म जो सफलताएँ मिली हैं, वह केवल अभूतपूर्व ही नहीं है, बल्कि मात्रा म इतनी अधिक हैं, कि उनसे जनता के निन्यानबे फीसदी लोगों ने लाभ उठाया है। उन्होंने अपनी आँखों के सामने उन लाभों को दिन पर दिन बढते देखा है। द्वितीय विश्व युद्ध में विजय प्राप्त करके सोवियत शासन ने लोगों के हृदयों म अपने गौरव को और भी अधिक बढा दिया है। इसलिये सोवियत जनता म ६६ फी सदी लोग सोवियत शासन के अधमक्त हैं। स्तालिन तो उनके लिये सजीव भगवान है, जिसके विरुद्ध वह एक शब्द भी सुनने के लिये तैयार नहीं हैं। ऐसी अवस्था म भाषण-मच पर खडे होकर सोवियत-शासन या स्तालिन को गाली देने की हिम्मत ही किसकी हो सकती है? लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि विरोधी भाव रखनेवाले लोग वहाँ नहीं हैं, और वह अपने मतभेदों को प्रकट नहीं करते। अपनी मित्र-मंडली में सभी अपने विचारों को खुलकर प्रकट करते हैं। मतभेद रखनेवाले भी सोवियत विरोधी होने तक बहुत कम जाते हैं। बहुतेरे तो केवल असंतोष तक प्रकट कर देना चाहते हैं। इस तरह के असतोष रखनेवाले नर नारी पुराने उच्च या मध्यम वर्ग म मिलते हैं, जिनको स्वय नहीं तो अपने माता पिता के मुह से मनकर बराबर याद आता रहता है—"ते हि नो दिवसा गता"। ऐसा उदाहरण मैं अपने अनुभव म देता हूँ। एक पुराने म यमवर्गीय शिक्षिता महिला अपने लडके को इसलिये बाहर किसी स्कूल म भेजने का विरोध करती थी, कि उनके ख्याल म वहाँ सब गुण्डे लडके भरे हुए हैं। मैंने कहा—तब तो घर म ही रख

करके शिक्षा देनी चाहिये। दबी जबान में उत्तर मिला "हाँ।" एक और महिला कह रही थीं— "कम्युनिस्ट झूठे और निम्न श्रेणी के मनुष्य होते हैं। सोवियत ने लोगों को भिखारी बना दिया। पहिले सभी मौज में रहते थे।" इसमें शक नहीं कि उक्त महिला का "सभी" शब्द का अर्थ था— अमीर और उच्च वर्ग, नहीं तो सोवियत शासन में अब कहीं गरीब भिखारी देखने में नहीं आता। उच्च और मध्यमवर्ग की महिलायें पहिले कोई भी काम करना पाप समझती थीं। अब उन्हें मशक्कत करके रोटी कमानी पड़ती है, फिर वह इस जीवन को कैसे पसन्द करेंगी।

शिक्षा के नये ढंग को वहाँ बड़े व्यापकरूप में अपनाया गया है। स्कूल भेजने से पहिले के सात वर्षों के लिये शिशुशाला और बालोद्यान इतने अधिक स्थापित हैं, कि उनमें राष्ट्र के सभी लड़के-लड़कियों को रक्खा जा सकता है। यह भी माना जाता है, कि बच्चों को शारीरिक दंड देना अच्छा नहीं है। २४ जून को मैं बाबुश्किन नामक विशाल उद्यान में गया था। लड़ाई के चार सालों में उपेक्षित रहने के कारण वहाँ कुछ उदासी जरूर थी, फिर भी बाग बहुत सुंदर था और पूर्व अवस्था में लाने के लिये उसमें मरम्मत का काम भी लगा हुआ था। हमारे मुहल्ले से यह उद्यान बहुत दूर नहीं था, इसलिये हम अक्सर चले जाया करते थे। हम लौट रहे थे। रास्ते में देखा कि एक माँ अपने पाँच वर्ष के लड़के को ज़ोर ज़ोर से पीट रही है। आवाज़ ज़ोर की आ रही थी और लड़का भी चिल्ला रहा था, किन्तु चोट लगने का वहाँ कोई सवाल नहीं था, क्योंकि लड़के ने रूईदार कोट पहन रक्खा था और माँ के हाथ में एक रास्ते से उखाड़ी नरम सी हरी टहनी थी। कसूर यह था कि लड़का अपना तीन बरस की बहन को भी लेकर सैर सपाटे पर चल पड़ा था और माँ खोजते-खोजते हैरान हो गई थी। वह जानती थी, कि यह जोड़ी बाद-बाबुश्किन की ओर ही गयी होगी, तो भी ढूँढने में उसे काफी तकलीफ उठानी पड़ी। माँ का चेहरा बड़ा दयनीय मालूम होता था, किन्तु वह रोने को हो रहा था। दोनों के गुलाबी गाल स्वास्थ्य के परिचायक थे, हाँ वह कुछ मैले

जरूर थे। एक मध्यवर्गीय महिला ने झट टिप्पणी जड़ दी— बोल्शेविक ठोक पीटकर गधे को घोड़ा थोड़े ही बना सकते हैं। दोनों बच्चे और उनकी माँ मजदूर वर्ग की थीं। उनकी पोशाक में या मध्यवर्ग की सुरुचिका पता नहीं था, इसीलिये यह टिप्पणी जड़ी गयी।

घर में पाखाने का फ्लश बिगड़ गया था। बहुत कहने पर पाखानों की देख भाल करने वाली महिला अपनी सखी के साथ आयी। उसने गृहिणी से जवाब तलब किया— पाखाना खराब हो गया, तो उसे क्यों इस्तेमाल किया?

—इस्तेमाल नहीं करते, तो क्या सड़क पर जाते।

—खुद क्या नहीं सुधार लिया?

—औजार कहाँ था, और फिर क्या तुम बारिन (महाजन) होकर बैठने के लिये हो, काम हो करना चाहती हो?

सुधारवाली ने बड़े अभिमान के साथ ज़ोर से कहा— मैं बारिन नहीं हूँ, मैं मजूर वर्गीय हूँ।

दोनों वर्गों की महिलाओं के मनोभाव को यह वार्तालाप अच्छी तरह प्रकट करता है। पुराना मध्यवर्ग या उच्चवर्ग यद्यपि अब उत्पीड़ित अपमानित नहीं है, किन्तु वह जानता है, कि रूस में अब सारी शक्ति मजदूरवर्ग के हाथ में केन्द्रित है, तब भी कभी कभी उसके भीतरी भाव प्रकट हो उठते हैं।

यह मनोभाव यद्यपि अब भी पाया जाता है, लेकिन वह मूर्खतापूर्ण पुराना आदत के सिवा और कोई महत्व नहीं रखता। इस मनोभाव का दिग्दर्शन एक सोवियत नाटक "क्रेमलिन की घड़ी" में अच्छी तरह किया गया था, जिसे मैंने १८ जुलाई १९४५ मास्को के गोर्की कला थियेटर में देखा था। नाटक १९४२ में लिखा गया था, किन्तु उसमें १९२० के वर्गभेद का चित्र था। सारे दृश्य अत्यंत स्वाभाविक थे। पर्दों का खुलकर इस्तेमाल किया गया था, लेकिन उनसे भी अधिक पहियों के ऊपर रखे बड़े बड़े प्राकृतिक तथा दूसरे दृश्योंवाले फलकों का उपयोग किया गया था, जिन्हें आसानी से हटाकर दृश्य-परिवर्तन किया जा सकता था। पहिले दृश्य में नागरिक स्त्री पुरुष अपनी

अपनी चीजें बेच रहे थे, मिखमंगे भीख माँग रहे थे। इसी समय एक बेकार इंजिनियर किसी से कह रहा था— "क्रेमल की घड़ी बंद होगई।" जिसका अर्थ था— सोवियत शासन की गाड़ी रुक गई, या सोवियत शासन समाप्त होना ही चाहता है। उस समय के धनिक और शिक्षित वर्ग का नये शासन के प्रति यही भाव था। दूसरे सीन में एक नो सैनिक रिवाकोफ और उसकी प्रमिका मशिनका का प्रेमाभिनय था। मशिनका इंजिनियर की पुत्री थी। ना-सैनिक रिवाकोफ नये शासन का पक्षपाती था। मशिनका मध्यवर्गीय इंजिनियर की पुत्री दो नावों पर थी। अगले दृश्य में लेनिन को दिखलाया गया था, जिसके लिए बड़ी श्रद्धा से सिपाही पहरा दे रहे थे। लेनिन और उन सिपाहियों की वेश भूषा या मेल जोल से उनमें कोई भेद नहीं मालूम होता था। लेनिन एक सिपाही के घरमें जाता है और लड़कों से छेड़खानी करके उनमें बिल्कुल हिलमिल जाता है। लड़की गौर से लेनिन की ओर देखती है। लड़का कुछ सयाना है। वह आगन्तुक सिपाही को एक फोटो से मिलाता है। तो भी संदेह में पड़ा रहता है। इस पर लेनिन अपने चंदुले सिरको नंगा कर देता है। लड़के को विश्वास हो जाता है, कि उनके साथ खेलनेवाला सिपाही महान् लेनिन है।

एक दृश्य में दिखलाया गया था— इंजिनियर के घरमें माँ (काउंट) अफीना और दूसरे उच्चवर्गीय भद्र पुरुष और महिलायें सोवियत शासन पर कड़ी टिप्पणियाँ करते जा रहे हैं और साथ ही भयभीत भी हैं। इसी समय भतरोन (दामाद) रिवाकोफ ना-सैनिक भेस में भीतर आता है। सभी भद्र पुरुष और भद्र महिलायें भागनेमें होड़ करने लगती हैं। उनको डर होता है— यह सोवियत सरकार का सैनिक है, यदि नाराज हो गया तो हमारा सर्वनाश हो जायगा। यहाँ यह भी बतला दूँ, कि इस नाटक में मशिनका का पार्ट जिस स्त्री ने लिया था, वह उसी होटल की परिचारिका थी, जिसमें मैं ठहरा हुआ था। इसी समय सरकार की ओर से इंजिनियर की बुलाहट आती है। इंजिनियर एक छोटी सी पोटली बाँध कर जीवन से निराश हो घर से निकलता है। उसकी बीवी रोती है, समझती है—बोल्शेविक उसे जेल भेज रहे हैं, अब वह लौटना नहीं

सीखने का।

इंजीनियर क्रेमलिन के भीतर पहुँचाया जाता है। लेनिन, स्तालिन और जेरजिन्स्की उससे बात करते हैं। इंजीनियर बोलशेविकों के सोशलिज्म से घृणा प्रकट करता है। लेनिन उसे अनसुनी करके देश के विद्युतीकरण की बात आरम्भ करता है और उसके सामने योजना का एक नक्शा रखता है। इंजिनियर अपनी सारी घृणा को भूल जाता है। एक बार स्वतः उसकी अंगुलियां नक्शे पर चली जाती हैं, लेकिन वह फिर उन्हें समेट लेता है। स्तालिन पूछता है— तुम्हें राजनीति से क्या मतलब? तुम तो इंजिनियर हो, अपनी करामात दिखलाओ।

वृद्ध इंजिनियर की तरुणाई की उमंगें उमड़ आती हैं। वह भी बिजली का बड़ा इंजिनियर है। एकबार उसने बड़े बड़े पन बिजली कारखानों को बनाने का स्वप्न देखा था, लेकिन जार की सरकार में उसकी बात को सुननेवाला कौन था? उसकी सारी उच्चाकांक्षाएं मनमें ही दबी रह गयीं और अब बुढ़ापे में राज्य का हत्याकर्त्ता खुद उसे बुलाकर उस स्वप्न को जाग्रत कर रहा है। इंजीनियर को विचार करके जवाब देने के लिये छुट्टी मिलती है और उस कार पर उसके घर पहुँचा दिया जाता है। परिवार इस तरह इंजीनियर को देखकर हर्षाश्रु बहाता है। इंजीनियर की आखें खुल जाती हैं। वह लेनिन का तारीफ करता है। फिर निकाल कर तरुणाई में लिखी अपनी पुस्तक को दिखलाता है। वह भगिनिका को ऊपरी मन से रोब दिखलाते हुए प्यार के शब्दों में कहता है— मूर्ख लड़की, तूने किसी कप्तान से क्यों नहीं शादी की?

भगिनिका— जारशाही कप्तान से, तब तो तुम इसवक्त पेरिस में होते!

इसी तरह एक मशहूर घड़ीसाज भी क्रेमलिन पहुँचाया जाता है। जेरजिन्स्की का नाम सुनते ही वह डर के मारे कांपने लगता है। जेरजिन्स्की क्रान्ति के दिनों में सोवियत के रहस्य विभाग का मंत्री था। कोई भी सोवियत के विरुद्ध षड्यंत्र करनेवाला उसकी पकड़ से बच नहीं पाता था। लेनिन ने बात करके घड़ीसाज का भी दिल खोल लिया, और उसके हुनर की प्रशंसा करने

पर घड़ीसाज ने कहा— मैं इस घड़ी की मरम्मत कर सकता हूँ। लेनिन ने कहा— केवल मरम्मत काफी नहीं है। क्रेमलिन की घड़ी को इस तरह बनाओ कि वह घंटा बजाते वक्त अन्तर्राष्ट्रीय गान गाये। इसी बीच में चाय आती है। लेनिन के साथ चाय पीते घड़ीसाज खुल पड़ता है, और तुरत घड़ी देखने के लिये उतावला हो जाता है।

एक और दृश्य में रिवाकोफ के युद्धक्षेत्र में जाने को दिखलाया गया था। रिवाकोफ कमीसर (राजनीति परामर्शदाता) के रूप में कोल्चक के विरुद्ध लड़ने वाली सेना के साथ जा रहा है। युद्ध पर जाते पति की पत्नी से विदाई का बहुत करुण दृश्य उपस्थित किया गया था। मशिनका पहिले रोकना चाहती है, फिर चूमकर उसे विदा करती है। पति बाहर जाता है। मशिनका की आँखों से आँसू गिरने लगते हैं। इसी समय सेनिक विभाग से टेलीफोन आता है। मशिनका आँखों में आँसू लिये स्वर गंभीर करके कहती है— कमीसर उयेखाल (कमीसर चला गया)। इञ्जीनियर अपनी योजना लिखकर लेनिन के सामने पेश करता है। लेनिन उसे स्वीकार करके कहता है— पैसे और सामान की परवाह मत करो, तुम अपने काम में लग जाओ। इञ्जीनियर फूला नहीं समाता। घड़ीसाज क्रेमलिन की घड़ी को चालू कर देता है और उसमें इंटरनेशनल सुनाई देता है। इस नाटक में मध्यवर्ग के पुराने मनोभावको बदलने का प्रयत्न किया गया है। सोवियत के नेता नाटक और सिनेमा के महत्व को अच्छी तरह जानते हैं, वह समझते हैं, कि यह बड़ी शक्ति है, जिसके द्वारा करोड़ों आदमियों के मनोभाव थोड़े समय में बदले जा सकते हैं।

मनोभाव बदले अवश्य हैं, लेकिन आनुवंशिक मनोभावों के बदलने में भी काफी देर होती है। मेरे परिचितों में जारशाही जनरल की लड़की एक प्रौढ़ा महिला थी। उच्चवर्ग की सभ्यता और संस्कृति में पूर्णतया दीक्षित थी। बाप जनरल के जमाने में नोकरानियों के हाथों में खेला करती थीं, काम करने की आदत नहीं थी। रूसी के अतिरिक्त और भी यूरप की भाषायें जानती थीं। उनका काम था दिनभर सिंगार बदलते रहना, नाच थियेटर की ओर दौड़ना या

उपयास पढ़ना। पहिले चार व्याह हो चुके थे, लड़ाई के दिनों में एक मोटर मेकेनिक से व्याह किया। वर्गों और श्रेणियों का भेद आर्थिक ढांचे के बदलने से इतना जल्दी बदला है, कि भद्र महिला को मोटर ड्राइवर से व्याह करने में आनाकानी नहीं हुई। इस समय वह पति का नहीं अपनी कमाई खा रही थीं। किसी कारखाने में लिखने पढ़ने जैसा कोई काम करती थीं और महीने में चार सौ रूबल (२८० रुपया) पाती थीं। उन्होंने अपने तीन कमरों का कम करना नहीं पसंद किया, इसलिये सौ रूबल मासिक तो तीनों कमरों के चले जाते थे। बाकी तीन सौ में अपने और लड़के का खर्च चलाती थीं। जनरल पुत्री भला इस जीवन से कैसे सन्तुष्ट रह सकती थीं, जब कि बहुत सकोच के साथ खर्च करना पड़ता था और घर का सारा काम पहिले के मक्खन जैसे मुलायम हाथों से।

एक और भद्रमहिला चाँदी का चम्मच दिखलाकर कह रही थीं—देखिये न, इसका दाम चार सौ रूबल है, कहाँ से कोई खरीदेगा?

मैंने कहा—यदि चार रूबल कर दिया जाय, तो सोवियत के पाँच करोड़ परिवारों में से कितने हैं, जो इस चम्मच से कम खरीदना चाहेंगे? फिर इतनी चाँदी खरीदने के लिये क्या तुम पसंद करोगी, कि यहाँ का गेहूँ, मांस, पोस्तीन अमेरिका और मेक्सिको भेजा जाय।

महिला ने कहा— क्या हमारे यहाँ चाँदी नहीं होती।

मैंने कहा—नहीं, उसके लिये या सोना तुम्हारे पास है उसे भेजना पड़ेगा। जर्मनी से हरजाने में सोना मिल रहा था, किन्तु सोवियत सरकार ने उसे लेने से इन्कार कर दिया।

—लेना चाहिये था।

मैंने कहा— जर्मनी से सोना लेने की जगह सोवियत सरकार वहाँ से मशीनें और दूसरे सामान लेगी, जिनको खरीदने के लिए अमेरिका और इंगलैंड को दुगना तिगुना दाम चुकाना पड़ता। तुम्हें तो पसंद आता, यदि जर्मनी का सारा सोना चला आता और लेना की खानों का सोना भी जेवर बनकर तुम्हारे

घठ कानों में लटकना।

पुराने सामन्त और उच्च मध्यवर्ग की मनोवृत्ति में पहिले का असर अब भी देखने में आता है। जो १९१७ की क्रान्ति के समय होश सम्भाल चुके थे, उनकी तो बात ही क्या, जो क्रांति के बाद उस वर्ग में पैदा हुए, उनमें से भी कितने ही "ते हि नो दिवसा गता" कहते अफसोस करते हैं। एक जारशाही जनरल की लड़की ने सगियेवा (आधुनिक चेकोस्परी) सड़क पर एक तिमंजिला भव्य मकान दिखाकर कहा— हमारे पिता इसी में रहते थे, उनके लिये १२ कमरे थे। सगियेवा पहिले सामन्तों और उच्च मध्यवर्ग का मुहल्ला था। इसकी सड़क बहुत सुन्दर है, जिसके दोनों तरफ वृक्ष और हरियाली लगी हुई है। पहिले इस सारे मुहल्ले में देवताओं का वास था, और अब सब धान बाइस पसेरी। जनरलों, काउंटों तथा राजकुमारों के महलों में अब धूल धूसरित भद्दे ढंग से कपड़े पहिने कितने ही मजदूर परिवार रहते हैं।

एक दिन (९ सितम्बर १९४५) हमारी परिचिता की बुआ की बहू अपने पुत्र के साथ घूमने आयी थीं। पुत्र १८ वर्ष का था, और था शरीर तथा मस्तिष्क दोनों से दुर्बल। माँ कम सुनती थीं। पुत्रको छात्रवृत्ति मिलती है, वह फोटोग्राफी सीख रहा था। माँ को भी काम मिला था, जिससे खाने-पीने की तकलीफ नहीं थी। ऐसी सुविधाजनक स्थिति देखकर आदमी को संतोष होना चाहिये। यदि उच्च मध्यवर्ग के किसी परिवार का दिवाला निकल गया होता, फजूल खर्ची में उसका जायदाद बिक गई होती, तो उसके परिवार को यह सुविधा जारशाही युग में नहीं मिल सकती थी। लेकिन क्या उक्त महिला इसके लिये वर्तमान शासन के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिये तैयार थीं? उनको तो याद आते थे, वह दिन जबकि उनके पिता के परिवार में आध दर्जन नौकर हरेक काम को इशारा पाने ही करने के लिये तैयार थे और अब बेचारी को अपने आप सब काम करना पड़ता है, खाना बनाना पड़ता है, घर का बर्तन और झाड़ू अपने हाथ से करना होता है, पैसा बचाने के लिये कपड़ा धोना और राशन की दुकान से सामान भी उठा के लाना पड़ता है। उक्त महिला क्रान्ति के

समय सयानी थी, इसलिये अपने उन दिनोंको भूल नहीं सकती था।

इस पुरानी मनोवृत्ति का एक और उदाहरण दूँ। हमारे विद्यार्थियों म यद्यपि अधिकांश मजदूर और किसान वग के थे, क्योंकि देश म उनकी सख्या अधिक हे, लेकिन पहिले के उच्चवर्ग की सताने शिक्षण-सस्थाओं से कम लाभ नहीं उठातीं। किसी समय उनके प्रति भेद भाव भले ही रखा जाता हो, लेकिन अब वह वर्षों की पुरानी बात हो गयी। पढने की इच्छा होनी चाहिये, सभी के लड़के उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। हमारे द्वितीय वर्ष की कक्षा म ३ छात्र थ, जिनम से एक मजदूर का पुत्र था। सोवियत क युद्धोपरान्त काल म जो चीजों का अभाव था, उसके लिये कभी कभी लोग कुछ टिप्पणी कर बैठते, इस पर वह हरेक अभाव की व्याख्या करना चाहता था। वह कहता था— सोवियत सरकार बहुत कर रही है। लड़ाई से अभी अभी देश बाहर निकला है। इसलिये सब चीजें एक ही दिन नहीं तैयार हो सकतीं। वह समझदार लड़का भली प्रकार जानता था, कि अगर सोवियत शासन न होता, तो आज वह युनिवर्सिटी म पढने का अवसर न पाता। इसलिये कुछ कमियों को देखकर वह दूसरे गुणों को भूलने के लिये तैयार नहीं था। हमारी एक क्लास म २ छात्रायें थीं जो कि मजदूर या किसान वर्ग की नहीं थीं। उनम से एक मध्यवर्ग की लड़की थी और दूसरी किसी सामन्त की। पहिली लड़की— जिसका पति भी विश्वविद्यालय का छात्र था— इस बात की शिकायत करती थी, कि उसके रहने के लिये सिर्फ एक कमरा मिला है, वह पर्याप्त नहीं है। वह कह रही थी— मुझे दो कमरे चाहिये। उसकी मांग अनुचित नहीं थी, लेकिन लेनिनग्राद नगर के मकान बहुत भारी संख्या में ध्वस्त हो गये थे, उन्हे फिर से बनाया या मरम्मत किया जा रहा था। लोग दूसरी जगहों से अपने परिवारों को जल्दी जल्दी बुला रहे थे। ऐसी स्थिति में दो कमरे देना कहा सभव था? दूसरी लड़की को दो कमरे मिले थे। उसका पति एक सैनिक अफसर था। वह कह रही थी— मुझे तो पाच कमरे चाहिये। मैंने कहा— तब तो पांचों कमरों को साफ सुथरा रखने म तुम मर जाओगी।

—नौकर भी चाहिये।

लड़ाई के पहिले उनके घरम नोकर थे। सोवियत के विरुद्ध दुनिया में जो प्रचार हुआ है, उसमें कुछ लोग समझते हैं, कि क्रांति के दूसरे ही दिन पहिले के उच्च वर्ग के सभी परिवारों के हाथ में झाड़ू, टोकरी या फावड़ा दे दिया गया। वस्तुतः यह बात मूर्ख ही कर सकता था। क्योंकि सोवियत भूमि का नवनिर्माण इजीनियरों, शिक्षा शास्त्रियों, वैज्ञानिकों, डाक्टरों आदि की सहायता के बिना नहीं हो सकता था। उन्हें यदि झाड़ू और फावड़ा दे दिया जाता, तो देश के नवनिर्माण के लिये विशेषज्ञ कहां से मिलते? इसीलिये किसानों और मजदूरों को अधिक अवसर देने का यह मतलब नहीं था, कि पहिले के शिक्षित और उनकी संतानों को पीस डाला दिया जाय। एक भद्र महिला का कहना था— कुछ आदमी झाड़ू बुहारू छोड़ और कामों के अयोग्य हैं, उन्हें परिवारों में नोकरी करने देना चाहिये। मुझे यह बात सुनने वक्त उस बहरी भद्र महिला की याद आ रही थी, जिसका पुत्र वस्तुतः शरीर और मनसे इतना अयोग्य था, कि वह फोटोग्राफी नहीं झाड़ू बुहारू का काम ही अच्छी तरह से कर सकता था, लेकिन क्या यह कुल पुत्र यह सुनकर उसे झाड़ू बुहारू करने देना चाहती?

मध्य वर्ग में अभी भी पुरानी मनोवृत्ति के लोगों का अभाव नहीं हुआ है और शायद उसमें और भी समय लगेगा। लोग अपने भावों को प्रकट नहीं करते, यह बात नहीं है। यह सच है कि पत्र पत्रिकायें व्यक्तियों की नहीं सम्थाओं की हैं, जिनकी नीति के विरुद्ध लेख उनमें छप नहीं सकते। लेकिन अपनी निजी गोष्ठियों (मित्र-मण्डली) में अपने विचारों को प्रकट करने में कोई मनाही नहीं दिखता। अपरिचित आदमी के सामने भी भावों को खोलने में कितनी ही बार अवसर मिल जाता है। सोवियत का रंगमंच (थियाटर) जारशाही समय में भी बहुत उन्नत था, उसके बले (मूक) नाट्य पहिले भी दुनिया में अद्वितीय माने जाते थे। जारकी सरकार और उस समय का सामन्तवर्ग जितना पैसा अपनी नाट्यशालाओं पर खर्च कर सकता था, उतना दुनिया का कोई देश खर्च नहीं कर सकता था, इसलिये आज से सा सवा सौ वर्ष पहिले ही से रूस का रंगमंच बहुत उन्नत हो

चुका था। सोवियत काल में वह उन्नति की चरम सीमा पर पहुँचा। पिछली डेढ़ शताब्दियों से प्रतिभाशाली नटों और नाट्यकारों ने जो जो नाटक मास्को और पितरबुर्ग के रंगमंचों पर खेले, उन्हें आज भी बड़े सुन्दर रूप में खेला जाता है। पहिले की कमियों को दूर कर दिया गया है। यथार्थवाद हरेक क्षेत्र में यहां का मूल मंत्र है, इसलिये किसी नाटक को रंगमंच पर लाने के समय उसके देश, काल और पात्र का पूरा ध्यान रक्खा जाता है। जब किसी राजा या सम्राट् के दरबार, उसके विलासिता पूर्ण जीवन का चित्र खींचना होता है, तो उसमें महार्घ वस्त्र, हीरा-मोती और सोने चाँदी की चीजों को बड़ी उदारता से काम में लाया जाता है। एक दिन मैं नाटक देख रहा था। पुराने राजशाही दृश्य के सामने आते ही अपरिचिता भद्र महिला बोल उठी—सौंदर्य इसे कहते हैं। उनका अभिप्राय यह था, कि बोल्शेविकों ने जीवन से सौंदर्य को निकाल फेंका है, क्योंकि अब सौंदर्य के सर्वोच्च प्रतीक ज़ार, ज़ारीना, और उनके दरबारी सदा के लिये लुप्त कर दिये गये हैं।

●   ●   ●

७—मास्को में एक पखवारा

मुझे लेनिनग्राद आये अभी एक ही महीना हुआ था। इसी समय मास्को जाने का अवसर मिला। मैं आते वक्त जल्दी जल्दी में था, इसलिये मास्को को ठीक से देख नहीं सका था, इसलिये इस अवसर से फायदा उठाना चाहता था, और ४ जुलाई (१९४८) को पाँच बजे शाम की स्पेशल ट्रेन द्वारा रवाना हुआ। जुलाई का आरम्भ था। अभी पढ़ाने का काम दो महीने बाद शुरू होनेवाला था, और इस बीच में मुझे भाषा में कुछ और प्रगति करने की अवश्यकता थी। उसमें कोई बाधा नहीं हो सकती थी। भाषा सीखने का सबसे अच्छा अवसर तभी मिलता है, जब कि आदमी अपनी पूर्व परिचित भाषाओं में किसी का उपयोग न कर सके। यहाँ रूसी छोड़ दूसरी भाषा का प्रयोग नहीं होता था। होटलों में भी यदि इन्तूरिस्तका न हो, तो यह जरूरी नहीं है कि कोई अंग्रेजी या दूसरी यूरपीय भाषा जाननेवाला मिल जाये।

लेनिनग्राद से रवाना होते समय बूँदाबाँदी थी, लेकिन नगर से आगे बढ़ने पर मौसिम अच्छा हो गया। चारों ओर हरियाली थी। युद्ध की ध्वंसलीला के अवशेषों पर भी हरियाली छाई हुई थी। रात का अँधेरा रहा, जब कि हम

बोल्गा के सामने से गुजरे। बोल्गा का उद्गम यहीं आस पास है, इसलिये वह यहां महानद नहीं दिखलाई पड़ता।

अगले दिन १० बजे हमारी ट्रेन मास्को पहुँची। मेरे साथ एक और भद्र जन भी थे, इसलिये कैसे जाना है, कहाँ ठहरना है, इसके लिये कोई कठिनाई नहीं हुई। रेलवे स्टेशन से उतर कर पास में ही भूगर्भी (मेत्रो) रेलवे का स्टेशन था, जहाँ गाड़ी पर सवार हो चौथे स्टेशन पर उतर गये। मास्को होटल लगा हुआ था। यह होटल केवल मास्को का ही नहीं बल्कि सारे सोवियत देश का सबसे बड़ा होटल है—तेरह मंजिला है, जिनमें सात मंजिलें तो सारे होटल में हैं, और कुछ भाग में ६ मंजिलें और भी हैं। इमारत के निचले भाग में लाल संगमरमर जैसा चमकीला पत्थर लगा हुआ है। सोवियत समय की इमारत होने से और वह भी पंचवार्षिक योजनाओं की सफलता के वक्त बनने से मास्को होटल को बहुत ही सुन्दर, स्वच्छ और भव्य बनाया गया है। इसमें हमारे कमरे हैं। लेकिन कमरा पाने में हम ढाई घंटे की प्रतीक्षा करनी पड़ी। हमारे कमरे में दो मेजें, सात कुर्सियां, एक सोफा, एक टेलीफोन और एक रेडियो था। शयनकक्ष अलग था, जिसमें जोड़ी पलंग दो कुर्सियां, एक मेज और दो कपबोर्ड रक्खे हुए थे। एक शीशेवाली बड़ी अल्मारी के अतिरिक्त दीवारों में भी दो अलमारियां थीं। स्नानकोष्ठक भी साथ में लगा हुआ था। कई लम्प थे। मास्को होटल के अधिकांश कमरे इसी ढंग के थे। मेरा कमरा सातवें मंजिल पर था, जिसके पीछे खुली विशाल छत थी। यहां शाम के वक्त रेस्तोरां (भोजनशाला) लगती, जिसमें नाच भी रहता— खाते पीते हुए नर-नारी एक बजे रात तक मन बहलाव करते। उस समय होटल बहुत खर्चीला था, यदि राशनकार्ड न हो तो, एक दिनके भोजन आदि पर १८० रूबल खर्च आता, अर्थात् प्रायः ९० रुपये।

मित्रों के कहने से मालूम हुआ, कि मैं एक पखवारा यहां रह सकता हूँ और १७ जुलाई को ही शाम को मैं फिर लेनिनग्राद के लिये लौट सका। यहां रहते हुए मैंने मास्को के अधिक से अधिक दर्शनीय स्थानों, को देखना चाहा। भाषा की दिक्कत अभी दूर नहीं हुई थी, यद्यपि पिछले एक महीने में मैंने रूसी सीखने

म कम प्रगति नहीं की। दिशा म सांस्कृतिक संबंध कायम करने गानियत संस्था-वारम ने एक पद प्रदर्शिका का इतजाम कर दिया था, लेकिन कुछ समय च हा लिए साथ रहती थी, बाकी समय स्वावलम्बी होकर ही ... करना था।

६ जुलाई का मैं लेनिन-म्यूजियम देखने गया। लेनिन की जीवनी और व्यक्तित्व को समझने के लिए यहाँ सारे साधन एकत्रित किये हुए हैं। हर समय के समय समय पर खींचे हुए फोटो तथा कलाकारों द्वारा बनाये चित्रों से लेनिन के जीवन को साकार रूप दिया गया है। लेनिन की पुस्तकों और भिन्न भिन्न भाषाओं म उनके अनुवादों का भी यहां सुन्दर संग्रह है। मैं ढूँढने लगा— देखू भारतीय भाषा में लेनिन-संबंधी साहित्य की कौन कौन-सी पुस्तकें हैं। उर्दू और गुरुमुखी की कुछ छोटी छोटी किताबें रक्खी मिलीं, जो कि भारत में छपी थीं। भारत का रूस से राजनीतिक संबंध टूट जाने के कारण हमारे यहाँ की चीजों के संग्रह करने म सोवियतवालों को दिक्कत रही तो भी कुछ और पुस्तकें भारत में मिल सकती थीं। लेनिन का पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा और क्रान्तिकारी जीवन कैसे गुजरा, इसको चित्रों ही द्वारा नहीं बल्कि घरों और घरोंदों द्वारा भी अंकित किया गया था। जिस घरमें लेनिन का जन्म हुआ था, उसका नमूना, सामान के साथ यहाँ मौजूद था। कारागृह के जीवन को भी इसी तरह साकार दिखलाया गया था। फर्वरी क्रान्ति (१६१७) के बाद लेनिन पेत्रोग्राद पहुँचने म सफल हुए। बोल्शेविकों के बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर करेन्स्की की सरकार को डर लगने लगा। वह लेनिन की गुप्त हत्या कराने के लिए तुली हुई थी। उस समय लेनिन को अज्ञातवास के लिये जंगल में भेज दिया गया। जंगल म जिस कुटिया म लेनिन रहते थे, उसका भी नमूना यहाँ मौजूद था। पूँजीवादी देशों ने लेनिन को अपने रास्ते का सबसे बड़ा रोड़ा समझा था। उन्हें मालूम होने लगा, कि यदि साम्यवादी क्रांति स्थिर हो गई, तो उनके देश म भी खैरियत नहीं। उन्होंने काप्लान नामक एक स्त्री को हत्या के लिये नियुक्त किया। आज स्तालिन के बराबर पर्दे म रहने का आरोप पूँजीवादी देशों म सुना जाता है,

लेकिन क्या स्तालिन यदि इतनी सावधानी के साथ नहीं रक्खे जाते, तो उनके देशी पर विदेशी शत्रु अभी तक उन्हें जिन्दा रहने देते ? क्यूलान ने जिस पिस्तौल से लेनिन पर छाती पर गोली चलाई थी, वह पिस्तौल भी यहां म्यूजियम में रक्खा हुआ है। गोली जिस कोट को लेकर पहिने हुए थे, जो कि उनके खून में सन गया था, वह भी यहां रक्खा हुआ है। लेनिन का व्यक्तित्व सोवियत वर्ग के उत्थान और मानवता की प्रगति के लिये कितना महत्व रखता है, इसे कहने की आवश्यकता नहीं। यह म्यूजियम लेनिन को समझने में बड़ा सहायक है। हरवक्त यहाँ लोगों की भीड़ लगी रहती है। लेनिन समाधि में दर्शन के निश्चित घण्टे हैं, और काफी दिक्कत होती है, लेकिन लेनिन म्यूजियम में सब चीजें आसानी से देखी जा सकती हैं। वस्तुतः दर्शक के लिये यह अच्छा है, कि पहिले वह लेनिन म्यूजियम देखे, तब लेनिन-समाधि के भीतर जाकर उस महापुरुष के शव को देखे। लेनिन म्यूजियम के पास ही लाल मैदान है, जो आस पास की ऊंची इमारतों के कारण छोटा मालूम देता है, लेकिन महोत्सव के दिनों में उसमें लाखों आदमी खड़े हो सकते हैं। लेनिन-समाधि के पीछे क्रेमल (क्रेमलिन-दुर्ग) की दीवार है। अब वहां देवदार लगाये गये हैं, जो कुछ वर्षों बाद अपनी घनी छाया से इस मनुष्य रचित वास्तु को अपना सौंदर्य प्रदान करेंगे। क्रेमलिन की दीवार में देश के सम्माननीय पुरुषों की अस्थियां छोटे छोटे छिद्रों में रक्खी जाती हैं। यद्यपि कब्र का रवाज अभी हटा नहीं है, तो भी मुर्दों के जलाने का प्रचार काफी बढ़ चला है, इसलिये निहायत अस्थियों का कुछ भाग थोड़ी-सी जगह में रखा जा सकता है।

ताल्स्तोय की अमरकृति "अन्ना कारेनिना" को २८ वर्ष पहिले मैंने पढ़ा था। ७ जुलाई को उसे रंगमंच पर देखने का मौका मिला। नाटक साढ़े सात से ग्यारह बजे रात तक होता रहा। वार्तालाप समझने लायक शब्द शक्ति नहीं थी, किन्तु हमने उसे वैसे मान लिया। अभिनय बड़ा सुन्दर था, विशेष कर अन्ना, कारेनिन और अन्ना के प्रेमी का, पार्ट बड़े ही निर्दोष रूप में अदा किया गया था। दृश्य साधारण पर्दों द्वारा ही नहीं दिखलाये गये थे, बल्कि वहां सभी चीजें

को वास्तविक रूप में दिखाने की कोशिश की गई थी। जब अन्ना रेल के नीचे दबकर आत्महत्या करने गयी, तो उस वक्त इंजिन, लालटेन, आवाज सभी चीजों से पता लगता था, कि एक रेलवे ट्रेन आ रहा है। बैठने की कृपा से नाटक का टिकट आसानी से मिल गया था, और रंगमंच से चौथी पंक्ति में बैठा रहने के कारण मैं सभी चीजों को अच्छी तरह देख-सुन सकता था। शाला में भीड़ तो नहीं कह सकते, क्योंकि टिकट उतने ही बाटे जाते हैं, जितनी की सीटें हैं। कहीं जगह खाली रहने का सवाल ही नहीं था। सोवियत की नाट्यशालाओं के टिकट का बन्दोबस्त दो तीन हफ्ते पहिले यदि न करें, तो वह मिलते ही नहीं— विदेशी महमानों के लिये कुछ सीटें रख छोड़ी जाती हैं। अभिनय के बीच बीच में विश्राम का समय था, जबकि दर्शक और दर्शिकायें बाहर के हाल में टहलने या नाट्यशाला की प्रदर्शनी देखने में लगे रहते थे। नाटक देखने के लिये नर-नारी अपने सबसे सुंदर वेश भूषा में आते हैं। महिलायें उस दिन वेश पखा (वायपुर) करना नहीं भूलतीं। नाट्यागार की प्रदर्शनी में पुराने और नये नाट्यकारों और अभिनेताओं के सैकड़ों फोटो रक्खे हुए थे।

दूसरी यात्रा में भाई प्रमथनाथ दत्त, (या दाऊदअली दत्त) लेनिनग्राद में ही रहते थे अब वह लड़ाई के बाद मास्को चले आये थे। उनके साहसमय जीवन के बारे में आगे लिखूंगा। ८ जुलाई को साढे दस बजे मैं होटल से उनसे मिलने के लिये निकला। पता ठिकाना, मोटर बस, और दूसरे यानों के बारे में नोट कर लिया था। अपनी महीने भर की जमा की हुई रूसी पूजी के साथ चल पड़ा। एक मैदान के कोने पर बस का पता लगा मगर वहां जाने पर बस नहीं, २८ नम्बर की ट्रामवाय मिली, जो गस्तोकिन्स्की प्रोयेज्द की ओर जा रही थी। आध घंटा जाने के बाद पूछा, तो मालूम हुआ, अभी स्थान बहुत दूर है। घंटे भर की यात्रा के बाद उपनगर के उस स्थान में पहुँचे, जहा किसान स्त्री और मजदूर पुरुष की दो संयुक्त विशाल मूर्तियां स्थापित हैं। पूछते पाछते उपनगर से भी बाहर आलू के खेतों में चले गये। इधर से उधर भटकते, चढाव उतार जमीन को लाघते, एक रेल की लाइन को पार करते

मील दो मील चले गये। जुलाई का महीना था। निरभ्र आकाश से मध्याह्न के सूर्य की किरणें पड़ कर अपना प्रभाव डाल रही थीं। मैं प्यास के मारे बहुत परेशान था। खैर किसी तरह मास्को के प्राच्य प्रतिष्ठान में पहुँचा। पाठकों को इससे यह तो मालूम होगा, कि रूसवाले हरेक विदेशी के पीछे अपना जासूस नहीं भेजते, अगर भेजते होते तो मुझे तो इस यात्रा में कृतज्ञ होना पड़ता। फाटक खोलने ही एक छोटा-सा लड़का खड़ा मिला। उसके भूरे बाल, पतले दबले शरीर को देख कर यह कैसे पता लग सकता था, कि यह दत्त भाइ का पुत्र है। मैंने तवारिश दत्ता के बारे में पूछा। ईगर ने साथ आने के लिये कहा, और मुझे तितल्ले पर दत्त भाई के पास ले गया। इस वक्त हिंदुस्तानी कक्षा की परीक्षा हो रही थी। रूस में हिन्दी और उर्दू दोनों के लिये सम्मिलित शब्द "हिंदुस्तानी" का प्रयोग किया जाता है, और विद्यार्थियों को दोनों भाषायें दोनों लिपियों में पढ़ाई जाती हैं। दत्त भाई अपनी हिंदुस्तानी कक्षा की परीक्षा में लगे हुए थे। १५-१६ म दो तीन ही तरुण थे, बाकी सभी तरुणियां थीं। यहांवालों की भी यह भ्रांति है, कि उर्दू ही भारत की बहु प्रचलित भाषा है। द्वितीय यात्रा के मेरे परिचित ग्रार डा० रिश्चेनास्की के शिष्य सरकत प्रोफेसर सिरोयेफ मा आज कल यही उर्दू पढ़ाते थे। परीक्षा स्थान म कुछ मिनट बैठ कर तथा विद्यार्थियों और अध्यापकों के साथ शिष्टाचार प्रदर्शन करने के बाद दत्तभाई मुझे अपने कमरे में ले गए। एक टाग बेकार होने से वह अपनी कोंख की लकड़ी के सहारे चल रहे थे। सात हा वर्ष पहिले मैंने भाभी दत्ता को तरुण सुन्दरी के रूप म देखा था और अब वह बूढ़ी मालूम हो रही थीं, चेहरे पर कुछ झुर्रियां भी आगयीं थी। दत्तभाई बात म लगे और भाभी चाय तैयार करने म। वह भारत के बारे म पूछने लगे, मैं अपने पूर्व परिचितों के बारे म। उन्होंने कहा—आरम्भ म ही क्यों न चले आयें, यहां भी पढ़ाने का काम मिल सकता है।

आठ सात बजे अभी शाम आने में बहुत देर थी, लेकिन हम तो न जाने कितने साल अपरिचित ट्राम से रास्ता न पता कर होटल म पहुँचना था। म भी ट्राम के अड्डे तक पहुँचाने आयीं। उन्होंने बतलाया कि यहां से

४ नम्बर की ट्राम वहाँ जाती है। लेनिनग्राद या मास्को में ट्रामवाय का टिकट १५ कोपेक (प्राय पाँच पैसा) है। टिकट लेकर बैठ जाइये, जहाँ तक वह गाड़ी जायगी, वहाँ तक उसी टिकट से काम चल जायेगा। पाँच ठहरावों के बाद हम मेत्रो (भूगर्भी) स्टेशन पर पहुँचे। रास्ते में देवदारों के उपवनों और ग्राम राजों का बड़ा सुन्दर नजारा था। आजकल घास की हरियाली चारों ओर दिखलाई पड़ती थी। रविवार होने के कारण छुट्टी मनाने के लिये लोग बड़ी भारी संख्या में इन उपवनों और सरोवरों का आनंद लेने आये थे। ट्राम से उतर कर स्तोल्नाया मेत्रो स्टेशन पर अक्तोनिनीर्याद का टिकट लिया। मेत्रो यहीं से शुरू होती थी, इसलिये जगह मिलने में कोई दिक्कत नहीं हुई, लेकिन आगे बड़ी भीड़ थी— लोग सैर करके शाम को लौट रहे थे। ५ वें स्टेशनों को छोड़ते अक्तोनिनीर्याद के छोटे स्टेशन पर उतरे, जो कि मास्को होटल के नाचे है। यह पहिले नहीं मालूम था, नहीं तो बहुत आराम से चला गया होता। यह रास्ता आसान मालूम होता था। होटल में पहुँचते समय मुझे आलू के खेतों में मिली बुढ़िया याद आ रही थी। उसके कपड़े बिलकुल मामूली थे। मैंने जब रास्ता पूछा तो वह फर फर फ्रेंच बोलने लगी। कुलीनवर्ग की लड़की होगी, जिसके लिये जारशाही जमाने में संस्कृत शिक्षित और सज्जात साबित करने के लिये फ्रेंच पर अधिकार प्राप्त करना आवश्यक था। इनकी संख्या शायद इतनी अधिक थी कि सबको विदेशी भाषा सिखाने का काम नहीं मिल सकता था।

६ जुलाई को सूर्यग्रहण था। आकाश में कहीं कहीं बादल थे, इसलिये सूर्य कितनी ही बार बादल में छिप जाता था। हमारे यहाँ होता, तो पुराने ढंग के लोग स्नान की तैयारी में रहते, बनारस के लिये ट्रेनों पर ट्रेनें छूटतीं। आज से आठ शताब्दी पहिले रूसी लोगों के पूर्वज सूर्य पूजक थे— सूर्य ही उनका सबसे बड़ा देवता था। ईसाई धर्म ने इस उस देवता के पद से छुड़ाया। न मालूम उस समय सूर्यग्रहण के समय लोग क्या करते रहे होंगे। कोई धार्मिक अनुष्ठान तो जरूर करते होंगे। लेकिन आज के रूसी भी सूर्य ग्रहण को उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखते। चार बजे शामको हाथ में काले किये शीशे या कोई और

देखन के साधन के सहारे सूर्य को देख रहे थे।

देश छोड़े अब १० महीने हो रहे थे। इरान म रहते अंग्रेजी पत्र मिल जाते, और कभी कभी सैनिकों या व्यापारियों के यहां से भारत के समाचार-पत्र भी देखने को मिलते, लेकिन यहां समाचार जानने का कोई साधन नहीं था। कुछ अंग्रेजी पत्र अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं पर विचार व्यक्त करने के लिये निकलते जरूर हैं, यद्यपि उनम भारत के बारे म शायद ही कभी कुछ होता। पत्रों और पुस्तकों का मिलना उतना आसान नहीं था। "न्यू टाइम्स" के तीन अंक उत मिले, तो मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

सूर्यग्रहण समाप्त होने के बाद उस दिन खूब वर्षा हुई। बिजली भी खूब कड़की। वर्षा का यह दृश्य देखते हुए मुझे भारत का वर्षाकाल याद आ रहा था—वहां का जुलाई अगस्त, घनघोर वर्षा का समय। जिस कमरे म मैंने आकर डेरा लगाया था, वह ऐसी जगह था, जहां धूप ज्यादा आती थी, जिससे घर गरम होजाया करता था, इसलिये आज मैंने ७२६ न० के कमरे को ले लिया। यह कमरा अच्छा था। यहां नहाने का टब नहीं था, उसकी जगह "वर्षास्नान" का प्रबन्ध था। कमरा कुछ अधिक बड़ा, तथा सोफा आदि सब एक ही कमरे म थे। टेलीफोन काम कर रहा था, लेकिन रेडियो बिगड़ा हुआ था। उसकी मुझे जरूरत भी नहीं थी, क्योंकि अभी भाषा का ज्ञान अपर्याप्त था। मास्को के रेडियो से हिन्दी प्रोग्राम प्रसारित करनेवाले सज्जन भी आये। उनके पूछने पर मैंने बताया, कि हिन्दुस्तान म वह अच्छी तरह सुनाई नहीं देता, यद्यपि मास्को के और प्रोग्राम स्पष्ट सुनने में आते हैं। उन्होंने कहा—ताशकन्द से जोड़न म शायद साफ हो जाय। फिर मैंने बतलाया कि जिस हिन्दी या हिन्दुस्तानी में मास्को स खबरें प्रसारित की जाती हैं, उसको भाषा बोलनेवाले नहीं बल्कि भाषा तत्वज्ञ ही समझ सकते हैं। उन विचारों की एक दिक्कत यह भी थी, कि कोई हिन्दी या उर्दू भाषा भाषी वहां मौजूद नहीं था। दस भाड बड़ा अच्छी हिन्दी उर्दू बंगला बोल सकते थे, लेकिन शायद पैर से मजबूर होने के कारण उनसे यह काम नहीं लिया जाता था। बोलनेवाले रूसी होते थे, जिनका उच्चारण गलत

होता था और लिखनेवाले भी हिंदुस्तानी भाषा के जानकार नहीं थे, जिससे उनकी भाषा कहीं कहीं तो डिक्शनरी से लेकर बनाई मालूम होती थी। आज करा १९५१ में भी मास्को के हिंदुस्तानी प्रोग्राम की करीब करीब वही हालत है। हां, अब रूसी सुर की जगह भारतीय (बंगाली) सुर इस्तेमाल किये जाते हैं, जिनको कि बंगला के रूप में ही हिंदुस्तानी बोलने का अभ्यास है। भाषा लिखनेवाले शायद कोई उसी देशके हैं, जिनके कारण वह बड़ी बेढंगी सी मालूम होती है। भाषा भी हिन्दी और उर्दूवालों के लिये एक ही इस्तेमाल की जाती है, जिसमें भ्रष्ट उच्चारण के साथ अरबी फारसी की भरमार होती है। चाहे कोई समझे या न समझे, ब्राडकास्ट कर देना यही ध्येय मालूम होता है। (हाल में बिहार के एक बड़े कर्मठ कम्युनिस्ट नेताने, मास्को के हिन्दुस्तानी ब्राडकास्ट की भाषा को सुनकर बड़ा असंतोष प्रकट किया था)। मैंने उनसे कहा, कि भारत के श्रोताओं की दिलचस्पी ज्यादा होगी यदि आप मध्यएसिया के लोगों के जीवन के बारे में अधिक बातें कहा करें।

विदेशी क्रांतिकारियों को रूस में छिपकर रहने के समय नाम बदलना होता था, इसलिये बाज वक्त परिचित आदमी का भी पता लगाना मुश्किल हो जाता है। मास्को की एक तरुणी अपने भारतीय पिताके बारेमें जानने के लिये बहुत उत्सुक थी, लेकिन वह जो नाम बता रही थी वह मलाबारी था। पीछे मुझे मालूम हुआ कि वह हमारे परिचित चक्रवर्ती महाशय की कन्या थी। साथी चक्रवर्ती को अच्छी तरह जानता था, लेकिन नाम बदला होने के कारण उसको कोई हर्षप्रद समाचार नहीं दे सका। इसी तरह एक आगा क्रांतिकारी बीसों वर्षों से नाम बदल सोवियत में रह रहे थे। उनसे मेरा परिचय तेहरान में हुआ था, वहां मैं उन्हें आदिलखां के नाम से जानता था। पीछे समझने नाम मालूम हुआ, यद्यपि यह भी उनका वास्तविक नाम न था। आदिलखां और मैं कुछ दिनों तेहरान में एक ही होटल में रहे थे। मालूम हुआ कि मैं अधिकतर मिर्जा महमूद के साथ रहा। आदिलखां से पहिले भी अक्सर मुलाकात हो जाया करती थी, और आगा और भारत के बारे में दिल खोलकर

बातें होती थीं। वह बड़े ही बहुश्रुत तथा दृढ़ क्रान्तिकारी पुरुष थे। वह छटपटाते थे, कि किसी तरह उनको जावा जाने दिया जाता। लेकिन कोई रास्ता हाथ नहीं आया और मेरे तेहरान से रवाना होने के कुछ समय पहिले ही वह मास्को लौट गये। उनकी एक चिट्ठी मिली थी, इसलिये १२ जुलाई को मैं सवा तीन बजे उनसे मिलने मास्को के पास के एक गाँव उदेलूनया के लिये रवाना हो गया। यह गाँव ३० मील से कम नहीं होगा। पहिले चार स्टेशन मेत्रो से गया, फिर कजान्स्की स्टेशन में बिजली ट्रेन पकड़ी। पूरे एक घंटे की यात्रा थी। मैं अकेला था, और टूटी-फूटी रूसी मात्र एक मात्र सहारा थी। यह यात्रा भी इस बात की मुँह बतलानेवाली थी, कि रूस में हरेक आदमी के पीछे खुफिया लगा दिया जाता है। ट्रेन मास्को से बिल्कुल बाहर चली आयी। अब यहाँ ग्रामीण दृश्य थे, लेकिन बस्तियाँ कस्बों जैसी थीं। यहाँ के ज्यादातर लोग मास्को में काम करते हैं। मैंने समझा था, रास्ते में देवदार के घने जंगल आयेंगे, किन्तु वह नाम मात्र के ही कहीं कहीं दिखलायी पड़े। सड़क की दोनों तरफ के खेतों में आलू और सब्जी लगी हुई थी। मास्को में इन चीजों की बड़ी खपत थी। कहीं कहीं जर्मन बमबारी के चिह्न थे, लेकिन बहुत कम। आखिर उदेलूनया स्टेशन आ गया। छोटा सा स्टेशन बस्ती भी बहुत बड़ी नहीं, घर अलग अलग थे। मैं ढूँढते ढूँढते लकड़ी की कुटिया में पहुँचा। मेरे काले रंग—हमारे यहाँ के साफ रंगवाले भी उस सफेद-सागर में काले ही दिखाई पड़ते हैं—को देखते ही एक स्त्री ने कहा—मैं जानती हूँ। आदिलखा तातारी होने के कारण मंगोली मुखमुद्रा रखते थे, किन्तु रंग उनका भी मेरे ही जैसा था। स्त्री ने अपने घर तक ले जाकर फिर अपनी कन्या मेरे साथ कर दी। कुटिया तो मिल गयी, लेकिन आदिल दम्पती में से कोई घरपर नहीं था। घर की एक महिला ने पूछने पर कहा—न मालूम कब तक लौटेंगे। गर्मियों के दिनों में मास्को के लोग अक्सर नगर के पास के गाँव खेड़ों में चले जाते हैं। बिजली की रेल है ही, इसलिये आने जाने में घंटे डेढ़ घंटे को कोई दिक्कत की बात नहीं समझा जाता। अधिक प्रतीक्षा न करके नोट छोड़

घर लौट पड़ा । यहां के मकान इतने ही भीतर थे, जिनमें देवदार और दूसरे वृक्ष लगे हुये थे । इन्हीं उपवनों में काठ के अत्यन्त सुन्दर मकान बन हुए थे, जिनमें नागरिक लोग कुटीर का आनन्द लेने आते थे । यहां के दूर दूर बसन से उदेल्नया की बस्ती दूर तक बसी हुई थी । लौटकर स्टेशन आया, थोड़ी देर की प्रतीक्षा के बाद गाड़ी मिली और साढ़े सात बजे मास्को पहुंच गया ।

मेरा कार्ड मिल गया था, इसलिये मायी आदिल मिलने आये । बड़े प्रेम से बहुत देर तक बातचीत होती रही । वह भी चाहते थे, कि अगर मैं मास्को में रहता, तो अच्छा होता । मुझे कोई विशेषता नहीं मालूम होती थी ।

१८ जुलाई को मास्को के महान् बाग गोर्की-संस्कृति उद्यान को देखने गया । पहिली यात्राओं में भी दो बार इसको देख चुका था, लेकिन इस समय तो यहां का एक और जबर्दस्त आकर्षण था युद्ध का सोगातों की प्रदर्शनी । जर्मनी से युद्ध के समय जितने अस्त्र शस्त्र मिले थे, उनके नमूने यहां रक्खे हुये थे । दूर तक नाना प्रकार की तोपें रखी हुई थीं । जिनमें कुछ दूर-मारक तोपें थीं, कुछ हल्की तोपें, मोटर और फिर टैंक विध्वंसक तोपें । फ्रांस, बेल्जियम, चेकोस्लोवाकिया, हंगरी, रूमानिया, इटाली सभी देशों की बनी तोपें जर्मनों ने काम में लायी थीं । तरह तरह के टैंक भी रक्खे हुए थे । दो इंच मोटे पत्तरवाले "चीता" टैंक थे, व्याघ्र, और राजव्याघ्र टैंक भी रक्खे थे, जो पानी में भी चल सकते थे । दो इंच मोटे फौलाद के पत्तर को तोप के गोलेने ऐसे तोड़ दिया था, जैसे कि किसी ने गीली मिट्टी के बर्तन को डण्डी से बींध दिया हो । सोवियत तोपों की ऐसी करामात थी । रूस ने हमेशा से तोपों में ख्याति हासिल की थी, जिस सोवियत शासन ने विलुप्त नहीं होने दिया । हैंकेल, मेसर्मस्मिथ, युन्कर, फोक्उल्फ जैसे नाना प्रकार के बम वर्षकों को भी देखा । एक जगह नाना प्रकार के योधक विमानों की पांती थी । बड़े बड़े युद्ध यन्त्र बाहर आसमान के नीचे रक्खे हुए थे । कितनी ही चीजें घरके भीतर भी सजाई हुई थीं । एक जगह तरह तरह का दवाइयों के नमूने थे । दूसरी जगह छोटे छोटे हथियार थे । एक जगह श्रेपक रेडियों का प्रदर्शन था । प्रदर्शनागारों में तरह तरह की नमन

सैनिक पोशाकें भी थीं। एक जगह जर्मन तमगों का ढेर था। हिटलर ने समझा था, कि मास्को के विजय करने पर हजार नहीं लाखों की संख्या में तमगे जरूरी होंगे। तमगे हिटलर के सिपाहियों के भाग्य में नहीं बदे थे, क्योंकि विजय हिटलर को नहीं उसके प्रतिद्वन्द्वियों को मिली। कपड़ों का कमी के कारण जर्मनों ने नकली कपड़े और दूसरी चीजें तैयार की थीं, जिन्हें जर्मन भाषा में "एर्सात्ज" कहते थे। यहां एर्सात्ज की पोशाकें और एर्सात्ज के बूट बहुत तरह के मौजूद थे। रूस में इनकी आवश्यकता नहीं पड़ी, और न यहांकी सर्दी में वह काम दे सकते थे। राइफलों, मशीनगनों, और सब मशीनों का भी बहुत अच्छा संग्रह था।

आज हमारे साथ वोक्स की महिला पथ-प्रदर्शिका थीं। वहां से निकलते ही हम लोग पास ही में "दोम सयूज" में मिश्रित संगीत देखने चले गये। वहां जन-नृत्य और जन-संगीत का सबसे अच्छा नमूना देखने में आया। मास्को से दक्षिण पूर्व में अवस्थित रेजान जिले के दो जन गीत गाये गये, जिन्हें लोगों ने आग्रह करके फिर फिर सुना। मुझे आश्चर्य हो रहा था कि हमारे पूर्वी उत्तरप्रदेश के अहीरों का बिरहा कैसे यहां मास्को में आगया। भाषा रूसी अवश्य थी, लेकिन राग बिल्कुल बिरहा जैसा। अहीर भी तो शकों का ही एक कबीला था, जिन्हीं शकों की औलाद आजकल रूसी है, इसलिये रेजान के जन संगीत में बिरहा का आना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। लेकिन अहीरों को भारत गये दो हजार वर्ष हो गये। क्या जन गीतों के सुर इतने चिरस्थायी होते हैं? अवश्य जन गीतों का स्वर भाषा से अधिक चिरजीवी होता है। इस नाट्य मंडली में सौ से कम कलाकार नहीं थे। सभी जनता की चीजें दिखलायी और सुनायी जा रही थीं। हाल खचाखच भरा था। बीच में पन्द्रह मिनट का विश्राम देकर ८ से १० बजे तक प्रोग्राम जारी रहा। मुझे जहां नृत्य और संगीत का आनन्द आ रहा था, वहां यह भी सोच रहा था, कि यह वही समाज है, जहांपर काम करनेवालों के हाथ में राजशक्ति चली गयी हो। कलाकारों के सम्मान को देखकर ईर्ष्या होती थी। वह किसी वैज्ञानिक या प्रोफेसर से कम

सम्मानित नहीं माने जाते थे। मुझे यही ख्याल आया, मेरे अपने जिले के बिसराम ने भी विरहे बनाये थे। करुणा रस से सराबोर जन-कविता का उसने निर्माण किया था और जवानी में ही वह वियोगी मर गया। वह कविता करने के लिए कविता नहीं करता था, न उसके हृदय में उनके चिरस्थायी होने की आशा थी। जब मन में कोई व्यथा मालूम होती, भाव पैदा होते, तो वह एक विरहा बना लेता और उसे गुन गुनाता रहता। कागज पर उतारने का सवाल ही नहीं था। बिसराम एक बिल्कुल ग्रामीण जन कवि था। मैंने उसके कुछ विरहों को पढ़ा था। मैं समझता था, कि बिसराम के विरहों का कुछ लोग बड़े प्रेम के साथ जमा कर रहे होंगे। लौटने पर मालूम हुआ कि बिसराम अब इस दुनिया में नहीं है और उसके पन्द्रह सोलह विरहा से अधिक उतारे नहीं जा सके हैं। सोवियत में किसी बिसराम को इस तरह विलीन होने की संभावना नहीं है।

चित्रशाला—लेनिनग्राद में एक से अधिक चित्र संग्रहालय हैं। मास्को की त्रेत्याकोफ चित्रशाला विश्व की चित्रशालाओं में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। १६ जुलाई को मैं उसे देखने गया। मास्को के एक धनी-मानी नागरिक त्रेत्याकोफ को चित्रों के संग्रह करने का शौक था। उसने काफी संग्रह के बाद चित्रशाला के घर के साथ उसे नगर सभा को अर्पण कर दिया। यह जारशाही युग की बात है। नगर सभा के हाथ में आने पर त्रेत्याकोफ चित्रशाला की उतनी उन्नति नहीं हुई, जितनी की सोवियत शासन के समय। यद्यपि त्रेत्याकोफ शोषक वर्ग का था, लेकिन उसके सत्प्रयत्न को देखकर बोल्शेविकों ने भी इस चित्रशाला का नाम त्रेत्याकोफ ही रहने दिया। त्रेत्याकोफ के समय सारे चित्रों का संग्रह पाँच छ कमरों में रहा होगा, लेकिन आज पचास से भी अधिक कमरे हैं। एक दिन में कोई उसे देख नहीं सकता। चित्र ग्यारहवीं सदी से २० वीं सदी तक के हैं, अर्थात् यहाँ रूसी चित्रकला के एक हजार वर्षों का इतिहास सामने रक्खा हुआ है। तेरहवीं सदी तक चित्रों में धार्मिक भावों की प्रधानता थी, उनपर अधिकतर बिजन्तीय और कुछ भी मंगोल-सिरामिक यानी प्रभाव था। सत्रहवीं सदी से यूरोपीय प्रभाव शुरू हो जाता है, जो कि १८ वीं १६ वीं

सदी में पूर्णता को प्राप्त होता है। युरोपीय प्रभाव के साथ ही व्यक्ति (पोर्ट्रेट) चित्रण शुरू होता है। पोर्ट्रेट चित्रण का हमारे देश में भी सदा अभाव रहा है। ग्रीक चित्रकला द्वारा प्रेरित पश्चिमी यूरोप ने इस महान् कला का विकास किया। पुराने रूस में किप्रेंस्की, त्वेर (कालनिन), नगोग्राद आदि कला केन्द्र थे। इवानोफ का एक विशाल चित्रफलक यहाँ रक्खा हुआ था, जो कि दुनियां के अद्भुत चित्रों में है। इवानोफ ने यह चित्र ईसा के जीवन के संबंध में बनाया है। इस अद्भुत चित्रको बनाने की सामग्री जुटाने के लिये इवानोफ ने कई साल ईसा की जन्मभूमि में बिताये थे, और वहां के नर नारियों भूमि-पहाड़ों, पशु-वनस्पतियों के बहुत से चित्र उतारे, जिनके आधार पर फिर इस चित्र को बनाया। चित्रशाला में कुछ चित्र त्रिपार्श्वीय हैं, जिनमें खंभे, कुर्सी आदमी तथा दूसरी चीजें एक दूसरे से अलग खड़ी मालूम होती हैं। सोवियत काल में उतने महान् चित्रकार नहीं पैदा हुए, जितने कि १६ वीं सदी में थे। लेकिन पुश्किन और कालिदास प्रति अर्धशताब्दी नहीं पैदा हुआ करते।

१७ जुलाई को पांच बजे फिर ट्रेन पकड़ी और लेनिनग्राद के लिये रवाना होगया। रास्ते के स्टेशनों में अगली स्ट्राबरी बिक रही थी। पांच रूबल (तीन रुपये) में एक दोना स्ट्राबरी।

दत्तभाई— अप्रैल १६४६ में मास्को दुबारा जाने का मौका मिला। अबकी बार दत्त भाई से मिलने पर उनकी जीवनी के बारे में कुछ जानना चाहता था। २६ अप्रैल को जब मैं उनके यहाँ गया, तो वह अपने नगरवाले घरमें थे, इसलिये आलू के खेतों में खाक छानने की जरूरत नहीं पड़ी। दत्तभाई का नाम प्रमथनाथ दत्त था। उनके पिता मन्मथ नाथ दत्त टरनर मोरिसन कम्पनी के मुत्सुद्दी थे। उनकी मां का नाम स्वर्णकुमारी था। वह अपने माता पिता के कनिष्ठ पुत्र थे। दो बड़े भाई नरेन्द्रनाथ और सुरेन्द्रनाथ थे। सुकिया स्ट्रीट (कलकत्ता) में इनका पैतृक घर था। जन्म सवत् उन्हें अच्छी तरह मालूम नहीं, लेकिन वह १८८८ के आस पास रहा होगा। आरम्भिक स्कूल की पढ़ाई

समाप्त करके ट्रेनिंग एकेडमी से १९०६ के आस पास इन्होंने इंट्रेन्स पास किया फिर वह जनरल एसेम्बली में आई ए में पढ़ने लगे। बंग-भंग का जमाना था। बंगाल के दो टुकड़े करने के कारण बंगालियों में उग्र भावनाएं जाग उठी थीं। प्रमथनाथ उससे प्रभावित हुए बिना कैसे रह सकते थे। फिर केवल अम ताव करके दिल मसोस लेने से तो काम नहीं चलता। देशको गुलाम बनाने वालों, इस प्रदेश को दो टुकड़ों में बाँटनेवालों को कुछ सबक भी तो सिखाना चाहिये था। बंगाल में क्रांतिकारियों के उस समय अनुशीलन और युगान्तर दो दल थे। दोनों का ध्येय था शस्त्र-बल से अंग्रेजों को भगा देश को स्वतन्त्र करना। तरुण प्रमथनाथ युगान्तर दल में शामिल हो गये। आग सिटी कालेज में वह आई ए के द्वितीय वर्ष में पढ़ते थे। तीन साल तक वह पार्टी में रहे। इसी समय मिर्जा अब्बास (हैदराबादी) और एक दास-कानूनगो ने पेरिस में सीखकर पहिले पहल बम बनाया। प्रमथनाथ की भी इच्छा हुई कि बम बनायें और सैनिक शिक्षायें प्राप्त करें। देश में वैसा सुभीता न देख उन्होंने विदेश जानेका निश्चय किया। डा० कार्तिक बोस के भाई श्री चारुचन्द्र बोस ने रुपयों से सहायता की। उस समय अभी पासपोर्ट की दिक्कत नहीं था— प्रथम विश्वयुद्ध के बाद अंग्रेजों ने पासपोर्ट की कड़ाई करदी, अब कोई सरकार से पासपोर्ट लिये बिना भारत की सीमा से बाहर नहीं जा सकता था। १९०८ ई० में प्रमथनाथ लंदन पहुँचे। उनकी उमर २० साल के आस पास रही होगी। प्रसिद्ध देश भक्त श्याम जी कृष्ण वर्मा ने भारतीय क्रान्तिकारी तरुणों के लिये लंदन में "इंडिया हाउस" खोल रखा था। प्रमथनाथ उसमें शामिल हो वहां से छात्रवृत्ति पाकर बैरिस्टरी पढ़ने के लिये दाखिल हो गये। लेकिन यह तो लंदन में ठहरने का बहाना मात्र था। इस समय सावरकर मदनलाल धींगड़ा, गोरीशंकर (अजमेरी) आदि से उनकी मित्रता हुई। प्रमथ महीने से अधिक वहां टिक नहीं पाये। यह मालूम ही है, कि मदनलाल धींगड़ा ने एक साम्राज्यवादी अंग्रेज (कर्जन वायली) को गोली का निशाना बनाया था, जिससे सारे इंगलैंड में सनसनी फैल गयी थी। प्रमथनाथ लंदन से भाग कर न्यूयार्क पहुँचे। न्यूयार्क

में उनकी जान पहिचान बर्कतुल्ला और जाशी (बड़ोदा) जैसे क्रांतिकारियों से हुई और उन्होंने मिलकर वहां हिंदुस्तानी एशोसियेशन स्थापित किया। अब प्रमथनाथ किसी कारखाने में मजदूरी करते और आयरलैंड की स्वतंत्रता की हामी आयरिश लीग के साथ मिलकर काम करते। अंग्रेजों से लड़े एक बोयर (दक्षिण अफ्रीकीय) ने उन्हें बम बनाना सिखलाया। उसी की सहायता से प्रमथनाथ का श्रीमान से परिचय हुआ। श्रीमान अपने पत्र "गलिक अमेरिकन" में भारत की स्वतंत्रता के बारे में भी लिखा करता था।

प्राय: सालभर रहकर प्रमथनाथ पेरिस चले आये। उनको अब बाकायदा सेना में भरती होकर सैनिक शिक्षा प्राप्त करनी थी। बिना सैनिक शिक्षा के अंग्रेजों के साथ लड़ाई कैसे की जा सकती थी? फ्रान्स में वह फ्रेंच विदेशी सेना (फारेन लिजियन) में भरती हो गये। इस सेनामें जर्मन, अंग्रेज आदि सभी जातियों के लोग थे। मार्सेई में छ महीना रहकर उन्हें सैनिक शिक्षा दी गई, फिर वह फ्रान्स के अधीन देश अल्जीयर के ओरान नगर में भेज दिये गये, जहां दो साल के करीब रहे। लेकिन भारत से दूर अफ्रीका में रहते हुए वह समय पड़ने पर देश में जल्दी कैसे पहुँच सकते थे, इसलिये भारत के नजदीक होने के लिये उनका ख्याल हिंदचीनकी ओर गया और लिजियन के एक छोटे अफसर बनकर हनोई चले आये। थोड़े ही दिनों बाद उन्हें फिर वापिस चला आना पड़ा, जब यह मालूम हुआ कि फ्रान्सीसियों के अधीन रहकर वह कोई काम नहीं कर सकते। फ्रान्स लौटकर वहां मदाम कामा के पत्र "वन्देमातरम्" में काम करते रहे। यहां उन्हें एक दूसरे भारतीय स्वतंत्रता प्रेमी राना के सम्पर्क में आने का मौका मिला। प्रथम विश्वयुद्ध के अनेक संकेत यूरोप में प्रकट होने लगे थे। प्रमथ भाई को फिर ख्याल हुआ कि भारत के नजदीक कहीं चलें, इसलिये १९१३ ई० में वह तुर्की की राजधानी कस्तुन्तुनिया में आये। नौजवान तुर्क दलने तुर्की में काफी सफलता प्राप्त की थी, उसके नेता अनवर पाशा अब सुल्तान के बागी नहीं बल्कि रईसुल्वजरा (प्रधान-मंत्री) थे। प्रमथनाथ ने सेना में भरती होने की इच्छा प्रकट की। उनके भारतीयपने को ढांकने के लिये नाम

दाउदअली पड़ गया। किन्तु जब भर्ती करने का मौका आया, तो अंग्रेजों का जासूस होने के सन्देह में उन्हें भरती नहीं किया गया। हैदराबाद से अब्दुल कयूम बेग फैज (तुर्की) टोपी बनाने का काम सम्भालने गये हुए थे। हिन्दुस्तान में लम्बे फुदने वाली लाल तुर्की टोपियों का काफी रवाज हो गया था। मूल स्थान फैज के नामपर उन्हें फेज कहा जाता था। दाउदअली ने भी बेग के सम्पर्क में आकर फैज बनाना सीखना शुरू किया। अबूसईदका "जहाने इस्लाम" (इस्लाम समाचार) अखबार निकलता था। दाउदअली उसके लिये अंग्रेजी से उर्दू में लेख अनुवाद कर देते थे। यह पत्र अरबी, फारसी और थोड़ा सा उर्दू में रहता था। इसी समय दाउदअली मुहम्मद अली के "कामरेड" पत्र के विशेष सम्वाददाता थे।

१९१४ ई० में युद्ध आरम्भ होने के समय दाउदअली अभी कस्तुन्तुनिया में ही थे। अब नौजवान तुर्क उन पर विश्वास करने लगे थे। धीरे धीरे दाउदअली भारत की ओर खिसकने लगे। बगदाद में आकर छ मास रहे। फिर अफगानिस्तान की ओर बढ़ने के ख्याल से ईरानिया के भीतर अंग्रेजों के विरुद्ध प्रचार करने के लिये नौजवानतुर्कों ने उन्हें १९१६ में ईरान भेजा। बुशहर और शीराज होते यज्द में पहुँचे। विदेशी भाषाओं में फ्रेंच और इंगलिश के बाद तुर्की का उनको अच्छा ज्ञान हो गया था और अब फारसी के क्षेत्र में चल आये थे। वहां खानखाने और मुहम्मद फौजी मिले। प्रसिद्ध देशभक्त सूफी अम्बा प्रसाद उस वक्त शीराज में ठहरे हुए थे। उन्होंने एक मदरसा खोल रखा था, जिसमें बृहस्पतिवार इस्लाम पर लेक्चर देते थे। गदरपार्टी दल के प्रचारक सूजा सिंह भी प्रमथनाथ का परिचय हुआ। यह सारे भारतीय यहाँ इसलिये जमा हुए थे, कि ईरानियों को अंग्रेजों के विरुद्ध उभाड़ें और मार्ग पाने हो भारत में स्वतंत्रता का झण्डा गाड़ने के लिये पहुँच जायें। १९१७ के मध्य में अंग्रेज गुर्खानिस साइक्स यहाँ पहुँच गया। ईरान का वजीर कावाम पवानुल्मुल्क (पिता) अंग्रेजों का पक्षपाती था। उसने हिन्दुस्तानियों को पकड़वाना शुरू किया। सूफी अम्बाप्रसाद को डर लगा, कि अगर मुझे पकड़ के

अंग्रेजों के हाथ में दे दिया गया तो वह बुरी मौत मारेंगे, इसलिए उन्होंने जहर खाकर आत्महत्या कर ली। दाऊदअली, महम्मद अली, खानखोजे भाग कर कशकाई कबीले में शरणार्थी हुए। किसी ने कबीले के सरदार से इन लोगों का परिचय करा दिया था। वह लोग तंबू में रहते और नमाज पढ़ते। सरदार ने कह दिया था—ये अच्छे लोग हैं, संदेह न हो, इसके लिए तुम अपने को पक्का मुसलमान दिखलाओ। साल भर के करीब वह कशकाइयों के पास रहे। युद्ध के बाद अंग्रेजी सेना १९२१ में हटी, तो दाऊदअली तेहरान पहुँच गये। वहाँ दारुलफुनून नामक संस्था में अंग्रेजी पढ़ाने लगे। अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, तुर्की, फारसी अच्छी तरह जानते थे। अब दाऊदअली से बदलकर वह [illegible] स्थान हो गये थे।

१९२२ ई० में ताग पारा दाऊदअली मास्को पहुँचे। उस समय मास्को में भारतीय क्रान्तिकारियों का अड्डा सा जमा हुआ था। चट्टोपाध्याय, आचार्य, अवनीमुकर्जी आदि कितने ही भारतीय क्रान्तिकारी मौजूद थे। इनमें से कोई कम्युनिस्ट शिक्षा-दीक्षा में होकर नहीं निकला था, इसलिये सब की मनोवृत्ति मध्यवर्ग की थी, और सभी अपने अपने नेतृत्व के लिए आपस में लड़ते रहते थे। भारत से हिजरत करके आये कितने ही लोग यहाँ मिले। पुराने परिचित बरकतुल्ला भी अब यहीं थे। दाऊदअली की इच्छा हिन्दुस्तान के पास रहने के लिए इराक जाने की थी, लेकिन रूसी ईरान भेजना चाहते थे। इधर भारतीयों की भीतरी कलह को देखकर दाऊदअली को दुःख होने लगा था। इसी समय प्रसिद्ध इंडोलॉजिस्ट डाक्टर ओल्देनबुर्ग से उनकी भेंट हुई। उन्होंने कहा—छोड़ो इस झगड़े को, चलो शिक्षा का काम करो। ओल्देनबुर्ग ने १९२२ में उन्हें लेनिनग्राद बुला लिया और प्राच्य प्रतिष्ठान में फारसी और बंगला पीछे उर्दू के भी पढ़ाने का काम दिया। दो साल तक उनका शरीर स्वस्थ रहा। अब वे ३६ के करीब थे, इसी समय १९२४ में गिर जाने से पैर में बड़ी चोट आयी। डाक्टर ने बाँध दिया, जिसके कारण उनका दाहिना पैर हमेशा के लिए बेकार हो गया। सेनाटोरियम में रहने पर शायद कुछ फायदा

हो, इसलिये १९२७-१९२८ में वह कालासागर के तट पर गये। वहीं उनसे लुबोव अलेक्सेयेव्ना से परिचय और प्रेम हुआ। दोनों का ब्याह हो गया। जिस समय (अप्रैल १९४६) उनसे मैं बात चीत कर रहा था, उस समय उन्हें शिक्षक का काम करते हुए २२ बरस हो गये थे। १९४१ में युद्ध आरम्भ हुआ। कितने ही और महत्वपूर्ण आदमियों की तरह प्रमथनाथ दत्त को हवाई जहाज से कजान भेज दिया गया, जहां वह छ मास रहे। फिर अगस्त १९४२ में मध्यएसिया में फरगाना की उपत्यका में चले गये। वहां मलेरिया ने पकड़ा। अभी युद्ध समाप्त नहीं हुआ था, तभी नवम्बर १९४३ में वह मास्को प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान में पढ़ाने के लिये चले आये, और तब से यहीं रह रहे हैं।

* * *

८—पहिले तीन मास

जून जुलाई अगस्त रूस में गर्मी और बरसात के दिन हैं। इस गरमी ता शि गचार हा के लिए रह सकते हैं क्योंकि जहाँ तक लेनिनग्राद का संबंध है, इस समय कोई ही हफ्ता ऐसा होता, जिसमें अहोरात्र में किसी न किसी समय तापमान हिमबिन्दु से नीचे न जाता हो। तो भी इस वक्त हरियाली देखने में आती है। मास्को में तो पसीने की भी नौबत आई थी, किन्तु लेनिनग्राद में वर्षा होते समय, हवा तेज होने पर सर्दी बढ़ जाती। हमारे पिछवाड़े जर्मन हवाई आक्रमण के कारण गिर गये मकानों की जगह कई एकड़ खाली जमीन निकल आई थी, जिसको, जैसा कि मैंने पहिले कहा, लोगों ने क्यारी क्यारी में बाँट लिया था। जुलाई के अंतिम सप्ताह में वहाँ खूब हरियाली दिखाई पड़ती थी, आलू बढ़ गया था सलाद और प्याज को खाया जाने लगा था। हमारी दिनचर्या अगस्त के अन्त तक अधिकतर घर में रहकर पुस्तकों को पढ़ना, कभी कभी सिनेमा या नाटक देखने जाना। युनिवर्सिटी के प्राच्य पुस्तकालय में काम की पुस्तकें यथेच्छ मिल जाती थी। यहाँ आते ही यह निश्चय हो

गया था, कि सावियत मध्यएसिया के बारे में एक ऐसा ग्रंथ लिखूँ, जिसमें उसका अतीत और वर्तमान का अच्छी तरह परिज्ञान हो सके। वर्तमान के लिए बहुत दिक्कत नहीं थी, क्योंकि उसके सम्बन्ध की सामग्री सुलभ थी। भारत लौटने पर पहिले (१९४७) के अन्त में हो मैंने सावियत मध्यएसिया के नाम से उसे लिख भी डाला, किन्तु मध्यएसिया का इतिहास उतना आसान नहीं था। जब मैं उसके बारे में पुस्तकें पढ़ने लगा, तो मालूम हुआ कि युरोप की समुन्नत भाषाओं— इंगलिश, फ्रेंच, जर्मन और रूसी—में भी कोई सुसम्बद्ध इतिहास नहीं लिखा गया है।

डाक्टर बारानिकोफ संस्कृत और भारतीय भाषाओं के ही पंडित नहीं हैं बल्कि रोमनी (सिगान) भाषा का भी उन्होंने विशेषतौर से अध्ययन किया है। मैंने उनकी पुस्तकें देखीं तथा रोमनियों के उद्गम के बारे में उन से बातचीत की। इसमें तो संदेह नहीं, कि रोम वस्तुतः हमारे डोम शब्द का ही परिवर्तित रूप है। यह घुमन्तू डोम किसी समय भारत से पश्चिम की ओर चले गये। ख़ाली के नाम से प्रसिद्ध यह लोग इरान और मध्यएसिया में मिलते हैं किन्तु युरोप में उन्होंने अब तक अपने पृथक् अस्तित्व को कायम रखा है। इनकी भाषा में भोजपुरी, बुन्देलखण्डी, ब्रज और अवधी की विशेषतायें मिलती हैं। मेरा ख्याल था कि अधिकांश रोम (डोम) लोगों का सम्बन्ध मुसलिम सन् की सातवीं या आठवीं शताब्दियों (ईसा की तेहरवीं-चौदहवीं सदी) में भारत से विछिन्न हुआ। घुमन्तू होने से उनकी विचरण भूमि बहुत विस्तृत थी। वर्तमान काल में भारत में इतने निर्बंध होने के बाद भी हम पेशावर से रंगून और हरिद्वार से मद्रास तक इन्हें अपनी सिरकी लिये हुए घूमते देखते हैं। जब राजनीतिक निर्बंध उतना नहीं था, उस समय तो यह भारत से मध्यएसिया, इरान तक का चक्कर काटते रहते होंगे। किसी समय राजनीतिक उथल पुथल के कारण उनका भारत लौटने का रास्ता रुक गया, जिसके कारण वह भारत से फिर सबध जोड़ नहीं सके और पश्चिम में आगे पश्चिम की ओर बढ़ते चले गये। बन्दर भालू नचाना, हाथ देखना आदि के साथ पश्चिम में जाकर उन्होंने घोड़ा पालन

नेचने या भा वेसा स्वीकार कर लिया । पहिरम में वह मेमों, गदहों या टट्टुओं पर घर लादे फिरने की जगह गाड़ियों का इस्तेमाल करने लगे ।

स्वाध्याय और घर काम के संभालन में विरोध है, इसका २४ जुलाई (१९४५) को पता लगा । बिजली की केतली में पानी गर्म करने के लिये रखकर मैं लिखने पढ़ने के लिये चला गया । दो घंटे बाद होश आया, तो देखा पानी सारा सूख गया है, बर्तन का गला गल गया है, और तार भी जलने लगा है । केतली चौपट हुई, ३०० सौ रूबल का चपत लगा ।

लेनिनग्राद दो शताब्दियों तक रूस की राजधानी रहा—उस वक्त उसका नाम पितरबुर्ग था। इसलिए बड़ा राजधानी के अनुरूप बहुत सी संस्थाएं कायम हुई, जिन्हें मास्को के राजधानी बनने के बाद भी हटाया नहीं जा सका । लेकिन इधर कुछ संस्थायें तो लड़ाई के कारण इतनी उजड़ गईं, कि उन्हें फिर से जमने में देर लगेगी। २९ जुलाई को हम प्राणि उद्यान (जूसद) देखने गये । किसी समय यहाँ पर हर तरह के जानवर रहे होंगे, लेकिन अब दो तीन भालू, दो वानर, कुछ लोमड़िया, उल्लू, बाज,गिद्ध,खरगोश, नीलगाय आदि रह गये हैं । जूसद के बहुत से मकान बम-वर्षा में नष्ट हो गये, लेकिन तब भी लड़कों की भीड़ इतवार को जमा हुआ करती है । वहां से हम पार्क-कल्तूर (संस्कृति उद्यान) में गये । भीतर प्रवेश के लिये दो रूबल देना पड़ता है । यह बहुत विशाल उपवन है, जिसमें देवदार और दूसरे वृक्षों की हरियाली है । घास के मखमली फर्श के साथ साथ टेढ़ी मेढ़ी जलधाराओं में नौका बिहार का आनन्द मिलता है । उद्यान में जहां तहां सिनेमा, नाट्यगृह, नृत्यअखाड़े मौजूद हैं । एक जगह बहुत से नर नारी नाच रहे थे । उद्यान का बैंड बज रहा था । नदी में नौका पर चार कुमारियां जोर से दांड लगा रही थीं । एक बड़ी नदी भी उद्यान के किनारे से जाती है, जिसके बालुकामय पुलिन पर तो लोगों का खासा मेला लगा हुआ था—तरुण तरुणी, बच्चे बूढ़े स्नान कर रहे थे । जुलाई के मध्याह्न में पानी अब इतना सर्द नहीं रह गया था । मैं भी उतरा और चाहा कि नदी पार कर जाऊं, लोला को डर लगा कि मैं कहीं बीच में ही न रह जाऊँ, तो भा

आधीसे अधिक नदी में तर गया था, जहाँ से लौटने का मतलब था पूरे नगेर का जाना। खाने-पीने की चीजें जगह जगह मिल रही थीं। यदि आप राशन टिकट दे सकें, तो दो रुपये का माल आने डेढ आने म मिलता, नहीं तो बिना राशन के भाव लेना पड़ता। एक गुल्ला आइसक्रीम का दाम ६ रूबल (प्राय पन्द्रह रुपया) था। बिना राशन चीजें बहुत महगी थीं। मगर का पातस्थान दुर्ग सामने दिखाई पड़ रहा था, यहां के सैनिकों का बोलशेविक क्रांति में बहुत हाथ था। लौटते वक्त हम उद्यान के बाहर किन्तु पास में ही अवस्थित बौद्ध मदिर होते गये। यह पत्थर की बहुत मजबूत और सुन्दर इमारत तिब्बती मदिरों के ढग की बनी हुई है। अब कोई यहा पुजारी नहीं रह गया था, इसलिये मूल्यवान् मूर्तियां और चित्रपट किसी संग्रहालय म रख दिये गये हैं। मन्दिर की कोठरियों का इस्तेमाल यदि ध्वस्त नगर के नागरिक अपने रहने के लिये करते हैं, तो कोई बुरी बात नहीं। मेरे सामने ही मगोलीय जन प्रजातन्त्र के प्रधान मन्त्री चोय बल्सान् कुछ और मन्त्रियों के साथ मास्को होते लेनिनग्राद भी आये थे और मदिर को देखने गये थे। यह तो केवल पूजीवादी देशों का प्रोपेगडा है, कि कम्युनिस्टों ने धर्म को अपने यहा से उठा दिया। रूस में रविवार को गिरजे और धर्म-स्थान जितने भरे रहते हैं, उनके चुतर्थांश भी मगत पश्चिमी यूरोप के गिरजों म नहीं देखे जाते। वस्तुत सस्कृति, साहित्य और कला क क्षेत्र म किसी धर्म ने देश की जितनी सेवा की है, उसकी जड भी उस देश में उतना ही मजबूत होती है। इसी कारण मगोल लोग बौद्ध धर्म को बैसे ही अपना राष्ट्रीय धर्म समझते हैं, जैसे रूसी लोग ग्रीक चर्च को। मगोल प्रधान मन्त्री ने इस मदिर को देखकर इच्छा प्रकट की थी, कि फिर यहां बौद्ध भिक्षु रखकर इसे आबाद किया जाये।

३० जुलाई को बूदा बांदी होने लगी, जिसके कारण सर्दी भी बढ़ गयी। लोग कह रहे थे, अब शरद (पतझड) शुरू हो गया, अब बराबर इसी तरह वर्षा-बूदी और सर्दी रहेगी, और सूर्य के दर्शन कभी कभी हुआ करेंगे। सितम्बर म वर्षा बन्द होती है, किन्तु साथ ही सर्दी बढ जाती है। लेनिनग्राद शहर

से गैस लगाने की योजना काम में लाई जारही थी। पास के इलाके के पीट कोयले से बनाई गैस लाकर शहर में लगा देने पर ईंधन की बहुत बचत होती, इसलिये गैस योजना बनी था। एक मध्यम-वर्गीय महिला कह रही थी—यह योजना दस वर्ष में पूरी होगी। लेकिन अपने रहते रहते ही मैंने कई महल्लों में म्युनिसपल्टी की ओर से गैस के चूल्हे भी लगे देख लिए। म्युनिसपल्टी को केवल गैस का पाइप ही नहीं बल्कि हरेक घर में चूल्हा भी लगा देना था, जिसके लिये थोड़ा-सा किराया ज़रूर देना पड़ता। लेकिन ३० लाख की आबादी के शहर के लिये यह कितना बड़ा काम था, इसे कहने की आवश्यकता नहीं। बाहर के बहुत से लोग समझते हैं, कि सोवियत के नागरिक तो अब होटल में खाना खाते हैं, उनके घरों में अब चूल्हे की आवश्यकता नहीं है। इसमें शक नहीं कि हर मुहल्ले में सामूहिक रसोईखाने भी हैं, लेकिन उनका उपयोग लोग समय-कुसमय पर करते हैं। मैं २५ महीने लेनिनग्राद में रहा, लेकिन मैंने अपने मुहल्ले के सामूहिक रसोई घर का मुँह केवल बाहर सड़क से ही देखा।

जितना समय बीतता गया, उतना ही मुझे भारत के समाचार के जानने की उत्सुकता भी बढ़ती गई। चिट्ठियाँ अनिश्चित होतीं, और वह भी बहुत दिनों बाद मिलतीं। हमारे कमरे में रेडियो लगा हुआ था, लेकिन वह स्थानीय रेडियो था। सोवियत के प्रायः छोटे छोटे नगरों में भी बड़े रेडियो स्टेशनों के प्रोग्राम को सुनकर टेलीफोन की तरह से पुनः प्रसारित किया जाता है। इनके यन्त्र दो चार रुपये में मिल जाते हैं। ऐसे यन्त्रों से शायद ही कोई घर खाली मिलेगा। किराया भी कम लगता है और अहोरात्र में बीस इक्कीस घंटे वह बोलता रहता है। जापान में पाँच मिनट अंग्रेजी के लिए भी देते थे, किन्तु यहाँ वह भी नहीं था। संगीत की भरमार यद्यपि सोवियत के सिनेमा और नाटकों में नहीं होती, किन्तु इस रेडियो में उनके लिये काफी समय दिया जाता था। क्लासिकल (उस्तादी) संगीत सारी दुनियाँ में जान पड़ता है, एक ही साँचे में ढाला गया है। जैसे भारत के उस्तादों के संगीत को सुनने के लिये बड़े धैर्य की आवश्यकता होती है, वही बात यहाँ के बारे में भी है। गला

भी था, और बहुत सुसंस्कृत भी। शायद उसके माता पिता कम से कम हुए जर्मन थे। सासी को आजकल अपनी कमाई पर भरोसा करना पड़ता था, जिसके लिये वह एक कारखाने में काम करने जाती, और चार सौ रूबल मासिक पाती। उन्होंने तीन कमरे ले रखे थे, जिनमें किराए से भी रूबल चले जाते। तीनसौ रूबल में वह कैसे अपने दोनों लड़कों और अपना खर्च चला लेती थीं, यह समझना कुछ मुश्किल जरूर था, किन्तु उनके पास तीन तीन राशन कार्ड भी थे। सासी का हमारे घर के साथ बड़ा घनिष्ट संबंध था, इसलिये किसी भी उत्सव या पर्वदिन में परस्पर बुलौआ जरूर होता। कभी कभी जब पर्वों के उपलक्ष में शराब का दौर चलता, तो मुझे बड़ी कठिनाई होती, लेकिन पाठक लोगों ने जान लिया था, कि शराब न पीने का मैं कड़ा नियम रखता हूँ। उनको इसका अर्थ नहीं मालूम होता था, क्योंकि उनके देश में शराब को पानी से अधिक महत्त्व नहीं दिया जाता, हां दाम के मँहगा होने की शिकायत जरूर की जाती थी। मैं किसी को शराब पीते देखकर घृणा नहीं करता, किन्तु जीवन में एक चीज को जब कभी नहीं छुआ, तो उस रिकार्ड को कायम रखने का लोभ जरूर रखता हूँ।

६ अगस्त को हम यहां की एक रीनक (हाट) देखने गये। लकड़ी के बने हुए छोटे छोटे स्टालों की यह हटिया हमारे यहां की हटिया की कुछ विकसित रूप थी। फर्क इतना ही था, कि यहांपर पंसारी दूकानदार नहीं थे, आसपास के गाँवों के लोग अपने घरों में पैदा की हुई चीजें—साग सब्जी, फल, अन्न आदि लाते, उसी तरह जिसको अपनी कोई अधिक प्रिय चीज लेने की इच्छा होती, वह भी आता। राशनकार्ड की यहां मांग नहीं थी, इसलिये हरेक चीज दस गुने बीस-गुने दामपर मिलती थी। कोई अपना मक्खन इसलिये बेचता था, कि उस की जगह सिगरेट ले। कोई सिगरेट भी किसी दूसरी चीज के लिये बदलना चाहता था— सीधा अदला-बदला नहीं होता था। जूते भी मिल रहे थे, कोट और कपड़े भी। मैं तो इस ख्याल से गया था, कि अगर कोई पुराना शब्दकोश मिल जाता, तो ले आता, लेकिन वहां उसका कोई पता नहीं था। जाला

की एक रिश्तेदार महिला के यहाँ रेडियो था, लेकिन वह दीर्घ तरंग का था, जिसपर भारत या इंगलैंड को सुना नहीं जा सकता था।

सात अगस्त को खाते वक्त बड़ा आनन्द आया, जबकि अपने हाथके उगाये आलू को सूप में पड़े देखा। अभी वह दो-तीन तोले के थे, मालूम हुआ कि यहाँ की भूमि आलू के लिये बहुत अनुकूल है।

६ अगस्त को जापान के विरुद्ध सोवियत् का युद्ध आरम्भ होगया था, अब रूसी खबरें भी मैं समझने लगा था, लेकिन भारत की एक भी खबर न सोवियत के रेडियो पर सुनने पाता न यहाँ के अखबारों में ही।

१३ अगस्त को सोमवार का दिन था। आज विश्राम दिन का टिकट मिला था। संस्कृति उद्यान तथा दूसरे विश्राम स्थानों के लिये ऐसे टिकट सभी कार्यालयों में मिला करते हैं। युनिवर्सिटी, कॉलेज, दूकान, कारखाने ऑफिस सभी जगह काम करनेवाले इसमें फायदा उठाते हैं। टिकट का दाम ३० रूबल (प्राय २० रू०) था, जिसमें ६ रूबल ही अपने देना पड़ता, बाकी मजदूर सघ देता। यह कहने की अवश्यकता नहीं, कि प्रोफेसर हो या चपरासी, दुकान पर बैठनेवाला हो या कारखाने का मैनेजर, सभी दिमागी या शारीरिक काम करने वाले स्त्री पुरुष मजदूर सघ के सदस्य होते हैं, और उनके वेतन से सघ का शुल्क कटता जाता है। सघ इस पैसे से अपने सदस्यों के मनोविनोद, स्वास्थ्य, बेकारी आदि के लिये प्रबन्ध करता है। यह एक दिन की छुट्टी का प्रबन्ध हमारे मजदूर सघ की ओर से था। हम उसे बिताने के लिये किरोव पार्क कुलूर में गये, जिसके बारे में हम पहिले भी कह चुके हैं। नाट्यशाला की आज छुट्टी थी, नहीं तो उसका भी टिकट हमारे टिकट में शामिल था। सिनेमा देर से शुरू होनेवाला था और उद्यान से हमारा मकान डेढ़ घटे के ट्रामवाय के रास्तेपर था, इसलिये दोनों का ख्याल छोड़ना पड़ा। ६ बजे सवेरे ही हम रवाना हुए और साढ़े दस बजे उद्यान में पहुँचे। विश्राम लेनेवालों के लिये एक अलग कार्यालय है, जिसे 'बाज़ा अद्‌ना दिनव्‌नी अत्‌दिखा" (एक दिन विश्राम केन्द्र) कहते हैं। कार्यालय में टिकट का आधा लेकर हमारा नाम लिख लिया गया। कितने ही

ओर भी स्त्री-पुरुष आये थे, जिनमें स्त्रियों की संख्या अधिक थी। आज इतवार नहीं था, इसलिये पहिले जितनी भीड नहीं दिखाई पडी। नीचे ऊपर दुमंजिले मकान में आठ कमरे थे, जिनमें नाचने, गाने, पढने, अटा खेलने के रूपों में मनोविनोद का प्रबंध था। लेकिन विश्राम लेनेवाले आदमी घरों में बैठने के लिये यहा नहीं आते, वह तो प्रकृति की सुन्दर गोद का आनन्द लेना चाहते हैं। ११ बजे नाश्ता तैयार हुआ। रोटी अपने राशन टिकट में लेनी पडी, नहीं तो बाकी चीजें विश्राम टिकट में सम्मिलित थीं। खाने की चीजों में लप्सा भी था, जिसका नाम हमारी लप्सी से मिलता जुलता है, किन्तु थी वह नमकीन सवैयों। मछली, और साथ में मीठा चाय का एक ग्लास—बस यही प्रातराश था। रूसी लोग मीठी चाय, सो भी प्याले में नहीं शीशे के गिलास में पीते हैं। उसमें दूध डालना बेकार समझते हैं, हां यदि मिल सके तो कागजी नीबू का रुपये बराबर का टुकडा डालना बहुत पसन्द करते हैं। मध्याह्न भोजन १ बजे के करीब हुआ। इसमें लोबिया और किसी साग का सूप (रसा) पहिले आया, इसके बाद दिन का मास, उबली हुई बडी लोबिया के साथ, और अन्त में कम्पोत परोसा गया, जिसमें पतले मीठे शरबत में पडी हुई खूबानी थी। चीजें बहुत स्वादिष्ट नहीं थीं, किन्तु पुष्टिकारक अवश्य थीं। शामके भोजन में रेजका (मूली के पतले टुकडे), चावल भरी कचौडी, (पेरुगमुलीसम) और मीठी चाय का गिलास था। यह शाम का भोजन नहीं बल्कि शामकी चाय था।

"सर्वे सत्वा आहारस्थितिका" इस बुद्ध-वचन के अनुसार प्राणी मात्र की सबसे जबर्दस्त और अनिवार्य आवश्यकता है आहार, जिसके बारे में पहिले कहना आवश्यक था। लेकिन १०–११ घंटे जो हमने उद्यान में बिताये वह केवल खाने-पीने में ही नहीं बीते। प्रातराश के बाद हम स्नान के लिये नदी तट पर गये। वहां एक अच्छा खासा मेला लगा हुआ था, जिसमें स्त्रियों की संख्या अधिक होना हमारे देश के लिये कोई नई बात नहीं थी। स्कूलों के छोटे लड़के लड़कियां भी अपनी अध्यापिकाओं के साथ काफी संख्या में आये थे।

पुरुष जांघिया या स्नान-परिधान पहिन स्नान कर रहे थे, स्त्रियां स्नानपरिधान स्तनबंध और जांघिया से ज्यादा थीं। छोटे लड़के लड़कियां नंगे नहा रहे थे। नहाना, तैरना, फिर बालू में आकर लेटे लेटे धूप लेना, उसके बाद फिर नहाना और तैरना। दो बार मैं भी आधी नदी तक तैरने गया। धूप लेना यहां के लोग बहुत पसन्द करते हैं, और हफ्तों धूप लेते लेते जब इनका रंग कुछ कुछ ताम्रवर्ण हो जाता है, तो इसे बहुत पसन्द करते हैं, स्वस्थ शरीर का चिन्ह मानते हैं। स्त्री-पुरुषों के मिलने जुलने में कोई भेदभाव न होने के कारण अर्धनग्न सौन्दर्य की ओर भी लोग बिलकुल साधारण सी दृष्टि डालते हैं। नंगे धोकर घूमते घामते ९ बजे हम फिर भोजनालय लौट आये। २ बजे मध्याह्न-भोजन हुआ। वहां कपड़े-वाली आराम कुर्सियां मिल गयीं, जिनको लेकर हम नहर के तट पर वृक्षों के नीचे जा बैठे। हमारे पैरों के नीचे भी हरी हरी घास थी। कितने ही लोग यहां के पुस्तकालय से कोई उपन्यास या दूसरी पुस्तक भी लाकर पढ़ रहे थे। कुछ लोग घासों पर पड़े पड़े सो रहे थे, और कुछ नहर के नौका विहार को देख रहे थे। नौका विहार को देखकर मुझे कश्मीर याद आ रहा था। बादशाही जमाने में यह उद्यान राजप्रासाद से संबद्ध था, और राजवंशियों तथा उनके अनुचरों के सिवाय कोई दूसरा भीतर आने नहीं पाता था। लेकिन, आज मजदूर अपने पैरों से इसे रौंद रहे थे। महल अब भी मौजूद है, जिसमें युद्ध के समय ग्राम अर्धशास्त्रियों का स्कूल खुला था। थोड़ी देर हम भी चीना अटा खेल खेलते रहे, फिर गाना सुना, फिर टहलने रहे। लेनिनग्राद महानगर है, वहां हित मित्र सगे संबंधी एक दूसरे से दूर रहते हैं, जिससे मिलना जुलना आसान काम नहीं है। यहां कभी कभी उनसे भी मुलाकात हो जाती है। लोला की सखी वलंतिना अपनी मां के साथ आयी हुई थी। वह किसी पुस्तकालय में काम करती थी। लोला के कथनानुसार वह बड़ी अच्छी गायिका है। सुन्दरी भी थी। मैंने कहा— फिर नाट्यमंच पर क्यों नहीं गई? जहां हम गाना सुनने का मौका नहीं था।

शाम को अड्डे पर आये। भीड़ इतनी थी, कि आध घंटे तक गाड़ी में

जगह हो नहीं मिल सकी। फिर किसी तरह चढकर साढे नौ बजे घर पहुँचे। लेकिन अगस्त के साढे नौ बजे क्या साढ़े ग्यारह बजे तक गोधूली ही रहता है।

बाहर ही मनोरंजन और मनोविनोद की चीजें नहीं मिलती थीं, बल्कि घरके भीतर भी उसका काफी सामान एकत्रित था। लोला का अपने इकलौते पुत्र पर असाधारण प्रेम होना स्वाभाविक था, जिस पुत्रको उसने लेनिनग्राद के हजार दिनों के घिराने में अपना प्राण देकर पाला था। जब राशन छटाँक डेढ छटाँक रह गया था, तब वह अपना खाना उसे दे देती और स्वयं भूखी रह जाती। एक बार वह इतनी निर्बल हो गई, कि खड़ी होते समय गिर पड़ी और सिर फूटने से उसके सूखे शरीर में से बहुत सा खून निकला। तो भी कितना ही बार मुझे उसका प्रेम में अधापन ज्यादा मालूम होता था। लड़का जानता था कि उसकी माँ किसी बातमें इंकार नहीं कर सकती, इसलिये जिद करना उसका स्वभाव हो गया था। सुबह उठते ही लोला अपने इगर को बुलाती—"कपड़ा पहिन,इगरुस्का,मोई सिशिन्का" (कपड़ा पहिन ईगुरवा मेरे ललुवा) चाहे दो घटा भी दिन चढ गया हो, लेकिन इगर पड़ा सोता रहता। फिर थोडी देर में माँ का ध्यान उधर जाता, तो चिल्लाकर उसी बातको दुहराती। इगर को उसकी परवाह नहीं थी। वह अपने मन की करना जानता था। यद्यपि बालोद्यान में जाते हो अच्छा भोजन मिलता, फिर भोजन आदि का भी प्रबन्ध था। लेकिन लोला अपने सिशिन्का को बिना कुछ खिलाये कम जाने देती? एक गिलास दूध पीने में सिशिन्का १५ मिनिट लगा देता। बात न मानने पर बीच बीच में लाला का चिल्लाना जारी रहता। इस साल पहिली सितम्बर को इगर स्कूल में जाने लायक हो गया था, क्योंकि उसके सात वर्ष में केवल चार दिन ही बाकी रहते थे, लेकिन लोला नहीं चाहती थी कि स्कूल में जाकर मजदूरों के लड़कों के साथ वह बिगड़ जाय। आखिर बालोद्यान में भी तो अधिकांश मजदूरों के ही लड़के-लड़कियाँ थे। लेकिन वहां बुद्धिवाद से क्या प्रयोजन था? वह कहती थी एक बजे स्कूल से छुट्टी हो जायगी, हम घरपर नहीं रहेंगे, फिर सारे मुहल्ले के गुंडे लड़कों में पड़ कर गुंडा हो जायगा। इसलिये सात वर्ष में चार दिन कम

होने का बहाना लेकर उसे सालभर और स्कूल नहीं भेजा।

१७ अगस्त को हम "घिरे लेनिनग्राद की वीरता" नामक म्यूजियम देखने गये। यह नया संग्रहालय सैनिचना सड़क पर एक बड़े मकान में था। यह मुहल्ला पहिले रूसी अमीरों का था। इस संग्रहालय में १९४१-१९४४ के घेरावे का प्रदर्शन था। युद्ध से पहिले सोवियत के सारे औद्योगिक पदार्थ का १०८ प्रतिशत लेनिनग्राद में पैदा होता था, इससे राजधानी न रहने पर भी लेनिनग्राद का महत्व मालूम होगा। इसी मुहल्ले में पुश्किन, चेखोव्स्की और ग्लाजार रहे थे। वहां रखी हुई चीजों में एक जगह एक छोटी लड़की के पेन्सिल से लिखी डायरी के कुछ पन्ने रखे हुए थे। एक दिन लिखा था—पिता मर गये, माता फिर पन्ना खाली। लिखने वाला भी निर्जीव था।

१८ अगस्त को कई दिनों की धूप के बाद सबेरे थोड़ी सी वर्षा हुई। खटमलों और पिस्सुओं के मारे हम पहिले से ही परेशान थे, अब मच्छर (कमारोफ) ने भी धावा बोल दिया। हमारा मुहल्ला शहर के एक छोर पर होने के कारण उसपर सबसे पीछे प्रबन्धकों की नजर पहुंचती, इसीलिये लड़ाई के दिनों में पैदा हो गये खटमल और पिस्सू अब भी यहां से नहीं हटाये गये थे। हम चाहते थे, अगर कहीं युनिवर्सिटी के नजदीक मकान मिलता, तो अच्छा, लेकिन मकानों की इतनी इफरात तो नहीं था। प्रोफेसर होने के कारण हमें चार पांच कमरे मिलने चाहिये थे, लेकिन हमें वहां यदि दो कमरे भी मिल जाते, तो हम उससे संतुष्ट थे। युनिवर्सिटी के रेक्तर (चान्सलर) ने मकानों के प्रबन्धक को खास तौरसे चिट्ठी दी, लेकिन मकान की समस्या तो तभी हल होनेवाली थी जब कि मकान बनाने की योजना पूरी हो। उसदिन ६ रूबल (चार रुपया) किलो (सवा सेर) खीरे बिना राशन कार्ड के मिल रहे थे। लाला दस किलो खीरे खरीद लायी। कुछ सलाद बनेगा, अचार बनेगा। खीरे के अचार का रूस में बड़ा शौक है। पानी में खीरे को नमक डालकर रख देते हैं, और पन्द्रह बीस दिनों के बाद उसमें कुछ खट्टापन आजाता है, अचार तैयार होगया।

२० अगस्त को मेरा एक दांत दर्द करने लगा, २१ को वह पाड़ा और बढ़ती गयी। सोवियत शासन ने जो बड़े बड़े काम किये हैं, उनमें मुफ्त चिकित्सा का प्रबंध भी एक है। हमारा ही उदाहरण ले लीजिये। हम अपने मुहल्ले के चिकित्सा-केन्द्र से मुफ्त चिकित्सा करा सकते थे, डाक्टरों को कुछ नहीं देना पड़ता था। हां, यदि बीमार रहने पर भी अस्पताल नहीं जाना चाहते तो दवाई का दाम देना पड़ता। तिरयोकी में यूनिवर्सिटी का सेनीटोरियम था, वहां पर भी मुफ्त चिकित्सा का प्रबंध था। इन दो जगहों के अतिरिक्त युनिवर्सिटी के भीतर एक बहुत भारी चिकित्सालय था, जिसमें दर्जनों डाक्टर काम करते थे। मैं दांत की पीड़ा में मजबूर हो युनिवर्सिटी के डाक्टर के पास गया। डाक्टर, एक महिला था। उन्होंने दरयाफ्त बतलाया कि दांत में छेद हो गया है, स्नायु सड़ गयी है। दांत को उन्होंने छील दिया, घाव को साफ कर दिया। बिजली से चलने वाले दांत सम्बंधी सभी आधुनिक यंत्र वहां पर मौजूद थे। मुझे दर्द इतना मालूम हो रहा था, कि चाहता था दांत ही उखड़ जाय तो अच्छा। महिला डाक्टर ने कहा— नहीं आपके दांत बहुत अच्छे हैं। बनावटी दांत उतने अच्छे नहीं होंगे, और एक दांत निकालने से दूसरे दांत कमजोर पड़ने लगेंगे। उन्होंने फिर कहा— "मैं प्रोसलिन भरकर ठीक कर दूंगी, किन्तु पहले भीतर का घाव अच्छा हो जाना चाहिये।" उन्होंने दांत को अच्छी तरह साफ करके अस्थायी तौर से प्रोसलिन भर दिया। २२ अगस्त को दिन भर दांत अच्छा रहा, किन्तु रात को फिर दर्द बढ़ना शुरू हुआ। मैं बिल्कुल नहीं सो सका। ख्याल आता था, कि हनूमानबाहुक की पुस्तक होती, तो मैं भी तुलसीदास के शब्दों में बाहुपीड़ की जगह दांत पीड़ बदल कर बजरंग बली की दुहाई देता। जान पड़ा, दांत के भीतर अभी भी मवाद है। २३ अगस्त को १२ बजे फिर डाक्टर के पास गया। रात भर मार्मिक वेदना हो रही थी, दांत के छिद्र को खोलने पर वह कुछ कम हुई। डाक्टर ने भीतर साफ करके दवा भर दी। मैंने कहा छिद्र का मुंह न बन्द करें, क्योंकि उसमें पीड़ा बढ़ जाती है। उस दिन शाम को बुखार भी आ गया। बीच बीच में अब मुझे डाक्टर

को सभा में जाना जरूर हो पड़ा। इधर कुछ पेट भी गड़बड़ हो गया था, इसके डाक्टर ने पेट की बीमारी के बारे में देखभाल की। खून का दबाव नार्मल मालूम हुआ।

पहली सितम्बर को युनिवर्सिटी खुली मने। पहले डाक्टर को दांत दिखाया, तो उन्होंने उसको अस्थायी तौर से भरने से पहिले रोंतेगिन (एक्सरे) फोटो की परीक्षा करने के लिये विशेषज्ञ के पास भेज दिया। इन्टूस (भारतीय) जानने सभी की जिज्ञासायें बढ़ जाती थीं। दूसरे विशेषज्ञ ने दांत का भाग लिया, और उस डाक्टर के पास भरने देने का वादा किया।

जापान पर विजय—३ सितम्बर (सोमवार) को जापान विजय के उपलक्ष्य में छुट्टी हुई। २ सितम्बर को तोक्यो के बन्दरगाह में अवस्थित अमरिकन नोसनिक जहाज मिसौरी पर मेकार्थर के सामने जापानी सम्राट के प्रतिनिधि विदेश-मन्त्री और सेना पति ने अपनी हार पर हस्ताक्षर कर दिये। तोक्यो रेडियो भी अमरिकन हाथों में चला गया। मैंने तीन सितम्बर को अपनी डायरी में लिखा — इस समय दुनिया में अमेरिका का पल्ला भारी है। सिर्फ सामग्री सम्पन्नता के कारण ही नहीं, बल्कि सैनिक साइंस की शक्ति के कारण भी। अणु बम का आविष्कार अमरिका ने किया। अमरिका पूंजीवादी जगत का अगुआ है। वह जर्मनों की भांति जाति सिद्धान्त को सामने नहीं ला सकता मगर पूंजीवादी गुलामी को सारे संसार पर लादने के लिये वह वैसा ही प्रयत्न करेगा, जैसा नमना ने फ्वाला साम्राज्यवादी को लादने के लिये (किया)। बात से काम न चलने पर सैनिक शक्ति का प्रयोग (भी करेगा)। दुनिया की सभी प्रतिगामी स्वार्थ का समर्थन पूंजीवादी दृष्टि से अमरिका करेगा। यूनान में कर रहा है। बुल्गारिया में पासा विलाफ पड़ने की आशंका से (उसने) पार्लियामेन्ट चुनाव रुकवा दिया। हालैण्ड और बेल्जियम में (उसके लिये) निष्कंटक क्षेत्र है। फ्रान्स और इताली की जनता के रास्ते में अमरिका भारी रुकावट साबित होगा, तो क्या तीसरा युद्ध आणविक बमों और बाम पक्षियों में होगा?

५ सितम्बर को युनिवर्सिटी से लौटते वक्त मैं बालोद्यान में गया। यहां होने से तीन बरस तक के लिये यह यसली (शिशु भवन) बने हुए हैं, चौथे से सातवें वर्ष के लिये अचाक (बालोद्यान) हैं। कमरे में बच्चों के लिये सोने के वास्ते चारपाइयां कतार से लगी हुई थीं, बिस्तरा साफ बिछा हुआ था। तीन वर्ष से सात ही वर्ष तक के बच्चे थे, किन्तु उनका पाखाना साफ था। हाथ मुँह धोने के लिये छोटे छोटे नल लगे हुए थे और कुत्ता, बिल्ली आदि पशुओं की तसवीरोंवाली उनकी टावलें अलग अलग खूंटियों से लटक रही थीं। चीजों को रखने के लिये छोटी छोटी आलमारियां भी उन्हें मिली थीं, जिन पर उनके जानवर का तस्वीर बनी हुई था। कहानी सुनने, खेलने, खिलाने रखने के कमरे अलग अलग थे। एक हाल भी था। घर से बाहर खेलने और मनोविनोद के लिए उद्यान था। मेरे आने से पहिले इगर के लिये मैं स्तर रूबल मासिक देना पड़ता था, किन्तु मेरे आने के बाद वह १४० हो गया। सभी लड़कों का खाना, रहना एक तरह का था, लेकिन फीस में इसका ध्यान रखा जाता था, कि कौन कितना बदाश्त कर सकता है। कम वेतन वाले माता पिता को कम पैसा देना पड़ता, अधिक लड़के होने पर फीस माफ हो जाती था। लड़के नौ बजे बालोद्यान जाते, और पाँच बजे घर लौट आते थे। इस बीच में खाने का सारा इंतजाम बालोद्यान की ओर से होता था। बालोद्यान में लड़के लड़कियां दोनों इकट्ठा ही रहती थीं। आयु के अनुसार उनके चार वर्ग थे। यहां पुस्तक की पढाई नहीं होती थी, न अक्षर सिखाया जाता। उन्हें स्वावलम्बी बनने की शिक्षा दी जाती। वह स्वयं अपना बिस्तरा ठीक करते। यद्यपि रसोई में मदद देना लड़कों का काम नहीं है, किन्तु बालोद्यान की बहनों (चाचियों) के साथ उनका इतना प्रेम हो जाता, कि वह बिना बुलाये भी सहायता करने के लिए चले जाते। ईगर खास तौर से अपनी चाची की रसोई में सहायता करने जाता था। बालोद्यान की चाचियों के साथ लड़कों का कितना मधुर सम्बन्ध हो जाता है इसका इसी से पता लगेगा, कि ईगर जब बालोद्यान से निम्नतम स्कूल में भरती हो गया था, तब भी वह अपनी चाचियों से मिलने जाता था, और वहां

खाने और चाय का समय होने पर खा पीकर ही लौटता था। हम बहुत आग्रह करते कि अगर खाना खाकर आयेगा, तो फिर नहीं जाने देंगे, लेकिन वह ऐसा होने वाला था। आखिर कहता— क्या करूं, चाची तान्या ने नहीं माना। बच्चों की शिक्षा और सेवाशुश्रुषा पर सोवियत सरकार का सबसे अधिक ध्यान है, इसे कहने की आवश्यकता नहीं है। बालोद्यान का लक्ष्य क्या है, इसके बारे में एक सोवियत शिक्षा शास्त्री के निम्न वाक्य पठनीय हैं—"बालोद्यान तीन से सात वर्ष तक की चार श्रेणियों के बालक बालिकाओं के लिये है। यहां बच्चे १०-१२ घंटे रहते हैं। कुछ बालोद्यान में इतवार को छोड़कर बाकी हफ्ते भर बच्चे रह सकते हैं। बालोद्यान स्थापित करने का उद्देश्य है बच्चों का अच्छी तरह लालन-पालन, और मां को काम करने की छुट्टी। बालक की शारीरिक और मानसिक शक्तियों के विकास के लिए यहां खेल के मुख्य साधन रखे गए हैं। बालक अपने जीवन के चारों ओर की परिस्थितियों में सक्रिय भाग लेता है और इस प्रकार अपने शारीरिक विकास को बढ़ाता है। बच्चों में जो खेल खेले जाते हैं, जो सीधे सादे मौखिक पाठ कराये जाते हैं, वह एक निश्चित व्यवस्था के अनुसार होते हैं, लेकिन उसमें यांत्रिक शुष्कता का पता नहीं, जो कि फ्रैबिल और मौंतेसरी प्रणाली में पाई जाती है। सोवियत शिक्षा क्रम लड़कों की भिन्न भिन्न आयु की मनोवैज्ञानिक विशेषताओं को ध्यान में रख कर तैयार किया गया है। उसमें इस बात का ध्यान रखा जाता है— कि बच्चे की दिलचस्पी खेलने में जल्दी पैदा होती है, और वह हर एक चीज को साकार रूप में समझने की कोशिश करता है। खेलों के चुनने में लड़कों को स्वतंत्रता रहती है। सोवियत बालोद्यान शिक्षा प्रणाली में बच्चों में निम्न भावों को पैदा किया जाता है— स्वतंत्रता प्रेम, स्वास्थ्यकर आदत, परिश्रमशीलता, तथा चीजों का अच्छी तरह उपयोग में लाना, उनकी रक्षा करना, बड़ों के प्रति सम्मान, और सुन्दर बर्ताव। यह बालोद्यान के काम का मुख्य आधार है। हर २५ बालक पर एक शिक्षिका होती है, जो इससे कम पर भी हो सकती है।" वह बालक की चाची थी, जिसके प्रेम को बालोद्यान छोड़ने के बाद भी लड़के नहीं भूलते। साशिका

शिक्षा-प्रणाली ही नहीं, दूसरे भी इस तरह के आयोजनों में केवल प्रोपेगेंडा की ओर ध्यान नहीं दिया जाता, ऐसा करने के लिये दस-बीस बालोद्यान और शिशु भवन काफी होते लेकिन ऐसे दिखावे से माताओं के लिये काम का समय नहीं मिल सकता था। लड़ाई के खतम हुए अभी एक महीना नहीं हुआ था। कि १ जून १६४२ को १८ हजार बालोद्यान थे, जिन में ७० लाख रूसी प्रजातंत्र के बच्चे परवरिश पा रहे थे। १६४५ में रूसी संघ प्रजातंत्र के १४,३३५ बालोद्यानों में ७२, ३०, ००० बच्चे रहते थे। इन के अतिरिक्त ग्रीष्मावासों में २० लाख बच्चे अलग रक्खे गये थे।

मेरा ध्यान मध्य एसिया की तरफ विशेष तौर से था। मैं समझता था, भारत की स्थिति वही है जो कि बोलशेविक क्रांति से पहिले मध्य एसिया की थी। इसलिए वहां साम्यवादी तजुर्बे ने कितनी सफलता पाई, क्या परिवर्तन किये, इसको सावधानी से देखना बहुत लाभदायक होगा। मैं अब की बार मध्य एसिया नहीं जा सका, तो भी पुस्तकों से मैंने जितना भी ज्ञान प्राप्त हो सकता था, उतना प्राप्त किया और मध्यएसिया के विद्यार्थियों और दूसरों से भी मिलकर सूचना प्राप्त की। मुझे थोड़े ही अध्ययन के बाद पता लग गया, कि उपन्यासकार सदरुद्दीन ऐनी के ग्रन्थ मेरे काम में बड़े सहायक होंगे। ऐनी का पुत्र कमाल हमारे ही विश्वविद्यालय में पढ़ता था, यद्यपि वह हमारे विभाग से सम्बन्ध नहीं रखता था। ऐनी के "दाखुन्दा", "गुलामन", "अदीना" "यतीम" और "सूद-खोर की मौत" का मैं हिन्दी में अनुवाद भी कर चुका हूँ। उनके दो बड़े उपन्यासों का अनुवाद तो वहीं उर्दू में कर डाला था। ऐनी अपनी भाषा का प्रथम उपन्यासकार है। ऐनी से पहिले ताजिक भाषा में कोई पुस्तक नहीं थी। ताजिक भाषा फारसी की एक बोली थी। लेकिन क्रांति ने उसे शिक्षा का माध्यम बनाकर साहित्यिक भाषा के रूप में परिणत कर दिया। किसी भाषा के पहले मौलिक लेखक के रास्ते में जो कठिनाइयां होती हैं और जिनके कारण जो दोष दिखाई पड़ने हैं, वह ऐनी में मिलते हैं। उसके दोष हैं, विशृंखलता, योजनाहीनता, पात्रों के अयोग्य संवाद। लेकिन गुण कहीं अधिक हैं। ऐनी दृश्यों का चित्रण बड़े

ही सुन्दर और स्वाभाविक ढंग से करना जानता है। मनोवैज्ञानिक चित्र करने में भी वह सिद्धहस्त है। क्रांति-प्रतिक्रिया का बड़ा सुन्दर [illegible] [illegible] चित्र ही खींचे। [illegible] प्रतिक्रिया [illegible], [illegible] साहित्य जैसे [illegible] ही दूसरे तात्त्विक सम्प्रदायों की पुस्तकों को भी मैं पढ़ता था। मुझे अफसोस इसी बात का था, कि लेनिनग्राद के पुस्तकालयों में सभी पुस्तकें नहीं थीं। मैंने उनके लिए सुनिर्वाचित पुस्तकालय [illegible] [illegible] पुस्तकालय लोक पुस्तकालय जैसे बड़े पुस्तकालयों की [illegible] [illegible]।

२१ सितम्बर को लोला का भांजा सेर्गेई आया। लेनिनग्राद के घिरे के दिनों में मरगी के माता पिता दोनों भूख से मर गये। वह जिस घर में रहते थे, उस पर बम गिर उसकी चारों छतों का बचना नीचे तक चला गया। इस वक्त वह मकान खंडहर जैसा खड़ा था। लड़का, जिसे [illegible] नियमानुसार सियोंजा बना दिया जाता है, आज से रेडियो आपरेटर का काम करता था। अब सतायें विघटित हो रही थीं, इसीलिये वह वहां से छुट्टी पा गया था। वह बड़ा पक्कड़ सा नौजवान था। उसे न काम की चिंता थी, न मान की। पैसा हाथ में आया, तो दो दिन में ही [illegible] खतम कर दिया और फिर कभी मौसी के यहां, और कभी दूसरे मित्र के यहां। किसी काम पर टिककर रहना भी उसे पसन्द नहीं था। अगले साल उसने साइबेरिया की एक रेलवे लाइन में काम लिया था। लेकिन जाड़ा आरम्भ होते ही वहां से काम छोड़ खाली हाथ लेनिनग्राद चला आया। आदमी वैसे बहुत अच्छा था। कोई काम होने पर बैठा नहीं रहना चाहता था। अगले साल उसने [illegible] पुरानी भूमि में कोई काम स्वीकार कर लिया और जाड़े के आरम्भ होते होते वहां से भी चला आया। साथ ही एक कारेलियन तरुणी को भी लेता आया। बेचारी अगर अपने गांव में रहती, तो वहां खेती बारी करती, यहां लेनिनग्राद नगर में उसके करने लायक कोई काम नहीं था, और सियोंजा फिर सोवियत के किसी दूसरे कोने में अकेले ही जाने की तैयारी कर रहा था। वह एक तरह का सोवियत घुमक्कड़ था। सियोंजा के उदाहरण से मालूम होगा, कि यह

आपेगंडा जितना भूग है कि रूस में हरेक आदमी से जबरदस्ती काम लिया जाता है। जहाँ तक मज्दूर का सबध है, वह कोई जबरदस्ती नहीं करती। अपनी इच्छानुसार आदमी एक काम छोडकर दूसरा काम पकड सकता है। हा, एक-दो महीने पहिले अवश्य काम छोड़ने की सूचना देनी पड़ेगी, ताकि प्रबन्धक दूसरे को नियुक्त कर सके। मिर्योजा के उदाहरण से यह भी पता लगेगा, कि रूस में अभी पश्चिमी युरोप की तरह बाप से खाने का बिल देना तो दूर है सम्बन्धी को भी लोग समेटकर रखना चाहते हैं, और एक दूसरे की सहायता करना अपना कर्तव्य समझते हैं।

२२ सितम्बर से अब थोडी थोडी जाडे की सर्दी आरम्भ हो गई थी। जाडे की टोपियों के सिवा लोग अब जाडे के ओवरकोट और पोशाक पहनकर सडकों पर दिखाई पडने लगे। जाडों की टोपी अक्सर नहीं चमड़े की होती है।

रूसी नाट्यमंच अपने बैले (मूक नाट्य) के लिए विश्वविख्यात है। मुझे ओपरा पसन्द नहीं आता था किन्तु नाटक बहुत पसन्द था, और सबसे अधिक पसन्द थी बैले। २६ सितम्बर को किरोफ (पुराना मारिंस्की) थियेटर में प्रसिद्ध नाट्यकार चेकोवस्की की बैले "सुप्ता सुन्दरी" (स्पेशचया ममाक्रिसा) देखने गया। नृत्य सुन्दर, दृश्य मनोहर थे। शाला के पार्श्वों तल और सामने की सीटें खचाखच भरी हुई थीं। सौ के करीब अभिनेता और अभिनेत्री इस खेल में भाग ले रहे थे। बच्चों की कहानी (पेरोरी) को आधार बनाकर चेकोवस्की ने इस खेल को पिछली शताब्दी में तैयार किया था। दो शताब्दी पहिले के समाज को लिया गया था, इसलिये वेश भूषा और दृश्यों में इसका पूरा ध्यान रखा गया था। नाच में भालुओं, बिल्लियों और बन्दरों के भी नाच थे। सोवियत नाट्यमंच बहुत पुराना है, उसी तरह उसके दर्शकों की परम्परा भी पुरानी है। जारशाही जमाने में स्त्रियां अपने बढ़िया से बढ़िया आभूषण, वस्त्र और सज्जा के साथ आती थीं, आज भी नाटक देखने के समय सोवियत नारी अपने को अत्यन्त सुन्दर रूप में सजाधजाकर वहां पहुँचती है। विश्राम के समय जब नर नारी हाथ मिलाये बड़े हाल में मन्द गति से एक दूसरे के पीछे टहलते

हैं, उस वक्त नये से नया फैशन और बढ़िया से बढ़िया बन संवर्य सौंदर्य आप देख सकते हैं। वहाँ दर्शकों से दर्शिकाओं की संख्या अधिक थी और दर्शकों में भी अधिकतर सैनिक थे। अभी अभी लड़ाई से वह बाहर हुए थे, इसलिये सैनिक वेष का अधिक दिखाई देना स्वाभाविक था। दूसरे देशों में अपने सैनिक वेष या सैनिक तमगों को दिखाने का उतना शौक नहीं है। और अगर तो तमगों की जगह पर केवल उनके फीतों को कोट पर टाँग लेना पर्याप्त समझते हैं, लेकिन सोवियत सैनिक १५-२० तमगों को भी छाती पर लटकाना आवश्यक समझते हैं। कुछ इसके अपवाद भी हैं। लोला पिछले दिनों में लेनिनग्राद में रहकर काम करती रही, उसने अपने पुस्तकालय की कर्मी से रहा करने काफी सावधानी से काम लिया, इस कारण उसे भी दो तमगे मिले हुए थे, लेकिन मैंने उसे कभी उन्हें लटकाये नहीं देखा।

२७ सितम्बर से सर्दी काफी बढ़ गयी। तापमान हिमबिन्दु के पास पहुँच रहा था। घर के भीतर भी सर्दी थी। मकान गरम होने का आशा कम ही मालूम होती थी। युद्ध के बाद नई व्यवस्था करने में समय लगता है, फिर घर अगर एकाध महीना गरम नहीं हुआ, तो उससे चार्जा के उत्पादन में तो कमी नहीं हो सकता। लोग थोड़ी सी तकलीफ महसूस करेंगे, लेकिन उसके तो वह लड़ाई के दिनों से आदी हो चुके थे, जबकि सारे जाड़े भर मकान को गरम नहीं किया जा सकता था। घर के कार्यालय से मालूम हुआ, कि इस साल शायद नवम्बर में मकान गरम किया जाये, क्योंकि कोयले के खर्च के लिये पहिले कारखानों को देखना पड़ता है। युनिवर्सिटी में भी लकड़ी तो काफी रखी हुई थी, लेकिन मकान गरम करने के लिये नौकर नहीं मिल रहा था। मजूरों की बहुत जगहों में माँग था, फिर वह वहीं जाना चाहते थे, जहाँ वेतन अच्छा हो। युनिवर्सिटी के अधिकांश मकान सौ डेढ़ सौ बरस पुराने हैं, जिस वक्त केन्द्रीय-तापन का आविष्कार नहीं हुआ था और लकड़ी जलाकर मकान को गरम किया जाता था। केन्द्रीय तापन में बहुत सुविधा होता है। सक

कमरों के लिए एक जगह पानी गरम होता और उस के द्वारा हरेक कमरे में पहुँचा कर चिपटे-चौड़े नल पुर्जों द्वारा कमरे की हवा गरम करदी जाती है। उसमें इतने आदमियों की आवश्यकता भी नहीं होती, न लकड़ी चीरकर तल्ले पर पहुँचाना पड़ता। हमारे पढ़ाने के कमरे न विषय के अनुकूल बटे थे, और न क्लास के अनुसार ही। एक दर्जन से अधिक कमरों को तो मैंने देखा न होगा अगर अध्यापक या क्लास के ख्याल से कमरे बाट दिये जाते, तो मकान गरम रखने में सुभीता होता। छात्रों में लड़कियाँ अधिक थीं। सोवियत के नर नारी शारीरिक श्रम को बुरी दृष्टी से नहीं देखते। वह नीचे जमा किये हुए टाल से लकड़ियाँ उठा लाने और कमरा गरम करने की कोशिश करते। कुछ समय बाद देखा, कि आंगन में एक लकड़ी चीरनेवाली बिजली की मशीन भी लग गया है, जिससे लकड़ी चीरने या टुकड़े करने का सुभीता हो गया था। तो भी जब विद्यार्थी एक कमरे को गरम करके दूसरे कमरे में चले जाते, तो वहाँ फिर से गरम करने की जरूरत पड़ती। २५० सौ रूबल में काम करने वाला कहाँ से मिलता? हमारे विभाग में एक या दो स्त्रियाँ काम करने को मिली थीं जो किसी किसी कमरे को गरम रखतीं। सोवियत में मानव की समानता का उदाहरण यहाँ देखने को मिलता। साधारण अशिक्षित सी स्त्री लकड़ी जलाने का काम कर रही है। उसे महीने में दो ढाई सौ रूबल मिलते हैं। उसी जगह कोई अकदमिक प्रोफेसर पढ़ाने आता है। अकदमिक होने से उसको ६ हजार रूबल मासिक पेंशन सम्मानार्थ मिलती है, प्रोफेसर होने के कारण ऊपर से साढ़े चार हजार रूबल मासिक और वेतन मिलता है। दूसरे कामों की आय को मिलाने पर उसे महीने में बारह पन्द्रह या अधिक हजार रूबल मिल रहे हैं। लेकिन लकड़ी झोंकनेवाली स्त्री के सामने जाने पर अकदमिक प्रोफेसर अपनी टोपी उतारकर उसके सामने अभिवादन करता है, यदि उसका हाथ कालिख में सना नहीं है, तो उससे हाथ मिलाता है, यदि वह उसे अपने घर पर निमंत्रित करता है, तो एक साथ बैठ कर मेज पर चाय पीता है। इस प्रकार स्त्री अपनी शिक्षा और योग्यता की कमी को ही अपने वेतन की कमी का कारण समझती है, लेकिन

जहां तक मनुष्य का मनुष्य के साथ सम्बन्ध है, वह भी अपने को आदमी बराबर समझती है। यही नहीं बल्कि यदि उस स्त्री के लड़के या लड़कि तो उन्हें युनिवर्सिटी तक अपनी पढ़ाई करने में कोई बाधा नहीं है, क्योंकि मां की जेब पर निर्भर नहीं है, बल्कि लड़के लड़की की इच्छा पर। आ फी सदी विद्यार्थी सरकारी छात्रवृत्ति पा रहे हो, वहां गरीबी के कारण उच्च शि वंचित होने की किसी को संभावना नहीं है।

मैं अक्सर ११ बजे अपने यहां से युनिवर्सिटी जाता, और तीन हां से ४ से चल देने की कोशिश करता, यदि पढ़ाई के लिये रहने की न होती। सवेरे नो बजे और शाम के ५ बजे के समय ट्रामों में बड़ा भीड़ बीज वक्त तो चढना मुश्किल हो जाता। मैंने पीछे एक युक्ति निकाली। देखा कि नगर के केन्द्रीय स्थान की ओर जानेवाली ट्राम जिस वक्त भरी है, उसी वक्त दूसरी तरफ को जानेवाली ट्रामों में अधिकतर खाली रह चार-पांच पैसा (पन्द्रह कोपैक) और कुछ मिनटों का सवाल था। मैं ट्राम से उल्टी ओर चला जाता, आगे, केन्द्र की ओर आनेवाला ट्रम भरी पर सवार होकर केन्द्र में पहुंचने पर भाड़ तो होती, लेकिन बैठने की पहिले मिल गया रहती। वस्तुत लड़ाई के कारण लेनिनग्राद के लिये ट्राम-डब्बा की आवश्यकता थी उतने नहीं मौजूद थे, इसीलिये इतना रहती थी।

११ अक्तूबर को सर्दी अब अपने यौवन की ओर जा रही थी। पानी जमने लगा था। बाहर जाने पर मेरे कान ठंडे होने लगते थे। कितने हा नंगे हो गये थे, और कितनों ही की पत्तियां पीली पड़ चुकी देवदार के झाड़ तो कभी पतझड़ का मुकाबिला नहीं करता था, और उ तरह के कुछ और हिम-जीवी पेड़ थे जिनके पत्ते अब भी हरे रह गये थे

स्नानगृह— अभी तक स्नान अपने घर में ही कर लेता था, कि जाड़ों के आगमन से गरम स्नानगृह की आवश्यकता थी। लेनिनग्राद के

गृहस्थ में ऐसे स्नानगृह हैं। १२ अक्तूबर को मैं पहिले पहल सार्वजनिक स्नान गृह में गया। ७ रूबल देकर टिकट खरीदना पड़ा। स्नानगृह के भीतर दो अवधिक स्त्रियाँ थीं। जिसको टिकट मिल गया था, वह उस से जाकर प्रबन्धिका को देता, जो उसे एक धातु का टुकड़ा देकर आल्मारी का ताला खोल देती। आदमी अपने सारे कपड़ों को उस आल्मारी में बन्द कर देता। हाँ, सारे कपड़ा का एक भी सूत उसके शरीर पर नहीं रह जाता। वहाँ सभी पुरुष ही पुरुष थे स्त्रियाँ वहाँ दो परिचारिकायें थीं। लोग निःसंकोच नंग मादरजाद थे, मुझे पछतावा हो रहा था, कि क्या यहाँ आया, घर में ही गरम पानी करके नहा लेता, लेकिन अब तो आ चुका था। देखादेखी कोट-पेंट निकाल भी चुका था। सब निकालने पर भी जाँघिया निकालने की हिम्मत नहीं हुई। परिचारिकायें बाबा आदम के नग्न पुत्रों के बीच में बड़ी बेतकल्लुफी से इधर से उधर घूम रही थीं और मैं था जो लाज के मारे धरती में गड़ा जा रहा था। आखिर जाँघिया पहिने ही मैं आल्मारियोंवाले कमरे से नहाने के कमरे में गया। वहाँ कई पाँतियों में बेंच रखी हुई थीं, ठंडे और गरम पानी के कई नल जगह जगह पर लगे हुए थे। बहुत से लोहे के गोल बर्तन (एक लोटा पानी आने लायक) रक्खे हुए थे। लोग दो बर्तनों में अपनी इच्छानुसार गरम पानी भरकर बेंचों पर बैठ कर नहाते। कितने ही शरीर मलने में एक दूसरे की सहायता करते थे। मैं अपनी नैया अकेले ही खे रहा था। जब मैंने वहाँ आध घंटा स्नान करते, पैर मल मल कर धोते, आसपास के दूसरे आदमपुत्रों को देखा, तो मुझे अपनी बेवकूफी पर आश्चर्य होने लगा। मैंने सोचा शायद यह लोग समझें, कि इस आदमी को कोई बीमारी है, इसलिये यह जाँघिया पहिने हुए है। मैंने उसी वक्त कान पकड़ा और निश्चय कर लिया, कि अगली बार से फिर ऐसी बेवकूफी नहीं करूँगा। अब तो हर हफ्ते नहाने आना था। तब से देख लिया, कि सनीचर के रोज बड़ी भीड़ रहती है। इतवार के दिन उससे कम और सबसे कम सोमवार को होती है, इसलिये मैंने सोमवार को अपने नहाने का दिन निश्चित कर लिया। स्नानागार में वाष्प स्नान (दूस) का भी प्रबंध था। लेकिन उसकी कल बिगड़ी

हुई थी, जो कि मेरे पच्चीस मास के रहने तक न बनी। शायद नया स्नानघर बनने जा रहा था, जिसके कारण मरम्मत करने की आवश्यकता नहीं समझी गई थी। स्नानगृह में स्नान करके लोग वैसे ही पानी चूते आ मारियों के पास आते और फिर अपने तोलिया से शरीर पोंछते। अगर कोई चाहता, तो उतने समय में अपने कपड़ों को परिचारिकाओं को देकर इस्त्री भी करवा सकता था। एक रूबल दे देने से काम चल जाता। बिना राशन के लेने पर हमारे यहाँ की चार पांच आने की साबुन की टिकिया का दाम पचास साठ रूबल था। पचीस जमे साबुन की टिकिया का दाम सो रूबल (पैंसठ रुपये) होता, साबुन का दाम भी यहाँ साठ रूबल से कम का नहीं था। मैं अपना पैंसठ रुपये का हल्का और बीस रुपये का डब्बा वहीं भूल आया, वह फिर यहाँ मिलनेवाला था। मुझे यह संतोष हुआ कि डब्बा और साबुन में ईरान और हिन्दुस्तान में सस्ता था, जहाँ उसका दाम एक सवा रुपये से अधिक नहीं था।

१३ अक्तूबर को असली जाड़े की ऋतु के आगमन का मुझे पता लगा, जबकि सवेरे ८ बजे जरा जरा बरफ पड़ती देखी। अब वर्षा का समय था। पत्ते बहुत कम हरे रह गये थे। अगले दिन तो बरफ रूई के बड़े बड़े फाहों का तरह गिर रही थी। अभी सभी भूमि उससे ढकी नहीं था। दरख्तों के ऊपर-नीचे पड़ा ताजा बरफ कितनी सुन्दर मालूम होती है। दोपहर बाद ताजा गिरा बरफ पिघल गया, और फिर कच्ची जगहों पर कीचड़ उठने लगा। लोगों ने बतलाया, अभी तीन चार सप्ताह तक कीचड़ की दुनिया रहना होगा, फिर जमान रुपहली फर्श बन जायगी। यह समय सचमुच बहुत अच्छा नहीं मालूम होता था। ऊपर नरम बरफ पड़ी हुई है, लेकिन नीचे पानी कीचड़ हो। मुझे तो अब सर्दी मालूम हो रही थी। कनटोप को पहिने बिना बाहर नहीं निकलता था, लेकिन अभी लोग नंगे हाथों काम कर रहे थे और बहुतरे लोग तो सारे जाड़े भर कान ढांकने की आवश्यकता नहीं समझते थे, वह इतने सहिष्णु हो गये थे।

१४ अक्तूबर को सवेरे धूप निकली थी। जहाँ साग-भाजी के

लहरा रहे थे, वहां अब सफेद बरफ की चादर पड़ी हुई थी। सरदी खूब थी और मकान भी खूब ठंडा था। कपड़े सुखाने के लिये बाहर टांगे थे। शाम तक कुछ सूख गये और जो गीले थे वह बरफ के रूप में परिणत हो गये। एक दिन रस्सी पर कपड़े को टांगा गया था, रस्सी इतनी बरफ बन गई थी, कि हम हाथ से उसे खोल नहीं सके। हाथों को नंगा करके खोलने पर वह खुद जवाब देने लगते, अन्त में खोलने की जगह रस्सी को काट लेना ही अच्छा समझा।

२१ अक्तूबर को दो बजे दिन से बड़े जोर की बरफ पड़ने लगी। रूई के फाये आकाश से नाचते हुए जमीन की ओर आ रहे थे। अब सारी खुली जगहें बरफ से ढँक गयी थीं। पांच महीने तक शायद अब वह स्थान नहीं खोलेगी। लड़के बरफ में खेल खेलने लगे थे। कोई पैरों में बांधने वाली स्की पर दौड़ रहा था, कोई स्केटिंग के खेल में लगे हुए थे। छोटे छोटे लड़के बिना पहिये की अपनी गाड़ियों (साना) को लिये किसी साथी को ढूँढ़ने में लगे हुए थे, वह कोई ऊँची जगह देखकर सानी में लड़के को बैठा छोड़ देते, और सानी फिसलती हुई नीचे चला जाता।

२४ अक्तूबर को घर के भीतर भी तापमान ८° सेंटीग्रेड था। २८ को वह ७° हो गया—हिमबिन्दु शून्य बिन्दुपर होता है। अभी तक कई दिनों तापमान शून्य बिन्दु पर था, तभी तो बरफ जमकर बैठी हुई थी। सात डिग्री पर तापमान के जाते ही सारी बरफ गल गया, जहां तहां पानी ही पानी दिखाई पड़ने लगा। २६ अक्तूबर को सबेरे बरफ की चादर सभी जगह पड़ी हुई थी, लेकिन सर्दी उतनी अधिक नहीं मालूम होती थी। बरफ जब अच्छी तरह पड़ती रहती है, और हवा न चलती हो, तो सर्दी सचमुच ही कम हो जाती है। २७ अक्तूबर को फिर बरफ पिघलती दिखाई पड़ी। अब मालूम हो गया कि बरफ और जल का आंख मिचौनी शायद एकाध हफ्ता इसी तरह रहे।

मुझे यह आंखमिचौनी पसन्द नहीं थी, क्योंकि कीचड़ से बचना मुश्किल था। वैसे बरफ से ढंकी हुई पृथ्वी और देवदारों से भरे हुए बन दुनिया

के सबसे सुन्दर प्राकृतिक दृश्य हैं। वह भी समय आ ही जायगा, यह दिन था, लेकिन जब बड़ी सावधानी के बाद भी जाड़ों में दो तीन बार फिसल धरती पकड़ना पड़ा, तो अच्छा नहीं लगा। यही नहीं कि लोगों के हँसने का ख्याल आता था, बल्कि अचानक गिरने से कुछ चोट भी लग जाती थी। तब मुझे मालूम हुआ, कि सर्द मुल्कों के लोगों के लिये स्केटिंग करना जरूरी है।

२० अक्तूबर को फिर मैंने बेले देखने का टिकट लिया था। बाहर के लोगों को टिकट मिलने की दिक्कत हो सकती है, किन्तु मैं पा सकता था। इन्तूरिस्त (सोवियत की यात्रा एजेन्सी) का काम विदेशी मेहमानों को हर तरह से सहायता पहुँचाना है। मैं विदेशी प्रोफेसर था, और पिछले चार महीनों में ऑफिस में मेरा काफी परिचय हो गया था। तो भी मैं नाच बहुत ज्यादा देखने नहीं जाता था। उस दिन चैकोव्स्की का मूक नाट्य "हंस सरोवर" (लेबेदिनोय ओजेरो) था, चैकोव्स्की की मुझ पर भी धाक थी, उसके उस्तादी संगीत को समझने की मेरे में शक्ति नहीं थी, लेकिन बेले को बहुत पसन्द करता था। उसी मारिन्स्का थियेटर में जाना था। नाटक सात से ग्यारह बजे तक हुआ। दो टिकटों के लिये हम छप्पन रूबल (प्रायः ३६ रुपये) देने पड़े। इसे सस्ता ही कहना चाहिये। थियेटर की एक भी सीट खाली नहीं थी और लोगों ने दो-दो हफ्ते पहिले से टिकट लेने के लिये मार की होगी। अभिनेत्रिया म० ग० न० किरिल्लोवा रूसी-संघ प्रजातन्त्र की जन कलाकार की पदवी से विभूषित थी, दूसरी अभिनेत्री व० र० इवानोवा भी पदवी से विभूषित थी। अभिनेता अ० न० साथानिको भी प्रसिद्ध कलाकार थे। राजकुमार सिदफ्रिद का पार्ट कलाकार उस्ताफ ने किया था। पहिले दृश्य में एक बड़े भोज का दिखलाया गया था। राजकुमार ने दावत दी थी, जिसमें बहुत से नर-नारी शामिल हुए थे। बेले का मतलब ही है, जिसमें वाणी का पूर्ण बायकाट हो, इसलिये मूक संकेतों से सारे काम चल रहे थे। गोया निम्न स्वर में यहाँ अभिनय हो रहा था वह अनुराग भावा थी। बेले की सफलता के

क ही प्रमाण है, कि आदमी तो तिना वाणी के प्रयोग के सारी बातें साफ-साफ लूम हो। बलें अपने नृत्य के कौशल के लिये भी प्रसिद्ध माना जाती है। जकुमार जिग्फ्रिद ने बाण से उड़ते हुए हंस को मारा। उस वक्त सामने सरो र का दृश्य जिस तरह का था, उसे देखकर कोई नहीं कह सकता, कि हम नाटक देख रहे हैं। सचमुच वहां सुन्दर पहाड़ों से घिरा एक विशाल सरोवर था, जिसमें पानी की लहरें भी उठ रहीं थीं, और लहरों का क्षीण स्वर भी सुनाई दे रहा था। उसी सरोवर पर से हंस उड़ता जा रहा था, जिसे राजकुमार ने बाण से बेध दिया था। आगे २४ नर्तकिया (नर्तकियां) और उतने ही नर्तकों ने बड़ा सुन्दर नृत्य किया। द्वितीय दृश्य में सरोवर तरंगित था, जिसके ऊपर हंस-पंक्तियां धीरे धीरे तर रही थीं। राजकुमार का पार्ट लेने वाले उलानोफ ने अपने नृत्य से लोगों को मुग्ध कर दिया। तृतीय दृश्य में राजा का दरबार था। राजा-रानी सिंहासन पर आसीन थे। यह राजकुमार के जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में हो रहा था। राजकुमार वहीं एक नारी के ऊपर मुग्ध हो गया। फिर अपनी प्रियतमा के ढूंढने के लिये राजकुमार को कितने ही देशों में भटकना पड़ा। जिन देशों की विशेषता वहां के नृत्यों द्वारा प्रकट की गई थी। इस में स्पेन के भी नृत्य थे पोलैंड के भी। चौथे दृश्य में भी कई सुन्दर नृत्य थे। मारीसिंस्की थियात्र के दरवाजे पर ट्राम का अड्डा है। नाट्यशाला के भीतर से नर नारियों की भीड़ जो निकली तो, ट्रामों में जगह पाने में काफी समय लगा। खैरियत यही थी, कि सभी लोग एक तरफ नहीं जा रहे थे। सब अपने अपने नम्बर की ट्राम की खोज में थे। हम १२ बजे रात को उस दिन घर लौटे। चमड़े के ओवरकोट को पहनने से अब सरदी नहीं मालूम देती थी। वस्तुतः लेनिनग्राद की सरदी में मोटे से मोटा ऊनी कोट भी बहुत सहायक नहीं होता, यदि उसको चमड़े की सहायता न प्राप्त हो।

क्रांति महोत्सव—बोल्शेविक क्रांति को अब भी रूस में अक्तूबर क्रांति कहा जाता है। पुराने पंचांग के अनुसार क्रांति अक्तूबर में हुई थी, यद्यपि आज कल महोत्सव प्रतिवर्ष ७ नवम्बर को मनाया जाता है। रूस का यह सबसे बड़ा

महोत्सव दिन (दिना अक्तूबर) है। हफ्ता भर पहिले से ही नगरों और गाँवों में तैयारियाँ होने लगती हैं। युनिवर्सिटी में ४ नवम्बर को ही देखने से मालूम होता था, कि महोत्सव नजदीक है। ७ नवम्बर के दिन को जलूसों का जनसागर उमड़ता, उसमें छोटी संस्थाओं को कौन पूछता, इसलिये वह अपने प्रोग्राम को पहिले ही से रखने लगती हैं। ८ नवम्बर को हमारे पास के बालोद्यान ने अपना महोत्सव मनाया था। जिनके बच्चे इस बालोद्यान में रहते थे, उनके माता पिता निमंत्रित थे, और प्राय सभी सम्मिलित भी हुए थे। लड़कों ने बाहर भी तैयारी की थी, लेकिन अधिकतर कार्यवाही बालोद्यान के हाल (हाल) में सम्पन्न हुई। बच्चे, मालूम ही है चार और सात बरस के बालोद्यान में रहते हैं। माता पिता ने आज अच्छे अच्छे कपड़े पहिनाकर अपने लड़कों को भेजा था। लाल झंडियाँ लिये हुये दो पाँती में जलूस निकालते, बालोद्यान के सभी लड़के लड़कियाँ हाल में फिरे, फिर बाजे के साथ कुछ गाने हुए। उनकी समाप्ति के बाद "उरा" (हुरा) नाद भी आवश्यक था, फिर नाच। इस प्रकार आज प्राय १० बजे से शाम के ४–८ बजे तक उनका कोई न कोई प्रोग्राम चलता रहा।

७ नवम्बर के दिन सड़कों पर चलना आसान नहीं था। नामवाय नगर के केन्द्र (पुराने हेमन्त प्रासाद के मैदान) तक नहीं जाती थी। नगर की मुख्य सड़क नेव्स्की से चलना भी मुश्किल था। रास्ते में न जाने कितने जलूस अपने झंडों, पताकों और नेताओं की तसवीरों के साथ चले जारहे थे। हम सात बजे घरसे निकले थे। इस समय भी वहाँ भीड़ दिखाई पड़ती थी। होटल यूरोपा के चौरस्ते तक ही जाया जा सकता था, दूसरे रास्ते में भी इसीतरह रोक थी। आगे वे ही लोग जा सकते थे, जिनके पास पास थे। हमें मालूम नहीं था, नहीं तो पास मिलना कोई कठिन नहीं था, इसलिये चक्कर काटने के लिये मजबूर हुये। प्रासाद के ऊपर की ओर दूसरे पुल से नेवा नदी को पार किया। सारा नगर जलूसमय मालूम होता था। जहाँ तहाँ सैनिकों के भी जलूस थे। तुषारकण बरफ के नाम पर जब तब ही पड़ते थे किन्तु आसमान बादलों से ढँका

आ था, जिसके कारण सरदी भी कुछ बढ़ गया था। महोत्सव का दिन था फिर शराब पिये बिना कैसे गुजारा हो सकता था? कितनों ने सोचा—शाम की राह सवेरे से ही शुरू करदो—"शुभस्य शीघ्रम्"। तो भी मीलों के सफर में कोई ही शराबी मिले, यद्यपि वह मोरियों में लुढ़के नहीं थे। हम जलूस की समाप्ति के समय तक सड़क पर नहीं रह सके, तो भी साढ़े आठ से चार बजे तक पूरे साढ़े सात घंटे चलते ही रहे। जहां तहां मिठाइयों और खाद्य-वस्तुओं से सजी हुई लारियां चलती फिरती दुकान का काम दे रही थीं। सबके ऊपर अपनी अपनी फैक्टरियों का नाम था। लड़कों के लिये खिलोनों और मिठाईयों का पूरा हाट लगा हुआ था। चीजों का दाम साधारण राशन विहीन दुकानों से कुछ कम अवश्य था, लेकिन तो भी इतना नहीं था, कि लोग टोकरी की टोकरी चीजें खरीद लाते। सारे शहर में बरफ का कहीं नाम नहीं था। प्रकृति ने अपना ऐसा नियम बना रखा है, कि जहां निश्चित बिन्दु पर तापमान पहुंचा कि बिना पहिले से तैयारी किये यकबयक पानी भाप बन जाता है, उसी तरह एक निश्चित बिन्दु तक तापमान के गिरने पर वह हिम बन जाता है। नवम्बर के आगे भी कभी कभी इस तरह तापमान की आंखमिचौनी देखी जाती थी। उस वक्त बरफ के पिघलने से चारों तरफ पानी ही पानी नजर आता था। हां, वृक्षों की या मकानों की छाया में सूर्य की किरणों के बहुत कम पहुंचने से बरफ नहीं गलती थी। इस साल बरफ कम पड़ने की बड़ी शिकायत थी।

९ नवम्बर को अभी भी मकान गरम नहीं हो रहा था। सरदी बहुत थी, जिसमें लिखना बहुत मुश्किल था। बिजली का चूल्हा जलाया, मगर उसमें कोई काम नहीं बना। बारह नवम्बर से जब मकान कड़ाय, तापन द्वारा गरम किया जाने लगा, तो मकान के भीतर का तापमान १०° या १२° से टीग्रेड हो गया और घर के भीतर आराम से काम किया जा सकता था। लेकिन अब एक दूसरी अड़चन आई। तपानेवाली मशीन दिन रात घर घर करती हुई चलती रहती, जो कानों को बुरा मालूम होता।

१३ नवम्बर को अब ११ बजे पढ़ाने के लिये मैं विश्वविद्यालय

गया, तो नेवा म सबेरे बरफ बहुत थी, मगर शामको सब पिघल गई थी। यूनिवर्सिटी के अधिकांश मकान नेवा के दाहिने तट पर हैं। जहां स दुनिया के दो सबसे विशाल गिरजों में से एक ईसाइकी-गिर्जा सामने दिखाई पड़ता था। हम निश्चित थे, कि अब बराबर के लिये घर अहोरात्र गरम रहा करेगा। किन्तु २६ नवम्बर को मशीन खराब होगई, ई मकान फिर ठंड पड गये। मशीनों के विरोधी कह सकते हैं, कि मशीन-युग व्यर्थ ही तकलीफ और तरद्दुद है। लेकिन क्या किया जाय, मशीन-युग से जाया नहीं जा सकता। उस समय घर तपाना बहुत खर्चीला होगा, जिसका उपयोग थोड़े ही आदमी ले सकेंगे। यह ठीक था, कि अभी सरकार और नगर संस्थाओं का सबसे अधिक ध्यान मकानों के बनवाने या मरम्मत कराने की ओर था। बहुत जगह तो उन्होंने जल्दी करने के ख्याल से, जिन दुतल्ले तिनतल्ले मकानों को इंजीनियरों की सम्मति अनुसार मजबूत देखा, उन्हीं के ऊपर एक-एक मंजिलें और खड़ा करना शुरू किया था। नींव से मकान बनाने और मकान के ऊपर एकाध मंजिल बढ़ाने में श्रम और सामग्री की बड़ी बचत थी, इसलिये ऐसा किया जा रहा था। बहुत से ऐसे मकान थे, जिनकी लकड़ी का सारा सामान जल गया था, और तीन तीन चार चार मंजिला दीवारें मजबूत खड़ी थीं, ऐसे मकानों को पहिले हाथमें लिया गया था, क्योंकि उनके बनने में जल्दी हो सकती थी। मकानों की मरम्मत और बनाने का काम बड़ी तेजी से हो रहा था क्योंकि नगरपालिका लोगों के कष्ट को जानती थी। सबसे ज्यादा आदमियों का ध्यान खींचा गया था। इसका एक प्रमाण मास्को, लेनिनग्राद जैसे नगरों की पुलिस पर पड़ा था। अब वहां सा म नब्बे सिपाही स्त्रियां थीं। चौरस्तों पर रास्तों को स्त्रियों के ही हाथ दिखा रहे थे। ट्रामवाय के कंडक्टरों में तो शायद पहिले भी ही स्त्रियां अधिक थीं, लेकिन अब ड्राइवरों में भी पुरुषों का पता नहीं था। दूकानों, आफिसों में तो पहिले से ही स्त्री राज्य था। सोवियतवाले सोचते हैं कि पुरुषों को भारी कामों में भेजना चाहिए, हल्के कामों को तो स्त्रियां कर सकती हैं। पार्टी तो मकान बनाने का विभाग चौबीसों घंटे अखण्ड काम करता था।

(इर ग्राठ आठ घट पर नप कमकर काम पर आ जाते थे। रात के अंधेरे को दूर करने के लिए रोशनी बिजली द रही थी, लेकिन शिम बिन्दु स नीचे के तापमान म घोली हुई सीमेन्ट मक-नों स बरफ बन जाता, इसरा हल उन्होंने भाइपों म भाप द्वारा कर लिया।

२४ नवम्बर स भारत की खबर सनन में आया। पता लगा, विद्यार्थियों और जनता के प्रदर्शन पर कलकत्ता म पुलिस न गाला चलाया। २१ २२ नवम्बर दानों दिन हडताल रही। २४ का कलकत्ता की हडताल का खबर रूसी पत्रों में छपी। मालूम हुआ, दो दिन गालियां चलीं। हडताल में दुकानदारों ने भी साथ दिया। ऐसी बड़ी खबर का भी जब दो तीन दिन बाद पढ़ने का मौका मिला, इसस आसानी से अन्दाजा लगाया जा सकता है, कि भारत की खबरें यहां कितनी दुलभ थीं, असल म खबरें तो पाठकों के लिये छापी जाती ह। रूसी पाठकों में कितने होंग, जा भारत की खबरों म दिलचस्पी रखते होंगे, इसलिये हम कुढने की आवश्यकता नहीं थी।

२७ नवम्बर को हमारे एक घनिष्ठ दोस्त तथा असहयोग के जमाने के सहकारी के पुत्र की चिट्ठी भारत स आयी। जब हम दोनों साथ काम करते थे, तो मित्र का यह छोटा सा बच्चा था। बड़ी प्रसन्नता हुई। लेकिन उपाधि में कुमार लिखने से कुछ सदेह की गंध आने लगी, तो भी डाक्टर की उपाधि से विभूषित देखकर संतोष हुआ। बहुत सालों बाद पता लगा, कि वह ग्रेजुएट तो होगये है, लेकिन घरफूंक बिगडे तरुण है। मैंने हाल ही म "धरती की ओर" एक रूसी उपन्यास के हिन्दी अनुवाद का संशोधन किया, उसमें एक पात्र इसी तरह का मिला। वह भी ग्रेज्युएट था, और उसने अपनी सारी सम्पत्ति और इज्जत का चट खाया था। कभी कभी आप कालिक कल्पनाओं का अस्तित्व एक व्यक्ति म भी बहुत आश्चर्यजनक रूप मे देखा जाता है। हमारे "कुमार" साहब पिता के मरने के बाद अकेले पुत्र होने से अकेला घर के अकेला मालिक बने। आदत पहिले ही बिगड़ चुका था। अधिक लाड़ प्यार और बुरी संगत से आदमियों के बिगड़ने की बहुत संभावना जरूर है, लेकिन कुछ के भीतर तो यह

मर्ज आनुवंशिक सा मालूम होता है, जिसका यह अर्थ नहीं कि आनुवंशिक माता से ही आये, उसकी तो बड़ी लम्बी चौड़ी होती है। जो बंधन सम्बन्ध के कारण बिगड़ता है, उसके सुधरने की सम्भावना है, किसी समय भी बह सम्भव हो सकता है। मैं नहीं जानता कि "कुमार साहब" किस तरह के स्वभाव हैं। उन्होंने अपने पिता की सम्पत्ति उड़ा डाली, पिता के सगे चचा या निःसन्तान थे, उनके जीवित रहते तक तो "कुमार साहब" कुछ सकोच में रहे, लेकिन उनके आँख मूँदते दो वर्ष भी नहीं हुए कि यह सारी सम्पत्ति हवा हो गई। गांव के किसी बाबा ने मंदिर में अपनी सम्पत्ति लगाकर ट्रस्ट बना दिया था, जिसमें दादा के पर "कुमार साहब" मान न मान मैं तेरा मेहमान बन गये, और उसमें से जो कुछ निकल सका, उसे फूंक फाक दिया। 'धरती की आग' के नायक उपनायक लच्चा ने अपनी सम्पत्ति समाप्त करने से पहिले ही गांव छोड़ दिया इसलिये उनका बोझ बड़े बड़े नगरों के ऊपर पड़ा। हमारे "कुमार साहब" में ही डटे हुए हैं, और भले मानुषों की नाक में दम है। लोगों का ठगना एक मात्र उनकी जीविका का साधन रह गया है। जिस वक्त मुझे उनकी चिट्ठी मिली थी, उस वक्त यह सारे गुण मालूम नहीं हुए थे, वह परम अनुरक्त इसलिये रूस चला आना चाहते थे, लेकिन रूसवाले अगर इस तरह लोगों को आने की सुविधा करदें, तब तो लाखों आदमी हिन्दुस्तान छोड़कर यहां आने के लिये तैयार हो जायेंगे। असंतुष्ट शिक्षितों को भारत से रूस बुलाने में सम्भव है को उतना फायदा भले ही हो सकता है, जितना कि उनके हिन्दुस्तान में रहने

२ दिसम्बर का दिन आया। तापमान मशान अब भी बिगड़ा था। घर के भीतर तापमान हिमबिन्दु से भी १२ सेन्टीग्रेड नीचे था।

४ दिसम्बर को बादल घिरा हुआ था, सर्दी भी काफी थी, नहीं युनिवर्सिटी गया। सभी छात्र छात्रायें, अध्यापक अध्यापिकायें और ना जाड़ों की पूरी पोशाक में थे। स्त्रियों को अपनी पिंडली के सौन्दर्य का दि क लिये रेशमी मोजा पहिने देखकर बड़ा आश्चर्य होता था। कैसे वह सर्दी उस पतले मोजे से बर्दाश्त कर लेती थीं। स्त्रियों ने यह बतलाकर समा

कर दिया—ग्रास पुंदर कौन समझ रहा पोस्तीन पहिनता है ? आज युनिवर्सिटी में पढ़ाई नहीं थी, हमारे भारतीय विभाग की मासिक बैठक थी। निमा गाय्यत बरानिकोफ और दूसरे अध्यापकों के साथ विद्यार्थियों के भी कुछ प्रतिनिधि उपस्थित थे। विद्यार्थियों की पढ़ाई की आलोचना हुई—जहां कुछ छात्रों के लिए प्रशंसा हुई, वहां कुछ लापरवाहों की शिकायत भी की गई। लेकिन प्रशंसा और निन्दा का अधिकार केवल अध्यापकों को ही नहीं था, विद्यार्थी भी अपने अध्यापकों की त्रुटियां बतला रहे थे। वस्तुतः लेनिनग्राद या सोवियत के दूसरे विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों की कोई समस्या ही नहीं है। हमारे यहां विद्यार्थियों की उच्छृंखलता और अनुशासन-हीनता की शिकायत करते हुए अध्यापक बहुत नहीं पूछते हैं—कैसे इनको ठीक किया जाय ? मेरा युनिवर्सिटी से संबंध था इसलिए उसी के बारे में मैं अपने अनुभव से कह सकता हूँ। छोटी बड़ी दूसरी शिक्षण-संस्थाओं में भी वहां छात्र छात्राओं की कोई समस्या नहीं है। इसका कारण वहां की सामाजिक व्यवस्था और शिक्षण-संस्थाओं का संगठन है। युनिवर्सिटी का प्राय हरेक छात्र और छात्रा तरुण कम्युनिस्ट सभा का सदस्य होता है, जिसका अनुशासन सबसे कड़ा है। उसके अनुशासन का उल्लंघन छात्र किसी भी हालत में करने की हिम्मत नहीं करता क्योंकि यह आत्मानुशासन है—अनुशासन को बाहर से लादा नहीं गया है, बल्कि भीतर से प्रकट किया गया है। कोई छात्र या छात्रा ऐसा काम करने की हिम्मत कैसे कर सकती है, जिसे अपने देश, अपने समाज और संगठन की दृष्टि से बुरा समझा जाय। साथ ही अध्यापकों और उनके छात्रों का संबंध स्वामी और दास, बड़े और छोटे का नहीं है। १७ वर्ष पूरा करके छात्र छात्रायें युनिवर्सिटी के चौखट के भीतर प्रविष्ट होते हैं जिनके सबंध में वहां के अध्यापक हमारे पूर्वजों की नीति "प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रे मित्रवदाचरेत" का पालन करते हैं। यही वजह है कि न छात्रों को वहां तन्दुरुस्ती उठाना पड़ता न अध्यापकों को।

जहां जून जुलाई अगस्त में दिन का पता ही नहीं था, गोधूलि और उषा में ना मिली हुई दो तीन घण्टों की रात खतम हो जाती थी, वहां द

दिसम्बर को देखा ४ बजे से पहिले ही अंधेरा हो गया था। ताजा बर्फ जमी होती है, जरा सी कहीं ढाल पर उस पर चलने में चुर चुर की आवाज के साथ मानो अपने कोमल हाथों से वह पैरों को दबाती है। पुरानी हो जाने पर भी जब तक कि वह अछूता और सफेद दानेदार रहता है, तब तक कोई चिन्ता नहीं, लेकिन जब वह पत्थर होकर स्वच्छ शुद्ध स्फटिक जैसी बन जाता है, तो हमारे पैरों की शामत आ जाती है। ६ दिसम्बर को बड़े इतमीनान के साथ पैर बचाते हुए प्रासाद के पास वाली सड़क से जा रहे थे, यकायक पैर फिसला और धम्म से ईजानिन ने जमीन पकड़ ली। इधर उधर झांकने की आवश्यकता नहीं थी। वहां आदमियों की कमी नहीं थी, लेकिन उस देश के लिये यह नई बात नहीं है इसलिये किसी ने विशेष ध्यान नहीं दिया, अथवा लोगों का सांस्कृतिक तल इतना ऊँचा हो गया है, कि किसी को गिरता देखकर हँसना पसन्द नहीं करते। मुझे शिक्षा मिली, लेकिन कितनी ही सावधानी रखने पर भी पांच महीने के जाड़े में दो तीन बार गिरना जरूरी था। ऐसा धोखेबाज बर्फ से जहाँ मैं संभल संभल कर चलता था, दूसरी तरफ देखता था तरुण-तरुणियां फिसलने का आनन्द लेने के लिये अच्छी खासी बर्फ को भी फिसलाऊ बनाते चलते थे। बचपन से जो स्केटिंग का अभ्यास है, इसलिये वह अपने शरीर को तौल लेते हैं। मैं इस अवस्था में उसे सीखने की हिम्मत नहीं कर सकता था। ८ दिसम्बर को नेवा का पानी बीच में थोड़ी सी बह रही थी, बाकी सारी जम चुकी थी। ९ दिसम्बर को तापन-मशीन के मरम्मत की अब भी बात नहीं हो रही थी। खैर, हमारे घर एक बिजली की अंगीठी आ गई, जिससे कमरे के भीतर का तापमान १२ सेंटीग्रेड रहने लगा। उसने एक कमरे को सुखद बना दिया।

१० दिसम्बर को हम विश्वविद्यालय नहीं जाते थे। सोमवार होने के कारण वह स्नान का दिन था। लोला काम पर गई थी। हम इगर को घर में छोड़ स्नान करने गये। लौटकर आये तो दरवाजा भीतर से बन्द था। बहुत खटखटाया लेकिन कोई सुन नहीं रहा था। हार गये, तो खिड़की की ओर से जाकर आवाज दी। तब भी कोई सुनवाई नहीं हुई। घंटेभर खड़े रहे। फिर [illegible]

हैचिंता मन में आने लगी । हरेक घर का एक कन्वाल (नियामक) कार्यालय रहता है । हमारा कन्वाल सीढ़ापर पुलनेवाले हमारे दरवाजे की दूसरी तरफ था, जाकर हमने वहाँ की बुढ़िया से कहा । उसने ज्यादा जोर जोर से धक्का लगाया, तब हज़रत की नींद खुली और आकर उन्होंने दरवाजा खोला । मैंने कहा— तुम्हारी माँ से कहता हूँ, यह बंदर बहुत खराब है, हम हाट से चलकर दो छोटे छोटे बंदर लावेंगे, जो इतनी तकलीफ नहीं देंगे । फिर क्या था, हाथ पर पड़ने लगे । मैंने यह समझाने की कोशिश की थी, कि तुम्हारी माँ छुटपन में हाट से एक बन्दरिया के पास से तुम्हें खरीद लाई थी । जब वह कहता— नहीं मैं तो मामा का पुत्र हूँ । तो मैं कहता— तुम्हें याद नहीं है । तुम्हारे मा पूछ थी । अम्मा से उस नौकर ने काट दिया, फिर दवाई लगाकर के बहुत दिनों तक जोर जोर से मलती रही, तुम्हारे शरीर के बाल भी उड़ गये, फिर तुम आदमी के बच्चे की तरह होने लगे, अब तुम्हारा सारा शरीर आदमी के बच्चे जैसा है, लेकिन कान अब भी उसी तरह के हैं । ईगर का कान गावालुमा है । लाड प्यार का लड़का था । तीन तीन चार चार बरस के लड़के बरफ में निधड़क फिसलते थे, किन्तु इगर को जरा भी हिम्मत नहीं होती थी । किसी भी हिम्मत के खेल को खेलने के लिये वह तयार नहीं था । मैंने नेवा के घाटपर देखा— एक माँ ने अपने चार पाँच बरस के बच्चे को साना (बेपहिये की गाड़ी) में बैठा कर ऊपर से ६० गज नीचे की ओर खिसका दिया और वह बड़ी तेजी से सरसराता हुआ नीचे चला गया । हिम्मत मजबूत करने का रास्ता यह है, लेकिन क्या लोला क्या कभी अपने बच्चे के साथ ऐसी कर सकती है ?

दिसम्बर आधा बीतते बीतते अब नेवा पूरी तरह जम गई थी, ऊपर कानादार चीनी सी सफेद हिमकी तह पड़ी थी । अब एक सुभीता हो गया था । पहिले हमें हेमन्त प्रासाद के नजदीक के पुल से नेवा को पार करने के लिये चारों चक्कर काटना पड़ता था और अब हम अपने प्राच्यविभाग के दरवाजे से निकलते ही नेवामें घुस जाते और नाक की सीध चलकर इसाइकीमस्त्रोर पहुँचते । वहीं राम की मिकान थी । बोल्स्ते और केन्द्रीय राजपथ में अलग होने से सारा

यहा ट्राम खाली मिल जाता थी। हम मजे में उसपर चढकर घर का रास्ता ले जाते। यदि इतुरिस्त से काम होता— जमजी अखबारों के लाउन्ज में काम रहता ही था— तो थोडा ही आगे इतुरिस्त का कार्यालय भी अस्तोरिया होटल में था। बरफ और जाड़े का प्रभाव ट्रामवे की गाड़ियों पर भी पड़ता था। जब शून्य बिन्दु के पास तापमान पहुँचता, कि आदमी श्वास का असर बाहर निकालने लगते। आदमियों में भरी ट्रामवे में भाप जमा हो जाता, जो शीशे में जमकर उसपर एक खासी मोटी बरफ का तह लग देती। गन्तव्य वक्त विशेषकर ट्रामवे में चढने में एक दिक्कत यह होता, कि उतरने की स्थान का पता नहीं लगता। लोग नाखून से खरोंच खरोंच कर जंगले के शीशा में कुछ जगह बना लेते, जहा से बाहर देखते। तापमान के ऊपर उठते ही यह बरफ अपने आप पिघलकर गिर जाती। २२ दिसम्बर को ऐसा ही हुआ था।

क्रिसमस— २५ दिसम्बर ईसाईयों का सबसे बडा पर्वदिन है, लेकिन सोवियत में किसी भी धार्मिक पर्वदिन की छुट्टी नहीं होती। वहाँ लोग राज्य के तौरपर धर्मका प्रदर्शन नहीं करते। हमारे यहा तो इन धार्मिक पर्वदिनों ने नाकमें दम कर रखा है। हिन्दुओं के तो ३६५ दिन ही धार्मिक पर्व के हैं। अलग अलग सम्प्रदाय अपने अपने पर्व दिनों की छुट्टी की माग करते हैं। अग्रेजों की चलाई परम्परा अब भी चली ही जा रही है। हाँ नये, पुराने पर्वदिनों को खास महत्त्व न माननेवाली सरकार भारत के सबसे महान् ऐतिहासिक पुरुष बुद्ध के जन्म और निर्वाण दिवस के लिये एक दिन की भी छुट्टी करना नहीं पसन्द करता।

सरकारी छुट्टी न भी हो, सरकार चाहे बिल्कुल धर्म निरपेक्ष हो, किन्तु वहा की जनता व्यक्तिगत तौर से धर्म निरपेक्ष नहीं है। आज भी रूसी गिरजे इतवार के दिन भक्तों से भरे रहते हैं। क्रिसमस के लिये हरा देवदार का शाखा खूब बिकती है, और बहुत कम ही ऐसे घर होंगे, जिनमें क्रिसमस वृक्ष लगा हो। बाप-दादा बचपन से क्रिसमस कल्पवृक्ष से सुपरिचित चले आये थे। सुन्दर हरी हरी देवदार शाखाओं में तरह-तरह के खिलौने लटकते, बत्तियाँ

जनता और दूसरा पक्ष था स्वादिष्ट मिठाइयों का रस लेना। खिलौनों और मिठाई को लड़के कम भूल सकते हैं। इसलिये क्रिसमस का महत्व लड़कों के लिये बहुत था। यद्यपि रूसके नेताओं ने क्रिसमस के उत्सव को कालान्तरित करके बच्चों के दिवस और नव वर्ष के नियम में परिणत करने की कोशिश की, लेकिन इसका फल इतना ही हुआ, कि अब २५ दिसम्बर की जगह लड़कों का उत्सव ३१ से पहिली जनवरी तक का हो गया। हमारे घर में भी क्रिसमस रम्पत्रन गाड़ दिया गया था। उसके लिये खाने की मेज को एक ओर करना पड़ा। रंगीन बिजली के लट्टूवाले तार को भी शाखाओं में लगा दिया गया। कई छोटे छोटे खिलौने भी लटकाये गये। लड़के के लिये वैसे ही खिलौनों की एक पूरी आलमारी भरी हुई थी, लेकिन फिर भी १ दर्जन नये खिलौनों की आवश्यकता जान पड़ी। अब तक ईगर को स्कोल्निक हो जाना चाहिये था, लेकिन जैसा कि पहिले कहा, चार दिन की कमी के कारण उसे अभी बालाधान में ही रखा गया था। यह लड़कों का त्योहार था। सब अपने इष्ट मित्रों को ले आकर अपने रम्पत्रन को दिखलाते और वह खिलौने मिठाइयों और बिजली के लट्टूओं पर अपनी गम्भीर राय देते। २५ दिसम्बर १९४५ का क्रिसमस बहुत सर्द था। तापमान हिमबिन्दु से २०° सेन्टीग्रेड (या पचास डिग्री फारनहाइट) नीचे था। तापमान के ऊंचे होने का हम भारतीयों को ज्ञान है। जब २००° फारनहाइट तापमान होता है तो शरीर में पसीना चूने लगता है, १०४° होने पर विकलता होने लगती है लेकिन हमारे यहाँ ऐसे भी स्थान हैं, जहाँ तापमान ११६° तक पहुँचता है जब कि घर के भीतर भी गर्मी असह्य हो जाती है, शरीर चिप चिप करने लगता है, कोई काम करने का मन नहीं करता। ऐसे तापमान का अनुमान रूसवालों को नहीं हो सकता। उसकी जगह उनको अनुभव है हिमबिन्दु से ५०°, ६०° तक तापमान का नीचे जाना। सारी दुनिया में गिनती की गणित सम्बन्धी बातें एकसी मानी जाती हैं, लेकिन अंग्रेजों ने अपना मार्ग भी तीनों लोकों से न्यारा ही रखना चाहा है। इंगलैंड और इंगलैंड के साम्राज्य को छोड़कर सारी दुनिया में लोग सड़कों और रास्तों पर दाहिने चलने

है, लेकिन अंग्रेज "बायें चलो" की बात को मानते हैं। जिस वक्त भारत गणराज्य घोषित होने जा रहा था, उससे एक दो दिन पहिले मैंने तत्कालीन राष्ट्रपति से कहा, कि अंग्रेजों के रास्ते छोड़िये कम से कम इस बड़े कलंक को दूर कर दीजिये और २६ जनवरी (१९५०) को गणराज्य की घोषणा के साथ यह भी घोषित कर दीजिए—आज से हमारे यहाँ चलना दाहिने हाथ हुआ। ईरान, अफगानिस्तान, चीन, जैसे छोटे बड़े हमारे पड़ोसी सब दाहिने चलाने को मानते हैं, अमेरिका, और युरोप के सारे देश दाहिने चलने का समर्थन करते हैं, फिर भारत क्यों अंग्रेजों के पीछे बाबाभारती बना रहे। राष्ट्रपति ने पसन्द किया, लेकिन वह अपने को असमर्थ पाते थे, कहा— नेहरूजी से कहिये। मगर नेहरू जी की खोपड़ी में कभी यह बात धँसनेवाली थी।

माप में भी सारी दुनिया मातिक मानको मानती है। सन्तीमीतर, देसीमीतर, मीतर, किलामीतर, अफगानिस्तान और ईरान तक में चलते हैं। सारी दुनिया इस वैज्ञानिक मान को मानती है। दशोत्तर वृद्धि के होने से हिसाब में इसमें बहुत आसानी होती है, लेकिन अंग्रेज १२ इंच का १ फुट, ३ फुट का १ गज और १७६० गज का १ मील अभी भी मानते जा रहे हैं। थर्मामीटर में भी दुनिया शून्य डिग्री को हिमबिन्दु और सौ डिग्री को उबाल बिन्दु वाला सेन्तीग्रेड तापमान का व्यवहार करती है, लेकिन अंग्रेज उस थर्मामीटर को स्वीकार करते हैं, जिसमें ३२ डिग्री पर हिमबिन्दु माना जाता है। विज्ञान सम्बन्धी कितना ही बड़ी खोजें अंग्रेजों ने चाहे क्यों न की हों, लेकिन जाति के तौर पर वह बड़ा अवैज्ञानिक हैं। उनके साथ रहकर हम भी अपनी इस मूढ़ता का परिचय अंग्रेज भिन्न दूसरे लोगों के सामने दिखलाते हैं।

हाँ, तो—२७° (ऋण) तापमान कहने में जितना आसान मालूम होता है, उतना सहने में नहीं। हिमबिन्दु से २४° तक तापमान के नीचे जाने पर मुझे कोई खास तकलीफ नहीं मालूम होती था। वैसे इतनी सर्दी में भी मैं लोगों को कान खोले देखता था, लेकिन मैं केवल आँख, नाक और मुँह को ही नंगा रखनेका पक्षपाती था। जब—२५° से नीचे तापमान जाता, तो उसका असर

साँस लेते समय छाता म मालूम देता। इस वक्त नाक से निकली श्वासकी भाप कुछ दर आदमियों के श्रोताक उपर जम जाती, भौंहों पर भी सफेदी पुत जाती, और महिलाओं क आगे निकले बाला को भी रुपहला बना देती। इतना होने पर भी मैं उम कष्ट नहीं अनुभव करता था। वस्तुत आदमी जितना निम्न तापमान पर नियत्रण कर सकता है, उतना उच्च तापमान पर नहीं। यदि सेन्टिग्रेड से पचास डिगरी नीचे तापमान चला जाय, तो अधिक गरम कपड़ों की आवश्यकता होगी, जिनके नीचे चमडा या पोस्तीन रखना भी आवश्यक होगा। सारे शरीर को आप चमड़े के पतलून, चमडे के कोट और ओवरकोट, चमडे की टोपी तथा चमडे के दस्ताने से गरम रख सकते हैं। अपनी द्वितीय यात्रा मे मैं यह सारी चीजे ईरान मे अपने साथ ले गया था, लेकिन अबकी केवल टोपी और ओवर कोट चमड़े के लेगया था। चमडे के ओवरकोट का पहन कर तो निश्चय ही कड़ी से कड़ी सर्दी पर विजय प्राप्त की जा सकती है, लेकिन ११०°, ११२° डिगरी का अपने यहा की गर्मी पर आप कम नियत्रण कर सकते हैं? ठंड तहखानों म बैठने का रवाज हमारे यहा बहुत पुराना है, छिड़काव के साथ खसकी टट्टिया भी मदद करती हैं, और अब दिल्ली के देवताओं की कृपासे कम से कम उनकी कोठियो म वायु नियत्रित (एयर कडीशन्ड) वातावरण रखने का प्रबंध हुआ है। लेकिन यह सभी साधन बहुत खर्चीले हैं और साथ ही ऐसे हैं, जो आपकी क्रियाशीलता और गति को रोक को हटा नहीं सकते। इसके विरुद्ध सर्द से सर्द मुल्क म आप अपने शरीर भर को अच्छी तरह ढाक कर चल फिर सकते हैं। सारा काम कर सकते हैं।

२७° (से०तीग्रेद) हिमबिन्दु से नीचे तापमान था, किन्तु तापन मशीन की मरम्मत का अभी कोई ठिकाना नहीं था। घर घर म क्रिसमस की पारम्परिक मिठाई (पुडिंग) तैयार की गई थी। पनीर अडा, चीनी और क्या क्या चीजें मिलाकर यह रूसी पुडिंग तैयार होती है। उसके चौकोर पिंड के चारों पार्श्वों में क्राम (सलीब) का चिह्न अकित करने का साँचा प्राय सभी घरों म रहता है। यह मिठाई बडी स्वादिष्ट होती है और प्रभु मसीह का प्रसाद मानकर

सब सम्मान के साथ खाई जाती है। क्रिसमस के दिन जो इष्ट, मित्र, पड़ोसी परस्पर मिलने आते हैं, वह इस प्रसाद में से थोड़ा अवश्य पाते हैं। पहली क्रिसमस की बात तो मुझे याद नहीं, लेकिन १९४८ के क्रिसमस का दिन मुझे अच्छी तरह याद है। घरमें मिठाई बनाकर चुपचाप खाली नहीं जाती, बल्कि गिरजा में भेजना पड़ता है, जहां बकशी तरह की एक थाल में गड्डी में रखकर ऊपर नल का छिड़क कर पुरोहित भोग लगा देता है, तब वह घरमें लाकर खाई जाती है। हमारे यहां रथ यात्राओं और दूसरी जगहों पर इसी तरह भक्त लोग भोग लगाने के लिये अपनी अपनी चीज ले जाते हैं। रामलला के चढ़ावे में हमारे दोनों खाली कर लेनेपर भी हमारे यहां के पुजारियों को संतोष नहीं होता, लेकिन रूसी पुजारी केवल पवित्र जल छिड़क भर देना ही अपना कर्तव्य समझते हैं। पास ही के गिरजे में ईगर नानी के साथ भोग लगाने के लिये अपनी चीज ले गया था। उनके लौटने में दो घंटे से ऊपर लगे। पता लगा, गिरजा के अन्दर ही नहीं, बल्कि उसके बाहर पगडंडी पर भी बहुत दूर तक भक्तों की दुहरी पंक्ति खड़ी थी। सबके पास पहुंचने में पुरोहित को काफी समय लगा, इसलिये यह देर हुई।

कम्युनिज्म का दर्शन भले ही ईश्वर और धर्म का विरोधी हो, लेकिन लोगों के लिये धर्म का छोड़ना उतना आसान नहीं है। सोवियत के तजर्बे से यह मालूम होता है। जिन लोगों को मसीह के भगवान होने पर विश्वास नहीं भी, जब अपनी कला संस्कृति और इतिहास देखते हैं, तो पिछले सात सौ वर्षों में इसाई धर्म के साथ उसका घनिष्ट संबंध पाते हैं। इनके आत्मा की सहानुभूति और रुचि सदा अपनी परंपरा के साथ होती है। बचपन के भाव मनुष्य के मन में सहज भूलनेवाले नहीं हैं। क्रिसमस को ही ले लीजिये, इसके साथ कितने पुराने संबंध याद आते हैं। आजकल पचांग बदल गया है किन्तु मुझे १९३७ का क्रिसमस याद है। डा० श्चेर्बात्स्की ने अपना क्रिसमस पुराने पंचांग के अनुसार मनाया था।

आत्मा जिस परिस्थिति में रहता है उसी के अनुसार अपना आदर्श और रूप का प्रबंध कर लेता है। रूस के लोग हजारों वर्षों से ईसाई रहे

के बूट पहनने आम हैं। आजकल वह ज्यादातर चमड़े का होता है, लेकिन बैलों का चमड़े का बूट भी लुप्त नहीं हुआ है। यह वही बूट है, जो कि शकों के साथ भारत आया और वहां की मूर्ति प्रतिमाओं के पैरों में आज भी दिखलायी देता है। पुरुष का अपने कान के ऊपर एक और कनपाप जैसी जाली की टोपी रहती है, जिसे जाड़ा आवश्यकता पड़ने पर कान और गर्दन को ढांका जा सकता है, नहीं तो ऊपर करके उसे गोल टोपी सा बना दिया जाता है। अधिकतर ये टोपियां पास्तीन या समूर की होती हैं। स्त्रियां ऐसी कनपापदार टोपी नहीं पहनतीं, उसकी जगह उनके ओवरकोट का कालर काफी बड़ा होता है, जिसमें चमड़ा या समूर भी मढ़ा रहता है, जिस को उठा देने से सारा सिर कान और गर्दन ढक जाता है।

२७ दिसम्बर को हम विश्वविद्यालय गये, तो वहां मध्यएसिया के एक प्रोफेसर से मुलाकात हुई। वह तुर्कमानी भाषा के पंडित तथा अश्काबाद में २२ साल से अध्यापन करते थे। अब हमारे सिर पर मध्यएसिया जाने की धुन सवार हुई। पिछले छ महीनों में मध्यएसिया के इतिहास और आधुनिक मध्यएसिया को जानने के लिये काफी पुस्तकें पढ़ी थीं। इतने दिनों में यह तो मालूम हो गया था, कि यहां रहकर हम पुस्तक नहीं लिख सकते। पुस्तकें भारत में भी तो दूसरे मैंगाने के कारण उसका मार्ग से पहुँचना संदिग्ध है। फिर भी जाने के डर से दो दो कापी करना हमारे बस की बात नहीं थी। मन यही कहता था, कि चलो सोवियत का दर्शन तीसरी बार भी कर लिया। यदि मध्यएसिया देखने का अवसर मिले, तो जनको गरमियों में वहां चला जाय, नहीं अपना देश का रास्ता पकड़ना ही अच्छा है। भारत की कोई खबर नहीं मिलती थी। चिट्ठियां के भी आने में छ छ महीने लग जाते थे। तुर्कमानिया के प्रोफेसर से मालूम हुआ, कि मास्को से अश्काबाद का वैमानिक किराया ७ रूबल है। अकेले के लिये रास्ते पर २० रूबल में होटल का इंतजाम हो जायगा। उनके कहने से मुझे मालूम होगया कि अगर जाने की आज्ञा मिल जाय, तो मैं अपने पैसे के बलपर भी वहां चार महीने घूम आ सकता हूँ।

मास्टर ने बतलाया, कि चाजा का दाम यहीं जैसा है, सिर्फ मालिक के सब कुछ सस्ते होते हैं। कह रहे थे—वहाँ गरमी बहुत पड़ती है, इसलिये गरमी के महीनों (मई, जून, जुलाई) में नहीं जाना चाहिये, लेकिन उन्हें क्या मालूम कि हिन्दुस्तान में कितनी गरमी पड़ती है। उन्होंने बतलाया कि तुर्कमानिया में भी अरबी भाषा भाषी कहीं कहीं मिल जाते हैं, उनके शब्द और भी मिलेंगे। उनके कहने से यह भी मालूम हुआ कि तुर्कमानिया में कई और अरबी बोलने वाले के कुछ गाँव हैं। शाम को लौटकर जब घर में आ तो देखा मकान गरम है—मकान की मरम्मत कराई गई थी।

२९ दिसम्बर को घर के भीतर तापमान—१२° और—१५ था, तो सरदी बहुत मालूम नहीं होती थी। विद्यार्थी अर्धवार्षिक परीक्षा की तैयारी कर रहे थे, इसलिये नया पाठ नहीं चल रहा था। ३० दिसम्बर से नववर्ष की तैयारी होने लगी। लाल झंडों और दूसरी चीजों से रास्तों के घरों को सजाया जाने लगा।

३१ दिसम्बर भी आया। १९४५ का सन् विदाई लेने लगा, १९४६ आने का हुआ। आज अपने साल भर के कामों का जब मैं लेखा करने लगा, तो मालूम हुआ इस साल मैं कुछ नहीं लिख सका। "मध्य एसिया" और "मध्यएसिया" के संबंध में सामग्री अवश्य जमा की, लेकिन मालूम नहीं उन्हें कब लिखने का मौका मिलेगा। अगला साल भी यदि इसी तरह बीता तो बहुत बुरा होगा। आज सोफी के यहाँ दावत थी। उसका पति ३ साल से रोगी था। पान दावत का अनिवार्य अंग है, फिर उससे बाद नाच भी होना ही था। मैं अनाड़ी था। सोफी ने बहुत चाहा कि यदि पीता नहीं तो नाच ही लूँ, लेकिन जिन्दगी में जब सीखा ही नहीं था, तो आज नाच सकता था। २ बजे रात तक दावत चलती रही। मेहमान कुछ होश में कुछ परों में लड़खड़ाते अपने घरों की तरफ चले। अगले वर्ष के लिये सोचा कि यदि मध्यएसिया को अच्छी तरह देखने का मौका मिल गया तो अगले ३६५ दिनों को भी यहाँ अर्पण करने के लिये तैयार हूँ।

९-वसन्त की प्रतीक्षा (१९४६)

जाड़ों को दो सालों में बाँटना बिलकुल बेवकूफी मालूम होता है—नवम्बर दिसम्बर को १९४५ में और जनवरी फरवरी को १९४६ में। वसन्त के आरम्भ से सम्वत्सर का आरम्भ ठीक था, लेकिन दुनिया परम्परा के पीछे इतनी पड़ी हुई है, कि वह अपने पंचांग में इस साधारण से सुधार के लिये भी तैयार नहीं है, चाहे इसके कारण आये साल पत्र लिखते समय एक साल की जगह १९४५-१९४६ भूल से लिखना पड़े। वसन्त की प्रतीक्षा जितनी उत्कंठा के साथ रूस जैसे ठंडे देशों में की जाती है, उतना हमारे देश में नहीं हो सकता। लड़कों की एक रूसी कविता में सुना था—

आ आ वसन्त, मेरी बच्चिया—
खिड़की पर बैठी तेरी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

छोटी सी बच्चिया (सेरदुचका) नहीं बल्कि जवान बूढ़े सभी वसन्त की प्रतीक्षा करते हैं, लेकिन लेनिनग्राद में उसके पहुँचने में अभी पूरे चार महीने की देरी थी। पहिली जनवरी को तापमान १२° से १८° था। ३ जनवरी को युनिवर्सिटी गये। प्रथम वर्ष के छात्रों को कुछ पढ़ाया, फिर प्राध्यापक सभा

चतुर्थवर्ष के छात्रों ने पाठ्य पुस्तक में मिस "मृच्छकटिक" नाटक पढ़ लिया। अर्धवार्षिक परीक्षा हो रही थी। परीक्षा समाप्त होने ही कुछ दिनों की छुट्टी है, इसलिये १० फरवरी तक के लिये मेरा युनिवर्सिटी में कोई काम नहीं था। अब अधिकतर घर पर ही रह पुस्तकों को पढ़ता और उनसे नोट लेता।

८ जनवरी को पहिली बार देखा कि ५० के करीब जर्मन बन्दी खिड़की के बाहर से जा रहे हैं। इसके बाद तो रोज १० बजे उन्हें काम पर जाते देखता और ४ बजे लौटते। उनकी देखभाल के लिये बन्दूक लिये एक रूसी सिपाही होता। बन्दियों के चेहरे उदास थे और उदास होने में आश्चर्य ही क्या? हिटलर ने विश्वविजय के लिये उनको दुनिया के कोनों में भेजा था। हिटलर तो दूसरे लोक को विजय करने चला गया, और यह बेचारे अपने देश से दूर रूस की सख्त सर्दी में काम करने के लिये छोड़ दिये गये थे। उनके खान पान का इतिजाम अच्छा था, यह उनके स्वास्थ्य से मालूम होता था। हाँ, कपड़े उनके अपने पुराने फौजी थे, जो कुछ मैले थे।

१४ जनवरी को युनिवर्सिटी गये। चतुर्थवर्ष की दोनों छात्रायें सम्मान में उत्तीर्ण हुईं। "मेघदूत" से कुछ प्रश्न पूछे गये। सोवियत के विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में परीक्षा के लिये कागज स्याही बिलकुल खर्च नहीं करनी पड़ती। परीक्षा मौखिक होती है, और परीक्षक होकर अपने ही अध्यापकों में से दो कुर्सी पर आ डटते हैं। पूर्णांक ५ होते हैं। छात्राओं के उत्तर देकर बाहर जाने के बाद तानिया को मैंने दो नंबर देने के लिये कहा, तो मेरे सहकर्मियों ने बतलाया—इसका अर्थ तो है फेल करना। जान पड़ता है फेल शब्द विद्यार्थियों में ही नहीं वर्जित है, बल्कि अध्यापकों और परीक्षकों में भी। पर्याप्त दिनों तक जिसकी क्लास में उपस्थिति रही है, उस सोवियत की शिक्षा संस्था में फेल होने की संभावना ही नहीं है। प्रश्न का उत्तर देते समय विद्यार्थी अपनी सारी पुस्तकें को साथ रख सकते हैं, क्योंकि परीक्षा स्मृति की नहीं बल्कि समझ की ली जाती है।

हमारे घर में अभी कोई नौकर नहीं था। गजान के जमाने में एक नौकर

ार रखकर अ राशन दुकान से दम गुन दामपर चाज सगदकर खिलाना आसान ाम नहीं था। बर्तन मलना और चारपाइ ठीक ठाक करना मेरे जिम्म था। ाडे के दिन थे। नल का पानी काटने को दौड़ता था। में गरम पानी स धोने ा पक्षपाती नहीं था, क्योंकि उसम समय अधिक लगता था। और घर क नल के डे पानी से धोने पर एक मिनट म ही दर्द के मारे हाथ और मन तिलमिला उठते। हमारा तो यह सिद्धान्त था—शारीरिक परिश्रम स घृणा करने की आवश्यकता नहीं, लेकिन उसमें इतना समय नहीं लगाना चाहिये कि लिखन पढ़ने के समय म गोताखो हो। मालकिन का विचार कुछ दूसरा ही था। हम ठे बैठे रात के १–२ बजे तक पढते और नोट लेते रहते, जिसे वह बेकार समझती।

२४ जनवरी को जर्मन बन्दी सडकों की बरफ फेंक रहे थे। मकान के काम को इस समय बन्द रखा गया था, लेकिन अगले जाडों म वह २४ घंटे अखंड चलता रहा। शहर का सभी तरफ ता कहा फेंकी जा सकती थी? छोटी छोटी सडकों और गलियों की बरफ बसन्त के आरम्भ होने पर ही गलकर साफ होती, लेकिन बड़ी सडकों पर उसे बराबर हटाते रहना पड़ता, नहीं तो ट्रामों और मोटरों का आना जाना रुक जाता, क्योंकि बरफ पर चलने से वह ऊँची-नीची हो जाती है, जिसके कारण उसपर यात्रों का चलना सरल काम नहीं होता।

अभी भी भारत म क्या हो रहा है, इसके जानने का कोई इन्तिजाम नहीं हो सका था। स्थानीय रेडियो और रूसी समाचार पत्रों स काम चलनेवाला नहीं था। उनम महीनों बाद शायद कभी कोई दो चार पंक्तियाँ देखने सुनने को मिलतीं। मुझे सबसे जरूरी मालूम होता था—एक रेडियो खरीदना, जिसम देश विदेश की खबरें मालूम होती रहें, लेकिन यह इच्छा पूरी होने म अभी चार साढ़ेचार महीनों की देर थी। २३ जनवरी की रात के रेडियो से मालूम हुआ, कि दिल्ली की एसेम्बली ने राष्ट्रीय सरकार की माग की है। जावा म वहा के स्वतन्त्रता प्रेमियों को दबाकर फिर से डचों का राज्य कायम करने से अंग्रेजी सेना ने जब इकार कर दिया, तो अंग्रेजों न वहा भारतीय सेना भेजी। वहन को यत्र

२ फरवरी को लोला रे भाइ की लड़की माया आयी। वह मास्को मेडिकल कालेज के तीसरे वर्ष में पढ़ रही थी। अभी दो वर्ष और बाकी थे। माया के नामपर नाम से यह न समझें, कि उसके नाम पर बुद्धि की माया का कुछ असर था। रूसमें इस वक्त हजारों की तादाद में माया नाम वाली लड़कियां मिलेगी। माया मई महीना है। मई का प्रथम दिवस दुनिया के मजदूरों का पवित्र दिवस है, इसलिये जो लड़की मई महीने में पैदा होती है, उसका नाम माया रखने की कोशिश की जाती है। माया अच्छी समझदार लड़की थी। बेचारी की मां मर गई थी, और अत्यंत प्रतिभाशाली पिता जेल में था। वह सबसे तरुण सोवियत जनरल था। उसका दादा भी जारशाही युगका एक योग्य जनरल तथा सैनिक कालेज में गणित का अध्यापक था। माया के पिता ने तोपों के ऊपर एक खोजपूर्ण निबन्ध लिखा था, जिसके सिद्धांतों को पीछे पाठ्यक्रम में ले लिया गया। द्वितीय विश्वयुद्ध में वह जिस जेल में भी रहा होगा, अपने देश की ओर से लड़ने के लिये जरूर तड़फड़ाता होगा। कुछ लोग तो यहां तक अफवाह उड़ाते थे, कि नाम बदलकर उसने फिनलैंड की लड़ाई मे भाग लिया— कुछ लोग इसकेलिये कसम खाने के लिए भी तैयार थे। लेकिन यदि वह युद्ध में सारे भाग लेने का अवसर पाता, तो युद्धकी समाप्ति के बाद उसे जेल में रहने की आवश्यकता नहीं थी। हां, इसमें सन्देह नहीं, कि सोवियतवाले अपने राजबन्दियों की प्रतिभाओं का भी उपयोग करना भली भांति जानते हैं, इसलिये अपने इस प्रतिभाशाली जनरल की प्रतिभाओं का उपयोग उन्होंने जरूर किया होगा। जेनरल जाकुल्या बिलकुल निरपराध थे। जब १९३७ में विदेशी साम्राज्यवादियों से मिलकर उस समय के सोवियत मार्शल तुखाचेवस्की तथा दूसरे फौजी अफसरों ने षड्यन्त्र करके सोवियत शासन को उलटाना चाहा, उसी चक्की के साथ पिसनेवाले घुन की तरह जेनरल जाकुल्या भी पकड़ लिये गये। तुखाचेवस्की सबसे बड़ा सेनापति होने के कारण ऊंचे अफसरों पर प्रभाव रखता था। उसने उच्च अफसरों की बैठक बुलाई, जिसमें जनरल जाकुल्या भी चले गये। उपस्थिति बही पर शायद हस्ताक्षर भी कर चुके थे। जैसे ही दो चार

मिनट बात सुनने को मिली, प्रयोजन का पता लग गया और वह बैठक से उठ चले आये। लेकिन षड्यंत्रियों को पकड़ने वाले समय जाकुल्या भी पकड़े गये और अब वह मजा पा जेलम थे। माया ने बहुत जानने की कोशिश की, तो उसे बतलाया गया तुम्हारे पिता स्वस्थ और प्रसन्न हैं, और वह साल भर में बाहर चले आएंगे।

जनरल जाकुल्या की तरह से हो सकता है, जो कि साथ कोई भी घुन पीसे गये हों, लेकिन इसमें तो संदेह नहीं, कि सोवियत शासन के विरुद्ध दुनिया की प्रथम समाजवादी सरकार के विरुद्ध तथा शारीरिक मानसिक श्रम के भविष्य के विरुद्ध उस समय एक भारी षड्यंत्र रचा गया था, जिसमें और जर्मनी ने पूरी सहायता की थी। उन्होंने ऐसा इंतजाम किया था कि सोवियत शासन को खतम करके फिर वहां पूंजीपतियों की तानाशाही स्थापित की जाय। जनरल जाकुल्या के पिता जारशाही जनरल थे, लेकिन उनका पुत्र शुद्ध शिक्षितवर्ग से संबंध रखता था, इसलिये उनकी सह... साथ नहीं रह सकती थी। क्रांति के बाद उन्होंने बोल्शेविकों का साथ दिया। जाकुल्या तो होश संभालते ही लेनिन के पक्के भक्त थे। किन्तु उनके ऊपर जबर्दस्त खतरा हो वहां जो के साथ घुन के पिसने का डर सदा ही रहता है। लेकिन भयंकर से भयंकर अपराध करनेवाले को भी मृत्यु दंड देने में सोवियत शासक बड़ा संकोच करते हैं, इसे उनके शत्रु भी मानते हैं। अच्छा होता यदि इस तरह की घटनायें बिलकुल ही नहीं होतीं। लोला का भाई होने के कारण जाकुल्या के बारे में मैं जितना जान सकता था, उतना उपरवालों का मालूम होता? माया पढ़ने के लिये मास्को में दाखिल हुई थी। बीच में पढ़ाई छोड़ना नहीं चाहती थी। हम लोगों की इच्छा यही थी, कि वह रहता तो अच्छा होता। वह अपनी छुट्टियां बिताने के लिये लेनिनग्राद खाड़ी के एक विश्रामालय में गयी हुई थी, जहां से लौटते वक्त अपनी ... मिलने आयी था।

जाड़े का दिन भी कितना मीठा होता है? इस्नेन्दा हमने की बात है

इसमें सदेह नहीं कि, रजत-राशि की तरह जहाँ-तहाँ फैला बरफ, तथा चारों ओर की निश्शब्द शान्ति बड़ी मोहक मालूम होती, लेकिन जब अक्टूबर से अप्रैल के अन्त तक वही दृश्य सामने रहे, तो उसमें आकर्षण रहता। ऊपर से हरियाली के लिये आँखें तरसती थीं। अगर कहीं कभी देवदार का दरख्त हुआ, तो आँखों को जरूर विश्राम मिला, नहीं तो हरे रंग का कहीं नाम नहीं था। और तो और चिड़ियों का भी पता नहीं था। केवल घरों में रहने वाली गौरैया चिड़ी भी कभी कभी बरफ पर इधर-उधर फुदकती दिखाई देती। पचासों तरह की चिड़ियाँ, जो गरमियों में चहचहाया करती थीं, वे सब अब गरम देशों को उड़ते हुए दक्षिण की ओर चली गई थीं। जैसे जैसे तापमान गिरने लगता, वैसे वैसे यहाँ की चिड़ियाँ दक्षिण की ओर प्रयाण करती हैं। कहते सुना कि कोई भी ढमामा नींद लेकर सो जाते हैं, लेकिन मन किसी कोने का साया नहीं देता।

संसद का चुनाव— महायुद्ध के बाद केन्द्रीय तथा प्रजातन्त्रीय सोवियत संसदों (पार्लियामेन्टों) का चुनाव होने जा रहा था। एक ही सूची में दिये हुए व्यक्तियों पर वोट देना था। कोई विरोधी उम्मेदवार खड़ा नहीं हुआ था, तो भी चुनाव के लिये जितना प्रचार और तत्परता रूस में देखी जाती थी, वह किसी देश के चुनाव से कम नहीं थी। शहर के बड़े बड़े मकानों की दीवारों पर उम्मेदवारों के बड़े बड़े फोटो लटक रहे थे। हजारों सिनेमा घरों में चुनाव की स्लाइड दिखलाया जाता थी। व्याख्यान भी उसी तरह जोर शोर से हो रहे थे। कहीं कहीं तो चलते फिरते सिनेमा किसी दीवार को ही रजतपट बनाकर दिखलाये जा रहे थे। चुनाव ठीक तरह से हो, इसके लिये निरीक्षक समितियाँ चुनी जा रही थीं। हमारे चुनाव क्षेत्र की निरीक्षक समिति में लोला भी सम्मिलित थी।

१० फरवरी को चुनाव का दिन आया। इतवार होने से वैसे ही उस दिन छुट्टी थी। सुबह छ बजे से ही लोग वोट देने के लिये जाने लगे। प्रचारक समझते थे, कि मैं भी वोटर हूँ, उन्हें निराशा हुई, जब मैंने कहा कि मैं सोवियत नागरिक नहीं हूँ। तब तक स्थानीय प्रचारक तीनबार हमारे घर में

आ चुके थे, जब कि एक बजे लोला अपने वोट देने के लिये १४ नम्बर के चुनाव स्थान में गयी, जो पास के ही स्कूल में था। सड़कों पर रास्ता बताने के लिये स्थान स्थान पट्टियां लगी हुई थीं। चुनाव-स्थान में और भी भंडे लगे थे। अक्षरादि-नाम सूची लिये चार-पांच मेजों पर लोग बैठे हुए थे। पास बतलाया, रजिस्टर पर निशान किया गया, वोट का कागज लिफाफे के साथ दिया गया। चूंकि इस स्थान से कलिनिन और ज्दानोफ दो उम्मीदवार थे, जो दोनों उच्च संस्थाओं के लिये खड़े हुए थे, इसलिये हरेक वोटर को दो पर्चियां मिली थीं। यदि कोई अपनी पर्ची में कुछ लिखना चाहता, तो लाल पर्दे के घेरे के भीतर अलग अलग कुछ छोटे छोटे डैस्क रखे हुए थे, जहां वह लिख सकता था। किसने किसको वोट दिया, इसके जानने का वहां कोई उपाय नहीं था। प्रबंध बड़ा अच्छा था, इसलिये अधिक भीड़ नहीं थी, यद्यपि वोटरों में से ९५-९६ फीसदी से भी ज्यादा वोट देने गये थे। चुनाव-स्थान में गाने बजाने, नाचने को कैसे भूला जा सकता था?

रेडियो और एक कैमरा दो चीजों की आवश्यकता मैं अपने लिये समझता था। कैमरा मैं अपना भारत की सीमा से बाहर न ले जाने पाने से उसे क्वेटा में छोड़ आया था। कैमरे से पहिले भी मुझे रेडियो की जरूरत थी, किन्तु रेडियो का अभी डौल नहीं लग रहा था। अभी दाम बहुत ज्यादा था, लोग कह रहे थे—कारखाने अब रेडियो तैयार करने लगे हैं, कुछ ही महीनों में बाजार में बड़ी संख्या में आ जायेंगे, तब दाम कम हो जायगा और मशीन भी अच्छी मिलेगी। आवश्यक होने पर भी मैं रेडियो नहीं ले पा रहा था। सोवियत शहरों में पुरानी चीजों के बेचने का बड़ा ही सुव्यवस्थित प्रबंध है। किताबों की दूकानें ? दर्जन के करीब तो मेरे रास्ते पर थीं, जिनका चक्कर मैं अपने लिये अनिवार्य समझता था। उसी तरह दूसरी पुरानी चीजों की दूकानें भी। १२ फर्वरी को मैं एक ऐसी ही दुकान में गया, वहां एक ढंग का सोवियत का बना "फेद" कैमरा देखा। लैंस ३.८ शक्ति का था, दाम ११ सौ रूबल। यद्यपि वहां अगली लाइका कैमरे भी थे, किन्तु दाम

हजार रूबल (९ हजार रुपया) था। रूबल का जो मूल्य हमारी दृष्टि में था, उसके लिहाज से दाम ज्यादा नहीं था, लेकिन तो भी हम यह नहीं चाहते थे, कि कोई हमें फजूलखर्च कहे, इसलिये हमने पेद को ले लिया और सोवियत में रहते उससे कितने ही फोटो भी लिये, यद्यपि उनका उपयोग लेखों के न लिखने के कारण नहीं हो सका।

१४ फर्वरी को नृतत्व म्यूजियम देखने गये। लेनिनग्राद में म्यूजियमों की संख्या ४ दर्जन से भी ऊपर है, और सब अपना अपना महत्व रखते हैं। इस म्यूजियम में हमने सिबेरिया की जातियों की खास प्रदर्शनी को देखा, जो कि उस वक्त हो रही थी। चुक्ची, तुंगुस, याकूत्, कम्स्चत और सखालीन जैसी जन-जातियों की कलाकृति यहां बहुत अच्छा संग्रह था। साइबेरिया की इन जातियों को उनके आदिम जीवन से आधुनिक जीवन में लाने के लिये जब आवश्यकता पड़ी, तो सबसे पहिले जरूरी काम था, उनके भीतर से निरक्षरता का दूर करना। उनमें लिखने पढ़ने का कोई रवाज नहीं था, इसलिये अध्यापक कहां से मिलते? रूसी या दूसरे भाषा-भाषी अध्यापक मिल सकते थे, लेकिन सोवियत की नीति है— हरेक को उसकी मातृभाषा में शिक्षा देना। यहां केवल नीति का सवाल ही नहीं था, बल्कि व्यवहारतः भी यही लक्ष्य पर पहुँचने का सबसे छोटा रास्ता हो सकता था। उस वक्त यह जरूरी समझा गया, कि थोड़े बहुत भी भाषा जानने वाले रूसी या दूसरे लोगों को उनके भीतर भेजा जाय, लेकिन जब शिक्षा को और आगे बढ़ाने की जरूरत पड़ी, तो बाकायदा प्रशिक्षित अध्यापकों के तयार करने के लिये लेनिनग्राद में स्कूल खोला गया। अत्यन्त शीत ध्रुव समीप प्रदेश के रहने वाले लोगों के लिये मास्को भी गरम था, जिसका प्रभाव उनके स्वास्थ्य पर बुरा पड़ता, इसकेलिये लेनिनग्राद को उपयुक्त समझा गया। अब तो शायद वह स्कूल भी नहीं है। लेनिनग्राद युनिवर्सिटी में भी इन जातियों के कई लड़के लड़कियां पढ़ रहे थे। उच्चशिक्षा में भी वह काफी दूर तक आगे बढ़ चुके थे। म्यूजियम के डायरेक्टरने भारतीय सामग्री को भी दिखलाने की बड़ी उत्सुकता प्रकट की, लेकिन अभी वह भाग खुला नहीं था। उन्होंने सिबेरिया

की जातियों का प्रदर्शनी को स्वयं दिखलाया। यहा उनके हाथ की बनी हुई भी कलापूर्ण चीजें रक्खी थीं— परिधान, खिलाने, घरेलू बर्तन, ... आदि थीं। सोवियत मध्यएसिया म मिली हुई सबसे पुरानी खोपडी (... ताश मानव) का भी नमूना तथा उस खोपड़ी के आधार पर बना ... वहा देखने को मिला। गिरासिमोव खोपडी देखकर असली मूर्ति बना ... बडा सिद्धहस्त कलाकार माना जाता है। उसने तमूर की खोपड़ी से ... बनाई, वह तमूर के समकालीन चित्रों से बिलकुल मिल जाती है। ... कि जहा तक चेहरे का सम्बन्ध है, हड्डी निर्णायक होती है। खोपडी पर ... थोडे स्नायु और कुछ चर्बी ही तो और लगती है। उतना मोटी तह ... हम खोपडी को असली चेहरे का रूप दे सकते हैं। यहा के पुस्तकालय में ... भाषाओं में काफी पुस्तकें हैं। मेरे सामने मध्यएसिया के इतिहास में ... समस्या था। मैं कुछ निश्चय पर पहुच चुका था, लेकिन जब तक दूसरे भी उसमे सहमत न हों, तब तक अधिक आत्मविश्वास अच्छा नहीं है, मानता था। मैंने म्यूजियम के डायरेक्टर से इस विषय पर बातचीत की। ... बतलाया, कि डाक्टर बेर्नस्ताम इस विषय के विशेषज्ञ हैं। मैं इस निश्च... पहुचा था— छठी सदी ईसा पूर्व म शक कास्पियन के उत्तर, उत्तरपश्चि... जहा देन्यूब के तट तक फैले हुए थे, वहा साथ ही वे दरबन्द (काकेशस) गिरदरिया के उत्तर होते आगे तक चले गये थे। चौथी सदी ईसा पू... सिकन्दर के समय भी वह सिरसे दन्यूब तक थे। द्वितीय सदी ईसा पूर्व में ... के नीली आंखों तथा लाल बालों वाले वूसुन भी शक थे। उस समय ... उपत्यका म भी यही जाति रहती थी। पीछे ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में ... हूणा के प्रहार के कारण उन्हें धीरे धीरे दक्खिन और पच्छिम की ओर ... पडा। २ फर्वरी के "मास्को न्यूज" म शको के बारे म एक लेख ... मिला, जिससे मालूम हुआ कि कालासागर के उत्तर पूरब में शक ... सदी ईस्वी तक थे। इस भूमि में आज कल सोवियत पुरातत्व विभाग बड़े पैमाने पर खुदाई का काम कर रहा है। क्रिमिया म नियोपालिस शक...

राजधानी थी, जिसका जिक्र पुराने लेखकों ने किया है। खुदाइयों से मालूम होता है, कि इस जगह पर ईसा-पूर्व चौथी सदी में एक शक नगरी था, जिसके चारों ओर मोटा प्राकार था। घरों में कमरे बड़े बड़े थे। घर के आंगन में संगमरमर के प्याले मिले, कुछ ग्रीक पात्र भी प्राप्त हुए और दूसरी तरह से भी पता लगा कि इन शकों पर ग्रीक संस्कृति का बहुत प्रभाव पड़ा था। उनके घरों और बर्तनों के मकान, अलंकरण करने का ढंग वही था, जिसका प्रभाव आजकल भी उक्रइन के पुराने घरों में मिलता है। जेवरों को देखने से मालूम होता है कि उनका प्रभाव बहुत पीछे तक रहा है। बर्तनों और खिलौनों को अलंकृत करने में रूसी हाल तक उसी ढंग का अनुसरण करते रहे हैं। यह सांस्कृतिक चिन्ह जो शका (सिथियन) के साथ संबंध बतलाते हैं, काला सागर के सारे उत्तरी तट से होते दनूब के किनारे तक मिलते हैं।

उधर हमारा पठन पाठन और नोट लेना भी चल रहा था। चौका बर्तन कभी वक्त सर्दी की शिकायत भी करनी पड़ती थी, जब तब रेडियो दो चार शब्दों में भारत की खबर दे देता, जिसमें सब और के पता दूसरी ओर दौड़ पड़ती। १५ फर्वरी को मालूम हुआ कि कलकत्ता में भारी हड़ताल हुई है। टैंक आदि के साथ गोरी पल्टनें बुलाली गई हैं, गोलों से दर्जनों आदमी मारे गये हैं—एटली की सरकार चर्चिल से क्या पीछे रहने लगी? लेकिन यह तो निश्चय हो था, कि तोपों और टैंकों के सहारे अब हिन्दुस्तान पर राज्य नहीं किया जा सकता। रूसी नृत्यनाटी (बैले) तो कई देख चुके थे। आरमनी नृत्यनाटी "गयाने" की बातें चारों ओर बड़ी चर्चा सुनी। सोचा इसे भी देख लेना चाहिये। आरमनी देश नृत्यनाटी के लिये तो प्रसिद्ध नहीं है, लेकिन रूसकी विश्वविख्यात बैले का पथप्रदर्शन जब उसे मिला, तो वह कैसे पीछे रह सकता था? मालिन्स्की नाट्यशाला में १७ फर्वरी को उसे देखने गये। सचमुच ही बहुत सुन्दर नाट्य था। सोवियत के प्रथम श्रेणी के कलाकारों में एक आरमनी खचतुयान ने इस बैले को तयार किया था। बैले में जब भाषा का पूर्ण तौर से बायकाट है, तो उसे रूसी कहें या आरमनी इसका सवाल ही नहीं उठता। जहां तक देश,

काल, पथा या संबन्ध है, उनके मजाने में तो आज के रूसी दल स्वयं दी
हात हैं। यदि वह शकुन्तला का बैले तैयार करें, तो उसमें कालिदास के
का अंकित करने की कोशिश करेंगे— शकुन्तला का बैले तो नहीं तैयार हुआ
है, लेकिन नाटक के रूप में अभिज्ञान शाकुन्तल सोवियत-काल में भी कई
खेला जा चुका है। "गयाने" के सारे नट-नटी रूसी थे। नृत्य बड़े सुन्दर,
दृश्य बड़े ही मनोहर, वेश भूषा भी आकर्षक, भावों की कोमलता के बारे में
ही क्या? यवनिकाओं से तैयार किये दृश्य बहुत ही स्वाभाविक विस्तृत
विशाल थे। स्वर शायद आरमनी थे। वहाँ आरमनी अभिनय और नृत्य के मध्य में
अत्यन्त कोमलता देखी जाती थी, किन्तु उजबेकी और रूसी नृत्य जो हम देखे
दिखाये गये थे, उनमें कबीलेशाही परम्परा भी स्पष्ट छाप मालूम होती थी। उ
पड़ता है, गजगामिता ऐसियायी नारियों पर ही ज्यादा लागू है।
कूद फाँदकर चलने वाली यूरोपियन नारियाँ भला गजगमन करना क्या जानें!
लेकिन "गयाने" में नट नटियों के रूसी होने पर भी उन्होंने ऐसियायी क
का निवाह बड़े सुन्दर तौर से किया था।

१८ फरवरी को तापमान हिमबिन्दु से १५° सेन्टीग्रेड नीचे था, लेकिन
मैं अब सर्दी का अभ्यस्त हो चुका था। नेत्रा जमी हुई थी, और
विश्वविद्यालय से लौटते समय उसे सीधे पारकर इमाइस्की-सर्वोफ़ में ट्राम पकड़ते।

लेनिनग्राद युनिवर्सिटी के प्राच्य-विभाग के देरन (टीन) प्रोफेसर
स्ताइन अर्थशास्त्र और राजनीति के एक माने हुए पंडित हैं। चीन में एक बार
वह परामर्श दाता बन करके रह चुके थे और भारत के बारे में भी उनका
अध्ययन बड़ा गंभीर था। उन्होंने चीनी राजनीति और कौटिल्य पर हाल ही में
एक लेख लिखा था। उनसे चीन और भारत के राजनीतिक सिद्धान्तों के
दानादान पर देर तक बातचीत होती रही। बौद्ध धर्म और दर्शन के दानादान
के बारे में मैं भी कुछ जानता था, लेकिन भारत और चीन के दो हजार वर्ष
पहिले आरम्भ हुए सांस्कृतिक सबंध में राजनीतिक दानादान कितना हुआ था
इसका पता नहीं था। मैं जो कुछ भी जानता था उसे बतलाता रहा, लेकिन

ज्ञान कौटिल्य के अर्थशास्त्र से अधिक नहीं था। उस दिन (२० फरवरी) जब मैं कबाड़ियों की दूकानों में किताबों की खोज में निकला, तो मेरे साथ हिन्दी की लेक्चरर दीना मारकोवना गोल्दमान भी थीं। उन्होंने बतलाया, कि हमारे रहने के स्थान के पास कितनी ही अच्छी अच्छी एक बड़ी अच्छी दूकान है। मैंने उनके साथ जा वहां से ३३० रूबल में पुरातत्त्व और मध्यएसिया संबंधी कितनी ही पुस्तकें खरीदीं। जैसे और चीजें राशनवाली दूकानों पर महंगी मिलती हैं, किताबों की वैसी हालत नहीं थी, इसलिये ज्यादा लोगों को प्रिय पुस्तकें इन दुकानों में अक्सर भी टिकती नहीं थीं। यहां पर मुझे १९०४-१९०८ का छपी पुरातत्त्व संबंधी किताबें दीख पड़ीं।

२३ फर्वरी को छोटी लेकिन बहुत ही महत्त्वपूर्ण खबर भारत के बारे में रेडियो से मिली। बम्बई में भारतीय नौसैनिकों ने अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह कर दिया। मार्क्स का कहना ठीक होने जा रहा है। आधुनिक सैनिक विद्या में शिक्षित-दीक्षित भारतीय अपनी बन्दूकों को सदा अंग्रेजों के लिये ही नहीं उठाते रहेंगे, बल्कि कभी वह उन्हें अपनी स्वतंत्रता के लिये भी उठायेंगे। आज वह उठने लगी हैं।

पश्चिम के समृद्ध और समुन्नत देशों में भी कितनी ही चीजें मिलती हैं, लेकिन उनका उपयोग हजार में एक आदमी से भी कम के लिये होता है। सोवियत में शारीरिक, बौद्धिक और सांस्कृतिक विकास के साधन इतने बड़े पैमानेपर हैं, कि उनसे सारी जनता फायदा उठाती है। यदि वहां शिशुशालायें हैं, तो उनमें डेढ महीने से तीन वर्ष के सोवियत के सभी बच्चों को रखकर लालन पालन का प्रबंध है। यदि बालोद्यान हैं, तो वह इतने अधिक हैं, कि उनमें चौथे बरस से सातवें बरस के अन्त तक के सोवियत भूमि के सारे लड़के रखे जा सकते हैं। यह बहुत खर्चीली चीज है। इगर की तरह १४० रूबल मासिक देनेवाले माता पिता नहीं देते, लेकिन सबके लिये वहां अलग अलग चारपाइयां, गद्दे, तकिया, चादर लिहाफ, तौलिया, बर्तन, कुर्सी, मेज, खेलने के सामान सभी जमा किये हुये हैं। बालोद्यानों में खेलते खेलते अधिक से अधिक चीजों

और उनके गुणों के बारे में ज्ञानवृद्धि के साधन के तौर पर कछुवे, खरगोश, गिलहरियां, मुर्गे और पक्षी भी रख जाते हैं। फूलों का तो एक बड़ा उद्यान हरेक बालोद्यान के साथ लगा होता है। इसके अतिरिक्त बालिकाओं की जमात को लेकर नगर के दर्शनीय कौतुकागार (म्यूजियम), उद्यानों, प्रदर्शनी तथा भिन्न भिन्न ऐतिहासिक स्थानों तथा प्राकृत सौंदर्य की जगहों की सैर के लिये ले जाती हैं। बालकों के लिये अपने सिनेमा भी होते हैं, जिनमें सरल समझने लायक विषयों को प्रस्तुत किया जाता है। एक समय भूतों प्रेतों की कहानियों का मिथ्याविश्वास फैलाने में सहायक समझकर ऐसी किताबों का छापना बन्द कर दिया गया था, लेकिन पीछे पता लगा, कि मिथ्याविश्वास की आग भाचने से काम नहीं चल सकता, उसके तो सामने जाकर मुकाबिला करने की आवश्यकता है, और वह मुकाबिला बुद्धि और परिज्ञान द्वारा ही हो सकता है। अब जहां पचतंत्र की तरह की पशु पक्षियों की कहानियों से बच्चों का मनोरंजन और ज्ञान वर्धन कराया जाता है, वहां भूतों प्रेतों की कहानियों का भी प्रयोग में भी परहेज नहीं किया जाता। बच्चों के मनोरंजन और ज्ञान-वर्धन का एक और साधन है, सोवियत के पुतली नाटक (कक्लूगो तियात्र)।

२४ फर्वरी को इगर के साथ हम पुतली नाटक देखने गये। तमाशा था अलादीन और चिराग। नाट्यशाला दर्शकों से भरी हुई थी, जिनमें सैकड़ों बच्चे थे, और २० सैकड़ा उनके साथ गये अभिभावक। हम लिननग्राद की नाट्यशाला में गये थे—नेवस्की पथ पर भी एक पुतली नाट्यशाला थी। अभिनय ६ बजे से ८ बजे के करीब तक हुआ। लड़के तो देखते देखते लोटपोट हो रहे थे। अलादीन के चिराग में कोई ऐसी बात नहीं रखी गई थी, जिसे ६ बरस तक की उमर वाले लड़के न समझ सकें। चाहे सिनेमा हो, चाहे नाटक, चाहे वयस्कों के मनोरंजन की वस्तु हो या शिशुओं का, हर जगह भाव के निर्माता और कलाकार अपनी सफलता अपना नहीं, बल्कि दर्शकों की मानसिक प्रतिक्रिया से नापते हैं। हरेक ऐसी प्रस्तुत की जानेवाली वस्तु का पहिले प्रेक्षकों के सामने परीक्षार्थ पेश किया जाता है, और तब

मनोभाव को देखकर काफी सुधार करने के बाद उसे जनता के सामने लाया जाता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि "अलादीन के चिराग" से बच्चों का बड़ा मनोरंजन हुआ, और बयस्कों का भी अच्छा मनोविनोद।

२६ फर्वरी को हमारे चौथे वर्ष की छाया बड़ा प्रसन्न थी। दोनों आज चीनी का दाम बिना कार्ड के १२० रूबल (८ रुपया) प्रति किलोग्राम (सवा सेर) हो गया। वह स्वयं और उसकी सखियां यह खबर सुनते ही बिना राशन की दुकानों पर टूट पड़ीं। कहतीं थीं—बहुत आदमी होगये थे, इसलिये आधा किलोग्राम (ढाई पाव) चीनी ही मिल सकी। चौंसठ रुपया सेर, या चार रुपया छटांक चीनी हमारे लोगों के लिए तो बड़े आश्चर्य की बात होगी, और यहां किसी को टूट पड़ने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। लेकिन यहां उस दिन सचमुच ही बड़ा आनन्द मनाया जा रहा था। इसका यह मतलब नहीं कि उनको चीनी मिलती ही नहीं थी। राशन में चीनी सबको पर्याप्त मिलती थी, जिसमें रोज की चाय के अतिरिक्त हफ्ते में एकाध दिन मीठी पुडिंग भी बनाई जा सकती थी, लेकिन हमारे यहां की तरह रूसी भी मिठाई की चीजों के बड़े शौकीन हैं, अबतक खुलकर चीनी इस्तेमाल नहीं कर सकते थे, और अब उसका मौका मिला था। राशन से मिलनेवाली चीनी बहुत सस्ती थी। और इसमें पहिले बिना राशन की चीनी १६० रूबल किलो थी। प्रतिकिलो मूल्य में ४० रूबल की कमी जरूर ही खुशी की बात थी। पूंजीवादी अर्थशास्त्र के जाननेवाले या कम से कम वहां के साधारण शिक्षित बिना राशन की दूकानों को चोरबाजारी की दूकान कहने की गलती कर सकते हैं, लेकिन बिना राशन की दुकानों में जो अतिरिक्त चीजें १० गुन २० गुने दामपर बेची जाती थीं, उनका पैसा किसी कारखानादार सेठ के हाथ में नहीं जाता, बल्कि वह सरकारी खजाने में जाकर नवनिर्माण की योजना में लगता है। और जैसे ही नये टूटे हुए कारखानों का पुनर्माण और नये कारखाना का नवनिर्माण होता जाता था, वैसे ही उत्पादन बढ़ता और उसके ही अनुसार दाम गिराया जाता था। इसका ही फल था १६० रूबल से चीनी के भाव का १२० रूबल पर पहुंचना। हमें उसकी विशेषता

इसलिये नहीं मालूम हो सकती था, कि प्रोफेसर होने के कारण हमें कि गशाकार्ड मिला था, जिससे चानी, मक्खन, मांस, दूध, अन्न, बिस्कुट चीजें राशन के दाम पर इतना अधिक मिल जाती थीं, कि उन दूकानों को देखने की आवश्यकता नहीं था, और न खर्च में कमी पो ही।

सोवियत के फिल्म देखने से मुझे उतना वैराग्य नहीं होता था, जितना भारत के फिल्मों को। यहां तो बम्बई में कभी एक बार गला दबाकर दूँ भी हूं, तो अक्सर बीच में ही चले आने की इच्छा हो जाती है। सोवियत फिल्म केवल प्रेम आकर्षण को लेकर नहीं बनते, इसका यह मतलब नहीं उनमें स्त्री पुरुषों के प्रेम संबंध को छिपाने की कोशिश की जाती है। तो भी वह उतना ही रहता, जितना की दाल में नमक। सोवियत फिल्मों में भी मैं देखना था एसियायी फिल्मों को—उजबेकिस्तान, कजाकस्तान, आजरबैजान, मंगोल आदि देशों के फिल्मों को। नये एसियायी कलाकार तरुण अब अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त रूसी भाषा भी अच्छी तरह बोल सकते हैं, इसलिये अच्छे एसियायी फिल्मों को रूसी भाषा के साथ भी बनाया जाता है। अब मुझे भाषा कि उतनी दिक्कत भी नहीं रह गई थी।

२ मार्च को मैं उजबेक फिल्म "ताहिर और जोहरा" देखने गया। यह आजुर्बाइजानी फिल्म था। ताहिर और जोहरा उस समय हुये थे, जब कि बारूद का आविर्भाव नहीं हुआ था और तीर और धनुष चलते थे। एक खान (राजा) अपने सेनापति से बहुत प्रसन्न है। जोहरा खानकी पुत्री और ताहिर सेनापति का पुत्र है। खान ने ताहिर को पुत्रवत् मान रखा है। बचपन में ताहिर और जोहरा साथ खेलते हैं। आगे किसी समय निरंकुश खान सेनापति के ऊपर क्रुद्ध हो जाता है, और वह खान के इशारे पर जंगल में शिकार के समय में तीरका शिकार हो जाता है। ताहिर को अपने पिता की निर्मम हत्या का पता लग गया है—खान की निष्ठुरता और अन्याय से बाप ही नहीं मरा बल्कि जनता भी त्राहिमाम् कर रही है। ताहिर के लिये अपने बाप के खून का ब

ना अवश्यकरणीय था, और उधर जोहरा का प्रेम भी वह छोड़ नहीं सकता था। खान को यह बात मालूम हो गई। वह ताहिर के मारने की फिक्र में पड़ा। एक समय ताहिर उसके पंजे में आगया। खान ने उस सदूक में बन्द करके नदी में फिकवा दिया। आगे किसी खानजादी ने सदूक को निकलवा लिया। वह इस सुन्दर तरुण पर मुग्ध हो गई। ताहिर की जान बचाकर उसने बड़ा उपकार किया था, लेकिन ताहिर अपनी प्रेयसी जोहरा को छोड़ने के लिये तैयार नहीं था। उसने असमर्थता प्रकट की। खानजादी कुपित हो गई। ऊंट के पीछे बांधकर उसे भगा दिया। किसी दोस्त ने रास्ते में बेहोश पड़े ताहिर को उठाया। ताहिर फिर जोहरा के पास पहुंचा। फिर उसका अपने पिता के हत्यारे के साथ सामना हुआ। ताहिर ने उसे मारकर पिता के खून का बदला लेने गया, किन्तु पकड़ा गया। खान के हुक्म से उसे बध उस स्थानपर ले गये। छुड़ाने के लिये मित्र आये, किन्तु चारुदत्त की तरह समय पर नहीं, तबतक ताहिर का कलेजा भाले से छिद चुका था। उधर बापने जोहरा का भी गला घोंट दिया। दोनों एक अरथीपर कब्रिस्तान गये। स्थानक और अभिनय की दृष्टि से फिल्म बड़ा सुन्दर था, लेकिन सोवियत फिल्मों में जो विशाल प्राकृतिक दृश्य देखने को मिलते हैं, वह इसमें नहीं थे—न वह अनन्त बयाबार और पर्वतमाला, न नदी का विस्तृत उपत्यका, न नगर के ही हर अंग का प्रदर्शन।

ऐसियायी फिल्म अगर रोज रोज भी नये नये मिलते, तो मैं देखने के लिये तैयार था। अगले ही दिन (३ मार्च) को "अबाय के गीत" (पीस्ने अबायेफ) कजाक फिल्म दिखाया जा रहा था। मैं उसे देखने के लिये चल पड़ा। कजाकस्तान मध्यएसिया का सबसे बड़ा और सबसे धनी प्रजातन्त्र है। लेकिन यहां के लोगों में काफी संख्या १९१७ ई० तक घुमन्तू या अर्ध घुमन्तू पशु पालकों की थी। इसका अपार खनिज सम्पत्ति पृथ्वी के गर्भ में अछूती पड़ी हुई थी और कजाक नर-नारी लिखने-पढ़ने से बिलकुल अपरिचित थे। बहुत थोड़े से मुल्ला और सरदार—उनमें भी पुरुष ही पढ़नालिखना जानते थे, सो भी अरबी फारसी भाषा में। अबायेफ कोई कल्पित नाम नहीं है। वह कजाक भाषा

वहां है, और न जाड़ा, गर्मी, बरसात जैसी तीन ऋतुओं का ही रूप प्रत्य। मई के आरम्भ में लेनिनग्राद में वसन्त का आरम्भ जरूर हो जाता है, जो बात लेनिनग्राद में श्राब होती है, वह उससे दक्षिण मास्को में कुछ पहले होती है। और दक्षिण जाने पर वह और भी पहिले होती है। वसन्त, ग्रीष्म तथा वर्षा की ऋतुयें एक साथ मिली जुली सी हैं। नये फूलों और नये पत्तों के कारण मई जून को हम वसन्त मान सकते हैं, लेकिन जुलाई से आरम्भ करके तक को यह कहना मुश्किल है, कि यह गर्मी है या वर्षा। दोनों का यहि मिश्रित समय है। कभी कभी दो चार दिन तक वर्षा नहीं होती, आकाश निरभ्र दिखाई पड़ता है, तो उसे ग्रीष्म कह सकते हैं, लेकिन ग्रीष्म नाम से जो लू और गर्मी हमारे यहां होती है, उसका वहां नाम नहीं। सितम्बर के आरम्भ से जब तक कि पानी अभी बरफ नहीं बूंदों के रूप में बरसता है, लेकिन कुछ सर्दी बढ़ने होने के कारण हरियाली पर असर होता जाता है, इसे वह शरद कहते हैं, उसके बाद चार पांच महीने का जाड़ा। इसप्रकार वसंत, ग्रीष्म वर्षा, शरद, और हेमन्त में वहां के साल को बांट सकते हैं, अथवा वसन्त, ग्रीष्म और हेमन्त इन तीन ऋतुओं में विभाजन कर सकते हैं। वसन्त सबसे छोटी ऋतु है, वर्षा उससे बड़ी और हेमन्त सबसे बड़ी। लेकिन अभी मार्च में वसन्त के आने की कोई संभावना नहीं थी। तापमान की आंख मिचौनी में हम कईबार सड़क पर पानी फैला देख चुके थे।

८ मार्च को सोवियत काल के बनाये हुए, नये पर्वों में एक अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस मनाया जा रहा था। सोवियत की हों, या दुनिया के किसी देश की, आज की हों या प्राचीन काल की, महिलायें सदा उत्सव प्रिय होती हैं। हमारे प्राच्य विभाग में भी दिवस मनाया गया। प्राच्य विभाग के दोनों (डानशाला) में भोज की तयारी थी। भाषण, भोज, गीत और नृत्य उत्सव के यह चार अंग थे। विभाग के सारे ही अध्यापक नहीं आये थे। वहां २५ करीब व्यक्ति मौजूद थे, जिनमें दोतिहाई स्त्रियां थीं। मंगोल भाषा के विशेषज्ञ वृद्ध अकदमिक कोजिन (दोक्नविभागाध्यक्ष) ने भाषण किया, फिर

ा क विशेषज्ञ अक्दमिक अलेक्सियेफ और मिथतत्ववेत्ता अक्दमिक स्त्रूवे ने पत्रं के महत्व पर भाषण दिया। दो तीन महिलायें भी बोलीं, फिर पान म त का आरम्भ हुआ। बिस्मिल्ला ही गलत— मैं ही अकेला पान विरत था। लोगों समझाने के लिये व्याख्या करने की जगह अच्छा तो यही था, कि प्याले को में लगाकर जीभ की नोक को तर कर लेता, लेकिन मैं तो अपने जीवन के ार्ग को कायम करने की धुन में था। पान का बहुत आग्रह हुआ, किंतु म च्छा गुड़िया नहीं था। लोगों को कुछ अचरज-सा जरूर मालूम हुआ होगा, किन किसी ने मेरे नियम के तोड़ने तक आग्रह नहीं किया। रोटी, मक्खन, ार, कलवासा (सोसेज), मछली का अंडा, बिस्कुट, केक, मिठाइयां, चाय, ौर नारंगी के फल यह सब मेरे साथ थे, और वहां वह प्रचुर नहीं तो काफी रिमाण में जरूर थे। भोज के लिये लोगों ने पैसे दिये थे, शायद राशन से तिरिक्त चीजें ली गई थीं। भोजनोपरांत गाना शुरू हुआ। दो प्राध्यापक हिलाओं ने सुन्दर गीत सुनाये। लोगों ने तालियां बजाईं। फिर नृत्य आरम्भ आ। जहां बूढ़े बूढ़े तक नाच के अखाड़े में उतरने से नहीं हिचकिचाते, वहां पान सा दिखाई देनेवाला उस कला से अनभिज्ञ मैं कच्चे आग्रह के बाद चुपचाप बैठा टुक टुक देखता रहा। नृत्य के लिये मन तो ललचाता था, लेकिन अब तो चिड़िया खेत चुग गई थी। और तो और मैंने सोवियत सीमा के भीतर रखते ही सिगरेट को भी छोड़ दिया था। वहां पुरुषों में तो कोई भी सिगरेट ागी नहीं था, और कुछ स्त्रियां भी उसका आनन्द ले रही थीं। महोत्सव से ौटकर डेढ़ बजे रात को हम घर पहुँचे।

१० मार्च को कमाल ऐनी शाम के वक्त हमारे घर आये। वह प्रसिद्ध ानिक उपन्यासकार सदरुद्दीन ऐनी के सुपुत्र तथा द्वितीय वर्ष के छात्र थे। मरकन्द में पैदा होने के कारण मातृभाषा ताजिक (फारसी) होने के साथ बक भाषा को भी मातृभाषा वत् ही बोल सकते थे। उनके लिये अपने नगर भी विश्वविद्यालय था, स्तालिनाबाद में ताजिकिस्तान का विश्वविद्यालय था, जसका माध्यम ताजिक भाषा था। लेकिन वह समरकन्द से [illegible] निनग्राद [illegible]

विश्वविद्यालय में पढ़ने आये थे। शायद उनका लक्ष्य ताजिक साहित्य अध्ययन की ओर था, तब तो संस्कृत पढ़ने की आवश्यकता थी। शायद चौथे पांचवें वर्ष में उसे पढ़ें। कमाल से उनके पिता, परिवार और देश के में बहुत देर तक बातें होती रहीं। कमाल का समरकन्द से लेनिनग्राद में आइ अनहोनी बात नहीं थी। सोवियत के सभी कालेजों और विश्वविद्यालयों में प्रतिशत लड़के सरकारी छात्रवृत्ति पाते हैं, जो इतनी काफी होता है, कि बिना माता पिता की मदद के पढ़ सकते हैं। छात्रवृत्ति सखालीन से पामीर की सीमा तक अफगानिस्तान से भुवस्का तक फैले विस्तृत भूभाग के लिये विश्वविद्यालय या कालेज में जानपर सुलभ थी, इसलिये कश्मीर के सीमान्त ग्राम के लिये भी मास्को या लेनिनग्राद में पढ़ना कोई बाधक का सवाल था। हां, अंतर इतना अवश्य था, कि जब आने जाने में रेल पर दो दिन लगता हो, तो केवल ग्रीष्म के बड़े अवकाश में ही घर का मुँह देखा जा सकता है।

१२ मार्च को मैं युनिवर्सिटी गया, तो द्वितीय वर्ष के एक दर्जन में केवल दो मौजूद थे। मैंने उस दिन झुंझला कर अपनी डायरी में लिखा "ऐसी बेपरवाही से पढ़ना क्या अच्छा है? सचमुच हां यह मजाक है। अध्यापकों को यह शिकायत है। माध्यमिक स्कूल समाप्त करने के बाद कहीं जाने की आवश्यकता पड़ता, इसलिये कितनी ही छात्रायें, अपना समय युनिवर्सिटी में आकर बिता देना चाहती हैं।" उस दिन तीन बजे प्राच्य विभाग के मजदूर संघ की बैठक हुई। लेक्चरर (दोत्सेन्त), प्रोफेसर, सभी कर्मचारी निम सभा के सदस्य हां, उसे मजदूर सभा कहना उपहासपद मालूम होता है, पर मजदूर शब्द का मूल्य उस देश में बहुत बढ़ गया है, और वह अपना सम्मान का परिचायक है। अध्यापकों ने पढ़ाने की कठिनाइयों पर भाषण दिये, फिर कुछ प्रश्नोत्तर हुए, पदाधिकारियों का चुनाव हुआ और सभा विसर्जित हो गई।

वर्ष के अन्त में ही मैं अब मध्यएसिया जाने की फिकर में था। मेरे मास्को के मित्र इसके लिये कोशिश कर रहे थे। सभा उनकी

शाजनक भरी और कभी निराशाजनक। एक विदेशी को सोवियत के इस भाग में जाने का इजाजत देना वदेशिक मत्रालय के हाथ में था। आनिया के प्रोफेसर के कहने के अनुसार मैं चाहता था, कि गर्मियों से पहिले अपनी यात्रा खतम करने के लिये मार्च में ही चला जाऊं, लेकिन १२ मार्च को पता लगा, कि अप्रल में भी शायद ही यात्रा हो सके।

१७ मार्च को अखबारों में पढ़ा, कि अब से सोवियत के मन्त्रियों का रोविक क्रान्ति के समय से चला आनेवाला नाम "नन-कमीसर" न रह, मी (मिनिस्तर) होगा। मन्त्री शब्द सारे दुनिया में चलता है, और जन कमीसर हने से बाहर वालों को समझने में दिक्कत होता है, इसलिये सोवियत ने यह थी व्यवस्था की।

न्ती करने के लिये मैंने मास्को जाने का निश्चय कर लिया, और १८ मार्च को नरम दर्जे के लिये २८० रूबल इतूरिस्त को दे आया। पास ही सोवा इसाइकासवोर है, इसलिये उसपर चढ़ गया। सोवियत का यह सबसे ना गिरजा म्यूजियम के रूप में परिणत कर दिया गया है। पिछली यात्रा में पर मीतर घुसकर देख चुका था। अभी वह दर्शकों के लिये खुला नहीं था, लिये ऊंचा छतपर चढकर नगर-परिदर्शन करके ही संतोष किया। छत पर च कर आस पास की चारतले की इमारतें भी बहुत नीची मालूम होती थीं। तों और सड़कों पर सफेद बरफ की चादर पडी हुई थी, नेवा भी सफेद चादर लिपटी ढंकी मढ़ी सी थी। हमारे विभाग की सहायापिका दीना मार्कोव्ना स्पिरात (एम० ए०) थीं, और चाहती थीं कि प्रेमचंद के 'सप्तसरोज" पर दीदान (डाक्तर-उमेदवार) के लिये निबंध लिख डालें। लेकिन अपेक्षित स्तकें वहां थीं? वस्तुत पिछले २० वर्षों में शायद ही कोई हिंदी पुस्तक लिनिग्राद पहुंची हो। उन्होंने "सप्त सरोज" का रूसी में अनुवाद कर डाला था। महावरेदार भाषा को केवल कोश की मदद से नहीं समझा जा सकता, सके उदाहरण उनके अनुवादों में कई जगह मिले। तारीफ यह थी कि उसे वह क्टर बरान्निकोफ को भी दिखा चुकी था।

१०—मास्को में सवा महीना

२६ मार्च को युनिवर्सिटी से छुट्टी का कागज मिल गया। ई
के लिये कुछ अग्रिम पैसा लेना चाहते थे, लेकिन काउंट
भीड़ थी, इसलिये बिना लिये ही चल पड़े। इन्तूरिस्तने लालतारा ट्रेन में
रिजर्व करा ली थी। हां, नरम सीट नहीं मिली थी। १७८ रूबल में ति
गद्देवाला कड़ी सीट थी, जिस पर चादर और गद्दा ऊपर से उसी पैसे में दि
जाना था, इसलिये उसमें भी आराम गद्देदार सीट जैसा ही था। सवा ५
बजे घर से निकले। किसी भी काम को समय पर करना तोला न जानता
था, हम तो डर लग रहा था, कि कहीं ट्रेन न छूट जाय। घर के पास
पकड़ा। तीन किलोमीटर जाते जाते वह थोम कर बैठ गया। भाग्य से पास
एक मोटर ट्रक मिली, जिसके ड्राइवर ने मेहरबानी करके स्टेशन पर प
दिया। ट्रेन सात बजे छूटनेवाली थी, हम आध घंटा पहिले ही पहुंच ग
जाकर आराम की सांस ली। हमारे कम्पार्टमेंट में इन्तूरिस्त के एक कर्मचारी
जा रहे थे, जो अंग्रेजी जानते थे, लेकिन अब भाषा की वैसी दिक्कत नहीं
उनके पास कुछ अमेरिकन समाचार-पत्र थे। मैंने तो सारा समय उन पत्रों
के पढ़ने में लगाया। यह कड़ा दर्जा भी नरम द्वितीय दर्जे ही जैसा था। र

रेने पर भी उतने ही लम्प और दूसरी चीजें थी। पूरी का पूरा सीट मिलने से सोवियत म दार्घयात्रियों को माङ्ग का डर नहीं रहता।

२० मार्च को सवेरे जब हमने गाडी के बाहर की ओर देखा, तो सफेद रंग से ढका ऊचा-नीचा भूमि म जहा तहाँ सदा हरित देवदार दिखाई पड रहे थे। रेल के हरेक डब्बे में एक कंडक्टर होता है, जिसका काम बिस्तरा ठीक करना और डब्बे की सफाई करना ही भर नहीं है,बल्कि वह गरम चाय भी दे देता है। चाय से हम निवृत्त हो चुके। ट्रेन साढ़े ११ बजे मास्को पहुची। इतूरिस्त का मा खबर द दी गई थी और वोक्स तो हमारा यात्रा का प्रबध करने ही वाली था। दोनों के आदमी लिवाने के लिये स्टेशन पर आये थे, लेकिन विशाल स्टेशन म नहीं मिल सके। मेरे पास सामान बिलकुल मामूली था, जिसके लिये मारवाहक की आवश्यकता नहीं था, और भाषा का कठिनाई दूर हो चुकी था, उपर से पहिले भी एक पखवारा मास्को रह गया था। मैंने मेत्रो (भूगर्भ रेल) पकड़ी और मास्को होटल के पास ही उतर कर पास के एक पुराने और अच्छे नेशनल होटल म पहुँच गया। नशनल होटल जारशाही युग म भी बहुत प्रसिद्ध होटल था। क्रेमलिन उससे बिल्कुल नजदीक है। कमरा ठीक करने के लिये इतूरिस्त वालों को नहीं लिखा था, इसलिये ३ घंटे ऑफिस म बैठे रहना पड़ा फिर २४० न० का कमरा मिला। वोक्स के आदमी भी आये, उन्होंने कहा कि यात्रा का सारा प्रबंध हम कर देंगे, केवल विदेश मंत्री की आज्ञा भर की आवश्यकता है। अगले दिन आवेदन पत्र देने का निश्चय हुआ। उस दिन तो ऐसी आशा बंधी, कि मालूम हुआ १४ अप्रैल तक हम अशगाबाद पहुँच जायेंगे।

इतूरिस्त के दफ्तर से अंग्रेजी के अखबार मिले। पता लगा, लार्ड पैथिक लारेंस, स्टाफोर्ड क्रिप्स, और अलेक्जेंडर तीन ब्रिटिश मंत्री समझौता करने के लिये भारत गये है। बात चल रही है, समझौता हो जाने की आशा है। लेनिनग्राद में अधिकतर रूसी पत्रों और रेडियो पर ही विदेशी समाचारों के लिये निर्भर रहना पड़ता था जिसमें भारत की खबरें तो शायद ही कभी

निकलती थीं। ममझौते की बात को वहाँ वाले महत्व नहीं देते थे। उनके गु नातियों का भी विश्वास था भारत की स्थिति में परिवर्तन नहीं ह पायगा, मजदूर पार्टी उतनी ही साम्राज्यवादी है, जितनी की टोरी पार्ट उनकी तरह मैं भी मानता था, कि अंग्रेज प्रसन्नता पूर्वक दान के तौर पर भ की स्वतन्त्रता नहीं अर्पित करेंगे, लेकिन अंगुली पकड़ा देने पर वह पहुँचे नचा नहीं सकेंगे। भारत में स्वतन्त्रता के लिये पागल जो शक्तियाँ पैदा हो हैं, वह अंग्रेजों के मन्सूबे को सफल नहीं होने देंगी।

पहली बात चीत से इतना तो मालूम हो गया था, कि ताल मास्को में रहना ही पड़ेगा। इसमें शक नहीं, कि यहाँ काम का बड़ी पुस्तकें मिलती थीं, जिनको मैं अपने बल बूते पर ढूँढकर जहाँ तहाँ से खरीद रहा था, लेकिन समाचार पत्र इस तरह से मिल सकते थे। ब्रिटिश-दूतावास से विशेष सम्बन्ध नहीं रखना चाहता था। ब्रिटिश प्रजाजन होने के कारण उन पत्र भी मेरे पास पहुँचता था, और मेरा नाम वहाँ दर्ज हुआ था। वहाँ से कुछ ताजा अखबार मिल सकते थे, किन्तु केवल एक बार दूतावास के एक कर्म ने कुछ पाठ्य सामग्री दी थी, यह कर्मचारी इसी होटल में रहता था।

२८ मार्च को बैठ ठाले रहने से मैंने सोचा, चलो मास्को की मा हो जायगी, और माया से भेंट भी। माया बहुत दूर शहर के एक छात्र रहती थी। उसके कॉलेज का ट्रेन के लिये घंटों का आवश्यकता थी। म दत्त भाई का पता लगाने गये, किन्तु उनका स्थान नहीं मिल सका। ट्रामों पैदल की यात्रा करते काफी समय बाद आखिर उस छात्रावास में पहुँचे, जि माया रहती थी। वह पढ़ने गयी थी, इसलिये अपना कार्ड और पता रख आ लेनिनग्राद से मास्को कम सर्द है, यह आज के संस्पर्श से मालूम हुआ लेनिनग्राद का भूमि अभी सफेद चादर ओढ़े हुए अभी उठने का नाम नहीं ले थी, वहाँ मास्का नदी मुक्त प्रवाह बह रही था। नगर में जहाँ-तहाँ अब भी ब थी, किन्तु ऐसी जगहों पर जहाँ दिन में छाया अधिक समय तक रहती थी।

उस दिन की बात चीत से तो मालूम होने लगा, कि शायद पच्चीस

ग्मी अप्रल को ही अशकाबाद पहुँच जायें। हमारे पास वहां के लिये कपड़ा का कमी था। योरुप ने कहा कि हम यहीं तयार करा देंगे।

२८ मार्च को कुछ बरफ पड़ी, लेकिन पड़ते ही गल गई। आधे अप्रल तक सभी बरफ के गल जाने की संभावना थी।

अब तो दत्त भाई के यहां कई बार जाता रहा। वह इस वक्त नगरोपान्त में नहीं थे, बल्कि नगर में ही हमारा जगह से चार पांच फर्लांग पर रहते थे।

३० ही मार्च को "लाल्मैना सामूहिक नाट्य मन्दिर" म गये। मास्को का यह सबसे बड़ी रङ्गशाला है। बड़ी भाड़ थी। लोग एक टिकट के लिये ७० रूबल (२० रुपया) देने के लिये खुशी से तयार थे। आज प्रोग्राम था जन-संगीत का, लेकिन वह पड़ गया था उस्तादों के हाथ में, और वह उसे मलिया मेट कर रहे थे। हाँ, रूसी और रुमानी नृत्य बड़े सुन्दर थे।

अगले दिन (३१ मार्च) लेनिन की समाधि देखने गये। सामने से ना न जाने कितना बार गुजरे होंगे, लेकिन वक्त निश्चित ना भी सलिस तथा दर्शनार्थियों की भाड़ देखकर क्यू में खड़े होने की हिम्मत नहीं होती थी। आज निश्चय कर लिया था, कि दर्शन करके ही हटेंगे।

क्यू की दुहरी पंक्ति था। मुझे काफी दूर खड़ा होना पड़ा, लेकिन द्वार खुला, तो लोग जल्दी जल्दी आगे बढ़ने लगे, और दस ही मिनट बाद मैं भी समाधि के भीतर चला गया। समाधि लाल पत्थर की है, और पालिश के कारण चमकती है। यह लाल मैदान के एक ओर है। उसकी चौरस छत उत्सव के समय नेताओं के खड़े होने के मंच का काम देती है। वह बाहर से देखने पर बहुत छोटा मालूम देती है, लेकिन उतनी छोटी नहीं है। साथ ही जितनी जमीन के ऊपर है, उतना कम नीचे नहीं है। लेनिन का शरीर एक शीशे के खोल के भीतर रखा हुआ है। शीशा इतना साफ है, कि दृष्टि को जरा भी बाधा नहीं होती। मांस सूख जाने से शरीर छोटा हो गया है—वैसे लेनिन शरीर में नाटे थे भी। चेहरे का रङ्ग यथापूर्व कायम रखा गया है, आँखें दब गई हैं, दाढ़ी वैसा ही छोटा सा दिखलाई पड़ती है। सामने आते ही लोग टोपी उतार देते हैं। लेनिन

घुलन की उन्माद था। यहां नक्शे टंगे हुए थे, जिनमें मनुष्य के वंश की क्रमिक उन्नति को देखा जा सकता था। मनुष्य का मस्तिष्क ही वह चीज़ है, जिसके कारण वह प्राणियों में सबसे ऊँचा उठा। अपने शरीर के अनुपात से मनुष्य के पास जितना मस्तिष्क है, उतना किसी जन्तु में नहीं है, यह नक्शे में दिखाया गया था— मनुष्य के कपाल में जितना अवकाश है, उसके पैर और पंजा में दूसरे प्राणियों से क्या अन्तर है, नअण्डथल, क्रोमयो, और आज के सपियन मानव के शारीरिक ढांचों में क्या भेद है। मैंने वहां के प्रोफेसर से राज सियियन जाति के बारे में बात चीत की और अपने विचारों को भी प्रकट किया। उन्होंने बड़ी उत्सुकता से सुना और बतलाया कि डाक्टर ताम्स्तोफ आजकल यहीं हैं, जो कि इस विषय के माने हुए विशेषज्ञ हैं।

शाम को " रोमन तियात्र " में सिगानुचका (रोमनियां) नाटक देखने गये। रोमनी हमारे यहां के उन्हीं कुमतुओं के भाई बन्द हैं, जो आज भी अपनी सिरकी या डेरों को लादे भारत में एक जगह से दूसरी जगह घूमते फिरते हैं। इस प्रकार मैं अपने भाई बन्धों की नाट्यशाला में गया था, इसके कारण यदि वहां जाते समय मेरे मन में विशेष भाव पैदा हुए, तो इसमें आश्चर्य की बात नहीं। यह एक छोटी सी नाट्यशाला थी, जो १५ वर्ष पहिले ही स्थापित हुई थी। सदा की तरह आज भी यह नाट्यशाला दर्शकों से भरी हुई थी, इसलिये अभिनय बड़ा ही प्रभावशाली था यह कहने से मुझे भाई बन्धों के प्रति पक्षपाती होने का दोष नहीं दिया जा सकता। मेरी भी यह इच्छा थी, कि सिगान भाई बहनों से मिलूं,लेकिन पहले तो नाटक देखना था। जिस तरह की छोटी सी दर्शकशाला थी, उसीके अनुसार रङ्गमंच भी छोटा सा था, और नट मंडली भी। लेकिन उसे हम उसके आकार प्रकार से नहीं नाप सकते थे। कथानक था एक स्पेन का सामन्त (ठाकुर) तरुण एक सिगान लड़की पर मुग्ध हो गया। सिगानों की जीविका में नाचना गाना भी एक है, इसलिये यदि सिगानुचका (सिगान कन्यका) अपनी कला में निपुण थी, तो कोई असाधारण बात नहीं थी। वह बड़ी सुन्दरी थी। सिगानचका भी ठाकुर

तरुण को प्रेम का प्रतिदान देने के लिये तयार थी, लेकिन तब, जब कि वह भी सिगान बन जाय। तरुण तैयार हो गया। उसने अपना सामन्ती पोशाक फेंकी, सिगानों का मैला कुचैला बेढंगा पोशाक धारण की, और वह तरुण भी आरम्भ करके एक नगर से दूसरा नगर, एक देश से दूसरा देश घूमने लगा। घोड़ा, गार घुमक्कड़ी नाच, घोड़े बेचने के व्यवसाय को भी सीख गया। इस तरह घूमता फिर रहा था, फिर एक दूसरे सामन्त की कन्या उस तरुण पर मुग्ध हो गई। तरुण ने इन्कार किया। उसकी गठरी में चाज रखकर चोरी का इल्जाम लगा, जेल में भेजा जाने वाला था। इसी बीच में एक कप्तान आ गया। सिगान युरोप के दलित अछूत समझे जाते हैं, इसलिये अगर कहीं मार गये भी खा जायें, तो भी हीयह सन्तोष करने को भला समझते हैं। कप्तान ने भी इस तरुण सिगान को वैसा ही समझा था। लेकिन उसने द्वन्द्व युद्ध के लिये ललकारा। द्वन्द्व युद्ध से इन्कार करना १६ वीं सदी तक के यूरोप में सबसे बड़ा अपमान की बात समझी जाती थी। इसे वीरता की शिक्षा का पाठ समझ कर युरोप के लोगों ने हाल तक कायम रखा था। द्वन्द्व-युद्ध में सिगान तरुण ने कप्तान को मार डाला। तरुण पर हत्या का मुकदमा चला। न्यायाधीश मृत्यु दण्ड देने जा रहा था। सिगानुचका अपने प्रेमी के लिये न्याया-धीश के सामने बहुत रोती रही, उसकी पत्नी के हाथ पर जोड़ती रही। पत्नी ने भी अनुनय विनय किया लेकिन सिगान तरुण ने अक्षम्य अपराध किया था, उसने भद्रवर्गीय सामन्त तरुण को मार डाला था। उसे केवल साधारण दण्ड देकर छोड़ा जा सकता था? इसी समय एक सिगान वृद्धा ने बच्चों का एक आभूषण सामने रखा। न्यायधीश की पत्नी ने उसे तुरन्त पहिचान लिया और कहा— १२ वर्ष पहिले गुम हुई मेरा लड़का का आभूषण है। जज की पत्नी ने कहा— यदि तू इस लड़के को लादे, तो मैं सिगान तरुण को मुक्त करा दूंगी। लड़का लाइ गई लेकिन उसने अपनी माँ को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। आभूषण ने तो बतला ही दिया था, इसलिये माँ बाप अपना लड़का समझ कर गले लगा कर अश्रुमोचन करने लगे। भला अपनी जन्मी का पावन प्रेम है

फांसी पर चढाया जा सकता था। तरुण मुक्त कर दिया गया, लेकिन माता पिता इसके लिये तयार नहीं थे, कि उनकी लडकी सिगानों का जीवन व्यतीत करे। वह इसके लिये भी तैयार नहीं थे, कि लडकी का व्याह किसी सिगान से हो। अन्त म लडकी पर्दा खोल देती है— अन्द्रेइ सिगान नहीं है। उभयपक्षीय माँ बाप अतिसन्तुष्ट। सिगान कुछ दिना तक विवाह के आनन्द में सब कुछ भूल जाते हैं, लेकिन उनको तो किसी एक जगह मे न रहने का शाप है। वह अपने डेरे को उखाड़ने लगते हैं और सिगानकन्या और उसका पति आंसू बहाने लगते, केवल अपने चिर बन्धुओं के विछोह पर हा नहीं बल्कि सिगानों के मुक्त जीवन के छूटने पर भी। नाट्यशाला के पर्दे पर भी सिगानों का विशेष चिह्न रुपयों की माला जहा तहा लगी हुई थी। नाटक की भाषा रूसी थी, लेकिन सज्जा सारी सिगानों जैसी थी। बीच बीच में सिगानपन का दिखलाने के लिये कोई कोई रोमनी शब्द भी आ जाते थे, और संगीत तो सारा का सारा रोमनी था। मैं अन्तराल में भी थियेटर के सक्रेटरी से मिला और उनसे कुछ बातें मालूम कीं। नाटक की समाप्ति के बाद तो सेक्रेटरी ने अपने कई अभिनेता और अभिनेत्रियों से भी भेंट करायी। यद्यपि वह सभा सेक्रेटरी की तरह शिक्षित थे,लेकिन उनमें से बहुत कम को मालूम था, कि वह हिंदू हैं। सेक्रेटरी ने कहा— हां, मैंने सुना है। सबने फिर मिलने के लिए आग्रह किया। मैंने कहा दूसरे नाटक के खेले जाने के समय में फिर आऊँगा।

लेनिनग्राद म तो पुस्तकों म डूबा रहता था, यहा उसके लिये न उतना सुभीता था और न मैं चाहता था। मैं ज्यादा से ज्यादा सोवियत मध्य एसिया सम्बन्धी साहित्य के पढने तथा जगहों और संस्थाओं के परिदर्शन म लगा रहता था। वोक्स की ओर से कभी खबर आती कि जल्दी हो जायगा, और कभी सन्देह की बात होने लगती। वस्तुत सोवियत शासन म अगर कोई बड़ा दोष है, तो यही कि वहा सन्देह की मात्रा चरम सीमा तक पहुँच गई है। मुझे मध्य एसिया जाने का अनुज्ञापत्र न मिले, इसका कोई कारण नहीं था। वहाँ के पार्टी वाले चाहते थे, वोक्स संस्था हर तरह की सहायता देने के लिये तयार

थी, लेकिन विदेश विभाग किसी निर्णय पर ही नहीं पहुँच रहा था।

हमारे होटल के पास म ही कई म्यूजियम थे जिनमें म एक ऐति-हासिक म्यूजियम था। यहां पुराण-पाषाण युग तथा नव-पाषाण युग की भी सामग्री है, इस्तोनिया का बहुत अच्छा संग्रह था, रूसी की भी कुछ चीजें थीं। सबसे पुरानी पुस्तक प्राच भाषा की थी, जो नवी सदी म चरम पत्र पर लिखी गई थी। देखने म वह पीले म पड़ गये सफेद कागज की तरह मालूम होती थी। रूसी भाषा की भी कितनी ही पुरानी पुस्तक थीं, और सबसे पहिले छापे में छपा पुस्तक का भी अच्छा संग्रह था, लेकिन मैं तो जप रहा था मध्यएसिया की माला लिखना हो तो उसका इतिहास, और देखना हो तो उस की भूमि।

रात को (३ अप्रैल) बाल्शोइ-तियात्र (महानाटकशाला) म हम देखने गये। मारिन्स्की तियात्र जसी ही इसकी भी इमारत है, हां यह उससे अधिक बड़ा है। बैले बड़ी आकर्षक थी। गृहस्वामिनी की लड़की और नोकरानी छोकरी म छोकरी अधिक सुन्दर और निपुण थी, जिसे देखकर गृहस्वामिनी को अपनी लड़की की हीनता का भान होता, और फिर वह चिढ़कर नोकरानी पर घो टूमर करने पर उतारू हो जाती। तरुणी अपने भाग्य और जमया क दिन काट रही थी। एक दिन घर म एक भिखमंगिन आई। साधारण भिखमंगि ने प्रसन्न होकर अपने असली रूप को प्रकट कर दिया। वह तो परियों के देश की अप्सरा थी। उसने छोकरी को ले जाकर भिन्न भिन्न ऋतुओं के नृत्य दिखलाया। देखकर तरुणी भी आवेश म आई, उसने भी सुन्दर नाच नाचा। कुछ समय बाद छोकरी पर एक राजपुत्र मुग्ध हो गया, लेकिन छोकरी राजपुत्रों के संग से निराश हो चुकी थी, इसलिए वह घर से निकल भागी। राजकुमार उसे ढूँढ़ने देश विदेश मारा मारा फिरा। बैले का मतलब ही है मूक अभिनय, इसलिए रंगमंच पर भिन्न भिन्न देशों की विशेषता दिखलाने के लिये वहाँ के वाद्य और नृत्य के सिवाय और उपाय नहीं था। राजकुमार इस प्रसंग में उत्तर के ध्रुवप्रदेश, अफ्रीका के जंगलों और न जाने किन किन जातियों के देशों म गया। अन्त म छोकरी अपने पुराने मालिक के घर म मिली। नाटक सफल था।

उसी समय के अस्त्र शस्त्र थे। कहीं पर भी ऐतिहासिक या सामाजिक अनौचित्य नहीं आने दिया गया था, यहां तक कि समकालीन चित्रों में नेपोलियन और कुतुजोफ का चेहरा जैसा देखा जाता है, उनका पार्ट लेनेवाले अभिनेताओं को भी वैसा ही चेहरा-मोहरा बना दिया गया था। कुतुजोफ एक आँख का काना था, इसलिये अभिनेता अपने सारे अभिनय में एक आँख बन्द कर काना बना रहा। इस फिल्म में एक भी स्त्री पात्र नहीं थी, शायद इसीलिये इस विशाल शाला में १० सकड़ा सीटें खाली थीं। जाड़े की हिमाच्छादित भूमि, पर्वत में दूर दूर तक उस गाव, देवदार और भुर्ज के वृक्ष ही नहीं, बल्कि बड़े बड़े रूई के फाहों जैसी पड़ती बरफ, और सनसनाती झंझा को भी इस फिल्म में दिखलाया गया था। सवाद और भी कमाल का था। नेपोलियन की परेशानी और कष्ट को दिखलाया गया था, लेकिन कहीं भी उसके अभिमान पूर्ण चेहरे को दीन नहीं होने दिया गया। दर्शकों में लालसैनिकों की संख्या अधिक थी।

६ अप्रैल को फिर बोल्शोइतियात्र में "यूगेन आनेगिन" ओपेरा देखने गये। बोल्शोइतियात्र में अभिनय और महान् कलाकार चैकाफ्स्की की कृति फिर उसकी साज सज्जा और तयारी के बारे में क्या कहना? लेकिन यह ओपेरा था, जिसमें सारे सवाद पद्यमय होते हैं और स्वर में तो अगर श्रोता पहिले से दीक्षित और अभ्यस्त न हों, तो वह हमारी तरह कान फाड़नेवाली चीख के सिवाय और कुछ न समझें। दृश्य अत्यन्त सुन्दर बने हुए थे। परिधान देश और पात्रोचित थे। नृत्य या दूसरी बात भी निर्दोष थी, लेकिन उस अस्वाभाविक पद्यमय वार्तालाप ने मुझे मजबूर कर दिया, कि पहिला अंक समाप्त होते ही वहाँ से उठकर चल दूं। आज कुछ हलका सा बुखार भी था, शायद यह भी इसकी असहिष्णुता का कारण हो। मुझे इस नाट्यशाला के दो टिकट मिले थे, इसे बड़ा सौभाग्य समझना चाहिये। एक टिकट को तो मैंने पहिले ही अपने हाथ के किसी आदमी को दे दिया था, दूसरे टिकट को बाहर निकलते ही एक तरुण को दे दिया। बहुत से चूके हुए लोग आशा लगाये बोल्शोइतियात्र के बाहर खड़े रहते हैं। तरुण कुछ पैसा देना चाहता था, मैंने कहा—नहीं तुम चाहो तो

जान पड़ता है, शरीर में धीरेधीर कुछ विकार पैदा हो गया था, जो किसी बीमारी का रूप लेना चाहता था। हल्का बुखार, पेट में कब्ज, और सिर में सनसनाहट देखकर १० अप्रैल को ख्याल आया, कि अस्पताल चलना चाहिये। एक पथ दो काज— चिकित्सा भी हो जायगी, और सोवियत चिकित्सालय को भी देख लेंगे। ११ अप्रैल को एक वृद्ध डाक्टर ने आकर देखा। क्रांति के पहिले धनाढ्य और अभिजात्य कुलीन पुरुष थे, बोल्शेविकों के तेज को सहन करने के लिये आवश्यक आदर्शवाद की भारी घूट भी नहीं पी थी, फिर वह कैसे संतुष्ट हो सकते थे। आज उनकी लिखी हुई दवाओं को सेवन किया, और अस्पताल नहीं जा सका।

१२ अप्रैल को तापमान नहीं था, किन्तु पेट भी साफ नहीं था। बीमारी थी लेकिन पढ़ने की चीजों को छोड़ भी नहीं सकता था। शामको एक विख्यात डाक्टर आये, उन्होंने देखा, कुछ मैंने भी कहा, इसलिये अस्पताल जाना तै हो गया।

☆ ☆ ☆

११—सोवियत अस्पताल में

अगले दिन मोटर एक बजे के करीब शहर से दूर हवाई अड्डे के पास बोत्किन अस्पताल में पहुँच आई। अस्पताल क्या इसे एक पूरा मुहल्ला ही समझिये। बोत्किन नाम के कोई प्रसिद्ध डाक्टर थे जिनका नाम इस संस्था के साथ जोड़ दिया गया है। डाक्टर के पूछने पर मैंने बतलाया था कि १९२४-१९२८ ई० में मुझे साल भर के करीब क्रानिक डिसेन्टरी रही उसके बाद पिछले साल ईरान में संदेह हुआ। इसी संदेह पर मुझे छूतवाली बीमारियों के कक्ष (कमरे) में रखा गया था। कमरा छोटा था किन्तु चारों तरफ से पूरा तौर से प्रकाश आने के लिये शीशे ही शीशे लगे हुए थे। कमरा एक तल्ला था, जिसके भीतर लोहे की एक छोटी चारपाई थी। हरेक रोगी का कमरा अलग अलग था। डाक्टर तथा परिचारिका के अतिरिक्त कोई दूसरा भीतर नहीं आ सकता था। खाना के सम्बन्ध में बातचीत करने के लिये एक उच्च पदस्थ सज्जन मुझसे मिलना चाहते थे। उन्होंने बहुत कोशिश की, लेकिन अस्पताल के अधिकारियों ने इजाजत नहीं दी— छूत के बारे में है वरना कोई नहीं जा सकता। खाना कि मुझे रोज छेन का नाश्ता ना था

मिनिस्टरी भी नहीं था, केवल पुराने सम्बन्ध से उसका संदेह भर था। अन्त उक्त सज्जन को स्वास्थ्य-मंत्री का दरवाजा खटखटाना पड़ा। सोवियत में ऐगरे नत्थू-खैरे को मंत्री बनाकर कोई भी विभाग नहीं थमा दिया जाता। किसी विभाग का मंत्री ऐसा ही आदमी होता है, जो उस विषय में काफी ज्ञान रखता हो। हिन्दुस्तान नहीं है, कि राजकुमारी अमृतकौर को स्वास्थ्य मंत्री और मौलाना को शिक्षा मंत्री की गद्दी पर बैठा दिया जाय। सोवियत का स्वास्थ्य मंत्री वही हो सकता है, जो चिकित्साविज्ञान को जानता हो। यदि ऐसा न होता तो शायद उसकी बात को भी अस्पतालवाले परवाह न करते। खैर, कुछ मिनटों के लिये उक्त सज्जन को अनुमति मिली। वह अस्पताल सफेद कपड़ा पहना कर पिछले द्वार से भीतर लाये गये, और बात करके चले गये। हमारा भी कपड़ा बदल दिया गया था। कपड़े सादे थे, लेकिन बहुत साफ थे। यहां अब परीक्षाओं का ताता शुरू हुआ।

१३ अप्रैल को ६ बजे से पहिले ही नींद खुलने पर देखा, चारों ओर लोग अपने अपने काम में लगे हुए हैं। गर्म पानी से मेरा मुँह हाथ धुलवाया गया। उससे पहिले ही तापमान ले लिया गया था। डाक्टर ने पेट, छाती, फेफड़े आदि की परीक्षा की। स्वास्थ्य इतिहास लिखा जाने लगा— १६२४ में क्रॉनिक लाल डिसेन्टरी थी। जापान, मंचूरिया, रूस हो भारत लौटने पर १६३५ में दो हफ्ते टाइफाइड का शिकार, जिसमें एक सप्ताह बेहोश, १६४१ में कई महीने मलेरिया से पीड़ित, १६४४ में फिर डिसेन्टरी।

मुँह हाथ धो-लेने तथा बिस्तरा ठीक हो जाने पर प्रातराश आया। टोस्ट, मक्खन, दो अण्डा, दूध की लस्सी और काफी। यह प्रातराश क्या भोजन सा हो गया। फिर एक प्रोफेसर डाक्टर ने आकर परीक्षा की। डाक्टर से प्रोफेसर डाक्टर का दर्जा ऊँचा है, वही किसी मेडिकल कॉलेज का प्रोफेसर होता है। सज्जन अपना काम बहुत सावधानी और शिष्टता के साथ किया। खाना २ बजे और सात बजे फिर चाय की आवश्यकता होने पर वह भी मिल सकती थी। अब शाम पहरे तापमान लेकर लिखा जाने लगा, तापमान नार्मल था। दवाई

मा दा नाग पिलाइ नान लगी। उस दिन दा प्रोफेसर डाक्टर श्राय दा न देखा। मडिकल कॉलेज के विद्यार्थी भी इस वार्ड म आते थे, लेकिन रोज नहीं आये।

१४ अप्रेल को रविवार साधारण छुट्टी का दिन था, इसलिये अपने डाक्टर मलेरिना आयीं। खून के दबाव को देखने पर कम—तापमान है। दिन म दो इंजेक्शन कल ही से शुरू हो गये थे। यद्यपि उसके तोड़ने के लिये डाक्टर मलेरिना तथा उनकी तरुण सहायिका डाक्टर आकर कुछ देर बैठती थीं। मैं अपने साथ कुछ पुस्तकें भी लाया था। अस्पताल के प्रत्येक कमरे में दो आदमी रखे जाते हैं मगर मेरे कमरे में अकेला था। अस्पताल म बहुत भाड़ नहीं थी। मुख्य नर्स (यथा श्यामा (सेस्त्रा) परिमाण से अधिक स्थूल थीं। वह बराबर आकर पूछती रहती कि खाने पीने का चीज चाहिये। मैं कहता — नहीं, धन्यवाद। डाक्टर मलेरिना से काफी बात होती। उन्होंने रवीन्द्र की कुछ किताबें पढ़ी थीं, और भारत के बारे म अधिक जिज्ञासा रखता थीं। मैं एक छोटी कोठरी में बन्द लेकिन मेरी बड़ी इच्छा होती थी, बोटकिन अस्पताल (बोटकिन्स्काया) के हरेक भाग को देखने की। १५ तारीख से अब कोई शिकायत भी नहीं। दस्त बाकायदा होता था। बुखार भी नहीं था।

१६ अप्रेल को दोपहर तक धूप रही, फिर आसमान घिर आया। की शिकायत थी, कि अब की साल बादल बार बार लौट रहा है, शायद मई भी बरफ न पिघले। मैं चूंकि मध्य एसिया जाने वाला था, और फरगाना का मलेरिया की बात सुन चुका था, इसलिये चाहता था, कि ले लूं। डाक्टर ने बतलाया, मलेरिया और इन्फ्लुयेंजा का सूइयों की आवश्यकता नहीं, हेजा और टाइफाइड की ले लीजिये।

मुझे जगह जगह परीक्षा के लिये जाना पड़ा। एक जगह (एक्सरे) के लिये, दूसरी जगह अंतड़ियों की परीक्षा के लिये जाना पड़ा। परीक्षकों ने यही बतलाया— बहुत ठीक है, कोई विकार नहीं, फेफड़ा,

बिलकुल स्वस्थ हैं। यहां के चिकित्सक घास प्रयत्नशील हैं केवल ओग भी इसी बात पर विश्वास करते हैं।

१२ अप्रैल को अस्पताल आया था, और २० अप्रल को मैंने उसे छोड़ा। छोड़ते वक्त अस्पताल की ओर से एक पूरी रिपोर्ट तयार कर दी गई और आगे के लिये क्या करना चाहिये, इसकी हिदायत भी। सोवियत शासन की सफलता का एक बड़ा प्रमाण चिकित्सालयों की सुव्यवस्था है। नगर हो या ग्राम सभी जगह हर नागरिक नि शुल्क चिकित्सा पाने का अधिकार रखता है। आरम्भ में डाक्टरों की कमी थी चाहे कितने ही गांव अस्पतालों से वंचित रहे हों लेकिन अब तो शायद ही कोई गांव होगा, जहां अस्पताल और डाक्टर न हो। किर्गिज़स्तान और कज़ाकस्तान में क्रांति के समय तक बहुत भारी संख्या में लोग घुमन्तू या अर्धघुमन्तू जीवन बिताते थे। भेड़ों और घोड़ों का पालन उनका मुख्य व्यवसाय था। किर्गिज़िस्तान और कज़ाकस्तान के घोड़े तुखारी घोड़े के नाम से प्राचीन भारत में भी मशहूर थे। आज भी उन्होंने अपनी कीर्ति को खोया नहीं है। सोवियत काल में तो और भी घोड़ों की परवरिश के लिये विशेष ध्यान दिया गया है, और अच्छी से अच्छी नसल के घोड़ों को जल्दी से व्यापक रूप में पैदा करने में कृत्रिम वीर्य निक्षेप द्वारा भारी सफलता प्राप्त की गई है। आज वहां बड़े स्वस्थ, मजबूत और सुन्दर जाति के घोड़े देखे जाते हैं। वहां हजार हजार दो-दो हजार घोड़ों के रेवड़ को एक जगह देखा जाना आश्चर्य की बात नहीं हैं। घोड़े रिसाले के लिये आवश्यक हैं, इसलिये भी सोवियत सरकार को उनकी ओर ज्यादा ध्यान देना पड़ा। अब तक किर्गिज़ और कज़ाक लोग अपने सामाजिक जीवन में घूमते हुए अश्वपालन करते थे। सभी चरागाहें एक समय चरने लायक नहीं होतीं, त्यानशान और अल्ताई की पर्वतमालाओं में ऊंचाई के अनुसार आगे पीछे बरफ पिघलती और हरियाली उगती है, इसलिये पुराने तुमन्तुओं ने किस चरभूमि में किस समय जाना चाहिये, इसका एक नियम बना रखा था। आजकल भी उससे पूरा फायदा उठाने की कोशिश की जाती है।

रन कजाख तुर्कों के अब अच्छे-अच्छे गाँव बन गये हैं, जिनमें अधिक-तर में मिट्टी के तेल का नहीं बिजली जलती है। इन गाँवों में अब कोई कष्ट नहीं मिलता। और गाँवों के आसपास कुछ खेत-बाग लगे हैं, फल फूल भी जाते हैं, लेकिन अब पशुपालन को छोड़ नहीं चुके हैं। अब भी वे अपना पशु चरागाहों में कबीले की तरह उसी समय में पहुँचते हैं, लेकिन तब से अब में अन्तर है। अब रेवड़ के जाने के रास्तों में हर मंजिल पर चारा-पानी, छाया रहने का ही इन्तजाम नहीं होता, बल्कि उनके साथ डाक भेजने का इन्तजाम होता है, आदमियों और पशुओं के चिकित्सक साथ होते हैं, और साथ में चलती फिरती पाठशाला भी रहती है। कई जगहों में स्थायी घर भी बन गये हैं, लेकिन अधिकतर चारागाहों में लोग तम्बुओं के भीतर ही रहते हैं। सोवियत के शासन-राज्य में कोई मनुष्य चिकित्सा से वंचित न हो, इसका अब पूरी तरह से इन्तजाम हो चुका है। जैसा कि पहिले कहा, पशुओं की चिकित्सा का भी इस तरह प्रबन्ध है। मुफ्त चिकित्सा से आदमियों का कितना सुभीता है, इसके मूल्य को सोवियत के लोग नहीं समझते। हवा अनमोल चीज है, लेकिन अत्यन्त सुलभ होने के कारण हम उसके महत्व को नहीं समझते। पूँजीवादी देशों के मध्यम वर्ग के लोगों की बीमारी के पीछे कितना खर्च करना होता है, वह इसके महत्व को समझ सकते हैं। नगरों में हरेक आदमी के लिये एक एक नहीं तीन तीन डाक्टर निःशुल्क चिकित्सा का प्रबन्ध है। मेरा ही उदाहरण ले लीजिये। हमारे मुहल्ले में अलग डाक्टर थे, जो कि टेलीफोन पाते ही रोगी के पास पहुँचते थे, कभी उनके आने में पन्द्रह मिनट से अधिक समय लगते नहीं देखा। यदि डाक्टर कहता है अस्पताल चलो, तो वहाँ सारी व्यवस्था मुफ्त है। यदि आदमी वश घर रहना चाहते हैं और बीमारी छूत की नहीं है, तो डाक्टर जबर्दस्ती नहीं करेगा, हाँ घर रहने पर सरकारी दुकान से सस्ते दाम पर मिलनेवाली दवाई भर का दाम देना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त विश्वविद्यालय में भी निःशुल्क चिकित्सा का प्रबन्ध था और तीसरा वैसा ही प्रबन्ध था मित्रोंकी में।

★ ★ ★

१२—प्रतीक्षा और निराशा

२० अप्रैल को रात्रि को नाव आयी और ८ बजे के करीब मैं फिर नेशनल होटल के उसी २४० नं० के कमरे में चला आया। इतने दिनों तक अनुपस्थित था, लेकिन कमरा रख छोड़ा गया था। एक जगह पड़े रहने के कारण ही शायद कुछ कमजोरी मालूम होती थी। उस रात को कुछ बुखार सा भी मालूम हुआ। चाहे कुछ भी हो, मैं पढ़ने को तो छोड़ नहीं सकता था। शाम को भूख कम लगा, कुछ मन्द होने लगा, लेकिन अब अस्पताल नहीं जानेवाला था।

२१ अप्रैल को कल के हलके बुखार के डर से मैंने बाहर निकलने का महत्त्व छोड़ दिया। शाम के वक्त अपनी पत्नी सहित साथी समउन आये। जिस जावी मित्र से मैं तेहरान में आदिल खान के नाम से परिचित था, उन्हीं का नाम साथी समउन था। उनके साथ शाम को रोमन थियेटर में "भट्ठा के बहू" नाटक देखने गया। यूरोप के सिगानों का जहाँ भीख माँगना, हाथ देखना, घोड़ा फेरी करना व्यवसाय था, वहाँ नाचना गाना भी, विशेषकर शराब के भट्ठा खाने के सामने। शराब पीनेवालों के ऐसे सस्ते मनोरंजन का साधन सिगान

हा दे सकते थे। नाटक में एक रूमी बच्चे का बयान था, जो कि मद्राशगान से लायी गई थी। सिगानों का तुमन्नू नाचन बड़ा ही आश्चर्यकर होता है। रूस के कालिदास कवि पुश्किन भी इस नाचन पर मुग्ध हो गये थे, और उन्होंने इस पर एक सुन्दर कविता लिखी थी। शराबखाने पर नाचना-गाना दिखलाया गया। सिगान नर-नारी अपनी कला दिखाकर पैसा माग रहे थे। एक सिगान तरुण दूसरी सिगान तरुणी पर मुग्ध हो गया। तरुण केवल कलाकार था। कन्या का हाथ मांगने वाले दो दूसरे तरुण भी थे, जिन्होंने बड़ी बड़ी भेंट माता पिता के सामने रखी। लेकिन जो नाचगाना तथा सिगानों की दूसरा विद्याओं का नहीं जानता 'तस्मै कन्या न दातव्ये'। पिता माता ने गुण नहीं देख गृह और भेंट मांगानपर कसला करते हुए, एक वृद्ध के हाथ में अपनी कन्या को सौंपना चाहा, लड़की के विरोध करने पर— चिताने कोड़ों से मारा। प्रेमी तरुण ने फिर एक बार कोशिश की, लड़का भी रोई कलपा, किन्तु पिता के सामने किसी का नहीं चली, जबरदस्ती विवाह कर दिया गया। सिगान धर्म के बारे में कट्टर कभी नहीं रहे, जहां जिस धर्म की प्रधानता थी, वहां वही उनका धर्म हुआ रूस में वह ग्रीक-चर्च के माननेवाले बने, लेकिन दिखावे मात्र था, नहीं तो सिगानों की अपनी प्रथा सर्वत्र एकसी थी। उनका भोजन, गाना नाचना भी एक हा जैसा था। लड़की का विवाह हुआ, जिसमें सारे नर-नारियों ने भाग लिया। नववधू भी प्रथा के अनुसार नाचने के लिये बाध्य थी, किन्तु उसने रोदन नृत्य किया। घोड़े की चौपहिया गाड़ी पर तरुणी का चढ़ाये जाने के समय तरुण प्रेमी क्रिमिया के भूतपूर्व सुल्तान के रूप में जादूगर बनकर आ गया। उसने चादर के नीचे से एक अनुपम सुन्दरी (परी) को निकाला, जिसने वृद्ध भविष्यवाणी की। सुल्तान ने घोड़ा गाड़ी में उसे लुप्त कर दिया। वर वधू उसी गाड़ी पर सवार हो विदा हुए। रास्ते में परी चुड़ैल का रूप लेकर चढ़ गयी। सिगान बेचारे भूत प्रेत के बड़े विश्वासी होते हैं। सभी डर गये—बराती कहीं भागे, वर कहीं भागा। सुल्तान का वेष छोड़कर तरुण अपनी प्रयसी से मिला। बूढ़ा वर पागल हो गया जब उसने दोनों का चुम्बन करते देखा। लोग सिर लोट कर

आय । प्रेमा के साथी ने दोनों को गाड़ी में छिपा दिया, और लोगों को चहरा कर दूसरा ओर ढूँढने के लिये भेज दिया । अन्त में दोनों प्रेमा पकड़े गये। बूढ़े-बाप ने अपने श्वसुर पर बड़ा रोष प्रकट किया है । श्वसुर नाराज हो गया और उसकी बीबी ने सभी मेंटों को निकाल फेंका । अन्त में प्रेमी और प्रेमिका का मिलन हुआ । सारी सिगान-मण्डली ने उनका स्वागत किया । सिगानों के इतने सुन्दर नाट्य को देखकर मुझे अफसोस होता था, कि उस घर का तहखाना देकर क्यों छोड़ दिया गया । उनके लिये तो एक खास इमारत होना चाहिये । उनका थियटर सदा भरा रहता था । ग्रीष्म के दिनों में इनकी मण्डली दूसरे शहरों में भी जाती । लेनिनग्राद में कई बार तो उनका टिकट नहीं मिलता था । अगर यहां बड़ा नाट्यशाला होता, तब भी वह खाली न रहती ।

यद्यपि अभिनेता सारे सिगान और सिगानियाँ थीं, लेकिन दर्शक प्रायः सारे ही सिगान भिन्न थे, इसलिये रूसी भाषा अनिवार्य थी । प्रौढ़ा अभिनेत्री ने बतलाया कि अभी हम अपनी भाषा को भूले नहीं हैं । यह भी मालूम हुआ कि सिगानों को उनकी मातृभाषा द्वारा शिक्षा देने की भी कोशिश की गई थी, लेकिन सिगानों का न कोई प्रदेश और न कोई गांव है । दूसरे लोगों के बीच में यह बिखरे हुने साथ ही सभी द्विभाषी हैं, इसलिये व्यवहारतः यह प्रयोग चल नहीं सका ।

अब की मास्को यात्रा में नाटकों के देखने का मैंने छूट करदी थी । २८ अप्रैल को भी यूरेई (यहूदी) नाट्यशाला में एक सामाजिक नाटक देखने गये । उसके संगीत को देखकर मुझे मालूम हुआ, कि भारतीय फिल्मों में जो सकर, संगीत की इतनी अधिकता है, उसका कारण यही यूरेई प्रभाव है । रोमन थियेटर की तरह यह नाट्यशाला भी अल्पसंख्यकों की नाट्यशाला था । यूरोप में सबसे अधिक यहूदी रूस में शताब्दियों से रहते आये हैं, किन्तु जन साधारण में हजम नहीं हो सके । इसमें यहूदियों की कठोर जात पात की मर्यादा ही कारण नहीं रही, बल्कि ईसाइयों की भी ईसा के प्राण हरनेवाले के पुत्रों के प्रति घृणा भी कारण थी । क्रान्ति से पहले तो वह एक तरह अछूत (ओरी) जाति के

समझे जाते थे। शायद लहसुन का प्रयोग वह खान में ज्यादा करते हैं, इसलिये लहसुनखोर कहकर रूसी उनके प्रति घृणा प्रकट करते थे। कोई आदमी अपनी लड़की को यहूदी को देने के लिये तयार नहीं था, और न कोई रूसी यहूदी लड़की से व्याह कर अपने वर्ग और परिवार में सम्मानित रह सकता था। जन्मभूमि से उखड़कर सूखे पत्तों की तरह दुनिया भर में बिखरे यहूदी शायद उसे चाहते भी नहीं थे, या चाहने पर भी उनको अवसर नहीं मिला जोकि वह खेती में नहीं लगे। बनियां महाजन का व्यवसाय ज्यादा लाभप्रद था, इसलिये वह उसी तरफ आकृष्ट हुए और यूरोप के देशों के मारवाड़ी बन गये। उनकी अपनी भाषा इब्रानी अब केवल पढ़ने की भाषा रह गई, तो भी वह जर्मन मिश्रित एक तरह की भाषा (यिद्दिश) आपस में बोलते हैं। शिक्षा का द्वार खुलने के साथ उन्होंने उस तरफ भी कदम बढ़ाया और अच्छे अच्छे वकील, डाक्टर, प्रोफेसर और इंजीनियर उनमें होने लगे। उनके व्यवसाय सीमित थे, विवाह-सम्बन्ध सीमित थे, इसलिये उनका सामाजिक तंत्र भी बहुत संकुचित था। वह जेतील (अ-यहूदी) को चूसना अपना धर्म समझते थे, और दूसरे उन्हें तुच्छ दृष्टि से देखकर आत्मसंताप कर लेते थे।

लेकिन क्रांति के बाद युगों से चले आये पक्षपातों को हटाने का प्रयत्न किया गया। आज वही लोग पुराने दुर्भावों को अपने मन के भीतर रखे हुये हैं, जो सोवियत शासन से भी प्रेम नहीं रखते। सोवियत शासन ने यहूदियों के रास्ते की सभी रुकावटों को दूर कर दिया है, तो भी अभी ७० प्रतिशत विवाह-सम्बन्ध उनके अपने ही धर्म मान्यों में होते हैं और वह अपने आम्पदों—स्तालिन, मान आदि को कायम रखे हुये हैं। यूरोपीय रूस में उनकी कोई विशेष भाषा न होने के कारण उसमें तो प्रयत्न नहीं किया गया, लेकिन मध्यएसिया के यहूदी एक तरह की विशेष फारसी बोलते हैं, उसमें छपी हुई स्कूली किताबों को लोक पुस्तकालय (लेनिनग्राद) में मैंने देखा था। लेकिन यह तजर्बा उसी तरह असफल रहा, जिस तरह जिप्सियों को उनकी भाषा में शिक्षा देने का। वस्तुतः जब सभी यहूदी अपने गणतंत्र की भाषा को मातृभाषा की तरह बोलते हैं तो यह क्यों

अपने वेश को मामिन रखने हुए थोड़े आदमियों की भाषा में पढ़ना पसन्द करेंगे। यहूदियों की शुक्ल अक्सर नाम का जातीय चिन्ह पश्चिमी युरोप की तरह रूस में ज्यादा नहीं मिलता, लेकिन उनके बाल काल आमतौर से देखे जाते हैं।

यह नाट्यशाला छोटी नहीं थी। इसका हॉल विशाल था, जिसमें ऊपर नीचे १० (पांचमा) से अधिक दर्शक बैठ सकते थे। यहां के गान हम, ज्यादा पसन्द आ सकते थे, क्योंकि इन में फारसी और भारतीय गानों के स्वर मिलते थे। पोशाक भी ऐशियायी यूरोपीय मिली थी— वही शेरवानी थी, जिसका प्रचार मुसलमानों ने तुर्की को समझकर भारत में किया और अब महापुरुष नहरू द्वारा जिसको भारत की राष्ट्रीय पोशाक के पद पर प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न हो रहा है। मंच में वेश, वातावरण, सजावट आदि में यह तियात्र भारत के अधिक नजदीक था।

नाटक का कथानक था एक पुरोहित सनातनी विचार का था। उसकी इकलौती लड़की का प्रेम एक तरुण विद्यार्थी के साथ हो गया। लेकिन पिता नास्तिक विद्यार्थी के साथ अपनी कन्या का विवाह कैसे करता? उसने वर के ढूँढ़ने के लिये घटक दौड़ाये। घटक ने एक धनिक परिवार के तरुण को पसन्द किया, जो कि लंगड़ा, काना, और हकला भी था। लेकिन विद्यार्थी इतनी जल्दी अपने दावे को छोड़ने के लिये तयार नहीं था। जब विवाह पत्र लिखा जाने लगा, तो उसने पुरोहित को रिश्वत देकर अपना नाम लिखवा दिया, और जिस में पिता को मालूम हो, कि यह वही लंगड़ा काना हकला लड़का है, उसने भी वैसा ही अपने को बनाया। लोग उसके अभिनय को देखकर लोट पोट हो जाते थे। उसके चलने, बोलने का सभी बातें धनिक पुत्र की तरह थीं। नाटक की भाषा यिदिश थी, लेकिन अभिनय इतना अच्छा था, कि भाषा जाने बिना भी आदमी नाटक का आनन्द ले सकता था। दूसरों की तरह हसते हसते मेरे पेट में भी दर्द होने लगा। जब तक असली लंगड़ा किसी काम के लिये आने की तयारी में होता, तब तक नकली लंगड़ा पहुँच जाता, और कोशिश यह करता कि दोनों एक समय सामने न आयें। यिदिश भाषा का उपयोग होने के कारण

समझे जाते थे। शायद लहसुन का प्रयोग वह खाने में ज्यादा करते हैं, इसलिये लहसुनखोर कहकर रूसी उनके प्रति घृणा प्रकट करते थे। कोई आदमी अपनी लड़की को यहूदी को देने के लिये तयार नहीं था, और न कोई रूसी यहूदी लड़की से ब्याह कर अपने वर्ग और परिवार में सम्मानित रह सकता था। जन्म भूमि से उखड़कर सूखे पत्तों की तरह दुनिया भर में बिखरे यहूदी शायद उसे चाहते भी नहीं थे, या चाहने पर भी उनको अवसर नहीं मिला जोकि वह खेती में नहीं लगे। बनिया महाजन का व्यवसाय ज्यादा लाभप्रद था, इसलिये वह उसी तरफ आकृष्ट हुए और यूरोप के देशों के मारवाड़ी बन गये। उनकी अपनी भाषा इब्रानी अब केवल पढ़ने की भाषा रह गई, तो भी वह जर्मन मिश्रित एक तरह की भाषा (यिद्दिश) आपस में बोलते हैं। शिक्षा का द्वार खुलने के साथ उन्होंने उस तरफ भी कदम बढ़ाया और अच्छे अच्छे वकील, डाक्टर, प्रोफेसर और इंजीनियर उनमें होने लगे। उनके व्यवसाय सीमित थे, विवाह-सम्बन्ध सीमित थे, इसलिये उनका सामाजिक क्षेत्र भी बहुत संकुचित था। वह जेहोवा (अब यहूदी) को पूजना अपना धर्म समझते थे, और दूसरे उन्हें तुच्छ दृष्टि से देखकर आत्म सन्ताप कर लेते थे।

लेनिन क्रांति के बाद युगों से चले आये पक्षपातों को हटाने का प्रयत्न किया गया। आज वही लोग पुराने दुभावों को अपने मन के भीतर रखे हुये हैं, जो सोवियत शासन में भी भ्रम नहीं रखते। सोवियत शासन ने यहूदियों के रास्ते की सभी रुकावटों को दूर कर दिया है, तो भी अभी ७० प्रतिशत विवाह सम्बन्ध उनके अपने ही धर्म वालों में होते हैं और वह अपने आचारों— खान पान, नाम आदि को कायम रखे हुये हैं। यूरोपीय रूस में उनकी कोई विशेष भाषा न होने के कारण उसमें तो प्रयत्न नहीं किया गया, लेकिन मध्यएसिया के यहूदी एक तरह की विशेष फारसी बोलते हैं, उसमें छपी हुई कई किताबों को ताजिक पुस्तकालय (लेनिनग्राद) में मैंने देखा था। लेकिन यह तजर्बा उसी तरह असफल रहा, जिस तरह जिप्सियों का उनकी भाषा में शिक्षा देने का। वस्तुतः जब सभी यहूदी अपने गणतंत्र की भाषा को मातृ भाषा की तरह बोलते हैं, तो वह क्यों

अपने मन को सीमित रखते हुए थाई आदमियों का भाषा म पढना पसन्द करेंगे। यहूदियों की शुरू जैसी नाटकों का जानकार [illegible] पश्चिमी यूरोप की तरह कम म ज्यादा नहीं मिलता, लेकिन उनके बाल काले आमतौर से देखे जाते हैं।

यह नाट्यशाला छोटा नहीं था। इसका हाल विशाल था, जिसमें ऊपर नीचे ५० (पाँचसौ) से अधिक दर्शक बैठ सकते थे। यहाँ के गाने हम, ज्यादा पसन्द आ सकते थे, क्योंकि इन म अरबी आग भारतीय गाना के स्वर मिलते थे। पोशाक भी ऐसियायी यूरोपीय मिली था— वही सरवानी थी, जिसका प्रचार मुसलमानों ने तुर्की का समझकर भारत म किया और अब महापुरुष नेहरू द्वारा जिसको भारत का राष्ट्रीय पोशाक के पद पर प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न हो रहा है। मंडप म वस्त्र, वातावरण, सजावट आदि म यह तियात भारत के अधिक नजदीक था।

नाटक का कथानक था एक पुरोहित सनातनी विचारों का था। उसकी इकलौती लड़की का प्रेम एक तरुण विद्यार्थी के साथ हो गया। लेकिन पिता नास्तिक विद्यार्थी के साथ अपनी कन्या का विवाह कैसे करता? उसने वर के ढूंढने के लिये घटक दौड़ाये। घटकों ने एक धनिक परिवार के तरुण को पसन्द किया, जो कि लगड़ा, काना, और हकला भी था। लेकिन विद्यार्थी इतनी जल्दी अपने दावे को छोड़ने के लिये तयार नहीं था। जब विवाह पत्र लिखा जाने लगा, तो उसने पुरोहित को रिश्वत देकर अपना नाम लिखवा दिया, और जिस म पिता को मालूम हो, कि यह वही लंगड़ा काना हकला लड़का है, उसने भी वैसा ही अपने को बनाया। लोग उसके अभिनय को देखकर लोट पोट हो जाते थे। उसके चलने, बोलने की सभी बातें धनिक पुत्र की तरह थीं। नाटक की भाषा यिद्दिश थी, लेकिन अभिनय इतना अच्छा था, कि भाषा जाने बिना भी आदमी नाटक का आनन्द ले सकता था। दूसरों की तरह हँसते-हँसते मेरे पेट म भी दर्द होने लगा। जब तक असली लंगड़ा, किसी काम के लिये आने की तैयारी म होता, तब तक नकली लंगड़ा पहुँच जाता, और कोशिश यह करता कि दोनों एक समय सामने न आये। यिद्दिश भाषा का उपयोग होने के कारण

यहा बहुत सी माट खाली थीं, शायद रोमन नियान म मी मिगान माता का थ्याग्रह किया जाता, तो वहां भी यही हालत होती।

२८ अप्रेल को एक ओर मन मारकर अनुज्ञापत्र की प्रतीक्षा कर रहा था, और दूसरी तरफ शाम को पर केन्द्रीय बाल नाट्यशाला की ओर चले। यह नाट्यशाला १२ सालसे उपर के बच्चों के लिय है। नाटक था "नगर के दो कुबड़े"। लड़कों के लिये मनोरंजन की चीज थी, यह इस नाम से ही प्रकट होता है। झाड़ू देनेवाला कुबड़ा तरुण रूपवान बड़ा सुंदर गायक, नगर भर के लोगों का प्रेमपात्र तथा ईमानदार था। नगर नामी खान (राजा) के अत्याचार से पीडित थे। खान के अमारका एक महाकुरूप लड़का था, जिसने नगर की सब सुन्दरी कन्या का उसके पिता ने विवाह करना चाहा। पता पाने के बाद खान ने स्वयं शादी करने का प्रस्ताव किया। उधर दुष्टान कुबड़े तरुण का काम तमाम करने के लिये षड्यन्त्र रचा, लेकिन नगर के प्रेम पात्र कुबड़े के गड्ढे में न गिरने का जगह मूर्ख तरुण और खान दोनों उसमें गिरे। तरुण गायक कुबड़े ने उन्हें गड्ढे से बाहर निकाला। पहिले ही से उसके गान पर मुग्ध जंगल के भालू, सिंह, खरगोश देख रहे थे। लेकिन अपने प्राण बचानेवाले कुबड़े तरुण के उपकार के लिये कृतज्ञ होने की जगह, खान ने उस पर अपराध लगाया। नगर के मैदान में कचहरी लगी। उसी मूर्ख तरुण का पिता न्यायाधीश था। गवाहों की पुकार हुई, किन्तु एक भी गवाह कुबड़े के खिलाफ बोलने के लिये तयार नहीं हुए। इस पर न्यायाधीश ने कुछ बूढ़ों को न्यायाधीश बना स्वयं मुद्दई और अपने मूर्ख पुत्र को गवाह बदकर अभियोग लगाया। तरुण अपराधी से गवाह के बारे में पूछने पर उसने जंगल के वासियों को गवाह के रूप में पेश करना चाहा। विरोधी इस पर हँस पड़े। गवाहों की पुकार का घोंपू तीन बार बजा, और इसके बाद मृत्यु दण्ड को कार्य रूप में परिणत करने के लिये भले कुबड़े को ले ही जाने वाले थे, कि सिंह, भालू, खरगोश आ पहुंचे। लोग दंग रह गये। जंगल के वासियों की गवाही पर कुबड़े कंकाल को मुक्त कर दिया गया। तब खान ने स्वयं मुकदमा देखना चाहा, किंतु अब तक

अपराधी वहाँ से लुप्त हो चुका था। उसे फिर पकड़ने का लाने का हुक्म हुआ। मगर दूसरे का हाथ न उठा पर मास्टर ने स्वयं उसे पकड़ना चाहा और छीना झपटी में कराल के हाथ मारा गया। इस पर मास्टर के एक सेनापति विनियम ने जादू की तलवार से कराल को मारना चाहा। जमकर लड़ाई हुई। मास्टर के आदमी मारे गये, और विनियम भी बन्दी बना। अब जादू की तलवार कराल के हाथ में था, फिर उसे कौन जीत सकता था? मास्टर की सर्वसुन्दरी कन्या ने उसी बूचड़े से विवाह किया— रूप से गुण को उसने अधिक पसन्द किया। नगर मास्टर के अत्याचार से मुक्त था। किसी बुढ़िया की भविष्यवाणी के अनुसार कराल को बूचड़ भी बन गया। इस नाटक में अभिक जनता की ईमानदारी और प्रभु वर्ग के अत्याचार का अच्छा चित्र खींचा गया था। १४ वर्ष तक के लड़कों के लिए ही यह अधिक मनोरंजन और शिक्षाप्रद नहीं था, बल्कि सयाने भी उसका आनन्द ले रहे थे। सभी अभिनेता कुशल थे। नाट्यशाला का मकान अच्छा था, बड़े स्टेज थे। हाल में ७०० भी आदमियों के बैठने की जगह थी।

डाक्टर तोल्स्तोफ के बारे में मैं पहिले भी सुन चुका था। यह भी मालूम था कि कई वर्षों से उनके नेतृत्व में सोवियत पुरातात्विक अभियान मध्यएसिया के उजड़े नगरों के अनुसंधान के लिये जा रहा है। २६ अप्रैल को ढाई बजे दिन को मैं उनसे मिलने गया। कराकल्पक और ख्वारेज्म के अपने अनुभवों के बारे में २ घंटे तक वह बात करते रहे। तूर्खी और शक लोग मंगोल नहीं बल्कि हिन्दू यूरोपीय जाति के थे, इस बात से वह भी सम्मत थे और कह रहे थे कि उनका सम्बन्ध ममागित (महाशक) जाति से था। वो सुतों की भूमि (मध्यनद) तक ही नहीं बल्कि दन्यूब से लेकर तरिमउपत्यका तक शक-जाति का निवास था। शक और हिन्दू ईरानी जाति का परस्पर बहुत नजदीक का सम्बन्ध था। ईसा पूर्व तीसरी चौथी सहस्राब्दी के अपरिजित मृत्पात्र काल में शायद शक और आर्य शाखायें अलग हुईं। फिनो-उग्रुग और मुंडा द्रविड़ जाति का भी उसी तरह का सम्बन्ध था। भाषा की समीपता से जो बात मालूम होते हैं, उनको पुरातत्

जिन खुदाई में प्राप्त सामग्रियों का भी समर्थन प्राप्त है। इनमें और भारत के नव पाषाण युग के हथियारों में समानता है, किन्तु तत्कालीन मृत्पात्रों में कमी समानता है इसको ध्यान से देखने की आवश्यकता है। मैंने कहा आरेल स्टाइन को मकरान में जो मृत्पात्र मिले थे, वह रंगीन हैं। उनमें पहिले के खाना रेखाओं में अंकित पात्र मन नहीं देख हैं। प्रोफेसर ने बतलाया कि ख्वारेज्म में अक्षरों के सिक्कों का पूर्व रूप देखने को मिला है, नाम भी उनके उसी ओर संकेत करते हैं। तास्तोफ का मत है कि अम दरिया (सिर और वक्षु नदिया के बीच का प्रदेश) में पहुंचने पर पहिले पहल शकों की राजधानी ख्वारेज्म में था। श्वेत हूणों (हफ्तालों) की राजधानी उनके मत में समरकन्द जरवा में थी, जिसकी खुदाई १९३८-१९३९ में ताशकन्द के प्रोफेसर शिशिकन ने करायी। वहां की खुदाई में ईसा की चौथी पांचवीं सदी का चारों ओर भित्ति चित्र मिले हैं।

मध्यएसिया से प्राप्त पुरातात्विक सामग्री के बारे में पूछने पर उन्होंने बतलाया उसका जितना हो भाग मास्को में है, और जितना ही अशकाबाद, समरकन्द, ताशकन्द, तेरमिज, स्तालिनाबाद, फ्रुन्ने और अल्माअता के म्यूजियमों में। खुदाइयों के समय और नेताओं के बारे में उनसे पता लगा—

खनक	खनन प्रदेश	सन्	संग्रहालय
आइमान	पनकेन्त (मुकगिरी)	१८३४	मास्को
बेनश्ताम	भसनद	१९३६–४५	फ्रुन्ने
तास्तोफ	ख्वारेज्म	१९२७–४४	मास्को कलासग्र
शिशिकन	वरक्शा (बुखारा)	१९३८–४८	ताशकन्द
नरेनोशिकन	अफ्रासियाब	१९४५	,,
मामार	फरगाना नहर	१९३९	,
,	मर्व	१९३९	अशकाबाद

तो० स्ताफ अपने विषय के डाक्टर रुबेर्गोस्का जैसे ही गभीर विद्वान् हैं और उसी तरह का प्रबल जिज्ञासा रखते हैं। २ घंटे की बातचीत के बाद भी मेरा हो तरह वह तृप्त नहीं थे और फिर आने के लिये निमंत्रित किया। अभी

संग्रहालय में चीना को प्रदर्शित नहीं किया गया था, इसलिये उन्हें अफसोस था कि चीजों को नहीं दिखा सके, लेकिन कितने ही फोटो उन्होंने दिखलाये, साथ ही यह जानने की इच्छा प्रकट की भारत में पुराण-पुरातत्व के विशेषज्ञ कौन कौन हैं। मैं इसका क्या उत्तर देता? हमारे यहाँ तो सर्वज्ञता का सर्वश्रेष्ठ माना जाता है, पुरातत्व जाननेवाले ही पुराण पुरातत्व पर भी हाथ साफ कर देते हैं।

२७ अप्रैल को पता लगा, कि शायद विदेश विभाग से स्वीकृति न मिल सकेगा, लेकिन आशा तन्तु अभी बिल्कुल टूटा नहीं था। उस दिन हम मास्को के दूसरे सबसे बड़े माली तियात्र में "प्रतिमा से दुःख" (गोरे अत् उमा) नाटक देखने गये, इसमें १९ वीं सदी के आरम्भ के रूसी सामन्त वर्ग का जीवन दिखलाया गया था। बोल्शाया तियात्र की तरह माली तियात्र भी अपनी एक शताब्दी बहुत पहिले पूरा कर चुका है, और उसके नाट्यमंच पर भी सैकड़ों प्रतिभाशाली अभिनेता और अभिनेत्रियों ने अपनी कला का प्रदर्शन किया है। इन पुरानी नाट्यशालाओं के अपने संग्रहालय, और शिक्षणालय हैं। यह केवल रूसी रङ्गमंच के लिये ही कलाकार नहीं तय्यार करते, बल्कि सुदूर सिबेरिया और मध्यएसिया के बुरियत, उजबक, कजाक आदि तरुण तरुणियाँ यहाँ से नाट्य कला सीखकर अपने देशों में उसका बड़ी सफलता के साथ प्रचार और प्रसार कर रहे हैं। संग्रहालय में भिन्न भिन्न समय पर खेले गये नाटकों की ऐतिहासिक सामग्री देखी जा सकती है— नेपथ्य का सामान, वेश भूषा के नमूने, कलाकारों के चित्र या फोटो।

नाटक का कथानक था वृद्धग्राफ (काउंट) की इकलौती अत्यंत सुन्दरी लड़की था। ग्राफ विधुर था, वह अपनी तरुण नौकरानी—जोकि उसके रैयतकी पुत्री था—को फँसाना चाहता था। उस समय रूस में किसान अर्धदास (सर्फ) थे, भूमिपति के हाथ में किसानों की जान माल, इज्जत सब कुछ था। ग्राफ लोग राजधानी और शहरों के अपने महलों में बड़े आराम से रहा करते, और कभी कभी मौसमपरिवर्तन तथा मन बहलाव के लिये अपनी ताल्लुकदारी के महल में चले जाते थे, उस समय किसान तरुणियों की इज्जत नहीं बच पाती थी। कितनी ही किसान

कुमारियाँ इन निवासियों में गमरनी होती, और पीछे उनकी बड़ा बुरा अवस्था में अपने गाँव में रहना या नगर में नौकर वेश्या बनना पड़ता। वृद्ध और की तरुण नौकरानी इस घोर परिणाम को जानती थी, इसलिए वह वृद्ध से घृणा करती थी। और पुत्री के तीन रसिक थे — एक पैंतालीस साल का कर्नल, जिसकी सैनिक हेकड़ी मूर्खता की चरम सीमा तक पहुँच गई थी, दूसरा चापलूस तरुण जो और पुत्री से भी अधिक तरुण नौकरानी पर लट्टू था, और तीसरा एक स्वतंत्रता प्रेमी नवयुवक चारकी, जिसका साहित्य और मानवता पर बहुत प्रेम था, और प्रेमिका के ऊपर दिलोजान से फिदा था। पिता कर्नल को दामाद बनाना चाहता था, पुत्री लम्पट तरुण को चाहती थी। साहित्य और स्वातन्त्र्य के प्रेम में पागल तरुण को न पिता चाहता था, न पुत्री।

पिता और पुत्री के साथ तीनों उम्मेदवारों ने कई बार बातचीत की थी। बूढ़े ने एक बड़ी दावत की, जिसमें बीसों ग्याज (राजुल), और (काउंट) अपनी पत्नियों और पुत्रियों के साथ आये थे। उनकी पोशाक बड़ी भड़कीली थी जैसी कि १९वीं सदी के आरम्भ में होता थी। रत्नों और आभूषणों का प्रदर्शनी सी खुल गई थी। पुरुष सम्मान प्रदर्शित करते हुए महिलाओं का हस्त चुम्बन और किसी का मुँह चुम्बन भी करते थे। स्त्रियाँ घाघरे को कमर के पास से पकड़कर जरा-सा झुककर अभिवादन करती थीं। देश काल पात्र में किसी तरह का अनौचित्य न हो, इसका ध्यान सोवियत नाट्यकला में बहुत दिया जाता है और इसके लिये भिन्न भिन्न विषयों के विशेषज्ञ परामर्श के लिये बुलाये जाते हैं। रूसी उच्च वर्ग के हरेक व्यक्ति का अलग अलग रुचि था, जिसे अभिनय में बड़ी अच्छी तरह दिखलाया गया था। स्त्रियाँ वृद्धा हों, प्रौढ़ा या तरुणी, सभी का व्यवहार इतना अस्वाभाविक था, कि जान पड़ता था मानव शरीर नहीं बल्कि पुतलियाँ हिल डोल रही हैं। चौथे और अंतिम दृश्य में और के दरवाजे का प्रदर्शन किया गया था। जाड़े का समय था। परिचारक अपने मालिक और मालकिनों के बहुमूल्य समूरी ओवरकोट और टोप लिये बाहर प्रतीक्षा कर रहे थे। मालिक और मालकिन एक एक करके बाहर निकल नौकरों के हाथ में अपने

कोर श्रार परिधान रास्ते सवारियों पर मशाल हो जाने लगे। नल भी विदा हुआ। चारकी म आग गुण थे, लेकिन बालन म वह सीमा पार कर जाता था, इसलिए उसका लम्बा मारण अभी खतम नहीं हुआ था। वह श्रारर नाररा वाली कोठरी म रुक गया। दरवाजे पर कोई नहीं था। चिराग गुल हो चुके थे। मार कुमारी ने अपने लम्पट प्रेमी को बुलाया। परिचारिका उसे लेने गई, लेकिन प्रेमी परिचारिका से ही प्रेम का प्रस्ताव करते आगे बढ़ा। कुमारी ने देख लिया। उसने कुपित हो बकभककर उसे त्याग दिया। इसी समय चारकी पहुँच गया उसने स्मरण दिलाया, किन्तु कुमारी मान रही। विनान श्रारर दोनों का देखा, और उसने गऊ करके उन पर कोप प्रकट किया। तरुण ने पहले कुमारी को सबोधन कर सारा मारी सुना", उसमें अंतिम नाता तोड़ा और अन्त में बूढ़े पिता को भी चार सुनाकर अपना रास्ता लिया।

सोवियत के नाटक केवल सुन्दर कला और सुरुचिपूर्ण मनोरंजन के ही उत्कृष्ट उदाहरण नहीं होते, बल्कि वह इतिहास, समाज विज्ञान की सुन्दर पाठ शाला का काम देते हैं। जिस समय का नाटक देखने का आपको अवसर मिला है, वहाँ उस समय का इतिहास आपके सामने बिलकुल असली रूप म आ जाता है, और ऐसे रूप में जिसे आप जल्दी भूल नहीं सकते। हमारे यहा की तरह नहीं है कि अशोक के समय उस विक्रमशिला के भिक्षु पेश कर दिया जाय, जिस विक्रमशिला का अस्तित्व अशोक के ११ शताब्दियां बाद हुआ। रेडियो नाटकों में कलिंग विजय के समय बारूद का धड़ाका दिखाया जाय, जिसको कि बाबर के आने से पहिले हिन्दुस्तान के लोग जानते नहीं थे। हमारा ही देश क्या इस विषय म पश्चिमी यूरोप और अमेरिका वाले भी अभी सोवियत रूस से बहुत पीछे हैं। माली और चोन्शोइ थियाटर की नाटक परम्परायें बहुत पुरानी हैं, और आज भी दोनों चोटी के थियाटर समझे जाते हैं। देश के सर्वोत्तम अभिनेता और अभिनेत्रियाँ यहा हैं। बहुत से उन नाटकों को आज भी खेला जाता है, जिन्हें कि आज से शताब्दी पहिले खेला गया था, हां उनमें अनौचित्य के दोष को हटाकर और सामग्री और अभिनेताओं के परिणाम और गुण को बढ़ाकर। सामन्त युग के

कर सकता था? लेकिन मास्को में तो २६ अप्रैल को वसन्त का आगमन सा मालूम हो रहा था। प्रथम मई त्योहार के लिये वसन्तारम्भ से बढ़कर सुन्दर समय क्या सा मिल सकता था? उसदिन तीन-चार घंटा हम शहर में टहलते रहे। मास्कवा नदी में कहीं बर्फ का नाम नहीं था, वह मुक्त प्रवाह बह रही थी। छत या जमीन पर भी बर्फ का पता नहीं था, सिर्फ दस माह की गली में कसाथ घरों के निचले स्थानों में हिम नहीं बर्फ (गन्दा) दिखाई पड़ता था। मास्कवा के उस पार वच्चों की हाट लगी हुई थी, जिसमें खिलौने बिस्कुट, चाकलेट आदि की बेचनेवाली संस्थाओं ने अपनी अपनी छोटी छोटी दुकानें खोल रखी थीं। दुकानें लकड़ी की थीं, लेकिन सुचिन्तित, सुसज्जित, और शोभ के गोल वेष के साथ। पानी का ख्याल रखना जरूरी था, इसलिये वर्षा को अमर न करनेवाली छतें बनाई गई थीं। सारा बाजार चित्रशाला सा मालूम होता था, और चित्र भी वेष ही जिनका और वालक बहुत खिंचते हों। यहां पर रंड मल और रुठघाड़वा भी लगे हुए थे। मन्दिरनमा छतरीदार स्थान बाजे के लिये सुरक्षित था। तरह-सलाई बेचनेवाले कितने हो ठेले भी पहुँच गये थे, लेकिन अभी दुकानों में चीजें सजाई नहीं गई थीं। नगर के बड़े बड़े घरों को भी सजाया गया था। जगह जगह पर लेनिन और स्तालिन तथा दूसरे नेताओं के भी विशाल चित्र टंगे हुए थे। लेनिन पुस्तकालय के ऊपर लेनिन और स्तालिन का चित्र इतना ऊँचा था कि वह नीचे से, चौतल्ले के ऊपर तक पहुंचता था। कोई जगह ऐसी नहीं थी, जिसमें स्तालिन का चित्र न हो। जहां तहां "स्लावा वेलीकम स्तालिन" (महान् स्तालिन की जय) बड़े बड़े अक्षरों में लगे हुए थे। एक जगह वर्तमान पंच वार्षिक योजना के आँकड़ों का रंगचित्र भी लगा हुआ था।

इतने दिन रहे, तो बिना मई महोत्सव देखे जाना अच्छा नहीं, इसलिये इन्तुरिस्तवालों को २ मई के लिये लेनिनग्राद की ट्रेन में सीट रिजर्व कराने को कह दिया और लेनिनग्राद तार भी दे दिया। अब मेरा मन बिलकुल उकता गया था। मध्यएसिया की यात्रा को मैं बड़ा लालसाभरी दृष्टि से देख रहा था, जिसके लिये टका-सा जवाब मिल गया। उक्त खबर को सुनाने के लिये एक उच्चपदस्थ

मद पुरुष आय, और सकोच करते हुए पढ़ने म भिभक रहे थे। मैंने कहा—कोई परवाह नहीं। लेकिन प्रभाव तो पड़ा था। अब मेरी यही इच्छा थी, कि जब भारत लौट चलू। केवल पढाना मुझे पसन्द नहीं आ सकता था। पुस्तक की सामग्री कारी जमा कर चुका था, लेकिन लिखने के लिए कलम नहीं उठती थी, क्योंकि वह लेनिन्ग्राद के भीतर होकर प्रेस कापी भारत म प्रकाशक के पास पहुँच भी सकेगी, इसमें संदेह था।

२६ अप्रल को फिर प्रोफेसर तोल्स्तोफ के पास जाकर दो घंटे तक बातचीत की। आज अधिकतर मध्यएसिया के मानवतन्त्व, पुरातात्विक सामग्री के प्राप्ति स्थान, पुरापाषाण युग, नेशिक्ताश (नेअन्डर्थल मुस्तेर) मानव आदि के बारे म बातें हुई। उन्होंने बतलाया, कि पुरापाषाण युग का अवशेष तशिक ताश म मिला है।

मध्य-पाषाण और पश्चात् पुरापाषाण युग के अवशेष तेशिकताश काल बाइसुन इलाके म मिले हैं, जिनकी खोपड़ी हिन्दी युरोपीय, कपाल दीर्घ और मुह पतला है।

आरम्भ नवपाषाण— इस काल के शिकार के चित्र दराउतसाइ म मिले हैं, जिनमे मनुष्य, पशु, धनुष, चमड़ा-परिधान अंकित हैं। चित्र बनाने वाले ने पहिले रेखाओं को पाषाण में खोदा, फिर उस पर रंग लगाया। आरा (मध्यएसिया) के पास के पर्वत। म भी इस काल के चित्र मिले हैं पाषाणास्त्र और मृत्पात्र भी मध्यएसिया की और जगहों में भा प्राप्त हुए हैं।

दो सस्कृतियाँ— प्रोफेसर ने बतलाया कि मध्यएसिया म प्रागैतिहासिक काल म दो सस्कृतियाँ थीं। जिनम दक्षिणी सस्कृति की दो शाखायें थीं—(१) अनाउ तेरमिज परगाना म नव पाषाणयुग म हिन्दू युरोपीय सस्कृति थी। यहाँ के लोग कृषि जानते थे। इनके मृत्पात्र रँगीन होते थे। (२) अराल द्रोणी निम्न वक्षु म उत्तरी नवपाषाण (४००० ई० पू०) सस्कृति थी। लोग शिकारी और पशुपालक थे। इनके मृत्पात्र अरजित और उत्कीर्ण होते थे।

आदिम पित्तल युग— ईसा पूर्व द्वितीय सहस्राब्द के इस काल म यहाँ

के लोग पशुपालन के साथ कृषि भी किया करते थे। मृद्भाण्ड पहिले लालरंग के थे, फिर उनके ऊपर काली रेखाओं से चित्रण करने लगे। दोनों दक्षिणी और उत्तरी संस्कृतियां भेद रखती थीं। इनका संगम स्थान रवाजेज्म था।

मानव—इसके बारे में उनका मत था, कि तीसरी-दूसरी सहस्त्राब्दि ईसा पूर्व के आदिम पित्तल युग में उत्तर (कजाकस्तान) में जो मानव रहता था, उसका चेहरा पतला था। उसी प्रदेश में ईसा पूर्व दूसरी सहस्त्राब्दी में पित्तल युग के समय कोमियों जाति से सम्बन्ध रखनेवाला दीर्घकपाल चौड़े मुँहवाला मानव रहता था। उत्तर हो या दक्षिण सिर्फ तथु उभय उपत्यकाओं में ईसा-पूर्व द्वितीय और प्रथम शताब्दियों में हूण से पहिले मंगोलायित मानव का कोई पता नहीं था। ईसा पूर्व १० ०-८ ० ई० पू० में दक्षिणी सिबेरिया (खकाशिया) ओइराट, कास्नोयार्स्क में मंगोलायित मानव के अवशेष मिले हैं।

हूण—हूणों के आक्रमण काल ई० पू० द्वितीय प्रथम शताब्दियों में पहिले पहल मंगोलायित मानव अलताई में पश्चिम दिखाई पड़ता है। उस समय अल्ताई एनीमर्दे मंगोलायित और हिन्दी यूरोपीय जातियों की सीमा रेखा थी। शुद्ध हूण लक्षण आजकल याकूतों, और तुर्कूतों में ही अधिकतर पाया जाता है।

श्वेत हूण—मेरी रायका समर्थन करते हुए श्वेत हूण या हेफ्तालों के बारे में उनका कहना था ग्रीक लेखक भी इस शब्द को प्रयुक्त करते हैं। श्वेत-हूण का चेहरा मुहरा हिन्दी-यूरोपीय जैसा है। श्वेत हूण की भाषा में एकाध प्रत्यय हूणों के मिलते हैं जैसे मिहिरकुल में कुल (कुल्ली, दास)।

पश्चिम में मंगोलायित—प्रोफेसर ताल्स्तोफ ने पश्चिम में मंगोलायितों की तीन लहरें आती बतलायीं। (१) लाप—यह नवपाषाणयुग में ध्रुव के पास भू-भाग से होते पश्चिम में फिन्लैंड और नार्वे तक पहुँचे, इन्हीं के वंशज आज के लाप हैं।

(२) हूण—ई० पू० द्वितीय प्रथम शताब्दियों में हूण अपनी पुरानी भूमि (हुवांग हो से मंगोलिया) छोड़ पश्चिम की ओर चले। यह लहर अतिला के हूणों के रूप में चौथी सदी में मध्य दन्यूब उपत्यका (हुंगरी) तक पहुंची, जहाँ

कि आजकल उनके यूरोपीय मिश्रित बना रहते हैं। इसी लहर के बलगार वोल्गा के आसपास चुवाश, जो गोर और कज़ाक थे, चुवाश आज भी मौजूद हैं, लेकिन उनकी भाषा में मंगोलियन प्रभाव अधिक है, शरीर-लक्षण में वह फिनो यूरोपीय मिश्रण से अधिक प्रभावित हैं।

(३) तुर्क— यह लहर छठवीं सदी में पश्चिमाभिमुख प्रयाण करने लगी और क्रियपर के तट तक पहुँची। इसके दो भाग थे (क) स्थिवक (ख) आगूज़। मंगोलायितों के भाषा विकास के बारे में उन्होंने बतलाया कि तुर्क पहले दो भागों में बँटे एक सप्तनद (इली कुल्सरैग) में था कि पश्चिम आये थे। इन्हीं के वंशज वर्तमान कज़ाक और किरगिज़ हैं, जिनमें कज़ाकों का लिखित साहित्य १० वीं सदी से पहिले का नहीं मिलता। तुर्कों की दूसरी शाखा निरवह उपयन में आई। इसका प्रथम लेखक ११ वीं सदी का महमूद काशगरी है जिसने अपना समय की भाषाओं और जातियों पर बहुत सी महत्त्व बातें बतलाई हैं। यही उज़बेक-भाषा का मूलरूप है। उज़बेक भाषा पर ईरानी भाषा का बहुत प्रभाव पड़ा है, केवल उधार के शब्दों में ही नहीं, बल्कि भाषा के ढाँचे पर भी।

तुर्कों से भिन्न गूज़ (या आगूज़) इस शाखा के ही वंशज वर्तमान तुर्कमान, आज़ुरबायजान और उस्मानी (तुर्कीवाल) तुर्क हैं।

तुर्कमानों के बारे में उन्होंने बतलाया कि इनपर हिन्दी यूरोपीय प्रभाव ज्यादा मंगोलायित कम है। इनकी भाषा मंगोलायित है और संस्कृति ईरानी। उज़बेकों की भी यही बात है। कज़ाकों में जितना ही पश्चिम की ओर जायें उतना ही हिन्दी-यूरोपीय अंश अधिक होता जाता है। यह छठी से दसवीं शताब्दी के तुर्कों के वंशधर हैं। किरगिज़ों में मंगोल रक्त अधिक है।

ई० पू० द्वितीय शताब्दी में सप्तनद के निवासी शक वंशज वृहत् आयत कपाल थे।

फिनिश और मुंडा द्रविड़ भाषाओं का सादृश्य भाषा तत्त्व की एक बड़ी समस्या है। यह सादृश्य बतलाता है, कि किसी समय भुवक्ष में रहनेवाले फिनों, और भूमध्य रेखा के पास रहनेवाले द्रविड़ों का एक वंश था। प्रोफेसर

ताम्स्तार के अनुसार इस वंश का विभाजन शायद नवपाषाण युग में हुआ—स्ट्रांग्ज और भारत के तत्कालीन पाषाणास्त्रों की समता भी इसी बात को बतलाती है, लेकिन मनुष्यों का अभी देखना है। इस वंश की एक शाखा—पिनो उग्रुर और दूसरा द्रविड़। द्रविड़ शाखा भी दक्षिणी, (मलयालम, तमिल, तेलुगु, कन्नड, तुलु,) और मध्य (खोन, गोंड, मुंडा, कूवी, कुरुख, कुई, मल्तो) में विभक्त है।

ताम्स्तोर का ज्ञान बहुत ही विशाल है, इस कहने की आवश्यकता नहीं। मैंने जाते समय बहुत कृतज्ञता प्रकट की और उन्होंने फिर मिलने के लिये निमंत्रण दिया। उसी दिन मैंने दत्तभाई की जीवनी के लिये नोट भी लिये।

अब मैं भारत लौटने की सोच रहा था। किन्तु आये रास्ते से लौटना मेरी आदत के विरुद्ध है, इसलिये ईरान के रास्ते जाने का ख्याल नहीं होता था। अब दो रास्ते रह जाते थे। सबसे नजदीक का रास्ता अफगानिस्तान होकर था। मैं अफगानिस्तान की सीमा तक तो आसानी से पहुँच सकता था, आगे के लिये मेरे पास जो पौंड में चेक थे, उनका यदि यहाँ पर पौंड मिल जाता तो मैं निश्चिंत रह सकता था, नहीं तो आमूदरिया तट से काबुल तक के यातायात का प्रबन्ध किये बिना जाना ठीक नहीं था। मैं ब्रिटिश कौंसिल के पास गया। उन्होंने कहा कि चेक के बारे में मैं कुछ नहीं कर सकता लेकिन यदि तीस पौंड का रूबल जमा करदें, तो हम अपने स्टाकहोम दूतावास में या काबुल में तार दे देंगे, जहाँ पैसा मिल जायगा। उन्होंने सलाह दी, कि लेनिनग्राद से स्टाकहोम होते हुए लंदन जाना ही अच्छा है, खर्च ३० पौंड से अधिक नहीं पड़ेगा। हमारे पासपोर्ट पर स्वीडन और अफगानिस्तान का नाम भी लिख दिया गया। काबुल का रास्ता मुझे पसन्द था, लेकिन तेरमिज से काबुल पहुँचने का कोई उपाय नहीं सूझ रहा था। लन्दन के रास्ते जाने में एक यह भी सुभीता था कि हम रूबल में किराया चुकाकर सोवियत जहाज से जा सकते थे। उस वक्त बातचीत करने से तो यही मालूम होता था, कि दो ही तीन महीने में यहाँ से चल देना है, लेकिन जल्दी करते करते भी पन्द्रह महीने और रह जाने पड़े।

८ मई रात को सरकस देखने गये। कोई खास विलक्षणता नहीं था। कुछ फिर अपना गात दिखाते रहे। बाजीगर ने ग्यारह अखबार में बहुत सी कागज की चिट निकालीं, जरा ही देर में उनका ढेर लग गया, फिर आग लगा के जला दिया। एक चीनी बाजीगर ने तीला से चीनी मिट्टी की तश्तरियाँ उछालकर दिखलायीं। फिर सरकस की कई कसरतें हुईं। आज भी शामको शहर में दीपमालिका थी।

मई दिवस— लाल मैदान में मई महोत्सव का प्रदर्शन देखने जाना था। पास के बिना कोई वहाँ पहुँच नहीं सकता था। नास्म ने पास का इन्तिजाम कर दिया था। यद्यपि लाल मैदान हमारे होटल से मस्कू पार करके कुछ ही कदम आगे शुरू होता था, लेकिन आज का रास्ता उतना सीधा नहीं था। चारों ओर जबर्दस्त सैनिक प्रबंध था। कई जगहों पर तो जाने पर यही जवाब मिला— जाओ, यहाँ से नहीं जाने देंगे। फिर किसी ने कहा "तीसरी धार से आओ"। एक दर्जन से भी अधिक बार पास और पासपोर्ट दोनों दिखलाने पड़े। लाल मैदान में आज बहुत कीमती जानें आई हुई थीं। प्रजापतियों का कोई शत्रु पहुँचकर पिस्तौल न चलादे, इसीलिये इतना प्रबंध था। अंत में आध घंटा चक्कर काटने मैदान में पहुँचे। नेताओं के खड़े होने के स्थान की दाहिनी और बायें की गैलरियाँ बनी हुई थीं, जिनमें १४ नं० की गैलरी में हमारा स्थान पिछली पंक्ति में था। सभी लोग खड़े थे, इसलिये हमें भी खड़ा होना पड़ा। मैदान के परले पार विशाल मकान पर सबसे ऊपर विशाल सोवियत लाञ्छन लगा हुआ था, जिसके नीचे मई का अभिनन्दन तथा दूसरे नारे अंकित थे। लेनिन और स्तालिन के विशाल चित्र भी वहीं लगे हुए थे। मकान के ऊपर संघ के १६ प्रजातंत्रों के अपने लाञ्छनों सहित झंडों की पंक्तियाँ फहरा रही थीं। इतिहास म्यूजियम के मकान के ऊपर भी नारा लगा हुआ था जिसके बायें विशाल हँसिया, हथोड़ा, और दाहिने तारा था।

९ बजे से ही जगह भरने लगी। मैदान में भिन्न भिन्न वर्गों की सेनायें पंक्तिबद्ध खड़ी थीं। १० बजे नेता लोग आये। सबसे पहिले सैनिक वेश में

स्तालिन, मार्शल रोकोसोवस्की फिर मन्त्रीगण, कितने ही माशल और जेनरल। मार्शल रोकोसोवस्की आज की परेड के प्रमुख थे। स्तालिन का वक्तव्य रोकोसोवस्की ने पढ़ा फिर प्रदर्शन शुरू हुआ। पहिले पैदल, फिर नौसेना के जवान मार्च करते निकले, फिर सवार तथा दूसरी सेनाएं, घोड़ोंवाला तोपखाना, मोटर और टैंकवाली सेनाएं। आकाश में ६ मिनट विमानों के इसी समय दिखलाई पड़े। डेढ़ घण्टा सेना-प्रदर्शन में बीता। दर्शकों के सामने से अपार सेना गुजरी। नाना भांति की तोपें थीं— छोटी तोपें, एक ही साथ पांच-पांच सात सात गोलों की माला छोड़नेवाली कत्यूसा, विशाल तोपें फिर पराछूटी जवानों से भरी लोरियां निकलीं। मौसिम बड़ा अच्छा रहा। देशी-विदेशी-सम्वाददाता, और फिल्मवाले चित्र लेने में लगे हुए थे। साढ़े ग्यारह बजे नागरिकों का प्रदर्शन शुरू हुआ। हम आखिर तक नहीं ठहर सके, प्रदर्शन को दो घण्टे ही देखा। कितने ही दर्शक तो सेना के प्रदर्शन के बाद ही लौटने लगे थे।

यद्यपि हमारा होटल बिलकुल नजदीक था, किन्तु लौटना आसान नहीं था। लौटते वक्त भी कितनी ही सैनिक पंक्तियों में पास दिखलाना पड़ा। १० सेकेंड सैनिक रूखे भी मिले, नहीं तो वह बड़ी मुलायमियत से रास्ता बतला देते थे। नागरिक प्रदर्शन पंक्तियों से सारी सड़क भरी हुई थी। इस चलायमान नर समुद्र को पार करना आसान काम नहीं था। पता लगा कि नगर के केन्द्र का रास्ता बन्द है। नेशनल होटल नगर केन्द्र में ही था। तो क्या शाम तक होटल नहीं जा पावेंगे? लेकिन आध घंटे में हम अपने होटल में पहुँच गये। भोजन के लिये जावी मित्र सिमाउन के यहां निमंत्रित थे, साथी सिमाउन का पुत्र करीम लेने के लिये आया था। ६ बजे बाद दीपमाला देखने गये। लेकिन हम नगर के एक छोर पर थे, इसलिये अच्छी दीपमालिका नहीं देख सके, और आतिशबाजी से तो बिलकुल वंचित रह गये। भूगर्भ-रेल से आकर पुश्किन चौरस्ते पर लड़कों के बाजार को देखा। अपार भीड़ थी। पता लगा छ बजे ही सभी रास्ते खुल गये थे। जगह जगह दीपमालिकायें थीं, किन्तु सभी घरों और निवी पर नहीं। केन्द्रीय तार घर पर चलती फिरती रंग बिरंगी रोशनी बड़ी सुन्दर

१३—फिर लेनिनग्राद में

७ मई को ७ बजे शाम की गाड़ी पकड़ी और अगले दिन लेनिनग्राद पहुंच गये। ब्रिटिश कौंसल ने बहुत से समाचार पत्र दे दिये थे, जिनको रेल में भी पढ़ते रहे, और यहां भी। लेनिनग्राद में भी अब वृक्षों के ऊपर कलियों तथा पत्तियां निकल रही थीं, नेवा की धार मुक्त हो गई थी, लेकिन अब भी उसमें बरफ की शिलायें बह रही थीं। ६ मई को वनस्पति की हालत देखकर कहना पड़ा कि वृक्षों पर पत्तियां बहुत धीरे धीरे निकल रही हैं। सरदी अभी गई नहीं थी। लदोगा झील अपनी बरफ की सौगात को नेवा द्वारा समुद्र में भेज रही थी, जो ६ मई को भी उसी तरह चली जा रही थी। १० मई तक निश्चय कर लिया, कि साल भर और यहीं रहा जाय। मध्यएसिया नहीं गये, मध्यएसिया के इतिहास की सामग्री इतने में और जमा हो जायगी, लेकिन फिर एक साल बिना रेडियो के नहीं रहा जा सकता, इसलिये १० मई को ही साढ़े तीन हजार रूबल में एक नया रेडियो खरीद लाये। हमारे पास राशन जैसा एक कार्ड था, जिसके कारण ७०० रूबल कम देने पड़े। हमारे साथी और विद्यार्थी कह रहे थे—यदि छः महीना रुक जायें, तो आधे ही दाम पर

मिल जायेगा। (उनकी बात सच निकली। छ महीने बाद वही रेडियो १६०० रूबल में मिलने लगा था)। लेकिन हम दूना दाम देने के लिये तैयार थे, क्योंकि छ महीने और देश विदेश की खबरों से वंचित नहीं रहना चाहते थे। रेडियो छोटा और बहुत सुन्दर था। उसी दिन दिल्ली सुना। लदन तो खूब साफ सुनायी देता था, पीछे तार बाध देने पर तो दिल्ली भी लदन की तरह सुनाई देती थी। मद्रास कभी कभी सुनने में आता था। यह कहने की आवश्यकता नहीं, कि दूर से लघु तरंग का ही बातें सुनने में आती थीं। अब हम निश्चित होगये थे। अपने यहां का नाटक भी सुन लेते थे, गाना भी सुन लेते थे, और समाचार भी। हमारे घर में इस बाजा का आनन्द लेनेवाला मुझे छोड़ और कोई नहीं था। कई हफ्ता सुनने के बाद स्टेशनों और समयों का पता लग गया। मन में सन्तोष किया — चलो अब निश्चित होकर एक साल और रहा जा सकेगा।

नियत समय के अनुसार अब फिर हम युनिवर्सिटी जाने लगे। विद्यार्थी तो पढ़ते ही थे, अध्यापक भी मेरी उपस्थिति से लाभ उठाना चाहते थे। उन्होंने कुछ दिनों व्याकरण महाभाष्य को भी पढ़ा। आरंभ के आह्निक उतने नीरस नहीं हैं, विशेषकर भाषातत्त्व में दिलचस्पी रखनेवाला के लिये वहां पद पद पर दिलचस्प बातें निकल आती थीं। थोड़े से उच्चारण में परिवर्तन करके कई शब्दों को रूसी जैसा देखकर छात्र बहुत प्रसन्न थे।

१२ मई को श्रीमती श्चेर्बात्स्की के यहां दावत हुई। डाक्टर श्चेर्बात्स्की का मेरे साथ असाधारण स्नेह संबंध था। वह बड़े ही मधुर स्वभाव के थे। दूसरी यात्रा में मेरे जल्दी लौट आने का उन्हें बड़ा अफसोस था, और वह इस बात की कोशिश कर रहे थे, कि मैं अधिक समय के लिये रूस आऊं। इसी समय लड़ाई छिड़ गई और लड़ाई के दिनों में लेनिनग्राद से उत्तरी कजाकस्तान में जाकर उन्होंने अपनी शरीर यात्रा समाप्त कर दी। उसी घर में आज गये, जिसमें १९३७ में न जाने कितनी बार घंटों हमारी बातचीत होती थी। पहिले ही दिन मिलते हुए उन्होंने कहा था—'स्वागत इदमासन उपविश्यताम्।" अब भी

ये शब्द मेरे कानों में गूंज रहे थे। भारत में संस्कृताध्यापक कवियों ने भी सपनी र स्थान ४।२ बने ही चलन की बात थी, लेकिन श्रीमती व तैयारी में घर पर ही छ बन गये। श्चेर्वात्स्की के निकट स्थान का दरवाजा मन में बहुत तरह के ख्याल लाते थे, जिन्हें वैराग्य का मधुर मिश्रण भी कह सकते हैं। श्रीमती श्चेर्वात्स्की जर्मन वृद्ध महिला हैं। जब वह श्यामा (तरुणा) थीं, तभी श्चेर्वात्स्की के ताल्लुकदारी वंश में परिचारिका बनकर आया थीं। वह पाकविद्या में निपुण थीं। आचार्य श्चेर्वात्स्की के मरने तक वह उनकी पाचिका रहीं। बाल्शेविक क्रांति ने श्चेर्वात्स्की की विशाल ताल्लुकदारी का खतम कर दिया, लेकिन "विद्याधन सर्वधनप्रधानम्"। श्चेर्वात्स्की पहिले ही अपनी विद्या के बलपर अकदमिक हो चुके थे। अपने राजा-बाबू बन्धुओं की तरह वह पागल नहीं हुए। उन्होंने राजनीति को अपने से अलग रखा, और जोशेविकों के जमाने में जान लिया, कि उनके यहां विद्या का कदर पहिले से भी अधिक रहेगा, इसलिये बड़ी लगन के साथ अपने काम में जुट गये। पहिले उन्हें कुछ समय जमीदारी के काम में भी लगाना पड़ता था, लेकिन अब उनका सारी चिन्ता का सरकार ने लिया था। निमग्रन्थ धन का सारी ख्याल था, उस वक्त भी सबसे पहिले अकदमिक देवताओं की ओर सरकार का ध्यान जाता था। श्रीमती १९३७ में मेरे यहां आने के समय भी अपने मालिक की पाचिका मात्र थीं। पीछे मालूम हुआ कि ७० वर्ष के दुलहे ने ५५ वर्ष की दुलहिन से व्याह किया है। आचार्य श्चेर्वात्स्की जीवनभर अविवाहित रहे, पारिवारिक झंझट को केवल अपनी मातृभक्ति भर सामित रखा—उनकी माता बहुत दिनों तक जीवित रहीं। मरने के समीप पहुंचने पर श्चेर्वात्स्की ने सोचा कि अपनी वृद्ध-पाचिका के साथ यदि विवाह कर लें, तो अकदमिक की पेंशन उसे जीवनभर मिलती रहेगी, इसीलिये उन्होंने विवाह किया। अकदमी विद्या संबंधी सोवियत की सबसे बड़ी संस्था है। किसी विद्वान का सबसे अधिक सम्मान जो हो सकता है, वह है अकदमी का सदस्य बनना अर्थात् अकदमिक होना। अपने विषय का चोटी का विद्वान् तथा नये ज्ञान का देनेवाला व्यक्ति ही अकदमिक बनाया जाता है। सोवियत रूस में

आजकल भी अकदमिकों की संख्या १८० से ज्यादा नहीं है। अकदमिक बनते ही आदमी जीवनभर ६०० रूबल मासिक पाने का अधिकारी हो जाता है। श्रीमती श्चेर्बात्स्की उस वेतन को पा रही हैं, और जब तक जीवित रहेंगी, तब तक पायेंगी। इसके अतिरिक्त श्चेर्बात्स्की का बहुत सा सामान चित्र, गाने, पुस्तकें, सोने चांदी के बर्तन आदि उनकी संपत्ति है। पुस्तकों का बहुत सा भाग पचास हजार रूबल देकर युनिवर्सिटी खरीद भी चुकी है।

श्रीमती श्चेर्बात्स्की की पाकविद्या की मित्रमण्डली में काफी ख्याति है, भोज और दावत देने का उन्हें बहुत शौक भी है। आखिर रुपया भी तो बहुत आता है, उसके खर्च का भी तो कोई इन्तजाम होना चाहिये। उन्होंने बड़े सुंदर सुंदर भोजन तैयार किये थे। एक मांस हिंदुस्तानी ढंग से भी बनाया था, और करी पाउडर (मशाला चूर्ण) का डिब्बा दिखलाकर कहा—देखिये यह हिन्दुस्तान की चीज भी मेरे पास है। भोजन और बातें करते बहुत देर तक हम वहां बैठे रहे। बीच बीच में मुझे ख्याल आता था—अगर डाक्टर श्चेर्बात्स्की इस वक्त होते! ९ बजे तक उजाला रहा, ११ बजे हम घर लौटे। कल न को मई का मध्य था, लेकिन अभी भी हमारे यहां के माघ पूस के जाड़े को ठोकर लगानेवाली सरदी वहां मौजूद थी। रास्ते में ट्राम से उतर कर घर जा रहे थे। इसी समय पुलिस एक लड़के को पकड़े लिये जा रही थी। आखिर सभी मकानों में शीशे की खिड़कियां हैं, शीशे पर पत्थर चलाने में उसके टूटने की आवाज बड़ी कर्णप्रिय मालूम होती है, इसलिये लड़के ने शीशा तोड़ दिया था, इसीलिये पुलिस पकड़े लिये जा रही थी। गलती यही की थी, कि साधारण शीशे को न तोड़कर उसने आग बुझाऊ ब्रिगेड को बुलाने के लिये रखे यंत्र का शीशा तोड़ दिया था। लड़का बेचारा बड़ी चिरौरी मिनती कर रहा था, रो रहा था। पुलिसवाला उपहास करते हुए कह रहा था—नहीं बाबा, चलो। तुमने खेल का अच्छा ढंग सीखा है। अन्दाज से यही मालूम होता था, कि दो चार घंटे डरा धमकाकर लड़के को छोड़ दिया जायगा। लेकिन अभी तो उसके गालों पर आंसू की धार बह रही थी।

रेडियो लाने का चमत्कार और फल जल्दी ही मिला। पन्द्रह मई को दिल्ली-रेडियो ने खबर दी कि भारत में नई राष्ट्रीय सरकार बनने जा रही है। प्रांतों में भी नई सरकार बन गई है, जिनमें बंगाल को छोड़ प्राय सारी ही कांग्रेस की है। प्रांतों के मुख्य मन्त्रियों के नाम भी सुने। १६ मई को ब्रिटिश मन्त्रियों का भारत में वक्तव्य निकला, जिसमें पाकिस्तान का अव्यवहारिक तथा राष्ट्रीय सरकार कायम करने के संबंध में कितनी ही बातें बतलायी गई थी। उसी दिन पेथिक लारेंस का भी भाषण रेडियो पर हुआ। यह सब खबरें भारत के लिये महत्व की थीं, लेकिन मास्को रेडियो में महान से चल रही इन समाचार बातों का कोई उल्लेख नहीं होता था। युगों बाद १८ मई को २० मार्च का कलकत्ता में डाला आनन्द जी का पत्र मिला, जिससे मालूम हुआ कि हमारे लंका के आचार्य श्री धर्मानन्द महास्थविर अब संसार में नहीं रहे। ८० के पास पहुँचकर मरे, इसलिये काल की तो शिकायत नहीं करनी चाहिये, लेकिन बिछुड़नेवाले अपने गुणों का स्मरण दिलाकर दुःख देते हैं। महास्थविर बड़े ही सरल और मधुर हृदय के आदमी थे। अपने शिष्यों पर और मुझपर तो और भी भारी स्नेह रखते थे। मैं पहिली यात्रा में तिब्बत में था। नेपाल और तिब्बत में युद्ध ठनने लगी थी, खबर मिलने पर उन्होंने तार पर तार दिये और पूछा कि ल्हासा हवाई जहाज जा सकता है या नहीं। उस झगड़े के खतम होने के बाद उन्हीं के आग्रह पर और उन्हीं के भिजवाये रुपये से २२ खच्चर पुस्तकों और दूसरी चीजों को लेकर मैं सवा वर्ष बाद तिब्बत से लौटकर लंका चला गया। जिस समय भारत में १९३० –३१ का सत्याग्रह चल रहा था, मैंने बहुत सकोच करते करते कई मित्रों के प्रयत्न के बाद जब उनसे भारत जाने की इजाजत मांगी, तो वह स्नेह परवश हो एकदम फूट-फूटकर रोने लगे। मुझे उस समय अपना विचार छोड़ देना पड़ा। मेरे ही साथ उनका यह असाधारण स्नेह नहीं था, अपने सभी शिष्यों में वह अपना स्नेह बड़ी उदारता के साथ वितरण करते थे। वह अब संसार में न रहे। वह पालीभाषा और व्याकरण के धुरन्धर विद्वान् थे। उन्होंने कई पुस्तकों का संपादन और उद्धार किया

था। हो सकता है, कुछ समय और उनका नाम लिया जाय, लेकिन काल के महासमुद्र में हजार दो हजार वर्ष भी तो कोई हस्ती नहीं रखते। आदमी के हाथ से काल कितनी जल्दी निकलता चला जाता है! जिनका हमने बच्चा देखा था, वह हमारे सामने ही जवान हो बाल भी पका बैठे। हमारे बचपन के कितने ही तरुण और वृद्ध तो न जाने कब से अनन्त भान की गोद में लीन होगये। सबको एक दिन उसी रास्ते जाना है। मरने के बाद भी अमर होने की चाहे कितना ही इच्छा हो, लेकिन सभी को रेतपर पड़े पद चिह्न की तरह आखिर में लुप्त हो जाना है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि शरीर और जीवनक्षण निःसार है, तुच्छ है, घृणास्पद है परित्याज्य है। आखिर इन्हीं क्षणों में जीवन अपना अद्भुत रत्न भी है। उसको तुच्छ नहीं कहा जा सकता। जीवन में सबध रखनेवाला हरेक क्षण—जो कि वर्तमान क्षण ही हो सकता है—अनमोल है, सत्य है।

अगले दिनों में हमारा रेडियो भारत की बहुत सी खबरें लाता रहा। क्लावेइ के हमारे कमरे के वायुमंडल में हिन्दी और भारतीय संगीत का अगाध प्रसार होता रहा। दिल्ली रेडियो के कमरे में बैठा गायक या वक्ता क्या जानता होगा, कि उसकी आवाज ६ हजार मील दूर इस अज्ञात नगर के अज्ञात घर के भीतर गूंज रही है।

२२ मई को जिज्ञासावश हम सोवियत् अदालत देखने गये। अदालत हो, चाहे सरकार, सभा के क्षेत्र को सोवियत शासन प्रणाली ने खतम कर दिया है। यह मुहल्ले की अदालत थी। आज प्रधान जज के बीमार होने के कारण हमने कार्यवाही नहीं देख पाई, यहाँ की हरेक अदालत में तीन जज बैठते हैं, जिनके लिये लाल कपड़े से ढकी मेज के पीछे तीन कुर्सियां इजलास के रूप में कुछ ऊपर रखी थीं। छोटा सा कमरा था जज अधिकतर निर्वाचित होते हैं जो कुछ समय के लिये उस पदपर रहते हैं। वकीलों की संख्या कम हो गई है, क्योंकि पूंजीवादी वैयक्तिक संपत्ति की सीमा उस देश में बहुत संकुचित है, तो भी वकील हैं और वह प्रैक्टिस भी करते हैं, लेकिन

अधिकतर सरकारी वेतनभोगी नौकर के तौरपर। हर मुकद्दमे में उन्हें तकलीफ करने की आवश्यकता भी नहीं पड़ती। उनके आफिसों पर साइनबोर्ड लगे रहते हैं। जिनको कानूनी सलाह लेनी होती है, वह नियत समय पर वहां जाकर ले सकते हैं। भला जहां जज को देखते ही लोग सांस न बन्द करलें वह भी कोई अदालत है, जहां जिला मजिस्ट्रेट का नाम सुनते ही, आदमी की सांस ऊपर न टंग जाये, वह भी कोई जिला शासक है ? सोवियत भी तो बस वहां एक नमूना है। गांव के १८ वर्ष से अधिक उमर के लोगों ने मिलकर वोट दे गांव का शासन करने के लिये अपनी सोवियत (पंचायत) चुन ली, जिसका एक मुखिया सोवियत चुन लेती है। गांव की तरह ही तहसील (रायोन) और जिले के भी सोवियतें चुनी हुई होती हैं। लेकिन जिले की सोवियत का सभापति—जिसको हमारे यहां का मजिस्ट्रेट कहना चाहिये—को देखकर किसी की सांस ऊपर नहीं टंगती, बल्कि कोई भी जाकर उसके साथ बेतकल्लुफी से बात कर सकता है। रोबदाब सचमुच ही उस देश से उठ गया है। लेनिनग्राद जैसे उच्च विश्वविद्यालय की प्रोफेसर (वास्सचासलर) महिला को कमरे की झाड़ू देनेवाली अथवा टायपिस्ट स्त्रियों के साथ बठा देने पर आप पहिचान नहीं सकते, कि वह प्रोफेसर है। विद्यार्थियों, अध्यापकों ही नहीं साधारण नौकर भी उसको संबोधन करने में न बहुत आदाब अलकाब का प्रयोग करते हैं, न बहुत सम्मान ही। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं, कि वहां सब धान बाइस पसेरी है। योग्य स्थान पर योग्य आत्मा ही पहुंचने पाता है।

२६ मई को देखा, फिर शुक्ला रात्रि आगई ६ बजे शाम तक धूप था। मालूम होता है, जब से दिन १८ घंटा को अपनी जेब में रख लेता है, तब से वह बाकी ६ घंटे को भी रात्रि के पेट में जाने नहीं देता। शुक्ला रात्रि में घर के बाहिर १२ बजे रात्रि को भी आप अखबार पढ़ सकते हैं। शुक्ला रात्रि दीर्घ दिन का पता देती थी। दीर्घ दिनका मतलब है सूर्य अधिक समय तक अपने प्रकाश और ताप को फैला रहा है। लेकिन सर्दी तो अब भी गई नहीं थी। हां, नेवा अब मुक्त धार बह रही थी। यह समुद्री मछलियों के अंडा देने का समय

था। लेनिनग्राद म हा नवा मछुइ म मिलती ह, इसलिय अडा दन क ख्याल स करोड़ो मछलियां नवा से ऊपर की ओर चढ आयी थीं। मछुओं वा पाचों अगुलियां घी में थीं, लोगों को भी सुभीता था मछली ३० रूबल (२० रूपये) किलोग्राम (सवा सेर) लग गइ थी।

मास्को में तो नाटकों के देखने म मैंने हद कर दा था। लेनिनग्राद म उतनी जाने की इच्छा नहीं होती थी। मास्को का ओपेरा देख आये थ, पहिला जून (१९४६) को हम यहा क माली ओपेरा थियेटर में गये, जिसमें "काल्पनिक वर" बेले खेला जा रहा था। ओपेरा होता तो मैं नहीं जाता, या गला दबानेपर ही जाता, किन्तु बेले को तो मैं पसन्द करता था। अभिनय और नृत्य बहुत सुन्दर था। यह नाट्यशाला भी मारिन्स्की हा जैसा किन्तु छोटा है। इसम ७ ८ सौ आदमी बैठ सकते हैं। बाहर से देखने पर तो बिलकुल साधारण घर सा मालूम होता, किन्तु भीतर काफी अवकाश है। दर्शकों की भीड थी। नाटक का कथानक था पारिवारिक बाधा क कारण तरुण तरुणी विवाह नहीं कर पाते और दोनों अलग अलग घर से भागकर इताली क किसी शहर म अज्ञातवास करते हैं। तरुणी पुरुष वेश म भगी थी। वह इस अज्ञातस्थान म दूसरा तरुणी क परिवार क सपर्क म आइ। पिता उसे उपयुक्त वर समझकर अपनी पुत्री का विवाह क लिये मजबूर करने लगा। सूखने क लिये डाले कपडे से भेद खुल गया। कुशल भृत्य प्रेमी को उसकी प्रियतमा क मरने की और नवविवाहिता का उसके नवीन वर के मरने की खबर द देता है। दोनों छुरी लेकर आत्महत्या क लिए निकलते हैं, और एक दूसरे को पाकर आनन्द पारावार में डूब जाते हैं। चतुर भृत्य दूसरा लडकी का पति हा जाता है और एक हा समय दोनों विवाह सम्पन्न होते हैं। भिन भिन प्रकार के नृत्य नाटक की खास विशेषता था। दोनों नायक नायिका और उनके मित्र इस कला म बड़े निपुण थे। इतालियन नृत्य में ग्रामनृत्य, वानरनृत्य, तथा और कितने ही प्रकार क नृत्य थे। हमने तीन टिकट लिया था, लेकिन तीसरे व्यक्ति न आने स २८ रूबल बरबाद गये।

३ जून १९४६ को सोवियत भूमि म आये मझ १ साल हागया।

ध्यान ऐसा जाता था कि था। मध्यएसिया न जा सकने के लिये दिल उदास अवश्य था। मैं चाहता था, कि मध्यएसिया जाकर अपना आँखों देखी बातों पर एक पुस्तक लिखूं, और अपने देशभाइयों को बतलाऊं, कि पहिले हमारी जैसी परिस्थिति में रहते मध्यएसिया कितनी जल्दी आगे बढ़ा है, और आगे बढ़ता जा रहा है। लेकिन वह नहीं हो पाया। मध्यएसिया के इतिहास के संबंध में मैंने पिछले सालभर में काफी अध्ययन किया, काफी नोट लिया और आशा है कि उनके बलपर विश्वास के साथ कोई पुस्तक लिख सकूंगा।

३ जून को दिनभर वर्षा होती रही। ४ को भी वर्षा जारी रही। ३ को सोवियत के भूतपूर्व राष्ट्रपति कालिनिन का देहान्त हो गया। उसके उपलक्ष्य में ४ को सारे नगर की तरह युनिवर्सिटी ने भी शोक मनाया। शोक सभा हुई। कालिनिन ने वृद्धापन के कारण कुछ ही समय पहिले हुए चुनाव के बाद राष्ट्रपति पद नहीं संभाला था। वह बहुत जनप्रिय थे। एक साधारण साईस और मजूर की स्थिति से बढ़ते बढ़ते वह राष्ट्रपति बन थे। जून के प्रथम सप्ताह के बाद युनिवर्सिटी में मेरे पढ़ाने का काम खतम सा होगया था, इसलिये पुस्तकालय या और नगर कोई काम होनेपर ही मैं वहां जाता था, नहीं तो अधिकतर घर पर रहकर ही पुस्तकें पढ़ता रहता।

मध्यएसिया जाना तो भूत उतर गया था, लेकिन मध्यएसिया इतिहास का भूत तो सिरपर चढ़ा रहता ही था। तास्तोफ से जितनी ही बातें मुझे मालूम हुईं, और जितनी ही अपनी कल्पनाओं की सत्यता का पता लगा। १३ जून को मैं मध्यएसिया के इतिहास के एक दूसरे विशेषज्ञ प्रो० बेर्नश्ताम के पास गया। पता कुछ ऐसा ही बसा था, लेकिन मैंने कोशिश करके किसी तरह उनके घर को ढूंढ निकाला। यदि स्थान पहिले से ही निश्चित होता, तो ढूँढ़ते ढाँढ़ते निश्चित समय से पान घंटा बाद उनके पास जाने का अपराधी न होता। डाक्टर बर्नश्ताम और उनकी पत्नी दोनों ही पुरातत्व और इतिहास के विशेषज्ञ हैं। ढाई घंटे तक किरगिजिया और कजाकस्तान के बारे में बातचीत होती रही। उन्होंने बतलाया कि सोवियत काल में वहां बहुत जगह खुदाइयां हुई हैं, और बहुत सी

ऐतिहासिक चीज मिला है

पुरापाषाण युग—इस युग के हेडलबर्गीय (मस्तेर) मानव के हथियार दक्षिणा उजबेकिस्तान (तेशिक ताश) के अतिरिक्त समरकन्द और बुदा (दतिश उपत्यका) में भी मिले हैं। ऊपरी पुरापाषाण युग के सलातुर-मदलिन मानव के भी हथियार कोपितदाग (तुर्कमनिया) और हिसारताग (उजबेकिस्तान) में प्राप्त हुए।

सूक्ष्मपाषाण (मैक्रोलिथ)—इस युग के यायावरों के हथियार दक्षिणी कजाकस्तान में तुर्किस्तान शहर, अरालतट, सिर-उपत्यका, कराताउ, स्यनस्म (जम्बुल के पास), बेपरदला (अल्माअता के पास) में मिले हैं।

नव-पाषाणयुग—इस काल के हिन्दू-यूरोपीय मानव के कपाल और हथियार फर्गाना (फरगाना), अनौ (तुर्कमानिया) और ख्वारेज्म से मिले हैं। उन्होंने यह भी बतलाया कि ख्वारेज्म जैसे कपाल मध्य पाषाण युग के घुमन्तुओं और नवपाषाण युग के कृषकों में भी पाये गये हैं।

सप्तसिन्धु में सप्त, नाम पड़ता है, हिन्दू यूरोपीय, या शकार्य-जाति के "सप्त" शब्द और नदियों के प्रेम को बतलाता है। भारतीय आर्यों के देश का ईरानी लोग सप्त सिन्धु कहा करते थे, जाकि सिन्धु और उसकी छः शाखा नदियों का पर्याय था। मुसलमानों ने सप्तसिन्धु को "पंजाब" नाम दिया, लेकिन उससे पहिले ही शायद तातिकिस्तान का पंजाब मौजूद था। उत्तरी मध्यएसिया में भी सप्तसिन्धु मौजूद है, जिसका पर्याय तुर्की में भी कुछ होगा, जिसमें कि रूसियों ने उसका अनुवाद सेमीरेके (सप्तनद) किया। हमने भी अपने इतिहास में सप्तसिन्धु को भारत के लिये छोड़कर इसके लिये सप्तनद इस्तेमाल किया है। डाक्टर बेर्नेश्ताम के कथनानुसार यह सात नदियाँ हैं—अरिस, अतलस, चू, इला, कोकसु—करताल, लप्सा और यायूज। यह सभी नाम तुर्की हैं, जिनमें चू और सू जल और नदी वाचक शब्द हैं। कोकसु का अर्थ है नीलनद और कराताल का काला समुद्र।

छठी सदी से लेकर दसवीं ग्यारहवीं आरम्भी शताब्दी तक के बहुत से

बौद्ध अवशेष समरकन्द में मिले हैं। चू उपत्यका में फ्रुन्जे के पास अस्सिक् अता में बारहवीं शताब्दी तक बौद्धों के निवास थे, यह वहां के पुरातात्विक अवशेषों में पता लगता है। तारिम (आमूदरिया-सिरदरिया मध्यवर्ती नदी) की उपत्यका में भी छठी सदी के बौद्ध भित्तिचित्र और मानी धर्म के भित्तिचित्र मिले हैं। तलाशागन में भी बुद्ध की मूर्तियां मिली हैं। ताजिक में अग्नि-मानवों सदी के मानी धर्म अवशेष मौजूद हैं। समरकन्द में नस्तोरी ईसाइयों की बहुत सी सुन्दर तथा दूसरी चीजें प्राप्त हुई हैं। डाक्टर बर्नश्ताम ने बहुत से फोटो दिखलाये, जिनमें एक सातवीं आठवीं सदी की एक पीतल की बौद्ध मूर्ति पर उत्कीर्ण था—"इयवमोंय श्री " साफ पढ़ा जा रहा था। उन्होंने बतलाया कि और भी अभिलेख वहां से प्राप्त हुए हैं। बौद्ध सामग्री के परिचय में वह चाहते थे कि मैं सहायता करूं। मैंने भी अपने मध्यएसिया सम्बन्धी अनुसंधानों के बारे में कहा और आधुनिक जातियां किस तरह से प्राचीन जातियों के विकास और सम्मिश्रण से बनीं, इसे भी बतलाया। उन्होंने उसे युक्ति युक्त बतलाया। डा० ताल्स्तोफ की तरह डा० बेर्नश्ताम भी बहुभाषाविद्, बहुश्रुत, विद्याप्रेमी पण्डित पुरुष हैं। रूसी विद्वानों में मुश्किल से कोई मिलता है, जो कि अंग्रेजी या दूसरी विदेशी भाषा में अपने विचारों को प्रकट कर सके। अभ्यास में बोलना अभ्यास से आता है लेकिन ये विद्वान अंग्रेजी, फ्रेंच और जर्मन का इतना काफी ज्ञान रखते हैं, कि अपने विषय सम्बन्धी शोध पत्रिकाओं और ग्रंथों को पढ़ सकते हैं।

१८ जून को पुश्किन थियेटर में बर्नार्ड शा का नाटक "पिग्मेलियन" देखने गये। रूसी स्वदेशी विदेशी, का कोई भेदभाव किये बिना कला के साथ प्रेम दिखलाते हैं। इसके कहने की आवश्यकता नहीं कि यह शा के नाटक का रूसी अनुवाद था, जिसको रंगमंच पर खेला गया। हाल खचाखच भरा था। लोला जैसी कितनी ही महिलाओं को वह उतना पसन्द नहीं आया। बूर्ज्वा समाजपर शा ने बड़ी तीखी बाण-वर्षा की थी, इसलिये भूतपूर्व मध्यमवर्गीय विचारधारा के पोषक उसे कैसे पसन्द करते? भीख मांगने के लिये फूल बेचने वाली लंदन की एक लड़की सिखा पढ़ा कर लेडी बना दी जाती है। अब जैसा

जीवन उसे बिताना पड़ता है, उसका अनुभव करने के बाद कहती है—"मैं फूल बेचा करती थी, लेकिन अपने को तो नहीं बेचती थी।" लेडी बन जाने के बाद वह बिना अपने को बेचे जीवन नैया को खे नहीं सकती थी। मुझे नाटक और अभिनय दोनों बहुत पसन्द आये।

१५ जून को अपने साढ़े चार सौ रूबल के विशेष राशनकार्ड से अपने राशन की विशेष दूकान में चीज खरीदने गये। वहां से बहुत सा सामान लिया। दूकान से ग्रामवाय तक सौ गज से ज्यादा नहीं रहा होगा, कुली करते तो नाहक १०–१५ रूबल चले जाते, और फिर ग्रामवाय छोड़ अपने घर आने में भी उतना ही पैसा देना पड़ता। शायद पैसे की उतनी परवाह नहीं थी, लेकिन दूसरे प्रोफेसरों और अध्यापकों को देख रहे थे, वह भी २०–२५ किलोग्राम का बोझा उठाये आनन्द से चले जा रहे हैं तो हमी क्या घास फूसके बने हुए थे? रास्ते में मास्को के परिचित गेमन तियात्र के एक अभिनेता मिल गये। उन्होंने बतलाया, कि आजकल हमारी नाटक मंडली यहीं आयी हुई है। उन्होंने आने के लिये बहुत आग्रह किया। वह लोग अस्तोरिया होटल में ठहरे हुए थे।

१६ जून के भारतीय रेडियो से वायसराय की घोषणा सुनी, जिसमें उनकी कार्यकारिणी (मंत्रि मंडल) का भार कांग्रेस, लीग, सिक्ख और ईसाई प्रतिनिधियों के हाथ में सौंपा जानेवाला था। कांग्रेस की ओर से थे—जवाहरलाल नेहरू (उत्तर प्रदेश), राजगोपालाचार्य (मद्रास), वल्लभ भाई पटेल (बम्बई), म० प० इंजीनियर (बम्बई), राजेन्द्रप्रसाद (बिहार), जगजीवनराम (बिहार), हरेकृष्ण महताब (उड़ीसा) और लीग के थे— मुहम्मद अली जिना, (बम्बई), लियाकत अली (उ० प्र०), महम्मद इस्माइल (उ० प्र०), नजीमुद्दीन (बंगाल), अब्दुरब नश्तर (सी० प्रा०), सिक्ख प्रतिनिधि बलदेवसिंह (पंजाब) और ईसाई थे जान मथाइ (मद्रास)।

मुस्लिम लीग पाकिस्तान के सवाल को लेकर तनी हुई थी इसलिये वायसरायने घोषित कर दिया था, कि यदि कोई पार्टी इन्कार करेगी, तो उसके स्थान पर दूसरे आदमी नियुक्त कर दिये जाये।

राष्ट्रीय मन्त्रिमंडल भारत में समाजवाद स्थापित करेगा, या आर्थिक समस्याओं को हल करेगा, इसकी सम्भावना तो थी नहीं, किन्तु गोरे हाथों से काले हाथों में यदि शासन चला आये, तो क्रान्तिकारी शक्तियों को सीधे लड़ाई लड़ने में बहुत सुभीता हो जाता, इसलिये विदेशी कांटे को रास्ते से निकलना अच्छी बात थी, इसे मैं मानता था। १७ जून को सूचनाओं से मालूम हुआ, कि कांग्रेस और लीग ने अभी अपना निश्चय प्रकट नहीं किया। निश्चय करने में काफी समय लगा, लेकिन यह तो मालूम हो गया, कि अंग्रेज शान्ति पूर्वक यूद्धपूर्व की स्थिति में लौट नहीं सकते।

२० जून को अस्तोरिया होटल गये। वहां से कुछ अंग्रेजी पत्रों को लेना था। कुछ चिट्ठियां हवाई डाक से भेजना चाहते थे, लेकिन अभी हवाई डाक का कोई इंतजाम नहीं था। हवाई डाक से भी उसे लंदन होकर जाना पड़ता और दोहरे तेहरे सेंसर मों काफी समय लेते। वहीं हमारा जिप्सी नाट्य मंडली के कलाकारों से मुलाकात हो गई, जो इवानोवना चौदहों से तथा दूसरों से बड़ी देर तक बात होती रहीं। उस वक्त तक मैंने जिप्सियन भाषा के सम्बन्ध में कुछ पुस्तकें पढ़ ली थीं, और हिन्दी तथा जिप्सी के सम्मिलित सौ के करीब शब्द मेरे पास थे। पहिले उन लोगों को विश्वास नहीं था, कि उनका भारत से कोई सबंध है। अब वह देख रहे थे, कि मैं और वह एक ही रंग-रूप के थे। जब मैंने उन शब्दों को पढ़कर सुनाया जो कैसा में नहा है, और हिंदी में जैसे के तैसे मिलते हैं, तो उन्हें विश्वास हो गया, कि वह भी इन्दुस् (हिन्दू) हैं। फिर उन्होंने भारतीय जिप्सियों के बारे में पूछा। उनकी भाषा, संस्कृति, शिक्षा, पेशा, नृत्य-संगीत आदि के बारे में कितने ही प्रश्न किये, लेकिन मैं अपने देश में वहां के जिप्सियों के सम्पर्क में कभी कभी जेल में आया था और वहां भी मैंने इन बातों के सबंध में विशेष पूछताछ नहीं की थी। लीना एक प्रौढ़ा अभिनेत्री थीं। जिप्सी नाटक मंडली की स्थापना में उनका विशेष हाथ रहा और आज भी वह मंडली की ज्येष्ठा समझी जाती थीं। वहां उनके साथ दो तरुण अभिनेत्रियां भी थीं, जिनमें से एक असाधारण सुन्दरी तथा भौंहों, बालों,

चेहरा पर मधुर सौन्दर्य के साथ अधिक गोरी भारतीय लड़की नमी मालूम होती थी। उन्होंने यह विश्वास हो जाने पर कि भारत की मिट्टी से उनका बहुत घनिष्ठ संबंध है, भारतीय कला के बारे में पूछा और यह भी कि भारतीय कलाकार यहां क्यों नहीं आते? मैंने कहा— अंग्रेजों का राज्य हटने दीजिये फिर भारतीय कलाकार भी आयेंगे, और आप लोगों को भी तो जाना चाहिये। लाना ने अपनी परम सुन्दरी लड़की की ओर देखकर विनोद करते हुए कहा— मैं तो चाहूंगा अपनी बेटी का विवाह इन्दुस में ब्याह दूं। मैंने कहा— हमारे यहां तो अभी तक विवाह करने का अधिकार माता पिता को ही है, यहां क्या यह तुम्हारी लड़की इस तरह के कन्यादान को पसन्द करेगा। इस पर लड़की ने कहा— हां, मैं इन्दुस को पसन्द करूंगा। वस्तुतः जिगाना के रंग और मुखमुद्रा में भारतीयों से अब भी इतना समानता है कि बाज वक्त लोग मुझे भी जिगान समझ लेते थे। इगर को तो उसके साथी लड़के लड़कियां जब जिगान नहीं कहते थे, तो यूरेई (यहूदी) कहते थे, जिसका वह सदा प्रतिवाद करते हुए अपने को इन्दुस कहता था। एक दिन मैं सांस्कृतिक उद्यान में घूम रहा था। वहां दो जिगानियां मिलीं। उनमें से एक ने कहा— हाथ दिखा लाजिये। मैंने कहा— क्या रोमनियां रोम का भी हाथ देखा करती हैं? उसकी सखी ने कहा— ना, देख नहीं रही है, हमारे राम (डोम) तो हैं। फिर उन्होंने कितनी ही बातें पूछीं और उनकी बातों से मालूम हुआ, कि अब भी हाथ दिखलानेवाले उन्हें कुछ मिल जाते हैं। पहिले सांस्कृतिक उद्यान के पास ही उनका एक खास सा मुहल्ला बसता था, जिसमें इधर उधर घूम कर यह आकर रहा करते थे, लेकिन अब वह मुहल्ला उजड़ गया है। नवशिक्षित जिगान तरुण तरुणियां अब सोवियत के साधारण जन-समुद्र में मिलने जा रहे हैं। यदि यह मुहल्ला रहता, तो मुझे तो अवश्य फायदा होता, मैं उनके यहां कुछ समय देकर बहुत सी बातें जान सकता था।

२२ जून को इगर कहीं से एक छोटी बिल्ली पकड़ लाया। वह जल्दी ही घर की बन गई, लेकिन खाती था केवल मांस, रोटी को तो छूता भी नहीं था।

भला ऐसा महगी बिल्ली को कौन रखता। कुछ ही समय बाद वह जिसकी थी, उसके पास चली गई।

उस दिन शनवार था। हमारे साथी अध्यापक व्लादिमिर इवानोविच कलियानोफ के यहाँ दावत थी। इगर और लाला के साथ हम वहाँ गये। भोजन के उपरान्त प्याले आये। एस तो ईगर कह देता था मेरे पापा नहीं पीते, इसलिये मैं भी नहीं पीता लेकिन आज मण्डली में वह भी शामिल हो गया और चखने के लिये आग्रह करने लगा। अब कुछ में डाल भाग पड़ा हो तो बच्चा कम अपने को रोक सकता था। लेकिन कलियानोफ ने लाल रंग के शरबत को शराब कहकर उसके हाथ में दे दिया। थोड़ी ही देर में लोग कहने लगे इगर तेरे आँखें लाल हो गई हैं। वह भी अनुभव करने लगा कि नशा चढ़ने लगा है।

रात के एक बजे हम घर लौटे। वस्तुतः अब रात थी ही कहाँ? आधी रात को भी हम लाल रंग को पहिचान सकते थे। यह शुक्ला रात्रि का मौसम चल रहा था।

२८ जून को एक दिन के विश्राम का टिकट लेकर हम किरोफ संस्कृति उद्यान में गये। खाने में अभी कोई अन्तर नहीं आया था, वह फीका फीका था। वही काली रोटी, वही कच्ची खिचड़ी (कासा) और वही फीकी चाय। आजकल मास्को की रोम (सिगान) नाटक मंडली उद्यान के थियेटर में अपना खेल दिखा रही थी। नाटक का नाम था "गुरुसिका"। हमारे टिकट में दर्जे रंगमंच से बहुत दूर था, लेकिन सिगान मंडली तो अपनी थी, इसलिये अभिनेताओं ने हम तीनों को पहिली पंक्ति में लेजाकर बैठा दिया। ३ घंटे नाटक देखते रहे। ११ बजने लगा, तो घर जाने का भी ख्याल आया, इसलिये बिना अन्त तक देखे ही वहाँ से चल पड़े। ईगर को तो तरुण सिगानचुम्बकों ने इतना मोह लिया था, कि वहाँ से हटने का नाम ही नहीं लेता था। इस नाटक में भी सिगान जीवन को ही दिखलाया गया था। पुराने ढंग की सिगान स्त्रियाँ की पोशाक पश्चिमी उत्तर प्रदेश की स्त्रियों के घाघरे और सलूके जैसी

था। चारों के सिरों की माला गले में ही नहीं बल्कि सिर में भी रखनी थी।

२६ जून को इतना पता हुई, कि मालूम होता था मानो कुछ बना के दिए गए हैं। हमारे घर पिछवाड़े की क्यारियों ने लाल लाल-मना बाग हुए थे। शाम को सभी अपनी अपनी बाल्टियों में पानी भर, फव्वारा हाथ में लिये वहां पहुँच जाते थे। वर्षा हो जाने से अब पानी देने की आवश्यकता नहीं था। चारों ओर साग-सब्जी की हरियाली दिखाई पड़ रही थी।

जून के अन्त में अब साल भर के दो महीने की छुट्टियाँ आई थीं। अब की गर्मी बिताने के लिये हमने युनिवर्सिटी के विश्रामभवन तिरयोकी जाने का निश्चय किया था। अभी वहां इतना स्थान नहीं था, कि अधिक संख्या में लोगों को स्थान दिया जा सके। लेकिन सभी अध्यापक या विद्यार्थी तिरयोकी ही जाना भी नहीं चाहते थे। कितने ही काकेशस और क्रिमिया और कुछ बाल्तिक समुद्रतट पर जाने की फिकर में थे। विद्यार्थियों में भी कितने ही अपने घरों में जाकर छुट्टियाँ बिताना चाहते थे, विशेषकर हमारे की तरह के मध्य-एसिया, साइबेरिया और सुदूरस्थानों के विद्यार्थी दो मास की छुट्टियाँ को अपने लोगों में बिताना अधिक पसन्द करते थे। मुझे और लोला को तिरयोकी का टिकट मिलने में कोई कठिनाई नहीं था, लेकिन बच्चों के लिये अभी तिरयोकी में स्थान नहीं था। अन्त में अब यह मानी हो गई कि हम अपने साथ उनको रख सकते हैं। लोला को हरेक काम ठीक चलने के समय याद आता था। पहिले में ईगर के लिये ओवरकोट नहीं सिलवाया था। पहिली जुलाई को रातभर बैठकर वह ओवरकोट सिलाती रही। रूस में जाड़ों के लिये ही नहीं गर्मियों के लिये भी ओवरकोट की जरूरत होती है, क्योंकि माघ पूस का महीना तो बराबर बना रहता है, हां, गर्मियों का ओवरकोट पतला होता है। मैंने कहा था कि अपनी परिचित सीनेवालों को दे दो, लेकिन वहां तो परिस के फैशन का ख्याल था। अन्त में वही करना पड़ा, खुद रातभर जागी और बेचारी जीना के स्वतिनावा को भी जगाकर कोट सिलवाया। हम साढ़े आठ बजे की बस (२ जुलाई) को पकड़नी थी जो सीधे तिरयोकी पहुंचाती,

लेकिन इतनी जल्दी तैयारी कैसे हो सकती थी? इस का ख्याल छोड़ना पड़ा और हम लोग फिनलैंड स्टेशन पर पहुंचे। मास्को और लेनिनग्राद में गन्तव्य स्थान की ट्रेनों के ठहरने के स्थान को उस नाम से पुकारते हैं। फिनलैंड स्टेशन से पुराने जमाने में फिनलैंड को रेल जाती थी। आजकल फिनलैंड रूस से अलग है, शायद ही कोई सीधी ट्रेन लेनिनग्राद से फिनलैंड जाती हो, लेकिन उसकी सीमा तक तो वह अवश्य जाती है। ग्रीष्मावकाश के दिन थे। विश्रामोपवनों में भारी संख्या में लोग जा रहे थे। हम भी दो रही थीं, और स्टेशन पर भी मेला लगा हुआ था, लेकिन टिकट कई जगह बिक रहे थे, इसलिये मिलने में ज्यादा दिक्कत नहीं हुई। हम अपनी गाड़ी में चढ़ गये। यह दूर जानेवाली गाड़ी नहीं था, इसलिये सारा सीट के रिजर्व करने का सवाल नहीं था। गाड़ी का डब्बा बिना गद्दे का था। गाड़ी में बैठने के बाद कुछ समय तक इंतिजार करना पड़ा, फिर ९ बजे वह रवाना हुई। हमारी यात्रा दो घंटे की थी।

☆ ☆ ☆

१४—तिरयोकी में

युद्ध से पहिले तिरयोकी फिनलैंड की भूमि में था। १९४० में फिनलैंड की सीमा लेनिनग्राद से १४-१५ मील पर थी, जिसे हमारी ट्रेन आधा घंटे में ही पार हो गई। लेनिनग्राद शहर के इतना नजदीक एक अमित्र सरकार की भूमि रहना खतरनाक था, इसीलिए रूस ने चाहा था, कि भूमि के बदले ड्योढ़ी भूमि लेकर फिनलैंड अपनी सीमा को कुछ दूर हटा ले, लेकिन फिनलैंड ने इसे स्वीकार नहीं किया। जर्मनों का खतरा सामने देखते हुए, रूसियों को हथियार उठाना पड़ा। तिरयोकी और आगे विपुरी तक युद्ध की ध्वंसलीला के चिह्न अब भी बहुत दिखायी पड़ रहे थे। स्टेशनों और बस्तियों की इमारतें ध्वस्त थीं। उस समय की भीषण गोलाबारी में प्रकृति को भी बहुत हानि उठानी पड़ी थी, लेकिन उसने अपने सौंदर्य को फिर से स्थापित करने में बड़ी शीघ्रता से काम लिया। लेनिनग्राद के शहर से निकलते ही पहिले कुछ खेत और बस्तियाँ आयीं। फिनलैंड की पुरानी सीमा में घुसते ही वह दृश्य सामने आया, जिसके लिये फिनलैंड विख्यात है। चारों ओर देवदार और भुर्ज के हरे जंगल थे, घास की हरियाली भी फैली हुई थी, नाना प्रकार के सुंदर फूल खिले हुए थे। जहाँ तहाँ जल और छोटी छोटी

नदिया दिखाई पड़ती थीं। यह सौंदर्य लेनिनग्राद के बाद से शुरू हुआ, और आगे बढ़ते हुए अपना चरम अवस्था को पहुंचा। रेल का किराया २ रूबल २० कापेक था, बच्चों का किराया केवल ५५ कापेक। प्रकृति के सौंदर्य को देखते हुए हम अंत में तिरयोकी स्टेशन पर पहुंचे। यहां पर युनिवर्सिटी की बस आयी हुई थी—बस क्या खुला लारी था, जिसपर बेंचें लगी हुई थीं। अभी लड़ाई का प्रभाव था, लेकिन हमारे लौटने समय वह नई बसें भी काम में आने लगीं थीं। था तो युनिवर्सिटी का बस लेकिन किराया तो देना ही था। १-२ रूबल देकर हम आध घंटे में स्टेशन से अपने विश्रामोपवन में पहुंचे जो यहां से सात आठ किलोमीटर था। यह महावन आदिकाल से कभी उच्छिन्न नहीं हुआ था। स्टेशन के पास बाजार था, उसके बाद बस्तियों का अभाव-सा, और ऊंचा नीचा पहाड़ी जैसी धरती पर घने जंगलों के बीच में सड़क चला गया था। समुद्र के किनारे के घने देवदार वनों में मीलों तक भिन्न भिन्न संस्थाओं ने आपस में बांटकर यहां अपने विश्रामोपवन स्थापित किए थे। युनिवर्सिटी ने भी दस हजार एकड़ के करीब जंगल घेरा था। हमारे पास ही इन्स्टिट्यूट ने भी अपना विश्रामोपवन कायम किया था और लड़के-लड़कियों (प्योनीर, प्योनियरों) के तो कई दर्जन सनीटोरियम यहां मौजूद थे। लेनिनग्राद या विपुरी की तरफ मीलों चले जाइये, जंगल के बीच में उसी तरह के कितने ही विश्रामोपवन मौजूद थे।

युनिवर्सिटी का विश्रामोपवन वस्तुतः प्राकृतिक जंगल था। प्रकृति की शोभा को बिगाड़ने की कम से कम कोशिश की गई थी। इसी वन में जहां-तहां कुछ छोटी बड़ी इमारतें थीं, जिनमें अधिकांश काष्ठ की थीं, और सोवियतकाल से पहिले की अर्थात् फिन् लोगों की बनाई हुई थीं। तिरयोकी जारशाही काल में भी अपने प्राकृतिक सौंदर्य के लिये प्रसिद्ध थी, इसलिये धनी लोगों ने यहां अपने लिये बंगले बनवा रक्खे थे। विश्वविद्यालय के उपवन की इमारतें भी अधिकतर उसी समय की बनी हुई थीं। नई इमारतों के बनाने की योजना तो बन चुकी थी, लेकिन अभी नगर में काम जारी होने के कारण यहां काम बहुत

षम शुरू किया गया था। हम पहिले प्रबंध कार्यालय में गये। पता लगा लोला किया अनुमतिपत्र न ही इगर को अपने साथ लायी थी। दोनों गोल्दमान ने अपने लड़के का प्रबन्ध वालोधान में कर दिया था। वालोधानवाले ऐसे समय में अहाराज के लिये लड़कों को ले लेते हैं, लेकिन लोला बेचारी अपने बच्चे को आँखों से दूर रखने के लिये तैयार नहीं थी, इसलिये अनुमति मिल या न मिल वह अपने साथ उसे लेती आयी थी। मैंने मनमें कहा—कौन सा की जिम्मेवारियाँ वहाँ जानती है। मुझे यह जानकर कुछ बुरा तो लगा, लेकिन चारा क्या था। प्रबंधकों ने साथ रहने के लिये इजाजत दे दी लेकिन कहा कि खाने का प्रबंध स्वयं करना पड़ेगा। लोला से यह भी नहीं हो सका था, कि शहर से चलते वक्त कुछ खाने की चीजें और रोटी लाये होती। नाम लिखा गया, फिर उपवन के छोर से चिकित्सालय में डाक्टर ने भी परीक्षा करके वजन आदि के साथ कितनी ही बातें अपने रजिस्टर में लिखीं।

हम तो यहाँ गंगोत्री की जाड्गंगा के किनारे का वह रम्य देवदार वन याद आरहा था, जिसे तीन वर्ष पहिले हमने देखा था। उसी तरह देवदार की घनी छाया थी, उसी तरह देवदार की भीनी भीनी सुगंध आ रही थी, यद्यपि यहाँ १० हजार फुट ऊँचा पहाड़ नहीं था, बल्कि हम फिन्लैंड खाड़ी के समुद्र के तटपर थे। वृक्षों में यहाँ देवदार जातीय केलू अधिक थे। भुर्ज भी नजदीक में नहीं थे। आफिस के कामों से छुट्टी पाते तक हमारा सामान, हमारे कमरे में पहुँचा दिया गया। कमरा कहना उस शब्द का अपमान करना होगा। वस्तुतः वह बना बड़ी दियासलाई के दो मजिला डब्बा जैसा लकड़ी का दरबा था। ममलकत न चलने पर सिर में टक्कर लगने का भी डर था। उद्यान में कुछ इमारतें अच्छी भी थीं। उनके कमरे बड़े बड़े थे, लेकिन वह एक एक आदमी को नहीं दिये जा सकते थे। उनमें से कुछ भोजनशाला के रूप में परिणत किये गये थे, और कितनों में एक-एक दर्जन चारपाइयाँ रखकर अधिक आदमियों के विश्राम का इन्तिजाम किया गया था। हमें अलग कोठरी लेनी थी, सो कहीं मिली। वह ५ हाथ लम्बी और ४ हाथ चौड़ी थी, जिसमें दो पतली पतली

खाटें या खाटें पड़ी हुई थीं, सिरहाने एक छोटी मेज और उस पर शीशा रखा गया था। इतनी छोटी होने पर भी जाड़े में गरम करने का इन्तिजाम था। निरयोरी में जाड़ों में भी लोग आया जाया करते हैं। हमारे साथ छात्राओं में भी कुछ न.रोदिसम्बर में चन्द दिनों के लिये आये थे। देवदार की लकड़ियों का मकान तो बुरा नहीं होता और यदि वारनिश न हो, तो एक तरह की उसमें सुगन्ध आती। हमें ऊपरी मंजिल पर कोठरी मिली थी। कोठरी की दो पलंग चारपाइयां तीन आदमियों के लिये थीं। कोठरियों का द्वार एक पतले से बरान्डे की ओर खुलता था, जिसके एक सिरे पर नाचे उतरने की सीढ़ी थी। कोठरी में जंगला काफी बड़ा था, इसलिये हवा की कमी नहीं था। कुछ वृक्षों के बीच से एक ओर समुद्र लहरें मार रहा था। यहां के समुद्र का जल उतना खारा नहीं था।

भोजन तीन बार मिलता था। आठ से दस बजे तक नाश्ता का समय था। भोजनशाला में सभी एक साथ नहीं बैठ सकते थे, इसलिये कई टोलियों में हाजर लोग अपनी निश्चित मेजपर बैठ जाते थे। मध्याह्नोत्तर एक से तीन बजे तक मध्याह्न भोजन और सात से नौ बजे तक रात्रि भोजन। भोजन सुस्वादु नहीं था, इसकी सभी शिकायत कर रहे थे। लड़ाई के समय जो बर्बादी और अव्यवस्था हुई, वह अभी तक ठीक नहीं हो सकी था। पाचिकायें कहतीं थीं हम उतनी और वैसी सामग्री नहीं मिल रही है। देश महिलायें यह नहीं थीं यह स्वयं गया जाती है।

मनोरंजन का प्रबन्ध अच्छा था। समुद्र में तैरना और बालूपर धूप लेना, देवदार के जंगलों में मीलों घूमना तो था ही, इनके अतिरिक्त यहां क्लबघर की शाला में सौ कुर्सियां पड़ सकती थीं। वहां छात्र छात्रायें, अध्यापक अध्यापिकायें दिन में नाकर अखबार और पुस्तकें पढ़ सकते थे, शतरंज खेल सकते थे। शाला शाम के बाद नृत्य और गीत के अखाड़े के रूप में परिणत हो जाती थी। हमारे पासपड़ोस में कितनी ही दूसरी संस्थाओं के भी उपवन थे। भारत में यदि पुरी के समुद्र और गंगोत्तरी की भैरवघाटी को इकट्ठा कर दिया जाय,

तो यह प्राकृतिक सुषमा मिल सकती है।

दिन में थोड़ा ही सोये, रातको तो खूब सोना ही था, लेकिन रात थी कहां? यहा १० बजे शाम तक तो सूर्य की पीली पीली किरणें देवदार के शिखरों पर झलकती रहीं, फिर बेचारी गोधूलि आयी, सूर्यास्त हुआ, लेकिन उसके बाद ही उषा आ पहुची।

३ जुलाई का तिरयोकी आकर अब हम अकतिरय हो गये थ। दो व्यक्तियों के भोजन का प्रबंध था, उसी पर तीनों का गुजारा करना मुश्किल था, इसलिये एक के भोजन का अन्वेषण करना जरूरी था। किसी ने आशा दिलायी, कि शायद राशन की काली रोटी मिल जाय। काली रोटी कहने से पाठकों को एक प्रकार की दुस्वादु रोटी याद आयगी। हा, ऐसी भी रोटी है, लेकिन रूस में एक और भी कोयले जैसी काली रोटी होती है, जिसको एकबार खालें तो मुह से छूटेगा नहीं, वह इतनी सुमिष्ठ होती है। खैर, रोटी की चिंता तो थी और वह हमारी अपनी गलती से, क्योंकि अतिरिक्त राशनकार्ड में हमें बहुत रोटी मक्खन मांस मछली तथा दूसरी चीजें मिलती थीं, जिन्हें हम लेनिनग्राद से साथ ला सकते थे। यदि विश्वविद्यालय की लारी में आते, तो यह उपवन के फाटक के भीतर तक पहुंचा देती। लेकिन अब तो फिर वहां से जाकर लाना था।

हमारे आगे पश्चिम की ओर समुद्र था। जिसके आगे कुछ कगार सा था जिसके बाद यह देवदारों का जंगल कुछ समतल भूमिपर था। कलबधार कगार करीब समुद्र तटपर था। बालू उसके बिलकुल पास तक चली आयी थी। इसके बाद हमारे उपवन के प्राकृतिक परिवेश में एक के बाद एक छोटी छोटी पहाड़ियों की समनान्तर खाड़ियाँ सी बन गई थीं, जिनके ऊपर देवदार के जंगल खड़े थे। हमारे फाटक के बाहर ही लेनिनग्राद आनत्री सड़क था। युनिवर्सिटी का उपवन सड़क की दोनों तरफ था। सड़क पर चलना मुश्किल था, क्योंकि अभी सड़क पक्की करके कोलतार नहीं किया गया था, जिसके कारण लॉरियां धूल उड़ाती चलतीं थीं। इसलिये सड़क के किनारे से टहलना और धूल फांकने

का प्रयत्न करना एक ही था। टहलने को समुद्र के तटपर भी चल सकते थे, किन्तु वहां रास्ते में छोटे बड़े पत्थर बहुत थे, भूमि भी ऊबड़ खाबड़ थी, इसलिये चलना सुखद नहीं था। हां, सड़क के ऊपर की कम चलती एक दूसरी सड़क टहलने के लिये बहुत अच्छी थी। वन में मलीना और जेम्ल्याना (स्ट्रा बेरी) के फल फूल चुके थे, और जाने से पहिले यह खट-मीठे फल मिलनेवाले थे। सेब और गुच्छियों की फसल अगस्त में आनेवाली थी, जबकि हम यहां से चले गये रहेंगे।

हमारे वाम से समुद्र की ओर देखनेपर उसके मातर गधन नगर की तरह क्रू की स्तान् का मशहूर सामुद्रिक अड्डा था। जर्मन चारों ओर से प्रहार करते हार गये, लेकिन वह अनेय क्रोन्स्तात्को नहीं ले सके। खाड़ी बहुत उथली थी, बहुत दूर चले जानेपर भी पानी कमर कमर तक ही मिलता था, जिससे नहानेवाले को बहुत आगे जाना पड़ता। नीचे बालू अगर होती तो चलने में अच्छा रहता, किन्तु पानी में पथरों के ढले ऊबड़ खाबड़ बिछे हुए थे। हमारा काम था दिन में एक या दो मरतबे समुद्र स्नान करना, कभी क्लब की छोटी लाइब्रेरी में जाकर अखबार पढ़ना या दूसरों का नाचते गाते मनोविनोद करते देखना। हमने यह बहुत जानने की कोशिश की, कि किन लोगों ने इन इमारतों को किस अभिप्राय से बनाया था, लेकिन फिन्लैंड की लड़ाई के समय ही यहां के जितने फिन—नौकर-चाकर या आसपास की बस्तियों के किसान—थे, सभी अपने संकुचित होते हुए देश की ओर भाग गये। सौभाग्य से एक नौकरानी—जो बारहों महीना यहीं रहती थी, और हमारी कोठरी के नीचे रहती थी—उस युग को भी देख चुकी थी। उससे पता लगा, कि पहिले यहां किन लोगों का एक होटल और रेस्तोरां था। जिन दियासलाई के दरबों में हम लोग रह रहे थे, उनमें अतिथियों के लिये वेश्यायें रखी जाती थीं। मेहमान अलग अलग बंगलों में रहते थे, मैनरहाइम राज्य में इस उपवन की यह स्थिति थी। यह भी प्रश्न होता था, कि युद्ध के मशान युद्ध में क्यों नहीं ध्वस्त हुये? शायद यहां जमकर लड़ाई नहीं हुई, लेकिन आसपास घूमनेपर मालूम हुआ, कि ऐसी

बात नहीं था। अब भी कितनी ही जगहों पर नोटिसें लगी हुई थीं—"माइनों से खबरदार"—अर्थात् शत्रु को उड़ा देने के लिये धरती के नीचे बिछाई बारूद भरी माइनों को निकालने का पूरा प्रयत्न किया गया था, तो भी कहीं कहीं उनके होने की संभावना थी। भूतपूर्व चकलेवाले होटल की कायापलट देखते हुए मेरे मनमें तरह तरह की कल्पनायें आती थीं। कुछ ही वर्षों बाद जब यहाँ के मकानों की योजना कार्यरूप में परिणत हो जायगी और भोजन की व्यवस्था भी ठीक हो जायगी, तो यह स्थान कितना सुन्दर और सुखद होगा।

४ जुलाई को समुद्र स्नान करने गये। पानी खारा नहीं था। वस्तुतः यह समुद्र भी तो नहीं था, समुद्र की एक मूँछ निकली हुई थी, जिसमें बहुत से नदी नाले मीठा पानी ला लाकर डाल रहे थे। बहुत भीतर तक घुसे, किन्तु पानी पहिले घुटनों तक फिर जाँघ तक आया। तैरने का आनन्द कहाँ था? यदि बहुत भीतर तक दीवार खड़ी करदी जाय, तो बहुत सी सूखी धरती समुद्र के उदर में निकाली जा सकती है, किन्तु इस देश में धरती की कमी थोड़े ही है, यहाँ अगर कमी है तो लोगों की। शाम को २ घंटे टहलने के लिये "पहाड़ा" में गये। यह स्थान और भी रमणीय था। देवदार और फ़र के वृक्ष ही ज्यादा थे, जो बतला रहे थे कि जाड़ों में आनपर खाली और भूमि सभी श्वेतहिम से ढकी होनेपर भी देवदार इसी तरह हरे भरे रहेंगे, अर्थात् उस वक्त लेनिनग्राद की तरह यहाँ हरियाली के लिये तरसने की जरूरत नहीं रहेगी। मकान की कमी अवश्य थी, स्थान जनाकीर्णसा मालूम होता था, पाखाना गंदा था, फ़्लश का इंतिज़ाम नहीं था। इस समय सारी तिरयोकी के लिये मोरीपेज के पाइप बैठाये जा रहे थे। अभी तो पाखाना जरूर बुरा लगता था। साफ़ करने का अच्छा इंतिज़ाम नहीं था। लकड़ियों को खड़ा करके नये तौर पाखाना खड़ा कर दिया गया था। तख्ते के ऊपर बैठकर पाखाना जाने को मन नहीं करता था। यद्यपि कुछ दवाइयाँ डाली जाती थीं, लेकिन बदबू नहीं हटती थी। हमारी कोठरी के ठीक सामने और नजदीक होने के कारण हमें तो कभी कभी बदबू अपनी कोठरी तक में मालूम होती थी, इसके लिये हम बगड़ की

लिहरा श्रीर श्रपने दरवाजे को बन्द रखना पड़ता था। लेकिन यहाँ थी, कि हम उस देश में नहीं थे, जहाँपर लोग लाट में पाना भरकर पाखाने जाते हैं, नहीं तो न जाने गन्दगी कहाँ तक पहुँचता। उपवन में बिजली की बत्तियाँ भी एकाध ही जगह पर थीं। पीने के पानी की भी दिक्कत था, लेकिन पगडंडियाँ पर लिये नजर भी दिखाई ना रहे थे। पानी और पाखाने की दिक्कत जगह जल्द खतम हो जायगी, यह रंग ढंग से मालूम हो रहा था।

पहाड़ी से मतलब हमारा है ऊपर की ओर कुछ ऊँचाई पर दूर तक चली गई समतल भूमि और उसे ढँके हुए देवदारुवन। पहाड़ी पर जहाँ तहाँ छोटी छोटी कुटियाँ थी, जिनके पास साग सब्जी के खेत थे। पहिले इन कुटियों में किन किसान रहते होंगे, अब उनमें रूसी भूतपूर्व सैनिक परिवार आ बस थे। लेकिन वह अभी थोड़े ही गर्मी का आबाद कर सके थे। इस प्रकार में बड़े मकानों के होने की सम्भावना नहीं है, लेकिन साग-सब्जी और आलू तो प्रचुर परिमाण में पैदा हो सकता है। पहाड़ी पर घूमते समय मुझे याद आजाता था सिक्किम में तिब्बत जानेवाले रास्ते पर १० हजार फुट की ऊँचाई पर बसा लाचेन गाँव, जहाँ फिर चानाय मिशनरी बढ़िया डेरा लगाये हुए हैं। यदि मुझे यहाँ हिमालय याद आता था, तो उस मिशनरी को देवदारु वनाच्छादित भूमि याद आती होगी।

तिरयोकी में मेरी दिनचर्या थी—सवेरे साढ़े आठ बजे उठना, हजामत कर मुँह हाथ धोना। लोला को अपने प्रसाधन और इगर को खिलाने में काफी समय देना पड़ता था। प्रातराश का समय ८ से १० बजे तक था मगर १० बजे से पूर्व हमारा वहाँ पहुँचना मुश्किल था। हम आखिरी वेला में भोजनशाला में जाते। तीन-चार बड़े बड़े कमरे भोजनशाला का काम दे रहे थे, जिनमें से एक एक में आठ आठ नो नो मेजें, और हरेक मेज पर चार चार आदमियों के बैठने के स्थान थे। प्रातराश में मिलते टोस्ट, मक्खन और चाय या काफी। चाय काफी में इतना चीनी डाली जाती था, जिसमें नाम होजाय, लेकिन वह मीठा न होने पाय। भोजन सुस्वादु बनाने के लिये लोग अपने साथ खाद्य चीजें लाते थे।

२ बजे तक का समय लिखन पढ़ने या पास को देवदारुवनि अथवा समुद्र की वालुका पर विताते थे। फिर मध्याह्न भोजन के लिये जाते। घास-पात का सूप, कुछ रोटी, शोकलात (चॉकलात, चॉकलेट) और कोई कम माठी दूसरी चीज। एक तश्तरी मांस सहित होती थी। जग तक माता का सवाल था, वह पर्याप्त थी, लेकिन गुण के लिये अपनी सामग्री को इस्तेमाल करना पड़ता था। स्वादु भोजन तैयार करने म यहां की सूपकारिणियां पारितोषिक पाने की अधिकारिणी थीं, इसमें कोई संदेह नहीं। भोजनोपरान्त फिर समुद्र की ओर जाते, जहां कुछ देर तक नहाना होता, फिर आकर लिखने-पढ़ने में लग जाते। ७ से ९ बजे तक ब्यालू का समय था, लेकिन सूर्यदेव का दर्शन १० बजे तक होता रहता था—यह जुलाई का प्रथम सप्ताह था। कहने की अवश्यकता नहीं कि आजकल सर्वश्वेता रात्रि थी, इसलिये निद्रा के आवाहन के लिये अंधेरे का सहारा प्राप्य नहीं था। हम ब्यालू से साढ़े आठ बजे के करीब निवृत्त होते, फिर टहलने के लिये "पहाड़ी" पर जाते। समुद्र तट पर रोड़े दु:खदायक थे, और राजपथ पर लगातार आती जाती मोटर धूल उड़ाती थीं।

६ जुलाई— समुद्र आज भी कल की तरह शान्त था। हमारी फैकल्टी के तीन प्रोफेसर स्ताइन स भारत के संबंध म कितनी ही देर तक बातचीत होती रही। भारत में अब नई नीति स्वीकार करने जा रहे हैं, जिसमें शासन और शोषण म वहां के मध्यवर्ग को शामिल करना चाहते हैं। लेकिन कितने ही और अध्यापकों की तरह इस बातपर उनका भी विश्वास नहीं था, इसलिये अभी वह भारत की विश्वराजनीति म कोई महत्व नहीं देना चाहते थे।

स्टेशन के लिये सवारियां कभी कभी मिलतीं, इसलिये लेनिनग्राद जानेवाला को पांच छ मील का रास्ता पैदल काटना पड़ता। वैसे लेनिनग्राद के लिये भी कभी कभी बसें या लारियां मिल जाती थीं। माल ढोनेवाली लारियां तो लगातार चलती रहती थीं, किन्तु उनम बैठने की जगह ड्राइवर के परिचय बिना मुश्किल स मिलती था। आज लोला का रसद लाने के लिये लेनिनग्राद जाना था। पैदल गई, हम भी कुछ दूर तक धूल फांकते हुए पहुंचाने गये।

मध्याह्न-भोजन के समय आज मलाई बरफ का ठेला भोजनशाला के बाहर खड़ा हो गया था। सौ-डेढ़ सौ मेहमान जहां खरीदने को तयार हों, वहां क्यू की पांती क्यों न लग जाती? हमने भी ४ ८० रूबल में इगर के लिये बिस्कुट मलाई ली। रुपये का हिसाब करने पर यह तीन रुपया होता, लेकिन विनिमय के इस हिसाब को हमें ख्याल में नहीं लाना था। चीजों के सस्तेपन का प्रमाण हम इस बात को मानते थे, कि उनके ऊपर खरीदार कितने टूट रहे हैं। बात की बात में ठेला खाली हो गया। ठेले का आना अच्छा सगुन था। राशन से भिन्न और भोजनशाला से अलग भी स्वादिष्ट खाद्य वस्तुएं तो खरीदी जा सकती थीं।

रेडियो से दूर होने के कारण मैं जग तिब्बत में आ गया था। दो एक दिन बाद लेनिनग्राद का "प्राव्दा" आ जाती थी। तिरयोकी से भी हमारे साथियों के आकार के दो पृष्ठों का तिरयोकी पार्टी का पत्र निकलता था, लेकिन उसमें केवल स्थानीय कलखोजों (पंचायती खेतोंवाले गांवों) की बात ही भरी रहती थीं, और विदेश क्या स्वदेश समाचार भी नहीं आते थे। हां, खेतों में कैसी फसल है, क्या काम हो रहा है, कारखानों की क्या हालत है, पुनर्निर्माण के बारे में क्या हो रहा है, तथा स्थानीय पार्टी क्या कर रही है—यही सब बातें उसमें रहती थीं। ऐसे दो पृष्ठवाले अखबार सोवियत रूस में देहातों में आमतौर से निकला करते हैं, और स्वावलम्बी हैं, इसके कहने की आवश्यकता नहीं। आज रातको अमेरिकन फिल्म "चोचका वार्लि" दिखलाया गया। रूस के गांवों में भी चलते फिरते फिल्म बराबर दिखलाये जाते हैं, कोई हफ्ता नहीं जाता कि गांव में सिनेमा की लारी न आती हो। लारियों में बिजली का भी प्रबन्ध रहता है, इसलिये अगर गांव बिजलीवाला न भी हो, तबभी फिल्म दिखलाने में कोई दिक्कत नहीं होती। हमारे यहां बाकायदा सिनेमावाली लारी नहीं आया थी। खबर सुनते ही लोग अपनी कुर्सियों पर आ डटे थे। ईगर को भी सनक लग गई थी, लेकिन मैंने किसी तरह समझा बुझाकर उसे सुला दिया, ११ बजे गोधूलि थी, जब कि फिल्म आरंभ हुआ।

७ जुलाई रविवार का दिन था। कल रात को थोड़ी वर्षा हो गई था, जिससे वन की शोभा निखर आयी था। सागर उच्छ्वलित था। तिरयाकी का उपवन लेनिनग्राद से ८४ किलोमीतर दूर था। उपवन में डाक्टर और कम्पाउंडर सहित चिकित्सालय था। क्लब के साथ छोटा पुस्तकालय था, जिसकी शाला में नाट्य, नृत्य और गान हो जाया करते थे। रसोइशाला अलग थी। अभी तो किसी तरह ही गुजारा करना पड़ रहा था, क्योंकि पाँच हाथ लम्बी पाँच हाथ चौड़ी कोठरियों में दो दो आदमी भरे हुए थे, लेकिन लोग आशा कर रहे थे उन दिनों का, जबकि उपवन की योजना कार्यरूप में परिणत हो जायेगी फिर प्रत्येक विश्रामेच्छुक को एक एक कमरा मिल जायेगा। आज एक छोटा सा नाटक और उजबेक नृत्य हुआ, जिसके करनेवाले हमारे छात्र थे। बचपन से ही नाट्य-नृत्य संगीत का अभ्यास होने के कारण छात्रों का अपना पार्ट अदा करते जरा भी हिचकिचाहट नहीं होती थी इसलिये इस मनोरंजन को निम्न कोटि का नहीं कह सकते थे। अगले दिन भी बूँदाबाँदी रही, रात को ठीक वर्षा हुई। हरीतिमा और सान्द्र हो गई। सागर भी उच्छ्वास ले रहा था। उपवन में वोलीबाल, और टेनिस खेलने के स्थान थे। हम कभी कभी देखने के लिये चले जाते थे। खेलनेवालों में लड़कों की संख्या कम और लड़कियों की अधिक थी। वोलीबाल के कई क्रीडाक्षेत्र थे। पास ही रायफल और एक बन्दूक रखी रहती थी। लोग वहाँ निशाने का अभ्यास करते थे। एक रूबल में १० "गोलियाँ" मिल जाती थीं— वस्तुतः यह गोलियाँ नहीं छर्रे छोड़ना भर होता था। लोगों को लक्ष्यवेध की कोशिश करते देख मैंने भी दो एक रूबल खर्च किये, लेकिन लक्ष्यवेध कभी नहीं कर सका। यह केवल मनोरंजन के लिये नहीं था, क्योंकि अभ्यास करनेवालों को समय पड़ने पर बन्दूक लेकर रणक्षेत्र में उतरना होगा। वैसे यह मनोरंजन के सिवाय उतनी आवश्यक चीज नहीं थी, क्योंकि सोवियत के हरेक नागरिक के लिये सामरिक शिक्षा अनिवार्य है, तथा स्कूलों से ही लड़के लड़कियों को बन्दूक चलाना सिखाया जाता है।

ईगरको अपने दोस्त मिल गये थे, समवयस्क नहीं बल्कि युनिवर्सिटी की छात्रायें और प्रौढ़ायें, जिनमें वह कहानी सुनाता गान याद करता। इन "दोस्तों" का कहना था। यह लड़का गायक और अभिनेता होगा। गायक होने में संदेह है, लेकिन अभिनेता शायद अच्छा बुरा हो जाय, यह मैं भी मानता था। उसका स्कूल का प्रथम वर्ष मा के दुराग्रह के कारण बेकार हो रहा था, लेकिन नये दोस्तों के सपर्क में आने के कारण उसको अक्षर लिखने का शौक हो गया था और कुछ ही दिनों में १०० से ऊपर पहुंच गया। अक्षर और नाम लिखने में उसका मन नहीं करता था। वह केवल अपने मन का काम करना पसन्द करता था। उस दिन रात्रि को लेनिनग्राद में लौटना था। १०-११ बजे रात तक मतांता करके निराश हो गये थे जबकि १२ बजे रातको वर्षा में भीगती खाद्य सामग्री से लदा फदा चार पांच किलोमीटर की पैदल यात्रा करके लीला रानी पहुंचीं। समय की पाबन्द होतीं, तो इतनी देर करने की आवश्यकता नहीं था, लेकिन १२ बजे रात्रिका मतलब अंधेरा नहीं था।

टहलने के लिये एक-दो मील जाकर लौट आते थे। ९ जुलाई को हमने कदम कुछ आगे बढ़ाया। ६ बजे निकले। अंधेरे का डर नहीं था, इसलिये सारी रात घूम सकते थे। सड़क से तीन किलोमीटर से ऊपर समुद्र के पासकी सड़कसे गये। स्लिामा स्टेशन मिला। पानी बरस जाने से गर्द नहीं उड रही था, इसलिये हमने सड़क पर टहलने की हिम्मत की थी। लारियों और मोटरों की दौड़ बराबर जारी थी। एक जगह आमने सामने से आने वाली दो लारियां लड़ गई थीं, जिसमें एक ड्राइवर और उसकी सहायिका घायल हो गई थी। पुलिस बयान ले रही थी। आगे बाईं ओर से पहाड़ी की ओर मुड़े। "पहाड़ी" के द्वार पर मचान बधा था, जिसपर से लड़ाई के समय छिपे हुए बंदूकची शत्रुओं पर निशाना लगाते रहे होंगे। जहां तहां खाइयां अब भी खुली पड़ी थीं। पहाड़ी चौरस मैदान जैसी थी। वहां बहुत सारे मकान थे। पहिले मकान का हाता बहुत विशाल था, उसके कोने पर छतरी सी थी, जहां बैठकर फिन दरिया समुद्र की लहरें गिना करती थीं। आज यह लेनिनग्राद के

लोगों की विश्राम भूमि है, तो युद्ध से पहिले फिन सामन्तों और धनिकों ने इसका उपयोग किया था। स्टेशन तक नाश्ता लाई। एक विशाल प्रासाद के चारों तरफ लकड़ी और पत्थर की ऊंचा चहारदीवारी खड़ा था। पहिले यह मेनरहाइम के भाई बन्दों का विलासभवन रहा होगा, किन्तु आजकल पूतार (बालचरों) का केन्द्र था। आज शासन का एक योजना को धरती पर उतरते देखा मालों तक भि न भिन्न संस्थाओं के विश्रान्ति निवास बन रहे थे। आदमी भी काम कर रहे थे और मशीन भी। तिरयोका, किलोमा जैसे नाम अब फिना के अवशेष रह गये हैं। लेनिनग्राद भी पहिले फिनों का ही था। उसकी नगरी नेवा का नाम फिनिश है। इस तरफ अब लेनिनग्राद से विपुरी के रास्ते में दूर तक की भूमि विश्रान्ति उपवनों के लिये ही रख छोड़ी गई है। १२ बजे रहकर लौटे तो केवल वृक्षों के नीचे जरा-जरा अंधेरा मालूम होता था।

मेनरहाइम दुर्गपंक्ति— फिनलैंड देवदार का जंगलों, ऊंची नीची पहाड़ी जैसी भूमि और अपनी हजारों छोटी बड़ी झीलों के लिये विख्यात है। १० जुलाई को ११ बजे लारी करके हम मेनरहाइम दुर्गपंक्ति देखने गये। अखबारों में लड़ाई के समय मेनरहाइम पंक्ति को जर्मनी "सिग्फ्रिद" और फ्रांस के "मगिनो पंक्ति" का छोटा भाई कहा जाता था, इसलिये जब उसे देखने का प्रस्ताव साथियों ने किया, तो मैने बड़ी उत्सुकता से उनका साथ दिया। लेनिनग्राद से ६८ वें किलोमीटर पर पहाड़ समुद्र से बहुत नजदीक आ गया है। यहीं से यह दुर्गपंक्ति शुरू होता है, और पूरब में लादोगा महासरोवर तक चला जाती है। टैंक और दूसरे युद्धवाहनों को रोकने के लिये तीन तीन टनकी चार किली चट्टानें चौड़ाई में ३—३ ४—४ रखी हुई थीं। इन चट्टानों को तोड़े बिना कोई युद्धयान आगे नहीं बढ़ सकता था। नीचे कहीं कहीं भूगर्भी तोपस्थान थे, जिनके ऊपर बहुत मोटी सीमेन्ट की तह थी। एक जगह तो इस मैना पहाड़ी में इतना मजबूत दुर्ग बना था, कि उसको उड़ानेपर वहां गहरी खड्ड बन गई, तब जाकर पर्वत समुद्र द्वार को पार करने में सोवियत टैंक समर्थ हुए। यहां से हम दुर्ग-पंक्ति के साथ साथ पहाड़ पर चढ़े। पहाड़ चढ़ने का

मतलब कोई हिमालय या विन्ध्याचल जैसा पहाड़ चढ़ना नहीं था। है तो यह भीतर पत्थर के ही पहाड़, किन्तु ऊपर की मिट्टी इतनी धुल नहीं पाई कि वह पहाड़ का रूप लेते। हाँ, समुद्र की तरफ से जाने पर थोड़ी सी चढ़ाई जरूर चढ़नी पड़ती है। इसी वजह से इन्हें पहाड़ कहने में संकोच होता है। धरती यहाँ चढ़ाव-उतार चली गई है, जिसके नीचे पत्थर की चट्टानें ढकी हुई हैं। मैनरहाइम दुर्गपंक्ति इस चढ़ा उतार पहाड़ी भूमिपर चलती चली गई है। पंक्ति के परले पार एक गाँव दिखाई पड़ा। कुछ लकड़ी और एक लाल खपरैल से छाया मकान भी था। गाँव में अब रूसी रहते हैं, घरों के बनाने वाले तो, कबके उन्हें छोड़कर चले गये। मलाना और जिम्ल्यानी (स्टावरी) बहुत था, लेकिन अभी पकी नहीं थीं। याग्दा (एक जंगली मकोय) बहुत था, जिसका स्वाद घरौंदे जैसा मालूम होता था। इस गाँव में आलू के खेत ज्यादा थे, लेकिन सिंचाई का प्रबंध न होने से दैव भरोसे ही खेती की जा सकती थी। लौटकर लारी से फिर दो फर्लांग आगे ६६ वें किलोमीतर तक गये। यह सड़क त्रिपुरा (वीबुर्ग) जा रही थी। ६६ वें किलोमीतर पर एक टूटा हुआ गिरजाघर मिला, जिसकी दीवार पर अब भी क्रास (सलीब) लगा हुआ था। यहाँ युद्ध द्वारा ध्वस्त बहुत से घर कंकाल रूप में या जमीन मिलाये पड़े हुए थे। शायद फिनोंने इस ऊँचे स्थानको दुर्गके तौरपर इस्तेमाल किया जिसके कारण गिरजा को बरबाद होना पड़ा। कितने ही लोग अपनी बहुज्ञता का परिचय देते कह रहे थे यह "माइनरहाइम" का महल है। फिना में मान्नरहाइम का ही नाम जानते थे, इसलिये हर बड़ा इमारत उनके ख्याल में माइनरहाइम का महल था। इससे जरा नीचे एक छोटी सी पयास पानीवाली नदिका बह रही थी, जिसका पानी काला था— उसे आसानी से काली नदी कहा जा सकता था। काली नदीने भी उस समय रक्षापंक्ति का काम दिया होगा। यहाँ कुछ आलू के खेत थे। एक स्त्री केवल स्तनबन्द और घाघरा पहिने अपने आलू के खेतों में काम कर रही थी। कई स्त्रियाँ कैमेरे लिये थे, लेकिन हमारे परिचित वृद्ध फोटोग्राफर की असावधानी के कारण वह खराब हो गये। ढाई घंटे की यात्रा के बाद हम लौटे।

गर्ज पर उस रूस वालों और गिनुडगाल और पूलाओं ने निवासस्थल बन गये थे। यहाँ किसी समय दिया है जार, रूस और मनोरंजन-गृहों रहे होंगे, यहाँ अब मालिकन मरमायों ने अपना आधिपत्य जमाया था। माडर्न शालायें, स्नानागार और वाचनालयशालायें, सभी वहाँ मौजूद थीं।

" जुलाई की " बचे में फिर हमारा जाना गरम हुई। अभिनेता और गायक थियेटर के छात्र और छात्रायें थीं। आखिरी अभिनय था, नवयुवक प्रेमिका के घर पाकर उससे मिलने की सोच रहा है, फिर कहता है अभी समय बहुत है, थोड़ा और पी लूँ। फिर पीने बैठ जाता है। एक बोतल समाप्त होता है, फिर वहीं बैठकर दूसरा बोतल उठाता है। इस तरह तीन, चार, पाँच, छः, बोतलें समाप्त करता है। हरेक बोतल के अनुसार उसकी चेष्टा और चेहरे पर विकार आता जाता था। देखकर लोग लोट-पोट हो रहे थे। इगर तो शराबी की बात सुनकर इतना जोर से हँसने लगा, कि उसको चुप कराना मुश्किल हो गया। अन्त में छठा बोतल समाप्त कर वह प्रेमिका के पास पहुँचता है। प्रेमिका उसको झिड़कती है। न कोई साज सामान था, न रंगमंच पर सदा पड़े रहने वाले पर्दे के सिवा और कोई पर्दे का प्रबंध था, न अभिनेता छात्र छात्राओं ने किसी पोशाक ही इस्तेमाल की थी, लेकिन अभिनय मनोरंजक था।

सरोवर की सैर—१२ जुलाई को प्रोफेसर स्ताइन, उनकी पत्नी तथा एक दूसरे सपत्नीक प्रोफेसर के साथ हम सरोवर देखने गये। हमारे उपवन से वह तीन चार किलोमीटर पर अवस्थित था, इसलिये पैदल ही चल पड़े। रास्ते में लेनिनग्राद से त्रिपुरी जानेवाली रेल सड़क मिली। कुछ आगे बढ़ने पर देवदारों का घना और सुन्दर जंगल आया। यहाँ केवल देवदार (याल्का) के वृक्ष थे। एक जगह बायीं ओर जमीन के कुछ ऊँचा हो जाने के कारण दृश्य बिल्कुल हिमालय जैसा मालूम होता था। इस जंगल में दो किलोमीटर चले गये। फिर केद्रू (सरल) के वृक्षों की प्रधानता आयी। यहाँ युद्ध के अवशेष—खाइयाँ और मूर्चे बहुत से मौजूद थे। सरोवर कुण्डा के आकार का था। जल

पक्का था, युद्ध में पहिले गजानिरो का यह प्रिय भूमि थी, इसीलिये सराबर के पास दो कमरों का एक अच्छा मकान बना था, जिसमें जाड़े में गरम करने का भी प्रबन्ध था। शायद युद्ध के समय यहां अफसर रहे हों। सराबर काफी लम्बा था। पानी नमकीन नहीं मालूम था, जिसमें मछलियां बहुत थीं, कुछ नहीं भी थीं। पुराने निवासी किन स्थान चले गये थे, और नये निवासियों से युद्ध के पहिले की अवस्था के बारे में जितना जाना जा सकता था, हम उसे अपनी कल्पना में जान सकते थे। गम्ने में कितने ही झोपड़े या हमने उजाड़ पड़ा था। कितने ही गेता में, जान पड़ता था, १९४४ के बाद फसलें नहीं बोई गयी थीं, इसलिये घास उग रही थी। कुछ में पेड़ भी लगे हुए थे, लेकिन आसपास आदमियों का पता नहीं जुताई का चिह्न लुप्त होने के कारण वहां कह सकते थे, कि न कह हुए यह भड़कर यहां स्वयं जंगली पेड़ के रूप में फसल तैयार करने लगे। एक लाखों एकड़ खेत और सरकारी हजारों गांव इस भूमि में परित्यक्त पड़े हैं, आबाद करने के लिये आदमी मिलना मुश्किल है। सोवियत रूस का क्षेत्रफल ७ भारत के बराबर है और आबादी भारत से आधी। मुझे कभी कभी ख्याल आता था—यदि हमारे यहां की एक साल की जन संख्या की वृद्धि यहां भेज दी जाती, तो यह सारी भूमि आबाद हो जाती। लेकिन हमारे सदाजी लोग यहां की सरदी आसानी से बरदाश्त नहीं कर सकते थे। खैर, भारत के लिये अपनी आबादी को कहीं बाहर भेजकर अपनी समस्या हल करने का द्वार चारों ओर से बन्द है। रूस में नहीं जा सकते, यद्यपि वहां काले गोरे का प्रश्न नहीं है। आस्ट्रेलिया के एक करोड़ गोरों ने एक महाद्वीप को दखल कर लिया है, जिसमें कालों का प्रवेश निषिद्ध है, इसलिये वहां भी नहीं जा सकते। दक्षिणी अफ्रीका हमारे उन बन्धुओं को भी निकाल बाहर करने पर तुले हुए हैं, जिनके जांगर से वह भूमि आदमियों का सुन्दर निवास बनी।

लेनिनग्राद से ६६ किलोमीतर तक की भूमि को देखने से मालूम हो गया, कि कुछ ही वर्षों में यह मध्य ग्रीष्मनिवासों की भूमि बन जायगा, लेकिन इस तरह की जो कितनी ही भातें कितने ही परित्यक्त ग्राम या रमणीक स्थान

है, उनको फिर तैर लगाया जायगा ? सोवियत में तो हर जगह माता जमीन पड़ी हुई है। युद्ध में ७०—८० लाख आदमी मारे गये, जिनकी पूर्ति करना भी असम्भवसाध्य है, तो भी इस भूमि के महत्व को यहां के शासक जानते हैं, इसलिये दूसरी जगहों से लाकर लोगों के बसाने की कोशिश कर रहे हैं। इनमें कितने ही भूतपूर्व सैनिक हैं। सरोवर के तट के पासमायदान में नया मछुवा-परिवार आकर बसा था। मछुवाही के अतिरिक्त उन्होंने तरकारी भी पात रखे थे, कुछ भाग सब्जी भी लगा रखा थी। सामने उस पार एक "दाचा" (ग्रामीण विश्राम गृह) दिखाई पड़ा, जहां नाव से पहुंचा जा सकता था। अतिरिक्त देवदारों के बीच में यह काला सरोवर बहुत ही सुन्दर मालूम होता था, लेकिन इस सौंदर्य का आनन्द लेने के लिये यहां कितने ही और घरों और मछुवे परिवारों की आवश्यकता होगी। जंगल में इन लकड़ी के घरों की खिड़कियों में भी शीशे लगे थे। उनके बिना जाड़े में घरको गरम कम रखा जा सकता था ? रूस में तो सर्दी के मारे सभी दरवाजे और खिड़कियां दुहरे बनाये जाते हैं। यहां पकी बोर्नीका (काला) याग्दी (मकोय) यहां बहुत थी। सारे विश्रामविहारी उसे जमा करने में लगे थे। यहां आनेवालों में हमीं सात आदमी नहीं थे, बल्कि भिन्न भिन्न विश्रामोपवनों के सैकड़ों नर नारी और बच्चे पहुंचे हुये थे। दो बच्चियों ने मकोय खा खा कर अपने होठों और दांतों को काला कर लिया था। जहां पाव भर मकोय का दाम दो तीन रुपया हो, वहां जंगल में उन्हें मुफ्त जमा करने और खाने में कितना आनन्द आता होगा, इसके कहने की आवश्यकता नहीं। ग्राम पास की मामाएं स्त्रियां मकोय लेकर हमारे यहां पहुंचा करती थीं, और नाप नाप कर अपने फलों को बेचा करती थीं।

छात्र छात्राओं को विश्राम का टिकट १४ दिनों का मिलता था। पन्द्रह तारीख को अब पच्चिसे के आगे छात्र छात्रायें लौट गये जिससे उपवन में उदासी सी छा गई। उनके रहने से कभी संगीत, कभी अभिनय और खेल देखने का मनोरंजन रहता था। उनमें से बहुत से परिचित हो गये थे। परिचित चेहरों के अभाव के कारण मनुष्य का हृदय एकान्त अनमना करता हो है। लेकिन प्रोफेसर

एक मर्गन ८ दिरे आये थे, इसलिए हमारे सहवासी परिचित अभी रहनेवाले थे। समुद्र स्नान प्राय रात को और कभी कभी दिन में चार होता था।

१७ जुलाई तक नये स्थान वाले आ पहुंचे। मकान तो फिर भर गये, किन्तु अभी परिचय जमा धूम नहीं था। दो तीन दिन ता परस्पर परिचय के लिये चाहिये। परिचय स्थान भोड़ा वन और नृत्यशाला था। विद्यालय में पांच छात्राओं कपीडे एक छात्र का भ्रम भी नहीं था, इसलिए छात्र दुष्प्राप्य थ, तो भी मुंहदन्द तरुण सहभागिनी तरुणी पान में समय नहीं होते थे। मानास अधिक मुहचोर तरुण भी निराशा का मुंह देखने थे। छात्रा का यहा एक एक कोठरी में सात-सात आठ आठ की संख्या में रखा जाता था। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि छात्र छात्राओं की कोठरियां अलग अलग होती थीं। स्नान के स्थान में, समुद्र में या रेत पर अधनग्न तरुण तरुणियाँ नहाते या धूप में शरीर सेंकते, बिना सकोच अकृत्रिम भाव से घंटा पड़े रहते। १२ बजे रात तक उनके हाथ में हाथ मिलाये वनस्थली में घूमने की स्वतंत्रता थी। चुम्बन भी इन देशों में कोई महार्घ वस्तु नहीं है, उसे तो अधिक परिचित व्यक्तियों का परस्पर साधारण शिष्टाचार माना जाता है। लेकिन हाथ में हाथ डालकर घूमने, चुम्बन या पार्श्वालिंगन का यह अर्थ नहीं समझना चाहिये कि सबंध यौन संसर्ग तक पहुंच गया है। वस्तुत स्वच्छंद नर नारियां के इन जैसे देशों में भारतीय तर्कशास्त्र बेकार हो जाता है। यद्यपि इसका यह अर्थ नहीं, कि वहां सभी अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन करते हैं।

हमारी कोठरी के नीचे रहनेवाले परिचारिका का छोटा सा लड़का अलेक करीब करीब उसी उम्र का था जितना कि इगर। कद में यह छोटा था उसके बाल बिलकुल पाले, और रंग अत्यंत गोरा था। किन्तु माता का पुत्र होने से नाक और चेहरा वैसा ही था, जैसा कि हमारे यहां के किसी शुद्ध द्रविड़ का। अलेक ने हाथ-मुंह धोने का एक नया आविष्कार किया था अभी नल और बिजली का प्रबंध अच्छी तरह नहीं हुआ था, उसने अपने मुंह को नलका बना लिया था। टमलर में पानी ले बाहर आता, फिर मुंह में पानी

भरकर उसकी कुर्सी से हाथ मुंह धाता। श्रलेक का आविष्कार बहुत सुन्दर था और उसमें माता की ओर से भी कोई बाधा नहीं थी। लेकिन वहां शुद्धता और स्वास्थ्य का ख्याल लुप्त था। हम यह नहीं कहते, कि भारत के लोग बहुत शुद्धता रखते हैं। शुद्धता का मान हमारी सभी जातियों और सभी प्रदेशों में एकसा नहीं है। जिनमें शुद्धता है, वह भी शुद्धता को वैयक्तिक शरीर तक सीमित रखते हैं। चाहे आंगन का नाबदान मकोड़ फैला रहा हो, द्वार पर कूड़ा कर्कट भरा हो, तो भी उसकी परवाह न । यह तो कहना पड़ेगा कि छूतछात का जो विचार स्वाभाविक तौर से हमारे दिमाग में लड़कपन से ही ठुसा दिया जाता है, वह दूसरे देशों में नहीं मिलता। स्वास्थ्य और मानस सबधी अध्ययन के बाद यहाँ के लोग समझने लगे हैं, और उसका धीरे धीरे प्रचार भी होने लगा है, लेकिन चिरप्रचलित प्रथा का स्थान वह उतनी जल्दी नहीं ले सकते।

१८ जुलाई को समुद्र अत्यंत तरंगित था, जिसके कारण पानी स्वच्छ नहीं था। नहाने से कपड़े गंदे होते थे, शरीर का भी सफाई नहीं होता था, उधर सूर्य बादलों के कारण जब तब ही झांकी दे सकते थे, जिसके कारण पानी ठंडा हो गया था। आज नहानेवाला का समुद्र तट पर पता नहीं था। इस हफ्ते शहर से एक चौपट लाकर मैंने ईगर को दे दिया था, जिसमें पानी फेंक कर अपने अपने मोहरे चलाने होते थे। खेल के लिये हा ईगर ने बड़ा तत्परता से अंको को सीखा था। लेकिन उसमें कुछ स्थल ऐसे थे, जिनके आजाने पर मुहरे को चार पाच सीढ़ी नीचे गिर जाना पड़ता। बीच का स्थान दूर पड़ने के कारण एक उतराव की जगह पर ईगर रान और झगड़ा करने के लिये तैयार हो जाता। उसको कितना ही समझाया, कि इसमें किसी का कसूर नहीं है पासेमें ना एसी गिनती आ गई है, लेकिन उसे तर्क का सुनने वाला कौन था! वह कहता— तुम्हारा मुहरा क्या आगे उठता जा रहा है?

शाम के वक्त श्राज एक वक्ता ने यन्तरा ट्राय म्यिनि पर भाषण दिया। वक्ता साधारण जिनिन जाति का था और श्रोताओं में से युनिवर्सिटी प्रोफेसर, उच्च कक्षा के विद्यार्थी, किन्तु सभी ने बड़ी सावधानी से सुना। भाषण ज्ञानपूर्ण था।

अमेरिकन पूंजीवाद युद्धके आल्न्गान तयार कर रहा है। चीन म खुलकर वह चाङ्काइशेक की प्रतिगामी शक्ति को मदद देते, जनतांत्रिकता को खत्म करने पर तुला हुआ है। बहुत काल तक सोवियत निष्पक्षता नहीं दिखला सका। कोरिया और जापान म मेकार्थर प्रतिगामी शक्तियों को दृढ कर रहा है। इताली के उपनिवेशों को इग्लैंड लेकर अफ्रीका म अपनी को ओर कर रहा है। पालैंद, चेकोस्लोवाकिया, फ्रान्स और इताली के हाल के निर्वाचन ने बतला दिया, कि जनता अधिक मात्रा प्रतिगामिता को पसन्द नहीं करता, लेकिन एंग्लो अमेरिकन पूंजीवादी अपने मन्सूबे पर दृढ है। दक्षिणी ईरान मे इग्लैंड हथियार बन्द कर रहा है और चाहता है, कि वहां से जनतांत्रिकता को खतम करदे। लेकिन, अणुबमकी नाति सफल नहीं हो सकती। जिस अणुबमके बल पर अमेरिका कूद रहा है, वह भी इतना अमोघास्त्र नहीं है। हाल में प्रशान्त महासागर म जो तजर्बा किया गया, उसम लक्ष्य के नीचे रखे हुए कितने ही जहाजों में बकरियां पगुराती रहीं, यद्यपि उनके पास ही में अणुबम गिराया गया था। अमेरिका के जापान पर किये गये अणुबम के तजर्बेसे बाहर के लोग जितने भयभीत हो रहे, है वैसा प्रभाव रूसियोंपर नहीं देखा जाता। वह पूरा तरह विश्वास रखते हैं, कि जर्मनाको पश्चिमी शक्तियां हरा नहीं सकतीं थीं, यदि रूस युद्ध में नहीं पड़ा होता। साथ ही रूसी अपना यहां भी अणुबम के आविष्कार म रत थे। वस्तुत जहां तक अणुबम सम्बन्धी मौलिक आविष्कार का सबध है, उसका आरम्भ अमेरिकाने नहीं किया था, बल्कि रूसके दो वैज्ञानिकों ने द्वितीय विश्वयुद्ध के पहिले ही अणुबमका अपने महत्त्वपूर्ण अनुसंधान को एक रूसी साप्ताहिक में छपवाया था, जिसका अग्रेजी अनुवाद एक अमेरिकन पत्रिका म निकला था। यह शायद १९३८ के आस पास की बात है। उसा को लेकर एक जर्मन विज्ञानवेत्ताने आगे बढाते अणुके गर्भमें ऐच्छिक विस्फोट पैदा किया। यह बातें तब अखबारोंमें नहीं की जा रहा था। लेकिन युद्ध के छिड़ते ही जब हिटलरने उनपर पर्दा डाल करके अपने यहां इस तरह के आविष्कार करने की कोशिश की, तो मित्र शक्तियों का ध्यान भी उधर जाना जरूरी था।

हिटलर के अत्याचारों से पीड़ित कितने ही जर्मन विज्ञानवेत्ता भागकर पश्चिमी युरोप और अमेरिका के देशों में चले गये थे, जिनकी सहायता और अपने अपार यांत्रिक साधनों का प्रयोग करके अमेरिका सबसे पहिले अणुबम बनाने में समर्थ हुआ और ट्रूमन और चर्चिल जैसे महान् राक्षसों ने यह निर्णय करते जरा भी आनाकानी नहीं की, कि हारने के लिये तैयार जापान के दो नगरों के लाखों निरीह मनुष्यों पर अणुबम छोड़ा जाय। यद्यपि सोवियत में यह बड़ी गुप्त बात थी, तो भी यह पता लगता था, कि सोवियत विज्ञानवेत्ता अणुबम और अणु शक्ति के आविष्कार की तैयारी में लगे हुए हैं। जिन परिवारों के व्यक्ति इन अनुसंधानों में भाग ले रहे थे, और अपने नगरों से दूर गये हुए थे, उनको किसी न किसी तरह अपने आदमियों का पता लगता था, जिससे लोग जानते थे कि सोवियत में इस दिशा में काम बड़ी तत्परता से हो रहा है।

१६ जुलाई को भी समुद्र उत्तरगिन रहा। हम भी नहाने नहीं गये। तिरयोकी में अब मच्छरों की सेना आ पहुंची थी। खटमल और पिस्सू पहिले भी कुछ संख्या में मौजूद थे, लेकिन वह तो केवल रातको ही अपना प्रभुत्व दिखलाते थे। यह मच्छर (कमाराफ) देखता न तो दिन को दिन गिनते थे, न रात को रात। तीनों की मार से अब मन परेशान रहने लगा। पाखाने खुले हुए थे। पानी के निकलने का प्रबंध नहीं था, यही कारण मच्छरों की अधिकता का हो सकता था। मोरी के नल बैठाये जा रहे थे, उस समय शायद जल में बहाये जाने वाले पखाने के कारण मच्छरों की कमी होजाय। लेकिन जहां तहां दलदली भूमि भी थी, जिसमें सड़ती हुई घासों पर पानी उछलता दिखाई पड़ता था। मच्छर वहां अपना बसेरा कर सकते हैं।

२० जुलाई को अब कुछ निठल्लेपन की एकाग्रता सी मालूम होती थी। कोई ऐसा काम नहीं कर रहे थे, जिससे आत्मसंतोष होता। २० को नहाने गये। दो दिनों के उत्तरगिन समुन्दरने अपने भीतर की कितनी ही चीजें तट के किनारे पर वमनकर दिया था और वहां हरी काई की मोटी तह पड़ी हुई थी जिसमें कुछ घोंघा जैसे सामुद्रिक प्राणियों के अवशेष भी मौजूद थे। उनसे बदबू

बहुत आती थी। गंदे पानी में नहाने से शरीर या कपड़ा भी गंदा हो जाता। किनारे से काफी दूर भीतर घुसने पर पानी कुछ कुछ साफ था। आज स्नान के शौकीन कम दिखाई पड़े। समुद्र के उथले पानी में छोटी छोटी मछलियां अक्सर दिखाई पड़ती थीं। इगर भी कुछ मछलियां पकड़ लाया था और उन्हें उसने पानी डालकर टीनमें रखा था। तीन मछलियों में एक गुम हो गई थी, एक मरणासन्न मालूम हो रही थी। हमने कहा— इन्हें समुद्र में डाल दो। नेकिन पालने का आग्रह था, किन्तु तो भी उसने इस बात का अनुमान किया, कि मछलियों को तड़पाकर मारना अच्छा नहीं है, इसलिये मछलियों को समुद्र में छोड़ आया।

खाने पीने का प्रबन्ध अभी अच्छा नहीं था, यह हम कह आये हैं। साथ ही निजी तार से पकी पकाई चीजों को छोड़कर कोई इन्तिजाम करना भी मुश्किल था, तो भी लोगोंने कुछ कर ही लिया था। हमारे तो तीन व्यक्तियों पर दो टिकट थे, इसलिये एक के भोजन का पृथक् प्रबन्ध करना आवश्यक था। लोला अबकी बार एक पाकेट चूल्हा लायी थी, जिसपर ईंधन की टिकिया जलती थी। बर्षों रहने वाला चूल्हा चार रूबल का था, और टिकिया का दाम भी चार रूबल टिकिया चार घंटे तक जल कर खतम हो जाती। चार रूबल का अर्थ था ढाई रुपया, चार घंटे तक जलने वाला ईंधन ढाई रुपये का और था भी जेबी चूल्हे में। किन्तु सचमुच ही टिकिया देखने से पता नहीं लगता था, कि यह इतनी देर तक जलेगी। उसी पर हम अंडे उबालते। प्याले भर मकोय का दाम पांच रूबल था अर्थात् ईंधन या चूल्हे से भी ज्यादा। यहां इस देश में आकर सारे अर्थशास्त्र को छोड़ना पड़ता है और यही देखकर संतोष करना पड़ता है — यहां कोई आदमी बेकार नहीं है, कोई आदमी ऐसा नहीं है, कि जिसको खाने कपड़े, मकान तथा लड़कों का शिक्षा देने में कठिनाई हो और जब सस्ते दाम में राशन की चीज पर्याप्त मिल जाती हैं, तो आप शिकायत करना क्यों चाहेंगे। प्रोफेसर, मंत्री या जनरल साढ़े चार हजार रूबल मासिक पाते हैं, वह तो रोज सौ रूबल से अधिक खर्च कर सकते हैं।

विपुरीकी यात्रा—२१ जुलाई के लिये लोगों ने विपुरी चलने का

प्रबंध किया। १९४० से पहिले विपुरी (वीबुर्ग) फिनलैंड के अच्छे शहरों में से था। यह तिरयोकी से प्राय १०० किलोमीतर पर था। इतना दूर के सैर सपाटे का अवसर मिला था, फिर मैं कैसे अपने को वंचित रखता? साढ़े पौने ग्यारह बजे हम लोगों को लेकर चला। रास्ते में पौन घंटा विश्राम करना पड़ा, फिर तीन बजे हम वहां पहुंच गये। जाते समय हमारा रास्ता समुद्र तट से दूर दूर से था, लेकिन लौटते वक्त हम समुद्र की पामग्राही सड़क से आये। दो तीन जगह कुछ बस्तियां मिलीं, नहीं तो सारा भूमि जंगलों से ढकी पत्थरस्थली थी, जिसमें जहां तहां कितने ही छोटे बड़े सरोवर थे। देवदार, केलू और भुर्ज के वृक्ष ही जंगलों में देखे जाते थे। रास्ते में एक जगह उसी जंगल में आग लगी हुई थी। यह जंगल लगातार हमारे उपवन तक चला आया था। आग बुझाने की चिंता छोड़ चुपचाप बैठे हुए आदमियों को देखकर हमें आश्चर्य होता था, आग बढ़ते बढ़ते कहीं हमारे पास न चली आये। देवदार, केलू भूर्ज के हरे हरे वृक्षों को जलाने में अग्निदेवता को सूखे गीले की परवाह न थी। लेकिन जंगलों में जहां तहां चौड़ी पटियां कटी थीं, इसलिये आशा थी कि शायद आग वहीं पहुंचकर रुक जाय। सड़कें वैसे सड़क का सारा रूपरंग रखतीं थीं, लेकिन उनमें धूल का बहार था। सत्तरवें किलोमीतर के पास ऊंचा नीचो किन्तु कुछ पथरीली भूमि आया, यहां अनेक गांव और बहुत सारे खेत थे। खेतों का आबाद करना कितना मुश्किल था इसके बारे में कह चुके हैं, लेकिन तब भी कई जगह ट्रैक्टरों की हराई पड़ी थी, जिससे आशा होने लगी। पुराने बाशिन्दों के घरों में अब आकर रूसी नर-नारी बस गये थे, ज्यादातर स्त्रियों का होना आश्चर्य का बात नहीं थी। जिस मैनरहाइम दुर्ग पंक्ति का हम पहिले देख आये थे, उसकी दो तीन और सुरक्षा-पंक्तियां मिलीं। कई टैंक रास्ते में टूटे पड़े थे। स्वयं मैनरहाइम पंक्ति पर ही ४ बड़े बड़े टैंकों की लाश देखा। सीमेंट की कंक्रीट दुर्ग, मुड़धेरे सभी जगह दिखाई पड़ते थे। फिनों ने विपुरी तक डटकर लड़ाई की थी। इधर की किलेबन्दी भी बहुत मजबूत था। जहां तहां सरोवर थे, वहां जरूर तीन तीन टन की शिलाओं की गेंवर-पंक्तियां

बीच में पार्क-लेनिन था, जिसका फिन नाम कुछ दूसरा ही रहा होगा। इसी में, १९२४ में मत्ताइननिन द्वारा बनाई गई बारहसिंगा की सुन्दर मूर्ति है। दूसरी जगह एक थैला कुत्ता लिये हुये वाले तरुण की मूर्ति फिन कलाकार की सफल साधना का उदाहरण है। बड़ी प्यास लगी थी। प्यास से निवृत्त हो हमने नगर की सैर शुरू की। अभी मुश्किल से सौ में से दस मकानों को ही काम चलाऊ करके लोग रहने लगे थे। नगर के पुराने निवासी (फिन) तो लड़ाई के समय ही भाग गये, अब सारे रूस से ढूंढ ढांढ कर लोग लाये जा रहे थे। युद्ध ने बड़ा ध्वंस किया था, तो भी १० सैकड़ा आबाद घरों के अतिरिक्त २० सैकड़ा और भी आसानी से आबाद किये जा सकते थे। उनकी खिड़कियों दरवाजों और छतों की ही मरम्मत करनी पड़ेगी। छ ही बरस पहिले जहाँ सब जगह केवल फिन भाषा सुनी जाती थी, अब उसका स्थान रूसी ने ले लिया है। केवल दीवारों पर लिखित पुराने विज्ञापनों में ही "वसल्लिस आम के पाड़ री यस्काच निस्की" जैसे विज्ञापन लैटिन अक्षरों में थे। फिन लोगों को रोमन चर्च ने ईसाई बनाया था, पीछे वहाँ उसी चर्च की सुधारवादी शाखा प्रोटेस्टेंट की प्रधानता हुई, इसलिये फिन भाषा ने रोमन लिपिको स्वीकार किया। प्रथम संस्कृति फैलानेवाले लोग इस तरह जातियों में अपना स्थायी चिह्न छोड़ते हैं। मध्यएसिया में और दूसरी जगहों में भी जहाँ जहाँ अरबी संस्कृति फैली, वहाँ अरबीलिपि ने चाहे तो पुरानी लिपिको मार करके अथवा भाषा के अलिखित होने पर अपनी लिपिको देकर अपने लिए चिरस्थायी स्थान बनाया। रोमनचर्च प्रभावित यूरोप के देशों ने इसी तरह रोमन (लातिन) लिपि को अपनाया। ग्रीक चर्च ने जहाँ जहा ईसाई धर्म फैलाया, वहाँ (रूस, बुल्गारिया आदि) देशों में ग्रीक लिपि अपनाई गई। भारतीय संस्कृति के प्रभाव से ही आज भी भारतीय लिपि से निकली लिपियाँ तिब्बत, बर्मा, स्याम, कम्बोज आदि में प्रचलित है।

विपूरी से समुद्र दूर है, लेकिन समुद्र की एक मूँछ यहाँ तक पहुँच गई है, जिसके कारण यह समुद्र तटवर्ती बन्दरगाह है। नगर के एक विशेष

नगर की सार्ने के बीच में पुराना "जामुक" (गढ) है, जिसकी बनावट स्वाडिश ढग की है। अभी तक स्वीडिश वंश के लोगों का ही फिनलैंड का अभिजातवर्ग रहा है, जिनमें से ही एक मानरहाइम कई सालों तक फिनलैंड का सर्वेसर्वा रहा। पहिले यह गढ माग पत्थर का था, पीछे कितना ही इटों की मानारें जोड दी गईं। शताब्दियों पहिले यह गढ बनाया गया होगा। जो इमारतें तथा रक्षा प्रकार आदि यहा बने हैं, वह शताब्दियों के मानव श्रम के परिणाम हैं। लेकिन रक्षा-पंक्तियों में मानव का जितना श्रम लगा कुछ ही समयों के भीतर लगाया गया, उसके सामने यह जामुक कुछ भी नहीं था। जामुक में अभी भी आदमी रह सकते हैं, जबकि उन रक्षा-पंक्तियों का अब कोई उपयोग नहीं रहा। नगर में रानक (हाट) थी, जिसमें आस पास के गाव की चीजें बिक रही थीं। बेचनेवालों को देखने से ही पता लग जाता था, कि अब इस देहात में केवल रूसी रह गये हैं। रूसियों को उजडे हुए त्रिपुरी और आगे तक फैले रूस विभाग को बसाने के लिये अपने पुत्र पुत्रियों को भेजना पड रहा है, इसी तरह से क्रिमिया के तातार वहा से लुप्त हो गये और उस उजडे हुए मनोरम प्रायद्वीप में भी अब रूसियों को ही जाकर बसना पड रहा है। पूर्वी प्रुशिया (जर्मनी) के भी एक भाग को रूसियों को बसाना पड रहा है, इस प्रकार इस युद्ध में रूसी जाति को उत्तर, दक्खिन और पश्चिम में बहुत दूर तक फैलना पड़ा। पहिली फिनलैंड की लड़ाई के बाद इस इलाके में मध्यएसिया की मगोलायित जातियों में से भी कितने ही लोग लाकर बसाये गये थे, लेकिन अब तो उनके यहा भी विशाल मरुभूमि को उर्वर भूमि में परिणत किये जाने के कारण उन्हें यहां नहीं भेजा जा सकता। पार्क के एक कोने में लाल रग का गिर्जा था, जो लडाई में ध्वस्तप्राय हो गया। कुछ बची इमारतों की मरम्मत करके उनमें सैनिकों को बसा दिया गया है। सैनिकों में कुछ तुर्क और मगोल चेहरे भी दिखाई पड रहे थे। सोवियत में कितनी ही पल्टनें "मिश्रित" होती हैं, अर्थात् एक ही रेजीमेंट में कई तरह की जातियों के नौजवान भर्ती रहते हैं। सात साल की अनिवार्य शिक्षा—जिसमें चार साल रूसी भी अनिवार्य है—के कारण भाषा

रास्ते भर मूत्र धूल फाँकना पड़ा था। कहा कहीं पर सोवियत सनिकों को भी गतों के काम म लगे देखा—अन समस्या को अपने देश स दूर जो रखना था। निपुरी से चलने के ४ घटे बाद हम अपन उपवन म आ पहुचे।

हमारी शाला म आज एक कलाकार कहानीवाचक आया था। उसके कहानी पढ़ने में अभिनय का आनन्द आता था।

अब हमारे रहने के एक हफ्ते और रह गये थे। १२ जुलाइ को दोपहर का भोज हुआ। भोज युनिवर्सिटी की तरफ स था, इसको कहन की आवश्यकता नहीं, अथवा जब अध्यापकों को खान-पीने का पैसा देना पड़ता था, तो हमारी तरफ से ही भोज था, यह भी कह सकते हैं। युनिवर्सिटी के रेक्टर (चासलर) बोज्नेसेन्सकी आज स्वय मौजूद थे। वैसे हफ्ते म एक दो बार अपनी कार पर वह तिरयोकी जरूर हो जाया करते थे। एक एक मेजपर भोजन करनेवाले चार चार व्यक्तियों के लिये एक एक शराब की बोतल और दो दो "पीवा" (बियर) की बोतलें एक एक लेमोनाद के साथ रखी हुई थीं। मैं तो लेमोनाद म से ही कुछ ले सकता था, इसलिये हमारी मेज के तीन साथियों को एक पूरी बोतल मिली। हमारे मेज का शराब नाजिया की बनी हुई पुरानी अच्छी शराब थी। दूसरी मेजों पर भी अच्छी अच्छी अंगूरी शराब थीं। भोज म लेनिनग्राद के पांच छ प्रसिद्ध कलाकार आनेवाले थे, लेकिन समय की पाबन्दी हमारे देश की तरह रूस म भी तुच्छ समझी जाती है, फिर वह तो कलाकार थे। उनके लिये घटा पौन घटा प्रतीक्षा की गई, फिर भोज शुरू हो गया। बोज्नेसेन्सकी ने भोज का व्याख्यान दिया। मातृभूमि के लिये मद्यचषक उठाये जाने लगे। बीच बीच म बराबर मनोरंजन वक्तृताय होती रही। शराब के साथ मछली, रोटी तथा दूसरी स्वादिष्ट चीजें थीं। दीन विस्तर मोरिमानिच स्ताइन ने भी भाषण किया, दो तीन और भी वक्ता बोले, रेक्टर न हमारे कमरे की हरेक मेज के पास अपने मद्यचषक को ले जाकर टुनटुनाते हुए स्वास्थ्य और स्वदेश के लिये पान किया, फिर इसी तरह दूसरे कमरों की भी प्रत्येक मेजपर गये। उस वक्त क्या दूसरे समय में भी बोज्नेसेन्स्की को लोगों म

सह वह देखकर कोई नहीं कह सकता था, कि वह इतने बड़े विश्वविद्यालय के चांसलर है।

मैं मद्य न पीने की असामाजिकता का प्रभाव मेरी मेज तक ही रहा— यहां के लोग मद्य को एक सुन्दर पानी से अधिक नहीं मानते और उसे अतिथि-सत्कार का सबसे अच्छा साधन समझते हैं। हमने किसी को यहां या और जगहों में भी नशे में गिरते-पड़ते नहीं देखा।

आज भोज के उपलक्ष्य में संगीत मंडली (कन्सर्ट) भी होनेवाली थी। तब तक कलाकार लोग आ पहुंचे थे। साढ़े नौ बजे प्रोग्राम रूस की एक वर्षीया प्रसिद्ध नीटा मानोव्स्काया के कला-प्रदर्शन से आरंभ किया गया। दूसरे कलाकारों में संगीतकार जर्जिन्स्की भी था, जिसने "तिखी दोन" (शान्त दोन) ओपेरा तथा दूसरे बहुत से नाट्य वस्तु तैयार किये थे। मानोव्स्काया बोल्शेविक क्रांति के समय ४० साल की थी। उस समय भी वह जारकी राजधानी की लाड़ली रही होगी। उजड़े वसंत को देखने से ही मालूम होता था, कि वह तरुणाई में अत्यंत सुन्दर थी। उसने चेखोफ् की कहानियों में से एक का अभिनय पूर्ण ढंग से पाठ किया। बहुत प्रभावशाली अभिनय था। कहानी के जितने पात्र थे, उनके कथन को वह उचित तथा भिन्न भिन्न स्वरों में अदा करती थी। कहानी पढ़ना भी एक उच्च कला है, इसका वह प्रमाण दे रही थी, और वह कला रूस में चरम सीमा तक पहुंची थी। १२ बजे के बाद तक कन्सर्ट जारी रहा।

जान पड़ता है समय बीतने के साथ मच्छरों, खटमलों और पिस्सुओं के बल में भी वृद्धि हुई थी। रातको उन्होंने नींद हराम करदी थी। ३ हफ्ते बाद हमारे पीछे के पाखाने की बदबूदार हवा ही कह रही थी, कि अब यहां से डंडा-कुंडा उठाओ।

२३ जुलाई को भोजनोपरांत ६ बजे हम "पहाड़ी" पर घूमने निकले। साथ घूमनेवाली एक महिला कह रहीं थीं—४-५ साल पहिले कफकाश (काकेशस) के श्री विश्रामभवन में कुछ लोग ठहरे हुए थे, १०

आज्ञा नर-नारी जगल में टहलने गये, वहां डाकुओं ने उन्हें पकड़कर सब कुछ छीन-छीना करके छोड़ दिया, बेचारे वस ही नंगे अपने निवासस्थान को लौटे।

मैंने कहा— जिस तरह यहां तिरयोशी के वन में आधी रात को घूमते हुए हम इस कहानी को सुन रहे हैं, उसी तरह न जाने इस वक्त काकेशश के वन में घूमते हुए कुछ लोग तिरयोशी में हिटलर डाकुओं द्वारा ५ जानों का लूटकर नंगे कर के छोड़ देने की कथा सुनते होंगे।

सचमुच ही जो वर्ग अपने प्रभुत्व को खो चुका है, उसके अवशेष अपनी हरकतों को जल्दी छोड़ नहीं सकते। शायद इस शताब्दी के अन्त तक भी पुराने वर्ग समाज की प्रतिक्रिया और प्रतिध्वनि यहां से पूर्णतया लुप्त नहीं होगी। वन के घूमने में हमें एक गामट और ताह का बना हुआ चबूतरा मिला, जिसपर युद्ध के समय १० मील तक मार करनेवाली बड़ी जर्मन तोप लगी हुई थी। वैसे स्टील तारों की बाड़ें, मोटे तख्ते से पटी युद्ध की खाइयां, खाना टिन तथा दूसरी चीजें अब भी जगह जगह मिलती थीं। यह तोप शायद बस्तान के सामरिक दुर्ग पर गोलाबारी करता था।

२४ जुलाई को समुद्र उत्तरंगित और हवा पानी ठंडे थे। स्नान करनेवाले बहुत कम दिखलायी पड़ रहे थे। प्राणि शास्त्र का एक छात्र समुद्र के पास छोटा सा गड्ढा खोद रहा था। पूछने पर उसने बतलाया कि इसमें मेंढक रखेंगे। ईगर ने भी एक मेंढक पाल रखा था। वह अपना मेंढक भी दौड़ कर ले आया। उसने समझा, वहां मेंढकों के लिये एक छोटा सा सरोवर बनेगा। जिसमें विद्यार्थी के मेंढक तरेंगे, उसीमें मेरा भी मेंढक तैर सकेगा। वह मेंढक लेकर अपने परिचित विद्यार्थी के साथ वहां काम में लग गया। मैंने घर में जाकर घंटा भर प्रतीक्षा की, लेकिन ईगर का कहीं पता नहीं था, वह वहीं डटा हुआ था। जाकर देखा तो विद्यार्थी कैंची से मेंढक के सिर को मूली की भांति काट रहा है, बिल्कुल निश्चित हो जरा भी संकोच न दिखलाते हुए वह एक के बाद दूसरे मेंढक को काटता जा रहा है, और शीशियों में से किसी में आँखें और किसी में उसकी कोई दूसरी ग्रंथि डालता जा रहा था। मेरे लिये यहां एक

क्षण भर भी ठहरना असह्य था, हृदय फूटने पचकने लगा था, किन्तु इधर उस तमाशे को विद्यार्थी की तरह ही वहां बैठा देख रहा था। श्यामा उसे दया के संस्कार प्राप्त नहा थे कि किसी प्राणी का वध होते देख तिलमिलाता। मां ने जब उसे उस दृश्य को देखते देखा, तो घबड़ा गयी और डांट डपटकर उसको अपने साथ लायी फिर वह बड़ी गंभीरता से लेक्चर दे रही थी—वहां फिर मत जाना, यह बहुत बुरा है। यदि कोइ तुम्हारा सिर काटे। मुझे भी उपदेश देने के लिये कह रही थी, लेकिन मैंने कहा—छोड़ दो, क्या जाने उसे आगे डाक्टर या प्राणिशास्त्री बनना हो, फिर हमारी यह शिक्षा उसके रास्ते में बाधक होगी। यह तो वहां साफ ही दिखाइ पड़ रहा था कि दया भी अभ्यास और संस्कार का परिणाम है। आज भी विद्यार्थियों ने हल्ला कर रखा था— "कमर्त होनेवाला है, गोर लेनिनग्राद के कई प्रसिद्ध कलाकार आ रहे हैं।" लोग ६ बजे से पहिले हा कुर्सियोंपर टूट गये। ६ बज गये, किन्तु कलाकार और कलाकारिनियों का कहीं पता नहीं था। फिर रियाल (पियानो) पर एक छात्र बैठ गया और उसने तानसेनी लयमें कुछ उस्तादी संगीत के हाथ दिखलाने शुरू किये। आध घंटे तक पट्ठा पियाना पर डटा रहा। श्रोतृमंडली भी कलाकारों की प्रतीक्षा में बैठी रही। फिर अन्तराल (विश्राम) का घोषणा हुइ, लोग अब भी विश्वास किये हुए थे, कि कलाकार आ रहे हैं। फिर हमारी युनिवर्सिटी की एक छात्रा, लगड़ा किन्तु सुमुखी और सुस्वरी ने कइ गान सुनाये। लेनिनग्राद शहर की गैर पेशेवर गायिकाओं की प्रतियोगिता में यह प्रथम आयी थी, इसलिये "घरकी मुर्गी साग बराबर" कहकर भले ही कोइ कदर न करे, लेकिन उसने गाया अच्छा था। अब श्रोतृमंडली भी समझ गयी, कि संगीतशाला में जल्दी जमा करने के लिये जाना न यह अफवाह उड़ाइ थी। साढ़े दस बजे प्रोग्राम समाप्त हुआ। अभी पश्चिम की ओर गोधूलि की लालिमा छायी हुइ थी और सूर्योदय होने में केवल डेढ घंटा रह गया था।

\+ \+ \+ \+ \+ \+ \+ \+ \+

हमारी उपर की काठरियां कतूतग के दरबे जैसा हा थीं, जिनमें एक एक म एक सपत्नीक प्रोफेसर ठहरे हुए थे। हमारा कोठरी आखिर म थी, उसकी बगल की कोठरी में युनिवर्सिटी के प्रारेक्तर (वायसचासलर) स्याकोन्तेरखुना अपना पुत्री आसिया के साथ ठहरी हुइ थीं। युद्ध क समय वह सराताफ युनिवर्सिटी म रेक्तर थीं। इनका योग्यता को देखकर रेक्तर बाज्नमिनिस्त्री उन्हें यहा खींच लाये थे। शिक्षण, छात्रवृत्ति आदि का काम इनके जिम्मे था, साथ ही प्राणि शास्त्र का अध्यापन भी करती थीं। लडका सेना म अभी लौटा नहीं था। १२ साल की लडकी पाचवीं क्लास में पढ रही थी, जो यहा साथ आयी थी। उस युनिवर्सिटी के काम से बीच बीच म जाना पड़ता था। उनकी मा उक्रैन की और पिता जार्जिया का था, पिता के ही कारण शायद अत्यधिक ऊची नाक उन्हें मिला था। उनकी कोठरी के बाद की कोठरी म मध्यकालीन इतिहास के प्रमुख विद्वान् प्रोफेसर गूकोरकी उपनाम गारिल्ला अपनी तरुणी भार्या के साथ रहते थे। गूकोरका की यह चौथी पत्नी बहुत सुन्दर थी। लोग कह रहे थे, कि तृतीया बहुत ही सुन्दर थी और उसके पहिले वाली भी कम सुन्दर नहीं थी। प्रोफेसर की आयु ४८ वर्ष के आस पास था। वह सिद्धहस्त प्रोफेसर समझे जाते हैं। उनके बाद युनिवर्सिटी के एक कार्यकर्त्ता गोर्मनोफ सपत्नीक ठहरे हुए थे। उसके बाद हमारे परिचित दोस्न (डान) स्ताइन सपत्नीक ठहरे हुए थे। प्रोफेसर स्ताइन १९२६ में चीन की राष्ट्रीय सरकार के अर्थशास्त्रीय परामर्शदाता रह चुके थे। प्राचीन अर्थशास्त्र के भी वह ममज्ञ हैं, विशेषकर चीन और भारत के। उनके बाद प्रो० मावरोदिन रूसी इतिहास के अच्छे पंडित और "प्राचीन रूस राज्य निर्माण" ग्रंथ के कर्ता तथा इतिहास फैकल्टी के डीन सपत्नीक ठहरे हुए थे। मावरोदिन पर मैं मुग्ध लगते थे। उनकी तरुण पत्नी हरवक्त सजी धजी रहती—आंखों म खूब काजल पुता, मुहपर जरूरत म ज्यादा पाउडर, ओठों पर मात्रा से अधिक अधर राग और पोशाक अत्यंत भड़कीली। इतना बनाव सिंगार तो रूस की स्त्रियों म क्या विदेशी स्त्रिया म भी कम ही देखने को मिलेगा। उनका सारा

समय शरीर रगन और पाशाक बदलने में जाता था। आठ पति तरुणी मातो की हरेक नाजबरदारी के लिय तैयार थे। फोरसानार को छोडकर इन दर्वों में रहनेवाले सभी उच्च दर्जे के प्रोफेसर और उनमें से दो डीन थे। मैं इन दरबों के भाग्यपर सोच रहा था कहा ६ वर्ष पहिले यहाँ मिनिस्टर ग्रामिनाय वर्ग के अतिथियों के मनोरंजन के लिये वेश्यायें रखी जाती थीं, और कहां अब उनका सम्भ्रान्त पुरुषों के अतिथि विश्राम के रूप में परिवर्तन। स्ताइन, मार्कोविन, और युकोल्स्की यहूदी थे, जिनमें दो अपनी फैकल्टी के डीन थे। इससे पता लगेगा, कि यहूदी कितने प्रतिभाशाली होते हैं। स्ताइन को छोडकर बाकी की पत्नीयां रूसी थीं। वस्तुत शिक्षित यहूदी अब विशाल रूसी जाति में राप जाने के लिये तैयार हैं। योग्यता होनेपर अब जाति किसी के रास्ते में रुकावट नहीं हो सकती, यह भी कारण है, क्योंकि वह इतने आगे बढ़ सके हैं। रूसी तरुणियां यहूदी प्रोफेसरों की पत्नी बनने में कोई हिचक नहीं दिखलातीं। वर्तमान शताब्दी के अन्त तक जान पडता है, अधिकांश यहूदी सन्तानें रूसी बन गई दीख पड़ेंगी। यह भी पता लगा कि फ्रिजसिम मैथमेटिक्स के डीन भी यहूदी ही हैं।

२६ जुलाई को खटमलों, पिस्सुओं और मच्छरों के बाद अब मक्खियों ने भी दर्शन देना शुरू किया, लेकिन अभी कम संख्या में ही। चोर्नोसि (मकाय) अब सब पक गई थी, और हमारे उपवन में क्या, बल्कि हमारे निवासस्थान के बगल ही में उनके काले फलों से लदे हुए पौधे थे, जिनमें लड़के चिमटे रहते थे। इस महीने के अन्त तक ही उन्हें खतम हो जाना था। मलीना (रास्पबरी) अभी अपनी पत्तियों में सकुचाकर छिपी हुई थी। हमारे रहने भर तो वह मुंह खोलने के लिये तैयार नहीं थी। अगले महीने आनेवाले उसको पायेंगे। उसके पौधे भी यहां बहुत ज्यादा थे। जेम्ल्यानिका (स्ट्राबेरी) के पौदे बहुत कम थे, लेकिन इस वक्त वह पकने लगी थी। लड़ाई के समय बहुत से कारखाने जब उच्छिन्न हो गये और उसके बाद आदमियों का मिलना भारी समस्या होगया तो लेनिनग्राद जैसे नगरों के आस-पास के खेतों का

भिन्न भिन्न फैक्टरियों और संस्थाओं ने सोवखोज (सरकारी खेती) बना लिया। इन खेतों में अधिकतर साग-सब्जी और स्ट्राबरी जैसे फलों की खेती होती थी। वतनिक श्रमिक वहाँ काम करते थे, जो मालिक संस्थाओं के पास चीजों को भेजते रहते हैं। आज हमारे अपने सोवखोज की स्ट्राबरी भोजन के समय लोगों के सामने आयी थी। लोग बड़े उत्साह के साथ कह रहे थे—हमारे सोवखोज की स्ट्राबरी है। हम समुद्र के किनारे दूसरी ओर टहलने गये। एक अच्छा खासा बंगला युद्धाग्नि में दग्ध देखा। लोहे की चारपाइयाँ और कितने ही धातु के टूटे-फूटे बर्तन वहाँ अब भी दिखलायी पड़ रहे थे। यह भी युद्ध के पहिले किसी किसी तालुकदार का विश्राम भवन रहा होगा।

२७ जुलाई को अब ३ दिन ही रह गये थे। उपान में पहिली दूसरी या पन्द्रहवीं तारीख को लोग आया करते हैं, जानेवाले दो दिन पहिले ही स्थान खाली कर देते हैं, ताकि नये मेहमानों के लिये जगह ठीक-ठाक की जा सके। लोग चलाचलू में हो रहे थे। अध्यापकों को प्रतिव्यक्ति प्रतिमास साढ़े सात सौ रूबल देना पड़ता था। दीना मार्कोव्ना गोल्दमान जैसी महिला अध्यापकों को—जिनके पति युद्ध में मर गये—आधा ही और छात्रों को कुछ भी नहीं देना पड़ता। खाने की कुछ व्यवस्था जरूर थी, जिसे अस्थायी कहना चाहिये, नहीं तो सैकड़ों हजारों विद्यार्थियों को मुफ्त आराम निवासों में खाने रहने का स्थान तथा प्रोफेसरों को भी कम खर्च पर सुन्दर प्रकृति की गोद में बैठकर एक दूसरे से मिलने और अपने भविष्य के काम के चिंतन के लिये अवसर देना अत्यन्त सुलभ नहीं हो सकता था।

लोगों को यहाँ सबसे ज्यादा शौक था— समुद्रस्नान करना, पुरुषों को केवल जाँघिया, और स्त्रियों को स्तनबन्द और जाँघिया पहिने धूप में लेटकर शरीर को साँवला बनाना। शरीर जितना ही साँवला बन जाय, उतनी ही प्रशंसा की बात मानी जाती थी। किसी ने हमारा साँवलता के लिये प्रशंसा की, तो मैंने कहा यह तो सैकड़ों सहस्र पीढ़ियों के आतप में तपने तथा तत्सबद्ध रुधिर समिश्रण का परिणाम है। कितनों ने तो धूप लेते लेते अपनी गर्दन और पीठ के कितने ही हिस्सों के खाल की एक तह निकलवा डाली थी, कुछ लोग

मर जम ग म परिणत हो भी गये थे।

शामको फिर घूमने गये। जहाँ तोप का सामेंट-लोहवाली पीठिका पड़ी था, वहीं अब नये मकानो के बनाने का काम शुरू हो रहा था। भारी भारी टैंको को देवदार के जगलों में घुमा दिया गया था, जिसमे बेचारे देवदार जड़ सहित धराशायी होगये थे। उनको बिजली के आगसे काटकर लकड़ियाँ स्थानान्तरित कर दीवारें बनाने का काम होने जा रहा था। विशाल देवदारों को टैंकों ने कितनी आसानी से उखाड़ फेंका था, यह देखकर मनुष्य की शक्तिपर आश्चर्य होता था। अगर हाथ से काटना पड़ता, तो दो आदमी शायद एक दिनमे दो दरख्त भी नहीं काट सकते थे, और टैंक ने एक दिन में हजारों को उखाड़ फेंका था। गिरे दरख्तों के नीचे निकल आयी काली मिट्टी बतला रही थी, कि सहस्राब्दियों से पत्तियों के सड़ने से यह मोटी काली मिट्टी बना होगी। यदि आज यहां खेत बनाये जाते, तो सैकड़ों वर्षों की फसल के लिये यहां खाद मौजूद था।

और आगे जानेपर पस्क्रमिकों का उपवन मिला। अकदमिक सोवियत रूस के देवता हैं। उन्हें देवत्व प्राप्ति अपनी विद्या से हुई। जितना नाम सम्मान तथा आराम उनको प्राप्त है, उतना रूस में किसी को प्राप्त नहीं है। उन्हें कुछ काम न करने पर भी ६ हजार रूबल मासिक पेंशन मिलती है। हर जगह पर उनके बैठने, रहने, खाने का विशेष ध्यान रखा जाता है। देवदार के जगलों की शोभा को कमसे कम नुकसान पहुँचाते उनके लिये यहाँ बगलों का एक गाँव बन रहा था। मकान बहुत कुछ तैयार होगये थे। एक एक के लिये कई कमरोंवाले मकान, बरण्डे, स्नानागार आदि का प्रबन्ध था। इसी मुहल्ले में उनके लिये भोजन आदि की शालाओं और दूकानों आदि का प्रबन्ध था। इमारतों को जल्दी से जल्दी तयार करने की ओर ध्यान था। आखिर अमरिका के अणुबमों के मुकाबिले में अपने अणुबमों को तैयार करना इन्हीं का तो काम है, फिर क्यों न इनका इतना पूजा प्रतिष्ठा की जाती।

२८ जुलाई हमारे किस्लोवोदस्की वासका अन्तिम दिन था। आज का भोजन अच्छा था। चलते वक्त ही क्यों ऐसा किया गया?

१५—"कालो न दुरतिक्रमः"

तिर्योका से लेनिनग्राद लौटने के लिये रेल के अतिरिक्त युनिवर्सिटी की लोरियों का भी प्रबन्ध था। एक के बाद एक लोरियाँ छूटती रही थी, लेकिन अभी लोला की तयारी ही ठीक नहीं हो रही थी। दो बजे तक तो उनका समुद्र स्नान होता रहा। हम सबसे पीछे भोजनशाला पहुँचे। जब लोग ४ बजे सामान लेकर लोरी की जगह पर पहुँच रहे थे तब हमारा सामान धीरेधीरे बाँधा जा रहा था। दो लोरियों के चले जाने पर डर लगने लगा, कि कहीं लारी हम मिले ही नहीं। ८ बजे के करीब हम अड्डे पर गये। अड्डा उपवन के भीतर ही ऑफिस के पास था। पता लगा कि एक लारी यहाँ से सीधे लेनिनग्राद जानेवाली है। लोला लारी के इतने लम्बे सफर का प्रतिवाद कर रही थी। मैंने बतलाया, ट्रेन से जाने पर तीन तीन बार बक्सों को उतारना फिर ट्राम पर भी चढाना उतारना पडेगा। खैर उसके दिमाग में बात समा गई। लारी आई, ड्राइवर की बगल में माँ बेटे को बैठा दिया। लारी का किराया नहीं देना था क्योंकि युनिवर्सिटी की थी। ड्राइवर को २०-२० रूबल दे देने पर उसने मुसाफिरों को उनके घर पर छोडना स्वीकार कर लिया।

सवा पाच बजे लारी रवाना हुई। सड़क समुद्र के किनारे से जारही थी। फिनलैंड की पुरानी सीमा तक महायुद्ध चला गया था जिसमें सभी नगर युद्ध की मोर्चाबन्दियाँ थीं। हमारे उपनगर से १५ किलो मीतर तक तो विश्रामोपवन ही चले गये थे, जिनमें से सबसे ज्यादा बालाश्रमों के थे। २० किलोमीतर जाने पर फिनलैंड की पुरानी सीमा मिली। जगत उध्वस्त करके अब गाम और कस्बे बस गये थे। रास्ते में ही सेस्त्रारेच (स्वसा नदी) का अच्छा खासा कस्बा था। घंटे भर की यात्रा करने के बाद हम लेनिनग्राद के बौद्ध विहार के पास पहुँच गये। लेकिन लोगों को घर घर उतारना था, इसलिये दो घंटे बाद ८ बजे से थोड़ा पहिले हम अपने घर पहुंचे। अच्छा हुआ जो रास्ते में वर्षा नहीं हुई नहीं तो लारी खुली थी। घर पर सामान रख देने के बाद वर्षा शुरू हुई। हमारी सड़क अधिकतर गोल गोल पथरों के ढलों की थी, जहां लारी बहुत धक्के खाती थी। खैर शारीरिक कष्ट का कोई सवाल नहीं था।

महीने भर बाद रेडियो अर्थात् बाहरी दुनिया के समाचार पहुंचे थे। भारत का प्रोग्राम खतम हो चुका था, लंदन और मास्को हा मन सके।

युनिवर्सिटी खुलने में एक महीने की देर थी। इसलिये फिर हम अपने पढ़ने और नोट लेने में लग गये।

३१ जुलाई को सबेरे थोड़ी वर्षा हुई। आज अपने कोपरेटिव दुकान से सामान लाना था। राशन के लिये हमारे वास्ते दो दूकानें थीं, एक अपने मुहल्ले की, जहां कि हम अपने साधारण राशनकार्ड की चीजें लेते थे, और दूसरा युनिवर्सिटी से नातिदूर अध्यापकों का कोपरेटिव दूकान थी, जहां हम साढ़े चार सौ रूबल वाले विशेष राशन कार्ड की चीजें लेते थे। इस दूकान में साधारण कार्ड की चीजें भी ले सकते थे लेकिन विशेष कार्ड की चीजें साधारण दूकान से नहीं ली जा सकती थीं। उस दिन चार बजे ट्राम से कजान गिरजे के पास कोपरेटिव में गये। घंटे भर प्रतीक्षा करने के बाद लोला भी आगई। फिर चीजों के खरीदने में तीन घंटे लगे। एक दिन पहिले कार्ड देने से चीजें सब तयार मिल सकती थीं। हाँ, हमारे यहां की तरह बन्ने की भी घड़ियां दी घंटे लेट रहना

है, किन्तु, जब आदमी हरेक चीज अपनी आखों से देखकर खरीदना चाहे, तो यह कम हो सकता था? आज महीने का आखिरी दिन था, इसलिये बचा हुआ राशन ले लेना जरूरी था, चाहे उसके लिये कितना ही समय लगे। शिक्षित वर्ग में अब भी पुराने मध्यमवर्ग की संख्या काफी है, और कमकरवर्ग से आये हुए लोगों में से भी कितनों ने शादी सम्बन्ध या दूसरी तरह पुराने मध्यमवर्ग के भावों को ग्रहण कर लिया है। महिलाओं को मालूम हुआ, कि अक्तूबर से राशन कार्ड उठ जायगा। वह बहुत डरने लगीं। कह रही थीं— भागी क्यू का पाती में घंटों खड़ा रहना पड़ेगा जो हमारे वश की बात नहीं है। वहां तो जो ज्यादा पैसा खर्च सके, वही ज्यादा खरीद सकेगा, और पीछे हाथ में ज्यादा दाम पर भी सकता है। मैंने कहा— यदि दूकानें ज्यादा खुल जायें जैसी कि अब भी राशन की दुकानें हैं, तो उतनी देर क्यों होगी?

किलोवाली मछली, मांस, मक्खन, अनाज, सभी चीजें एक मन से ज्यादा खरीदी थीं। इतनी चीजों को पीठ पर ढोना शक्ति से बाहर की बात थी, हालाँ कि संकोच का वहाँ कोई ख्याल नहीं था, क्योंकि सभी प्रोफेसर और लक्चरर, पुरुष और महिलायें १५–२० किलोग्राम सामान अपनी पीठ पर लादे चले जा रहे थे। मैंने कहा— अभी इंतजाम करता हूँ, और जाकर स्तुरिम्त से किराये पर एक टैक्सी माँग लाया। किराया २६ रूबल था, यद्यपि हमने ४० रूबल दिये। यदि भारवाहक लेना होता तो इससे कहीं ज्यादा मजदूरी देनी पड़ती।

शहर में घरों की मरम्मत और पुनर्निर्माण बड़े जोरों से जारी था। कितने ही मकान चौतल्ले बनाये जा रहे थे। हमको आशा होने लगी कि शायद मकानों की अधिकता होने पर युनिवर्सिटी के पास कहीं तीन कमरे मिल जायें। युनिवर्सिटीवाले भी युनवर्सिटीनगर बसाने की सोच रहे थे, और युनिवर्सिटी के आसपास के मुहल्लों को ले लेना चाहते थे। यह कोई मुश्किल नहीं था, क्योंकि "सभी भूमि गोपाल की" अर्थात लेनिनग्राद के सारे मकान लेनिनग्राद नगरपालिका के थे।

पन्ना अगस्त को फिर आया। आज न बिजली काम कर रही थी, न पानी का नल ही। [illegible] के उपलक्ष में [illegible] स्थान के लिये तैयार थे, इसलिये वहाँ [illegible] काम घड़ी की सुई की तरह नहीं तनदही में होता था। जो पानी, बिजली का काम नागरिकों का हो रहा था, उसका [illegible] मीटर में आँकड़ा नहीं बन सकता था, इसलिये उधर उतनी सावधानी नहीं रखी जा सकती थी।

रूस की लोग खाद्य सामग्री में फिर से बाहर की फलनामा [illegible] जमा चीजें काफी थीं, जिनको ज्यादा देर तक रखा नहीं जा सकता था, इसलिये मित्रों को दावत देना जरूरी था। लोला की सखी माशा पास में ही थी, लेकिन उसको बुलाने में विशेष तयारी की जरूरत थी, इसलिये उसे नहीं निमंत्रित किया, लेकिन और कई बन्धु मित्र नर-नारियाँ पधारीं। अगस्त में अब सर्दी पड़ने लगी थी, इसलिये मैं जंगला को बन्द रखना चाहता था, लेकिन लोला का आग्रह खिड़की खोल रखने का था, क्योंकि उससे "वितामिन" का झोंका आ रहा था। मैं खिड़की इसलिये भी खुला रखना नहीं चाहता था, कि स्नान के कमरे में काम करते समय खिड़की से कोई चीज न उड़ जाय। नल बिगड़ने से पानी को हम दूर से भर कर लाना पड़ा। बिजली सांझ देर से आ गई, उससे केवल इतना ही नुकसान हुआ कि मैं भारतीय रेडियो नहीं सुन सका।

४ अगस्त को गृहिणी के आग्रह पर अमेरिकन फिल्म "बलेरिना" देखने गये। पुराने मध्यवर्ग की स्त्रियाँ ब्रिटिश या अमेरिकन फिल्मों को अधिक पसन्द करती थीं, क्योंकि वहाँ उनके वर्ग के जीवन की सुन्दर झाँकी मिलती थी। फिल्म बुरा नहीं था। वहाँ से हम फोटोग्राफर की दूकान पर गये— फोटोग्राफर न कह कर फोटोग्राफी की दूकान कहना चाहिये, क्योंकि इस दूकान का मालिक कोई व्यक्ति या व्यापारिक कम्पनी नहीं थी। सभी दुकानें यहाँ [illegible] हैं। लेकिन यदि कोई फोटोग्राफर अपनी दुकान खोलना चाहे, तो उसमें बाधा नहीं है। उसे सरकारी फैक्टरियों से बने माल के मिलने में भी कोई दिक्कत नहीं, लेकिन वह नौकर नहीं रख सकता। हाँ, चार छ फोटोग्राफर मिलकर अपनी कोआपरे

ग्नि दूकान खोल सकते हैं । घड़ीसाजों के बारे में भी यही बात है। हम फोटोग्राफी कार्यालय में गये। यहां के फोटो का दाम बहुत कम था, मगर लड़कों का पचास पचास रूबल पड़ता था। लड़कों को फोटो के लिये ठीक बैठाने में दिक्कत थी, इसलिये उनके कई फोटो लेने पड़ते थे। हमने भी कुछ फोटो खिंचवाये। फिर 'उनीवर माग' (विश्व पण्यशाला) में गये, जहां कई तल्ले वाले मकानों में हजारों तरह की चीजें बिक रही थीं। वहां इगर के लायक कोई तैयार चीज नहीं मिली। कपड़ा था, लेकिन हमारे पास पहले से ही काफी कपड़ा रखा हुआ था, और दर्जियों की ढिलाई के कारण सिल नहीं रहा था। फिर आगे, पोस्तीन की दूकान थी, जिसमें बहुमूल्य साइबेरियन समूर तथा मध्यएसिया का कराकुल भेड़ों के रेशम जैसे समस्ते छाले रखे हुये थे। छोटा कोट बनवाने में भी ८-१० हजार रूबल से कम नहीं लगता था, फिर इगर तो जल्दी जल्दी बढ़ रहा था, इसलिये छ महीने के बाद ही कोट उसके लिये बेकार हो जाता। पहला सितम्बर में इगर को स्कूल में जाना था, इसलिये ओवरकोट और दूसरी पोशाक बनवानी ही थी। मां का काम हमेशा धाराधार होता था, इसलिये यह कम सम्भव था, कि महीने भर बाद भी उसके कपड़े बन सकेंगे।

५ अगस्त को फिर हम मुहल्ले की अदालत में गये। समय की पाबंदी न करने की तो मानो लोगों ने कसम खा रखी है। इसका यदि अपवाद था, तो उत्पादन स्थान, क्योंकि वहां पंचवार्षिक योजना के भाण्डे गला दबाने के लिये तैयार थे। अदालत में एक जज और दो सहायक जज बैठे हुए थे। सहायकों में एक स्त्री भी थी। एक प्रधान-सहायक कानून जानता था। कानून न जाननेवाले निर्वाचित जज कुछ समय के लिये होते थे, यह हम बतला आये हैं। लाल कपड़ा बिछी मेज की एक ओर तीनों जज बैठे हुए थे। मेज की बायीं ओर एक क्लर्क-स्त्री बैठी थी। सामने दर्शकों के बैठने के लिये पन्द्रह-बीस कुर्सियां पड़ी थीं। एक कठघरे में कारखाने का मजदूर खड़ा किया गया था। मालूम हुआ, वह रेल इंजन बनानेवाले कारखाने का छ-सात सौ मासिक पाने वाला मिस्त्री है, जो चार साल सेना में भी काम कर चुका है, और सामरिक

सर्जेंट हाकर पिउल मितम्बर म हीं मना स अलग हुआ । जिसा मारपीट में पसकर थान कटघरे म आया था । शराब पीकर मार पीट कर बटा था । बयान लेकर उमे भेज दिया गया । बाकी मुकदमों में ज्यादातर मकान से सबध रखते थे । युद्ध के समय लोग घर छोड़कर सेना में या दूसरी जगह चले गए, तब तक उनके घरों को दूसरों ने आकर दखल कर लिया, अब लौटकर वह अपना घर माँग रहे थे । बरसों से बस गये लोग घर छोडकर जायें कहा, इसलिये उज्र मात्तुर कर रहे थे । हमारे यहां का तरह मुकदमा को महीनों लटकाये रहने की प्रथा यहा नहीं थी । गवाही-साखी लेकर एक-दो पेशी में फैसला हो जाता । हमारे देश के कूपमण्डूक यही जानते हैं, कि यूरोप में एक ही कानून-व्यवस्था चलती है, और वह वही है, जिसे कि अंग्रेज मानते हैं । अंग्रेजों की प्रथा के अनुसार कानून के शब्द का अनुगमन करना सबसे आवश्यक है, लेकिन जर्मनी, रूस आदि देशों म शब्द की नहीं बल्कि भाव की प्रधानता है, इसलिये वहां वकीलों की इतनी ज्यादा नहीं चलता । सोवियत-व्यवस्था ने तो मुकदमों का सख्या का वैयक्तिक सपति की सीमा को सकुचित करके बहुत ही कम कर दिया है । दीवानी मुकदमें एक तरह से नाम-मात्र के हैं, और सपत्ति तथा स्त्री पुरुष के सम्बन्धवाले फौजदारी मुकदमों की भी सख्या बहुत कम हो गई है । अदालतों का यही ढाचा नीचे से उपर तक चला गया है । एक जज न होकर तीन जज रहते हैं । हा, ऊपर की अदालत के जज कानून के विशेषज्ञ हुआ करते हैं ।

६ अगस्त को, जान पडता है, तापमान उनके अनुकूल था, इसलिये मक्खियां बहुत हो गई थीं, दिन भर बहुत हैरान कर रही थीं । शायद बगल की खाली जमीन म जो साग सब्जी और दूसरी चीजें पडी हुई थीं, उसके कारण मक्खियों का जोर बढा । मक्खियों के मारने के कागज बहुत सस्ते मिल रहे थे, और वेंदी की ओर से खुले शीशे के बतनों म भी मक्खियां फँसाई जाती थीं, किंतु सौ पचास के बलिदान से उनकी सख्या क्या घटती ? दिन के शत्रु मक्खियां और रात के खटमल पिस्सू एव दिन रात दोनों म प्रचण्ड राज्य था मच्छरों का ।

७ अगस्त को तीन बजे बाद गरम कपड़ों की जरूरत पड़ने लगी । मैं

तापमान तो यहां बराबर आंख मिचौनी करता रहता है, लेकिन अब पता लग गया, कि अगस्त के प्रथम सप्ताह के बाद जाड़े का आगमन नहीं तो शरद का आगमन जरूर हो जाता है। बादल भी जब तब दिखलाई पड़ने लगे, नलके का पानी भी ठंडा हो चला।

६ अगस्त से हमारे घर में मरम्मत का काम लगा था। घर के स्वामियों (नगरपालिका) की ओर से मरम्मत हो रही थी, लेकिन काम करनेवाले एक दिन का काम चार दिन में करना चाहते थे। असल में रसोईघर और नगरपालिका के घरों की ही मरम्मत होनी थी, जिसमें हम बराबर काम न होने पाता था। दीवारों पर कागज लगाने की आवश्यकता थी। वह हम से कागज मांग रही थी किन्तु कार्यालय से पूछने पर मालूम हुआ, कि वह दिया जा चुका है। रहने की कोठरियों में भी थोड़ी मरम्मत की आवश्यकता थी, जिसके २५० रूबल मांग रहा था। इस्त में एक दिन तो घरों के लकड़ी के फर्श को धोना आवश्यक था, उसके लिये एक स्त्री ४० रूबल मांग रही थी— अर्थात् दो घंटे के काम के लिये ३०–३५ रुपया। लेकिन,आपको मजदूर नहीं कर रहा था, काम अपने हाथ में कर लीजिये। शारीरिक श्रम का मूल्य वहां कम नहीं था। लोला ने दूसरी स्त्री को १५ रूबल और एक किलो (सवा सेर) आटा पर राजी किया। १० अगस्त को घर की मरम्मत खतम हो चुकी थी। सामान को ठीक जगह पर रख दिया गया था। सामान के बारे में क्या कहना है? 'सर्व-संग्रह कर्तव्य के काले फलदायक' के महामन्त्र की लोला अवश्य अनुगमन करनेवाली महिला थी। दोनों कमरे और रसोई का घर भी सामान से भरा हुआ था। वह किसी चीज को फेंकने या देने के लिये तैयार नहीं थी पतीलियां कब की टूट चुकी हैं, लेकिन वह भी आल में पड़ी हुई हैं, कितने बरतन बेकार हो चुके हैं, लेकिन उनके ढक्कन जमा करके रखे हुए हैं। बोतल और शीशियां इतनी, कि उनको सालों से भूला भी जा चुका है, किन्तु जगह खाली करने की आवश्यकता नहीं। ऐसी स्थिति में यदि खाने और सोने के कमरे भी मालगोदाम बन गये हों, तो आश्चर्य क्या? हां, खैरियत यही थी, कि वह आलमारियों या पलंग के नीचे रखे हुए थे।

अत्यन्त प्रेम करनेवाला माँ अपने लड़के के स्वास्थ्य की गुरु होती है, इसका प्रमाण भी हम घर में मिल रहा था। इगर का पेट कभी नहीं ठीक होने पाता था, क्योंकि माँ उसे ठूँस ठूँस कर खिलाना चाहती थी। आखिर पाचनशक्ति का भी कोई हद होता है। हम तो समझते थे, कि हमारे देश में ही घी तेल चर्बी की भर मार पसन्द की जाती है, किन्तु वहाँ भी यही हालत थी। १४ अगस्त को हमने नोट किया "पेट में गड़बड़ी प्राय ही हो जाती है, राज लोला का चर्बी पूर्ण भोजन।"

१६ अगस्त अर्थात् अगस्त के मध्य में पहुचते-पहुचते कितने ही अल्प जीवी तृण पीले हो पतझड़ के आने की सूचना दे रहे थे। आलू अभी तैयार नहीं थे। चीजें सस्ती और अधिक प्राप्य होने के कारण इस वर्ष लोगों ने साग-भाजी के खेतों में उतनी तत्परता नहीं दिखलाया। लोला को एक नौकरानी की अत्यन्त आवश्यकता थी, घर के काम करने के लिये ही नहीं बल्कि इसलिये कि १ सितम्बर से इगर स्कूल जाने लगेगा और उसके लौटने के समय (एक बजे) हम दोनों युनिवर्सिटी रहेंगे। एक बुढ़िया काम करने के लिये मिल रही था। राशन की कड़ाई और चीजों की मँहगाई का लोगों के सदाचार पर भी प्रभाव पड़ रहा था। बुढ़िया ने कहा— "मैं भगवान् विश्वासिनी हू, कोई चीज नहीं छूती"। २०० रूबल मासिक और भोजन देने से राजी हो जाती। बुढ़िया के कोई नहीं था, पेन्सन पाती थी। न जाने किस कारण लोला की उसमे नहीं पटी। नौकरानी का खोज जारी रखी गई।

१८ अगस्त को हमारे मुहल्ले में भी एक रोमनी (जिप्सी) नारी घरों घूम रही थी। दो पुरुष उससे हाथ दिखला रहे थे। पाँच-पाँच रूबल ता देते ही, इसप्रकार २० आदमियों का हाथ देखकर वह सौ रूबल रोज कमा सकती थी, फिर उसे काम करने की क्यों परवाह होने लगी? मन्त्रवादियों का वाद एक अखबार रखने से नहीं दूर होता। हाथ देखना, भाग्य बाचना, यह आज का मिथ्या विश्वास नहीं है, इसका दूर करने के लिये बुद्धिवाद के बड़े जबर्दस्त घूट की आवश्यकता है।

युनिवर्सिटी बन्द थी, छात्र छात्राये भी छुट्टी पर थे। सबसे उपरी वर्ग की छात्रा वर्या कभी कभी हमारे परिदर्शन में सहायता करती थी। १६ अगस्त को वह हमें शहीदों की समाधि की ओर ले गई। अक्तूबर क्रांति के समय जो लोग हेमन्त प्रासाद और आस पास के स्थानों में बलिदान हुए, उन्हीं वीरों की यहां समाधियाँ थीं। सगमर्मर की चमकती हुई चट्टानों की पांच छ हाथ ऊंची दीवारों से यह समाधियां घिरी हुई थीं। पास में सारा पुष्पोद्यान तैयार किया जा रहा था। समाधि-उद्यान के पास ही ग्रीष्म-प्रासाद (ग्रीष्मोद्यान) था, जो कि जारशाही युग के धनी-मानी लोगों के विहार का स्थान था। सचमुच ही ग्रीष्म में इसकी शोभा निराली थी। ग्रीष्म की धूप से बचने के लिये यहां वृक्षों को घना लगाया था। यूरप के प्रसिद्ध प्रसिद्ध मूतिकारों की कृतियाँ— प्रतिमूर्तियों के रूप में— यहां रखी हुई थीं। अधिकांश मूर्तियां संगमरमर की थीं, जिनमें से कितनी ही अंग भग थीं। १८ वीं सदी के प्रसिद्ध कथाकार क्रिलोफ की धातु मयी मूर्ति भी यहां स्थापित थी। क्रिलोफ ने पंचतंत्र की तरह पशु पक्षियों के नाम से बहुत-सी कहानियां लिखीं, जिन्होंने तत्कालीन समाज के बड़ों पर गहरी चोट की थी, लेकिन सामी चोट न होने के कारण वह तिलमिलाकर रह जाते थे, और क्रिलोफ का कुछ बिगाड़ नहीं सकते थे। आखिर क्रिलोफ भी उच्च वर्ग का पुरुष था। उसकी मूर्ति के साथ कहानियों के पशु, पक्षी पात्रों की भी मूर्तियां बनी हुई हैं। सोवियत युग में भी क्रिलोफ की कहानियां लड़कों और बड़ों का बड़ा मनोरंजन करती हैं। लड़के तो यहां बड़े चाव से देखने आते हैं, और हर एक जन्तु की मूर्ति को देखकर अपनी पढ़ी हुई कहानियों का स्मरण दिलाते हैं। मुझे इस बाग के सैलानियों में अधिकतर लड़के ही दिखाई पड़े। कला के अद्भुत नमूनों को देखने पर ख्याल आता था कि कितना भारी धन राशि इनके निर्माण में लगी होगी। लेकिन जन शोषण से प्राप्त अपार सम्पत्ति में से कुछ को कला पर खर्च कर देना शासक के लिये कोई भारी बात तो नहीं है।

२१ अगस्त को वेधा के साथ हम रूस म्यूजियम और एरमिताज म्यूजियम देखने गये। रूस-म्यूजियम १८९८ ई० में स्थापित हुआ था। पहिले यह विशाल

प्रासाद जार अलेक्सान्द्र प्रथम के छोटे भाई मिखाइल पावलिच के लिये १८१६ई० में आरम्भ हो चार वर्ष बाद १८२३ में तयार हुआ। उसके बहुत दिनों बाद१८६५ ई० में जार के विशेष फरमान के अनुसार इसे रूसी कला का म्यूजियम बना दिया गया। यद्यपि इसका आरम्भ आधी शताब्दी पहिले हुआ था, किन्तु इस में सबसे अधिक चीजें१९१७ की क्रान्ति के बाद आयीं, जब कि धनियों और सामन्तों के घरों में पड़ी कला की चीजें बाजारों में बिकने लगीं, और म्यूजियमों ने ढूँढ़-ढूँढ़ कर उन्हें खरीदना शुरू किया। युद्ध के समय और म्यूजियमों की तरह यहाँ की भी सामग्री सुरक्षित स्थानों में भेज दी गई थी, अभी केवल १८ वीं १९ वीं सदी के चित्रकारों और कुछ मूर्तिकारों की ही कृतियाँ प्रदर्शित की गई थीं। वैसे यहाँ की ११ वा १२ वीं सदी की दुर्लभ कृतियाँ खासतौर से दर्शनीय हैं, मगर, अभी वह नवम्बर तक यथास्थान रखी जानेवाली थीं। इवानाफ का प्रसिद्ध चित्र "लोगों में मसीह" की यहाँ भी एक प्रति है, जिसे अपेक्षाकृत छोटे रूप में उस कलाकार ने पहिले तयार किया था। यहाँ उन सब ड्राइंग तथा दूसरी वस्तुएँ सुरक्षित रखी हुई हैं, जिनको महान् चित्रकार ने अपना फिलस्तान की यात्रा में वस्तु से उतारा था और पीछे उन्हें जोड़कर उस महान चित्र को तयार किया था। शिश्किन प्रकृति का महान् चित्रकार था। वसन्त, हेमन्त, शरद, ग्रीष्म को वह सजीव करके दिखलाने में अद्वितीय था। उसके कितने ही चित्र देखे जो बड़े ही गंभीर और सुन्दर हैं।

वहाँ से एरमीताज म्यूजियम गये। एरमीताज म्यूजियम पहिले जार के महान् प्रासाद (हेमन्त प्रासाद) के एक पास के राजमहल में खोला गया था, जो क्रान्ति के समय (१९१७) तक उसी महल तक सीमित रहा, लेकिन क्रान्ति के बाद जनता के युग के आरम्भ होते ही प्रदर्शनीय वस्तुओं की संख्या बड़ी तेजी से बढ़ी, इसलिये पास का हजार कमरोंवाला जार का हेमन्तप्रासाद भी म्यूजियम को दे दिया गया। युद्ध के समय नष्ट होने से बचाने के लिये सामग्री दूसरी जगह भेजी गयी थी, अब चीजें आ रही थीं, उन्हें सजाया भी जा रहा था, लेकिन सारे म्यूजियम को सजाकर तयार करने में अभी काफी समय की देर

थी। वहा जाने पर मध्यएसिया के इतिहास के विशेषज्ञ प्रोफेसर याकूबो सकी से भेंट हुई। वह युनिवर्सिटी म इतिहास के प्रोफेसर भी हैं, और उज्बेकिस्तान तथा तार्जिकिस्तान में भेजे जाने वाले अभियानो के नेता भी होते रहे हैं। उन्होंने वर रशा के बारे म बतलाया कि वह पांचवीं छठी सदी का ध्वंसावशेष है, और श्वेत हूणों की राजधानी हो सकता है, लेकिन भित्तिचित्र के हाथिया, अंकुश, सवारों की वेष भूषा को वह भारत से ज्यादा सम्बंधित नहीं करते थे। उनका कहना था कि उन चित्रों पर सासानी प्रभाव ज्यादा है। उनका ध्यान इस ओर नहीं था, कि श्वेतहूण आधे उत्तरी भारत के स्वामी थे, और उनके एक राजा तोरमान ने ग्वालियर म एक बहुत ही सुन्दर सूर्य-मंदिर बनवाया था। उनसे यह मालूम हुआ, कि वररशा के खनन के नेता शिश्किन का एक अच्छा लेख किसी पत्रिका म निकलने जा रहा है, कई चित्र भी होंगे। मैंने उसके लिये पीछे बहुत छान बीन की, प्रेस तक दौड़ लगाई, लेकिन कहीं उस लेख का पता नहीं लगा।

एरमीताज म्यूजियम के एक विशेषज्ञ प्रोफेसर बर्नश्तम मिले। वह कजा-कस्तान और मध्यएसिया के धातुयुग के विशेषज्ञ हैं। उन्होंने बड़े प्रेम से कितनी ही बातें बतलायीं और फिर मुझे कई कमरों को दिखलाया। नव पाषाण-युग, ताम्रयुग, और उत्तरी कजाकस्तान की प्रागैतिहासिक सामग्री चुनी जा चुकी थी। ई० पू० दसवीं से सातवीं सदी म उपरी इर्तिश उपत्यका पर जाइसन झील के उत्तर सोने की खानों म काम होता था। वहां सोने के पत्थरों को चूरा कर धुलाई के द्वारा सोना अलग किया जाता था। कोक्चतोफ म भी सोने की और भी बड़ी खान था। यहां का ही सोना दक्षिण की ओर (भारत, ईरान) जाता था। लेना का सोना अभी सुलभ नहीं हुआ था। उत्तरी काजेकश म टिन की भी खाने हैं। ताँबा तो वहाँ तथा बलकाश के उत्तरी तट तथा दूसरी जगहों म बहुत पाया जाता है। उत्तरी काजेकश के धातु के इतिहास पर पुस्तक लिखने के बाद अब वह कजाकस्तान सिबेरिया के धातु-स्थानों पर कलम चला रहे हैं। उन्होंने ई० पू० तृतीय शताब्दी के शक सरदार का कब्र से निकला एक लाल रङ्ग के घोड़े के शवका

भी दिखलाया। यह कब्र उत्तर पूर्वी कजाकस्तान में अल्ताई के पास मिला था। कब्र में मरदार के साथ कपड़े सोने आदि की चीजें रखा गई थीं। लेकिन, उसी समय चोरों ने खोदकर उसे निकाल लिया। लकड़ी का शवाधान, घोड़े, और घास की चीज वहीं बच गई थीं। जिस छेद से चोर भीतर घुसे थे, उसी छेद से उसी समय पानी भीतर चला गया, जो सर्दी के मारे चिरस्थाई के लिये बर्फ बन गया, जिससे घोड़े के साज, चर्म आदि सभी २२ शताब्दियों बाद भी सुरक्षित मिले। जिस स्थान पर कब्र थी, वह हूणों और शकों की सीमा पर थी। लेकिन वहाँ सिवाय कुछ मलक्षण के कहीं पर भी मंगोलाकृत शरीर लक्षण का प्रभाव नहीं था। चीन का भी प्रभाव इस कब्र की सीमा पर नहीं था। इस्मिन ने बतलाया, कि यहाँ के घोड़े और चारजामे तथा सुब्रह्मा के उत्तर की सिथियन समाधियाँ यानों उस दो हैं, जिसका अर्थ है दोनों जातियाँ— पश्चिमी सिथियन और पूर्वी शक—एक था। इनके घोड़े हूणों के नेस नहीं बल्कि दक्षिण और पश्चिम के घोड़ों जैसे बड़े-बड़े थे।

हमने साथ-साथ और भी कुछ चीजें देखीं, जिनमें पुराने हथियार व आभूषणों में हसली, कंगन, केयूर, और कर्णफूल भारत जैसे थे। हो सकता है इनमें से कुछ आभूषण शकों द्वारा भारत पहुँचे हों।

२४ अगस्त को खबर मिली कि भारत में राष्ट्रीय सरकार के नामों की घोषणा करदी गई है। मुस्लिम लीग उसमें शामिल नहीं हुई।

रूस में पेशों और व्यवसायों की सीमा रेखा कितनी कम हो गई है, और मस्तिष्कजीवी भी शरीरजीवी बनने में कोई संकोच नहीं महसूस करते, इसका पता हमारे घर की दीवार पर कागज चिपकाने के लिये आयी महिला थी। वह इंजीनियर थी, लेकिन अपने काम से बाहर यदि कोई काम मिल जाता, तो उसे स्वीकार करने में आनाकानी नहीं करती थी। हमने अपनी छोटी सी शयन कोठरी की दीवार पर रंगीन कागज चिपकाने के लिये कहा। वह १५० रूबल पर राजी होगई, और २५ अगस्त को एतवार के दिन उसने उस काम को कर दिया। उसे १४ घंटे लगाने पड़े। हमारे रूबल से कम उसका वेतन नहीं होगा, तो भी

यदि महीने में पांच सात दिन इस तरह काम करके हजार रूबल और मिल जाय, तो हरज क्या ?

२६ अगस्त को यह सुनकर लोला और उसकी साथिन ने संतोष की सांस ली, कि अभी साल भर तक राशन हटने वाला नहीं है। सरकारी दूकान ऐसी भी थीं, जिनमें राशन बिना चीजें मिलती थीं। व राशन की चीजों के मिलने का एक और स्थान रानक (हाट) था। वहां १२० रूबल किलोग्राम चीनी ७० या ८० रूबल में मिल जाती थी। इसी तरह दूसरी चीजें भी वहां कम दाम पर बिक रही थीं। हाँ, बिना राशन की दूकान की तरह यहां चीजें बराबर नहीं मिलती थीं, क्योंकि लोग अपनी राशन की चीजों को बेचकर दूसरी अपेक्षित चीजें खरीदते थे, कोई मध्यवर्गी आदमी लोगों से चीजें जमा करके बेचने नहीं पाता था, इसीलिये बराबर चीजों का मिलना संभव नहीं था।

३० अगस्त आया। एक दिन छोड़ पहिली सितम्बर से इगर को स्कूल जाना था। आज पास के स्कूल में उसका नाम दर्ज हो गया। माँ को खिलाने की बहुत फिक्र थी। यद्यपि बालोद्यान में उसे पूरा खाना मिलता था, किन्तु शाम सबेरे अपने मिश्का (चूहे) को ठूस ठूस कर खिलाये बिना माँ कैसे रहती ? पहिली तारीख को सभी माताएं स्वयं और अपने लड़कों को अच्छी तरह बनाव सिंगार करके स्कूल पहुँचीं। आज उनके बच्चे पढ़ाई आरम्भ करनेवाले थे। पिछले महीने का अंतिम सप्ताह लड़कों और उनकी माताओं के भी बालोद्यान से छुट्टी लेने में बीते थे। लड़कों के यह स्मरणीय दिन थे, बालोद्यान के बाद अब अगले दस वर्षों तक की स्कूली पढ़ाई, लड़कों और लड़कियों की अलग हुआ करेगी, और चार साल साथ बिताने वाले लड़के लड़कियां अब घर पर ही एक दूसरे से मिल सकेंगे। कई वर्षों के तजर्बे के बाद सोवियत के शिक्षा शास्त्रियों को यह शिक्षा उठा देने की जरूरत मालूम हुई। उन्होंने देखा कि १७ वर्ष की आयु के भीतर लड़कियों के विकास की गति कुछ अधिक होती है।

सितम्बर के साथ शरद अब पूरी तौर से शुरू होने लगी। यहां वर्षा

ऐसे भी दिन थे, जो तापमान के गिरने के साथ हिम वर्षा के दिन बन जाते। लोगों ने अब अपने आलुओं को जल्दी जल्दी खोदना शुरू किया, क्योंकि कुछ आलू चोरी चले गये थे। हमारी क्यारी में पिछले वर्ष से ज्यादा सात किलोग्राम (प्राय दो मन) आलू हुआ। ६ सौ रूबल का आलू पैदा करना कम सफलता की बात नहीं थी। हमारी पड़ोसिन से जब खेती करने की बात कही गई, तो उसने कहा— क्या खेत खोदने जाऊँ, जब कि एक रात के जागने में सब काम बन सकता है। चाहे वेतन अधिक भी कर दिया जाय, लेकिन चीजों के महँगे होने से लोगों के सदाचार पर बुरा प्रभाव पड़ता है, यह यहाँ मालूम हो रहा था।

अभी तक लोला को कोई नौकरानी नहीं मिली थी। नौकरी ढूँढ़ती एक बुढ़िया ३१ अगस्त को आयी। वह फ्रेंच, अंग्रेजी, इतालियन, और जर्मन भाषायें जानती थी। पुराने आभिजात्य वर्ग की लड़की थी, इसलिये यूरोप के भिन्न भिन्न देशों की सैर करना और कई भाषाओं का पढ़ना उसके लिये आवश्यक था। बुढ़िया का बाप जार की पार्लियामेण्ट का मेम्बर था। कितनी ही बार वह यूरोप की सैर कर चुकी थी। युद्ध के समय शहर छोड़कर चली गई थी, इसलिये उसके कमरे में कोई दूसरा बैठ गया था। अब झोली में अपना सारा घर लिये बेघर होकर घूम रही थी। एक भोजनशाला में रहने की जगह मिल जाने पर यहाँ रहकर इगर की देख भाल करने के लिये तैयार थी, लेकिन हम तो ऐसे आदमी की आवश्यकता थी, जो कि खाना भी बना सके।

कल मशीन का काम ऐसा ही होता है, जब तब वह बिगड़ जाती है, और फिर काम ठप्प हो जाता है, इसलिये मशीन युग के हरेक नागरिक को कल-मशीन की बातें भी सीख लेना आवश्यक है। बिजली और चूल्हे से मिट्टी तो हम बच हो गये थे, पहिली सितम्बर को हमारा रेडियो भी बन्द हो गया। पीछे से खोलकर परीक्षा की, तो एक बल्ब बिगड़ा मालूम हुआ। पास पड़ोस में ढूँढ़ने पर एक रेडियो विशेषज्ञ मैनर निकल आये। उन्होंने आकर अपना बल्ब लगा दिया, और साथ ही कुछ बातें भी हमें बतला दीं। पारिवारिक

देने पर लेने से इन्कार कर दिया।

पहिला सितम्बर रविवार को पड़ा था, इसलिये शिक्षण संस्थाओं के साल का आरम्भ २ सितम्बर से हुआ। युनिवर्सिटी में पिछले साल की तरह लड़कों का नितान्त अभाव नहीं था, अब लड़के भी दिखाई देने लगे थे। पढ़ाने के घंटा आदि का निश्चय पहिले ही हो गया था, इसलिये अब फिर हमारी गाड़ी पहिले की तरह चलने लगी।

उसी दिन एक भारतीय छात्र की चिट्ठी अमरिका से आया। वह योजना के संबंध में विशेष अध्ययन करने के लिये आना चाहते थे। भारत में उन्होंने कई पत्र रूस भेजे, लेकिन उन्हें कोई उत्तर नहीं मिला। हम से चाहते थे, कि उनके लिये कोई प्रयत्न करें। बेचारे जानते नहीं थे, कि पूंजीवादी दुनिया के कटु अनुभवों के कारण सोवियत सरकार विदेशी विद्यार्थियों को लेने के लिये तब तक तैयार नहीं होते, जब तक पूरा तौर से विश्वास न हो जाय कि वह किसी विदेशी सरकार के खुफिया नहीं हैं।

× × × ×

भारत से २४ जून का हवाई डाक से भेजा-पत्र ७ सितम्बर को मिला, इससे मालूम होगा कि भारत के साथ सम्बन्ध रखना कितना मुश्किल था। कुछ पत्र तो चार महीने के भी बाद हमारे पास पहुंचे।

२०० रूबल मासिक, भोजन, तथा रविवार की छुट्टी पर भी नौकरानी मिलना मुश्किल हो रहा था। यदि कोई काम करने के लिये तैयार था, तो उसे अपने काम से हटने के लिये जल्दी आज्ञा नहीं मिल रही थी। हमने दोनों कमरों की धुलाई के लिये प्रति रविवार ४० रूबल पर प्रबंध कर लिया था।

सितम्बर के प्रथम सप्ताह में भारत में जगह जगह साम्प्रदायिक दंगों की खबरें आरही थीं। कांग्रेस ने राष्ट्रीय मंत्री मण्डल को संभाल लिया था। लीग अपने हठ पर डटी थी, और उसके कारण जगह जगह झगड़े हो रहे थे। ८ सितम्बर को जवाहरलाल नेहरू की वक्तृता रेडियो पर सुनी 'भाइयो और बहिनों' से शुरू और "जय हिन्द" के साथ समाप्त। १२ मिनिट की वक्तृता थी। अभी

मैंने प्रधान-मंत्री का एक बधाई का तार भेज दिया था। सेंसरों की धाँधली जैसी चल रही थी, उसमें यह आशा नहीं थी, कि तार पहुँच ही जायगा, हालाँकि उसमें कोई वैसी बात नहीं थी। लेकिन १४ सितम्बर के दिल्ली रेडियो से नेहरू जी के पास शुभेच्छा भेजने वालों लोगों में लेनिनग्राद के प्रोफेसर राहुल सांकृत्यायन का नाम भी सुना। इससे यह तो मालूम हुआ कि रूस देश में भी नई सरकार के शुभेच्छु हैं, लेकिन जहाँ तक हमारे इंटर्निस्टों का सम्बन्ध था, वह इस नई सरकार को कोई अहमियत नहीं देते थे।

लोला ने अपने सगे सम्बन्धियों को मास्को के लिये कह रखा था। एक महिला एक ७० वर्षीया वृद्धा को अपने साथ लेकर १५ सितम्बर को आयीं। फिर एक दूसरी भी सबन्धिनी अपने दो बच्चों के साथ आयीं। घर में चार पांच लड़के, और तीन चार मेहमानों के आ जाने से कुछ चहल-पहल हो गई। लोला के चचेरे भाई की लड़की नताशा बड़ी भद्र महिला थीं। उनके दो बच्चे थे, पति दूर चला गया था और शायद छोड़ भी चुका था। दोनों बच्चों का पालन माँ स्वयं कमाकर कर रही थी। उसने अपने छोटे बच्चे को पितृकुल का नाम (बेर्नस्ताम) दे रखा था। लोला बहुत ज्यादा स्नेह प्रकट करनेवाली स्त्री नहीं थी, लेकिन नताशा के साथ उसका स्नेह था। उसको इस बात का अफसोस था कि इस रक्तकेशी ने एक यहूदी से विवाह किया है। उसके लड़के का भी केश लाल था। वह यद्यपि इगर से एक ही साल बड़ा था, लेकिन कहानियाँ खूब पढ़ लेता था, पढ़ने का शौक भी उसे बहुत था, और यह अनुभव करने लगा था, कि माँ कितनी मेहनत करके हमारी परवरिश कर रही है। वृद्धा शायद काम नहीं कर सकती थी, इसलिये उसको नहीं रखा गया।

१६ सितम्बर सोमवार होने से हमारे स्नान का दिन था। हर हफ्ते की तरह आज भी स्नान करने गये। दोपहर बाद वर्षा ही वर्षा रही। गोया शरदधूम आज से आरम्भ हो गई थी। अब दिन में भी घर में बैठते वक्त गरम कोट की जरूरत पड़ने लगी थी। बिना राशन की दूकानों में दाम और कम हो गया। चीनी १२० रूबल की जगह ७० रूबल किलोग्राम हो गई, राशनकार्ड

पहिले पहल सरकार की बागडोर हाथ में आई थी, इसलिये ऊपरी बातें ही ज्यादा थीं।

११ सितम्बर को युनिवर्सिटी जाते समय पहिले प्रोफेसर इस्मिन से एरमिताज में जाकर बातें कीं। उन्होंने बतलाया कि कजाकस्तान की ताँबे, टिन और सोने की खानें अधिकतर पितल युग (प्राय ई० पू० १३ वीं सदी) की थीं। सोने की खानों में एकाध लोहे के हथियार भी मिले हैं। ताम्रयुग कजाकस्तान में ई० पू० द्वितीय शताब्दी तक रहा। इसके बाद खानों में काम बन्द हो गया। यह खानें उसके बाद १८ वीं और १९ वीं सदी में और अधिकतर तो २० वीं सदी में फिर से चालू हुईं। अक्मोलिन्स्क में आधे भुइधरे वाले घर मिले हैं, जिनमें खानों के कमकर रहा करते थे, और जो हिन्दू-यूरोपीय जाति के थे। उस समय अक्मोलिन्स्क में और अधिक जंगल था। खानों के स्थानों के बारे में उन्होंने बतलाया —

ताम्र— अक्मोलिन्स्क, बलखाश, अल्ताई (इर्तिश से दक्षिण)।
सुवर्ण— कोक्चेतोफ प्रदेश में ३० स्थान, अल्ताई में इर्तिश से दक्षिण।
टिन— दक्षिणी अल्ताई, रूखा पहाड़, इर्तिश का उभय तट।

उनसे यह भी मालूम हुआ कि क्रान्ति से पहिले कजाक कमकर बहुत कम थे, लेकिन अब वह खानों और कारखानों में काफी हैं।

युनिवर्सिटी की पढ़ाई बाकायदा शुरू हो गई थी, किन्तु बाकायदा का मतलब था अध्यापकों का बाकायदा जाना। युद्ध के बाद विद्यार्थियों के मनोभावों के बारे में यह अक्सर शिकायत की जाती थी, कि वह पढ़ने की अधिक परवाह नहीं करते। मुझे संस्कृत, तिब्बती, और हिन्दी पढ़ानी पड़ती थी। घर से युनिवर्सिटी पहुचने में डेढ़ घंटा और उतना ही लौटने में लगता था। जब वहां विद्यार्थियों को गुम देखता, तो समय की बर्बादी का अफसोस होता। लौटते समय ट्राम में चलना आसान नहीं था। खड़े होने की जगह मिलती तो भी लोगों के मारे दबने पिचने लगता। यदि बैठने की जगह मिल जाती, तो घुटनों से नीचे के परों की खैरियत नहीं थी।

मैंने प्रधान-मंत्री को एक बधाई का तार भेज दिया था। सेंसरों की धाँधली जैसी चल रही थी, उससे यह आशा नहीं थी, कि तार पहुँच ही जायगा, हालाँकि उसमें कोई वैसी बात नहीं थी। लेकिन १४ सितम्बर के दिल्ली-रेडियो में नेहरू जी के पास शुभेच्छा भेजने वाले लोगों में लेनिनग्राद के प्रोफेसर राहुल सांकृत्यायन का नाम भी सुना। इससे यह तो मालूम हुआ कि रूस देश में भी नई सरकार के शुभेच्छु हैं, लेकिन जहाँ तक हमारे इन्स्टिट्यूट का सम्बन्ध था, वह इस नई सरकार को कोई अहमियत नहीं देते थे।

लोला ने अपने सगे सम्बन्धियों को नाकरानी के लिए कह रखा था। एक महिला एक ७० वर्षीया वृद्धा को अपने साथ लेकर १८ सितम्बर को आयीं। फिर एक दूसरी भी सबन्धिनी अपने दो बच्चों के साथ आयीं। घर में चार पाँच लड़के, और तीन चार मेहमानों के आ जाने से कुछ चहल-पहल हो गई। लोला के चचेरे भाई की लड़की नताशा बड़ी भद्र महिला थीं। उनके दो बच्चे थे, पति दूर चला गया था और शायद छोड़ भी चुका था। दोनों बच्चों का पालन माँ स्वयं कमाकर कर रही थी। उसने अपने छोटे बच्चे को पितृकुल का नाम (वैर्स्ताम) दे रखा था। लोला बहुत ज्यादा स्नेह प्रकट करनेवाली स्त्री नहीं थी, लेकिन नताशा के साथ उसका स्नेह था। उसको इस बात का अफसोस था कि इस रक्तकेशी ने एक यहूदी से विवाह किया है। उसके लड़के का भी केश लाल था। वह यद्यपि इगर से एक ही साल बड़ा था, लेकिन कहानियाँ खूब पढ़ लेता था, पढ़ने का शौक भी उसे बहुत था, और यह अनुभव करने लगा था, कि माँ कितनी मेहनत करके हमारी परवरिश कर रही है। वृद्धा शायद काम नहीं कर सकती थी, इसलिये उसको नहीं रखा गया।

१६ सितम्बर सोमवार होने से हमारे स्नान का दिन था। हर हफ्ते की तरह आज भी स्नान करने गये। दोपहर बाद वर्षा ही वर्षा रही। गोया शरद धूम धाम से आरम्भ हो गई थी। अब दिन में भी घर में बैठते वक्त गरम कोट की जरूरत पड़ने लगी थी। बिना राशन की दूकानों में दाम और कम हो गया। चीनी १२० रूबल की जगह ७० रूबल किलोग्राम हो गई, राशनकार्ड

से चीनी पाँच रूबल किलोग्राम मिलता था। चौकोर चीनी के ढले, ५ ७० रूबल से १४ रूबल किलोग्राम कर दिये गये थे, अर्थात् एक तरफ राशन की चीजों का दाम ऊपर उठाया गया था और दूसरी तरफ बिना राशन की चीजों का दाम नीचे किया जा रहा था। काली रोटी १ १० रूबल से ३ ४० रूबल किलोग्राम हो गई थी। मक्खन बिना राशन का साढ़े तीन सौ से २६० रूबल हो गया था। रोटी का इतना दाम बढ़ना कम वेतनवालों के लिये कष्टप्रद था, क्योंकि सबसे कम वेतन पानेवाले दो सौ से तीन सौ रूबल तक ही तनख्वाह पाते थे। हाँ ८०० सौ रुपये तक, मासिक पाने वालों के वेतन में २० सैकड़े की वृद्धि भी कर दी गई थी। वहाँ के अर्थशास्त्र को समझना मुश्किल मालूम होता था, किन्तु हम किसी का भूखा नंगा देखते थे।

हमारे ही मुहल्ले की एक प्रौढ़ा माया को लोला ने नौकरानी ठीक किया। उसका मकान पास ही में था। वह एक लड़के और लड़की की माँ थी। लड़ाई के बाद उसका घर बिखर गया।

शिश्किन के बंगाल-सम्बन्धी लेख को ढूँढने के लिये हम १६ सितम्बर को अकदमी प्रेस गये, किन्तु वह वहाँ नहीं मिला। अकदमी के प्राच्य प्रतिष्ठान के पुस्तकालय में गये। बिना पासपोर्ट देखे भीतर जाने की इजाजत नहीं थी। इस तरह के अनुत्पादक श्रम में हर जगह काफी आदमियों को लगे देख कर ख्याल आता था — क्या इन्हें यहाँ से हटाकर किसी उत्पादन में और आवश्यक काम में नहीं लगाया जा सकता? इसमें सन्देह नहीं कि ऐसे प्रबंध से खतरे की गुंजाइश बहुत कम रह जाती है, लेकिन ऐसे ख्याली खतरों के भय से सभी जगहों में यांत्रिक प्रबंध को अपनाना अच्छा नहीं मालूम होता था। खैर, मेरे पास पासपोर्ट था, युनिवर्सिटी के प्रोफेसर होने का प्रमाण-पत्र था, इसलिये जाने में कोई दिक्कत नहीं हुई।

वरान्निकोफ बहुत कम बोलनेवाले विद्वान् हैं, जिसका अर्थ यह नहीं कि वह अपने विषय पर भाषण देने या लिखने में अक्षम हैं। उन्होंने बहुत सी पुस्तकें लिखी हैं, और "प्रेमसागर" का गद्यमय और तुलसीकृत रामायण का पद्यमय

रूसी अनुवाद किया है, इसलिये हम उन्हें आलसी संकोची नहीं समझ सकते। २१ सितम्बर को मैं उनके घर गया था। बरानिकोफ अकदमिक हैं, इसलिये वह रूस के डेढ़-सौ जीवन्मुक्त देवताओं में से हैं। उनकी पत्नी भी प्रोफेसर हैं। पुस्तकों के जमा करने का कितना शौक है, यह उनके घर का विशाल पुस्तकालय बतला रहा था। उक्रइन के एक दरिद्र बढ़ई के पुत्र ने अपने अध्यवसाय से इस स्थान को प्राप्त किया था। यदि सोवियत शासन नहीं स्थापित हुआ होता, तो वह शायद ही इस पद पर पहुँच पाते। मुझे कई मर्तबा तुलसीकृत रामायण के अनुवाद के संबंध में परामर्श देने के लिये जाना पड़ा था। जहाँ तक अनुवाद का सम्बन्ध है, उसे उन्होंने पहिले ही पूरा कर लिया था, अब वह प्रेस में जा रहा था।

२३ सितम्बर को हाथ और पैर ठिठुर रहे थे। जान पड़ता था, तापमान हिमबिन्दु से नीचे चला गया है। अब साढ़े पाँच बजे अँधेरा हो जाता था और दो दिनों से रेडियो खराब होने से २४ सितम्बर को तो हमें जग अँधेरा मालूम होता था।

२६ सितम्बर को जब युनिवर्सिटी से घर लौटे, तो देखा हमारी नई नौकरानी मानिया ने घर को घर बना दिया है, अस्त व्यस्त चीजों को एक जगह पर ठीक से रख दिया है, घर साफ है। लेकिन पूरी व्यवस्था कायम करने के लिये मानिया स्वतन्त्र कहाँ थी?

२७ सितम्बर को पेड़ों के पत्ते करीब करीब सभी पीले पड़ गये थे। सर्दी बढ़ गई थी, लेकिन लोग अभी कनटोप नहीं पहिन रहे थे। पारतान का कोट कोई कोई पहिने हुए थे।

नाटकों और फिल्मों के बारे में न कहने से यह न समझना चाहिये, कि हम अब उन्हें देखने नहीं जा रहे थे। २८ सितम्बर को मारिन्स्की थियेटर में हम एक ऐतिहासिक ओपेरा "कन्याज़ ईगर" (राजा इगर) देखने गये। ओपेरा का लेखक महान् नाट्यकार अ० प० बोरोदिन (१८७४–८७ ई०) था। अब से ७०–७१ साल पहिले यह ओपेरा अभिनीत हुआ था। इगर रूस का

ऐतिहासिक बार ?, निमन तातारा स लड़कर रूस को स्वतन्त्र करने का कोशिश की। उन्हीं बातों के कारण रूसी लड़ना में इगर नाम वाले बहुत अधिक [illegible] हैं। सिमिरा और दक्षिणी रूस म उस वक्त तातारों का बन्ना ना था। [illegible] रूसियों का नाक में दम किये हुए थे। उस समय रूस का शासन केन्द्रित था। साथ साथ थोर सा छोटे छोटे राजा जहाँ-तहाँ रहा करते थे। ११८५ई° में इगर अपने पुत्र सहित तातार खान का बन्दी हो गया। इसी घटना को लेकर यह ओपेरा लिखा गया था। नवोग्राद सिविरसी के राजकुल ईगर सुयात्स्लविच ने पड़ोसी पलोवेत्स्की खान कोचक पर धावा किया। पिता पुत्र पकड़कर जेल म डाल दिये गये। अभियान के लिये जाने वक्त इगर पहले भगवान् स प्रार्थना करने के लिये गिरजे म गया, फिर अपना पत्नी यारोस्लाना से विदाई लने गया। जिस वक्त इगर विदेश म बन्दी था, उस वक्त की विरह वेदना को प्रकट करने के लिये किसी अज्ञात कवि न 'स्लोवा ओ पोल्कु इगरेवे' (इगर के कटक का वार्ता) के नाम से एक काव्य लिखा। काव्य बहुत बड़ा नहीं है, लेकिन रूसी भाषा का यह सबसे पुराना आदिकाव्य है, इसलिये इसका बड़ा महत्त्व है। बन्दी इगर के साथ कोंचक खान का बर्ताव अच्छा था। इगर के पुत्र व्लादिमिर का खान की कुमारी से प्रेम हो गया था। खान भी धीरे धीरे इगर पर विश्वास करने लगा था, लेकिन उस विश्वास से फायदा उठाने की ईगर ने कोशिश नहीं की। खान ने इस पर प्रसन्न होकर कहा— यदि मैं तुम्हें छोड़ दूँ, तो तुम क्या करोगे। इगर न उत्तर दिया— वही जो एक दुश्मन के साथ करना चाहिये। ईगर इस तरह बन्दी का जीवन व्यतीत कर रहा था, और उधर उसकी रानी का भाई व्लादिमिर गालिदिमि,तथा पुतिल षड्यन्त्र करके राज्य पर हाथ साफ करना चाहते थे। दरबारियों को मन माना करने की छूट थी। यह खबर इगर को मिली। वह वहाँ से भाग निकला। पत्नी और प्रजा ने [illegible] का स्वागत किया।

यह समय ११८५ ई० करीब करीब वही था,जबकि जयचन्द का राज्य समाप्ति पर था और दिल्ली पर तुर्क मुसलमानों का झंडा गड़नेवाला था। क्योंकि, स[illegible] और अभिनय की दृष्टि से हो यह नाटक सुन्दर नहीं था, बल्कि इसने रूप में [illegible]

समय की वेष भूषा, रहन-सहन, नगर ग्राम, राजा, राजनीतिका एक बहुत सुन्दर पाठ दर्शकों के सामने उपस्थित किया जा रहा था। उसमें हथियार भी उसी समय के थे, और कवच भी। सामन्तों के उस समय जैसे काष्ठमय घर और काष्ठ दुर्ग होते थे, घरों के भीतर जैसे चित्र बनाये जाते थे, यहाँ तक कि बर्तन और वाद्य तक भी उसी समय के इस्तेमाल किये गये थे। बजाने वाले स्वयं नाच और अभिनय कर के दर्शकों का मनोरंजन कर रहे थे। उस समय के गानों में एक नारंगी से बहुत मिलना जुलता था।

२६ सितम्बर को शनिवार था। मैंने अपने एक विद्यार्थी से कह रखा था। आज कलखोज पर मेरे साथ वह मेरा पथप्रदर्शक हुआ। फिनलैंड स्टेशन से जानेवाला लाइन के पास के किसी गाँव में हमें जाना था। दसवें नम्बर की ट्राम जहाँ खतम होती है, वहाँ तक ट्राम से जाकर फिर हमने रेल पकड़ी, और कितना ही दूर जाकर उतर पड़े। हम उस भूमि में थे, जहाँ जर्मनों से घमासान लड़ाई हुई और जहाँ पर जर्मन ना ना दिनों से ज्यादा डटे रहे। कलखोज पहिले की तरह से अभी जम नहीं रहे थे। रास्ते में एक जगह एक पूरा का पूरा कवचधारी ट्रेन खड़ा था। मालूम होता था, लड़ाई अभी अभी खतम हुई है। पुराने कलखोजों के लोगों को भिन्न भिन्न स्थानों ने आपस में बाँटकर आलू गोभी की खेती करनी शुरू की था। पहले हम जिस फार्म पर गये, उसके निगादीर ने बड़ी प्रसन्नता से हमें खेत दिखलाया। उसके पास २८ एकड़ खेत थे। एक कोठरी थी, जिसमें काम करने वालों के लिये छ सात खाटें पड़ी थीं। फैक्टरी के मजदूर, समय समय पर आकर काम कर जाते थे। जाड़ा में वहाँ कोई नहीं रहता था। वहाँ से फिर हम "गिमिचेस्की सम्बानात" (रसायन समवाय) का खेती देखने गये। ढाई सौ एकड़ में साग सब्जी की खेती था। चाय हजार अड्डे को छोड़ते हम वहाँ पहुँचे। यहाँ ट्रैक्टर और दूसरी मशीनें भी खड़ी थीं। संयोग से कम्बिनातका डाइरेक्टर भी अपनी मोटर से वहाँ आया था, उसने हमारे विशेष रूप रंग को देखकर जैसे भमिका नाम इवान। इवान ने हमारे विदेशीपन को छिपाने के लिये मध्यएसिया

ह दिया । नाजिक लोगों में हमारे जैसे भारतीय रूप रंग के आदमी बहुत कम मिलते हैं । खैर, मैंने पासपोर्ट दिखला दिया । उन्हें मालूम हुआ कि मैं विश्वविद्यालय का प्रोफेसर हूँ । हमने खेत में जहाँ तहाँ घूम फिर कर खेती को देखा । पास ही में सैनिक हवाई अड्डा था, इसलिये वहाँ पर किसी विदेशी के लिये उतनी स्वतंत्रता तो नहीं होनी चाहिये थी । शायद इतनी स्वतंत्रता इंग्लैंड और अमेरिका के वह लोग भी अपने देशों में नहीं दे सकते, जो मोके-बे-मोके वैयक्तिक स्वतंत्रता की डींग मारा करते हैं और सोवियतों को लोहपरदे का देश बतलाते हैं । उस दिन हम शाम तक इधर उधर घूमते रहे । कलखोजों को देखने की अभी यहां बहार नहीं थी, क्योंकि उजड़े गांव कम नहीं पाये थे, और शहर वाले कारखानों ने केवल अपने साग भाजी लायक जमीन को ही आबाद कर लिया था, अभी किसानों का गृह जीवन देखा नहीं जा सकता था ।

३० सितम्बर को आज एक सरकारी हुक्म की बड़ी चर्चा थी, जिसमें कहा गया था कि कारखानों और राष्ट्रीय संस्थाओं में जो काम नहीं करते या पेंशनर नहीं हैं, उन्हें राशनकार्ड नहीं मिलेगा । वस्तुतः यह इसलिये किया जाने वाला था, कि देश के पुनर्निर्माण और नवनिर्माण का काम सोवियत सरकार जल्दी करना चाहती थी, जिसके लिये आदमियों का बहुत कमी था । युद्ध की सेना से लौटकर लोग मजदूरों की सेना में भरती हो रहे थे, लेकिन तब भी हिसाब से मालूम हुआ, कि लाखों स्त्रियां ऐसी हैं, जो गृहिणी बनकर घर पर बैठी हैं, इसी लिये यह तिकड़म लगाया गया था, जिसमें बेकार बैठी महिलायें कुछ काम करने लग जायें । असर जादू की तरह हुआ, क्योंकि राशन कार्ड छिन जाने पर अब १० गुना २० गुना दाम देकर रोटी मक्खन खरीदकर घर में बैठे रहने के लिये कोई स्त्री तैयार नहीं थी और काम भी कोई मुश्किल नहीं था । सभी बैठी ठाली स्त्रियों को वह हल्का से हल्का काम देने के लिये तैयार थे । वह समझते थे कि हल्के काम को यदि स्त्रियां संभाल लें, तो भारी काम में पुरुषों को लगाया जा सकता है । वह इसका तजर्बा भी काफी कर चुके थे । नगर की पुलिस में सड़कों पर ६० फी सदी स्त्रियां था । ट्रामों की ड्राइवर भी प्रायः सभी बनी थीं । भंडार

२ अक्तूबर को हम युनिवर्सिटी गये। वहाँ से लौटकर आये, तो देखा घर के द्वार पर दो लाल-लाल कागज चिपके हुए हैं, जिन पर "सावधान स्कार्लेट ज्वर" छपा हुआ था। लोला अब भी अस्पताल भेजने में हीला-हुज्जत कर रही थी। मैंने मना किया। अंत में डाक्टर ने अस्पताल को लिख भेजा। शाम आइ कल ले आयेंगे। घर में देखा तो अस्पताल का मोटर निष्क्रमीकरण के साधना के साथ पहुँच गई है, और सभी कोठरियों की सभी जगह भाप और दवा डालकर निष्क्रमित किया जा रहा है। पहिले तो अस्पतालवालों ने अगले दिन ले जाने के लिये कहा था, लेकिन मोटर १० बजे ही पहुँच गई। तैयारी में १ घंटा लगा, फिर हम भी लड़के के साथ अस्पताल गये। एक घंटे में लिखा पढ़ी समाप्त हुई, फिर एक कम्मा वाले कमरे में उसे रक्खा गया, जिसमें कि संदिग्ध छूत के रोगी रखे जाते हैं। मा चाहती थी, कि उस कमरे के भीतर भी घुसे। लेकिन मुझे तो मास्को के अस्पताल का तजबा था। वह हर जगह भगड़ती रही। घर पर डाक्टर से, अस्पताल में प्रवेशक डाक्टर से, यहां भी जब बुढ़िया ने मना किया, तो उससे भी लड़ पड़ी और चलते समय लेनिनग्राद के घिरावे में अपने प्राण देकर रक्षा किये गये पुत्र के वियोग के लिये रो भी पड़ी।

३ अक्तूबर को जब मैं युनिवर्सिटी गया, तो वहाँ स्थानापन्न रेक्तर का पत्र मौजूद पाया—क्लास लेने से छुट्टी है, क्योंकि घर में छूत की बीमारी होने की खबर आयी है। दूसरे कामों में घड़ी की सुई दो घंटा पीछे रहा करता था, मालूम होता है, खतरनाक बीमारी के समय वह अपनी सारी मन्द गतिको भूल जाती है। अब हम कुछ दिनों के लिये युनिवर्सिटी से छुट्टी मिल गई थी। उस दिन अस्पताल में इगर को देखने गये। बक्स कोठरी का मतलब यह नहीं कि वह छोटा मोटा कोठरा थी। हाँ, उसमें सिवाय डाक्टर और परिचारिका के कोई दूसरा नहीं जा सकता था। मिलने जुलने वाले पिछवाड़े खड़े होकर शीशे के खिड़की के पीछे खड़े लड़के को देख सकते थे। दो हरे शीशों वाली खिड़की बन्द था, इसलिये आवाज बहुत मुश्किल से सुनाई देती थी। परिचारिकाओं से पता लगा, कि वह लड़के की मधुर भाषिता और सलीकेदारी से बहुत प्रभावित

है। उसके लिये दूर फल लाना उन्हें समझ में नहीं आया है, मगर पर गये। सब, नाख, अंगूर जैसे फल ७०—८० रूबल प्रतिकिलो मिल रहे थे। तरबूजा भी १० रूबल किलो था। इतनी महंगी चीजों को खरीदने के लिये इतने अधिक आदमी कैसे तैयार हो जाते हैं, यह तो यही आश्चर्य होता था। मैंने ८० रूबल का फल लिया।

४ अक्तूबर को अस्पताल जाने पर मालूम हुआ कि थोड़ा-सा ज्वर आया था, लेकिन न्यालेरिया ज्वर का अभी निश्चय नहीं है। आज उनके बनाव को देखकर लोला ने भी स्वीकार किया, कि डाक्टर और नर्स भला भलेमानस हैं, उनके हाथ में इगर बिल्कुल सुरक्षित है। ईगर ने अभी एक ही महीना हुए पढ़ना लिखना शुरू किया था, लेकिन उसने कागज पर लिखने लिखने की कोशिश की थी। मामा, पापा कैसे हो? वह अपनी बुढ़िया परिचारिका को अक्षर सीखने के लिए बड़ा जोर दे रहा था। वह बेचारी कह रही थी— अब मैं ७० वर्ष की बुढ़िया, कब्र में पैर लटकाये हूँ, पढ़ने से क्या फायदा? सर्दी इतनी बढ़ गई थी कि पानी रात में जमने लगा था। पत्तियाँ तेजी से पीला पड़ रही थीं।

५ अक्तूबर को हम इगर के लिये खाने के फल और दूध दे गये। मागेजिन में चीजों को लेने जाना था मालूम हुआ, चीजों का दाम वहाँ भी घट गया है, और ४५० रूबल की जगह अब हम ना सौ रूबल की चीजें लिन माना में खरीद सकते थे।

मांस—	७ किलोग्राम	२४ रूबल प्रतिकिलो
चिड़िया का मांस—	१ किलो "	
फलजामा—	आधा ,,	
सूनी मछली	१ किलो	
कच्ची मछली	२ ,,	
चरबी	ढाई किलो	
तेल	आधा ,,	
अंडे	३५ ,,	

दूध	४ लिटर
चीनी	२ किलो
टिन खाद्य	२ टीन
आलू	२६ ,, (साढ़े बत्तीस सेर), २८ गत मासी
साबुन	२ नहाने का
साबुन	२ धोने का
चाय	१०० ग्राम (२ डब्बा)

यह विशेष राशन कार्ड की चीजें थीं, इनके अतिरिक्त साधारण राशन कार्ड की चीजें भी था। लोला को भी इस साल से सहायक प्रोफेसर होने के कारण एक विशेष कार्ड मिला था, जिसमें इससे एक तिहाई चीजें मिलती थीं। इससे मालूम होगा, कि राशन की कठिनाई के दिनों में भी साधारण नागरिकों और शिक्षित श्रमिकों को कितना खाने पीने का सुभीता रहता था।

६ अक्तूबर को जब अस्पताल गये, तो इगर को ज्वर आदि की कोई शिकायत नहीं था। कागरू मा समझती थी, कि जैसे मैं अपने पुत्र के बिना एक क्षण नहीं रह सकती, वैसे ही मेरा बेटा भी होगा, किन्तु वह अकेले में घबड़ाता नहीं था। बड़े आदर के साथ अस्पतालवालों के साथ बातचीत करता था, इसलिये डाक्टर, नर्स और परिचारिकायें सभी सन्तुष्ट थीं। ईगर की इस बेपरवाही को देखकर लोला ने चार साल पहिले के शिशुशाला के अनुभव को बतलाया उस समय वह ढाई-चार बरस का था। मा किसी काम से एक महीने उसे देख न पायी थी। जब वह वहाँ मिलने गई, तो इगर ने इतना ही कहा— "चोची (मौसी), तू बैठ मैं जरा खेलने जाता हूँ।" और वह खेलने चला गया। मा बेचारी रोती बैठी रही। उसका बेटा इतनी जल्दी उसे भूल गया, और मामा नहीं चोची (मौसी) कह रहा है। उस दिन निरयोशा में जब हम आ रहे थे, तो मा इगर वहीं रह जाने को कह रहा था। मैंने कहा— अस्पताल छोड़ने वक्त भी शायद वही बात होगी और चोचा मामा को हाथ हाथ धोना पड़ेगा। आत्मा का बच्चा स्वभावतः स्वातन्त्र्य का प्रेमी

चाहता है।

७ अक्तूबर को देखा, रातका बर्फ बना हुआ पानी ११ बजे दिन तक जमा हा पड़ा था। वृक्षों की पत्तिया अब बहुत गिरने लगीं थीं। ८ अक्तूबर को अस्पताल गये, तो ईगर कलंडर बनाने मे लगा हुआ था। खेलना, गाना, और बात करना बस यही उसका काम था। मिश्का की चोचूया मामा का बहुत परवाह नहीं थी। घर लौटकर देखा, लौरियों पर ढोकर कोयला लाया जा रहा है। आशा बंधी कि अबके साल मकान जल्दी ही गरम होने लगेगा। लोगों ने भी कहा थाकि १५ अक्तूबर से ही गरम होगा।

१० अक्तूबर को समय से पहिले जाकर नेस्की महापथ पर किताबों और नये फिल्मा की तलाश म घूमता एक मंगोल फिल्म (मरुभूमि के सवार) देखने गया। फिल्म १९४६ ई० म मंगोलिया की राजधानी उलानबतुर (उगा) म तयार किया गया था। इसक सारे अभिनेता और अभिनेत्रिया मंगोल थीं, केवल टक्नीकल सहायक रूसी थे। फिल्म का कथानक १७ वीं सदी के एक मंगोल विजेता का जीवन था। फिल्म म रूसी भाषा का प्रयोग यहा के लिये किया गया था। मंगोलिया का प्राकृतिक दृश्य बहुत सुन्दर था, जिसमें वहा के विस्तृत मैदान, रेगिस्तान, छोटे छोटे पहाड़, नदिया, देवदारों म ढके पर्वत, पशुपालों के तम्बू और चरागाहा मे जानवर दिखलाये गये थे। उस समय के हथियारा के साथ युद्ध के भी दृश्य थे। हथियार और पोशाक का ढाक देश कालानुसार रखा गया था। लामा और गुम्बा (मठ) के भी कितने ही दृश्य थे। पुरानी मंगोल प्रथा के अनुसार कथा के नायक को जब खान (राजा) बनाया गया, तो उसे नमदेपर बैठाकर लोगों ने जलूस निकाला। मंगोलराजाओं का सिंहासनारोहण नहीं, नमदारोहण होता था। खान ने मंगोलो के लगातार होनेवाले घरू झगड़ों को हटाकर सारी मंगोल जाति को एकतारूढ़ किया। फिर उसे जब पता लगा, कि हमारे धर्म के पोप दलाई लामा को बहुत कष्ट दिया जा रहा है, तो वह मंगोलों की एक बड़ी वाहिनी लेकर तिब्बत की ओर चल पड़ा। तत्कालीन दलाई लामा एक दस बारह साल का बालक था

जो बड़ा ही सुन्दर था। उसका अभिनय भी बड़ा प्रभावशाली था। फिल्म में पोतला और ल्हासा को भी चित्रित करने की कोशिश की गई थी। खान के दामाद ने विरोधी सेना को पूर्णतया पराजित किया। विरोधी तिब्बती सामन्त ने एक सुन्दरी (विषकन्या) भेजकर उसे फँसाने की कोशिश की, जिसकी खबर पाकर खान ने अपने दुलारे दामाद को प्राणदण्ड देने का पत्र भेजा। तरुण का सिर काटकर लाया गया। खान का हुक्म था, इसलिए कोई मंगोल उसमें ननुनच नहीं कर सकता था। खान आँसू बहाने लगा, लेकिन उसको सन्तोष था, कि उसने राजधर्म का पालन किया। उसकी लड़की मूर्छित हो गई, पिता अपने आँसुओं को पोछ पोछकर उसे समझाता था। लड़की लड़ाई में लड़ती मारी गई। इस फिल्म से यह भी मालूम होता था, कि चंगीज को ऐसे लोग मिले थे, जिनके बलपर वह विश्वविजयी होने में सफल हुआ।

★ ★ ★

१६— पुनः हिमकाल

१३ अक्तूबर को सबेरे उठा, तो देखा बाहर सब जगह बरफ की चादर बिछी हुई है। रात को बरफ पड़ी थी, यद्यपि तापमान देखने से यह आशा नहीं थी कि वह रहेगी। शाम तक बहुत सी पिघल भी गई। इस साल में यद्यपि सरदी कम नहीं थी, किन्तु बरफ की कमी की बहुत शिकायत रही।

१५ अक्तूबर को अब भी कुछ बरफ बाकी थी। १७ को सबेरे फिर तीन इंच मोटी सफेद बरफ से धरती ढकी हुई थी, लेकिन शाम तक सड़कों की बरफ बहुत कुछ गल चुकी थी।

युनिवर्सिटी हमें रोज जाना नहीं पड़ता था। यदि वहाँ न जाते तो, घर में बैठे पढ़ा लिखा करते। जाने पर हमारे यहाँ से युनिवर्सिटी ४-५ मील थी और नगर का सबसे बड़ा राजपथ नेव्स्का से होकर जाना पड़ता था। रास्ते में बहुत से सिनेमाघर पड़ते थे। यदि कहीं ऐसा फिल्म देखते, जिसमें अतीत या वर्तमान सोवियत भूमि के सम्बन्ध की कुछ विशेष बातें मालूम होतीं, तो जाते या लौटते उसे जरूर देखते। बड़ों के सिनेमा घरों में बच्चों को ले जाने की इजाजत नहीं है इसलिये ईगर के उचित होने का सवाल नहीं था। सिनेमा में ज्यादा मुझे

पुरानी किताबों की दुकानों में जाकर अपने विषय की किताबों को ढूँढने का शौक था। कुछ ऐसी दुकान नेव्स्की राजपथ में इटकर भी थीं। कभी कभी वहाँ बड़े काम की पुस्तकें मिल जाती थीं। युनिवर्सिटी में भी पुरानी पुस्तकों की दुकान थी। यह कबाड़ी दुकानें सरकारी की थीं, किसी कबाड़ी व्यापारी की नहीं। नई पुस्तकों का मिलना दुर्लभ था, हमारे लिये तो यही दुकानें कामधेनु थीं।

१८ अक्तूबर को फाकिल्तेत (विभाग) के अध्यक्ष अकदमिक बारान्निकोव के घर पर अध्यापकों की बैठक हुई, जिसमें अध्ययन अध्यापन तथा विद्यार्थियों के परिश्रम आदि के विषय में सबने अपनी अपनी रिपोर्ट दी। पहिले और दूसरे वर्ष में कितने ही अच्छे छात्र आये थे। तृतीय वर्ष की तान्या कतिनिना, और सोना मैन्गीकाफ की सभी तारीफ कर रहे थे। चौथा वर्ष युद्ध के कारण छात्र शून्य था। पांचवें वर्ष की दोनों छात्राओं से अध्यापक उतने संतुष्ट नहीं थे, वह अक्सर म्च-लीव (मनमानी छुट्टी) ले लिया करती थीं। रात को ११ बजे लौटते समय बूँदें पड़ रही थीं। नीचे भूमि पर बरफ बिछी हुई थी और ऊपर से जल-वर्षण, अर्थात्— जमीन ज्यादा ठंडी, और आसमान ज्यादा गरम था। भूमि बरफ को छिनने नहीं देना चाहती थी।

सोवियत विश्वविद्यालयों के विदेशी भाषाओं के शिक्षण का तल पश्चिमी यूरोप के विश्वविद्यालयों से ऊँचा है, इसमें संदेह नहीं। पांचवें वर्ष में दशकुमार-चरित पढ़ाया जाता था। तानिया कतिनिना और सासा ने पहिले बड़े उत्साह से आकर तिब्बती भाषा शुरू करदी, लेकिन सासा का उत्साह बहुत दिनों तक नहीं रहा। सासा का झुकाव अर्थशास्त्र और राजनीति की तरफ बहुत था, इसलिए वह उसी दृष्टि से भारत का अध्ययन करना चाहता था। तृतीय वर्ष में जाकर अब वह हिन्दी काफी समझता था, और चाहता था, कि भारत से इतिहास राजनीति, और अर्थशास्त्र पर लिखी नई नई हिन्दी की पुस्तकें मिलें। मैंने कोशिश की। मामाने एक भारत के दुर्लभ रूसी पुस्तक को भी भारत भेजा, लेकिन पुस्तकों का आदान प्रदान भी पूँजीवादी दुनिया समाजवादी देश के साथ आसानी से करने देना नहीं चाहती। तिब्बती भाषा के आरम्भिक पाठ

के बाद मैंने जातकमाला को पाठ्य पुस्तक चुना, क्योंकि उसके संस्कृत और माट (तिब्बती) अनुवाद दोनों प्राप्त थे। एक पुस्तक होने पर भी कोई दिक्कत नहीं थी, क्योंकि युनिवर्सिटी के पास अपना बहुत अच्छा फोटो और फिल्म स्टूडियो था, जहाँ अपेक्षित कापियाँ तैयार कराई जा सकती थीं। कतिनिना गंभीर छात्रा थी, उसकी बुद्धि भी अच्छी थी, और परिश्रम तो इतना करती थी, कि पुस्तकों में मग्न होने पर हाथ मुँह धोना तक भूल जाती थी, और उसके सहपाठी शिकायत करते थे कि नहाने में वह बहुत आलसी है। ऐसा लड़की भला अपने को सवार सिंगार करके कैसे रख सकती थी? मुझे विश्वास था, कि यदि वह अपने रास्ते पर चली गई, तो रूसी संस्कृतज्ञ विद्वानों की परम्परा को आगे बढ़ाने में सफल होगी।

२० अक्तूबरको अभी भी इगर अस्पताल में था। उसकी सबसे अधिक माग थी खिलौनों की, यद्यपि छूत की बीमारी वाले अस्पताल में रहने के कारण वह खिलौने फिर लौटकर साथ नहीं आ सकते थे, तो भी उसकी माँग पूरी की जाती थी। वह अपने खेल और कागजों पर मनमाना लिखने में अब घर को भूल सा गया था।

२४ अक्तूबर तक सारे वृक्ष नंगे हो गये थे, केवल देवदार जैसे सदा हरित रहनेवाले वृक्ष ही आँखों को अपनी हरियाली से तृप्त करते थे। मैं सोचता था — क्या न, सड़कों या बगीचों में इन्हीं के वृक्षों की भर मार की जाती। लेकिन पीछे मालूम हुआ, कि उनकी देखभाल अधिक परिश्रम साध्य है। दूसरे वृक्ष तो अक्तूबर के अन्त तक अपने पत्तों को झाड़कर नंगे हो जाते हैं। उनके पत्तों को बर्फ ढाँक लेती है, इसलिये उनकी सफाई का आवश्यकता वसन्त में ही एक बार पड़ती है। देवदार के पत्तों के गिरने का कोई निश्चित काल नहीं है। वह हर समय अपनी सूइयों को बिखेरने बिछाने के लिए तैयार रहता है, जिसके कारण रोज झाड़ू बुहारू की आवश्यकता पड़ती है।

हमारी नौकरानी मारिया काम करने में बड़ी दक्ष थी, और सफाई तथा व्यवस्था के साथ करने को जारी रखती थी। वह ३५-३६ वर्ष की अधेड़ स्त्री

देखने में अधिक बूढ़ी सी मालूम होती थी। उसके एक पुत्री और एक पुत्र थे, जिन्हें लेकर वह लड़ाई के दिनों में लेनिनग्राद छोड़कर बाहर चली गई था। उसका ड्राइवर पति यहीं रहा। तीन वर्ष तक बेचारा कहाँ तक संयम करता, और विशेषकर जबकि पुरुषों का इतना टोटा था? वह किसी दूसरी स्त्री के प्रेम पाश में बंध गया। माया लड़के लड़कियों को लेकर लौटी और बाप अपने बच्चों को प्यार भी करता था, लेकिन डाइन बदलने के लिए तैयार नहीं थी। माया को जब तब वह पैसों की मदद करता था। माया बहुत रोती धोती थी। पति कभी कभी आजाने का विश्वास भी दिलाता था, लेकिन ऐसे निश्चित किये न जाने कितने दिन बीत चुके थे, इसलिये लौट आने की आशा कम ही रह गई थी। हाँ बच्चों को देखने वह जरूर आता था। माया कभी रोती और कभी कुपित होती। एक दिन ऐसे ही समय उसकी आठवर्षीया कन्या माँ को बड़ी गंभीरता पूर्वक सलाह दे रही थी — मामा, बालों में रसायी लहर लगाते, पाउडर तथा अधरराग भी लगा लिया कर शायद यह देखकर पापा आजाय। आठ वर्ष की लड़की का इतनी ठोस सलाह दरअसल बतलाती थी, कि बाल्याने भी अपनी माँ के स्वावलम्बी जीवन से कुछ लाभ उठाया था। दूसरे दिन बाल्या कह रही थी— मामा, पापा के आने पर उसे अच्छा अच्छा खिला, शायद वह लौट आये। बाल्या के पापा ने अब की पहिली नवम्बर को आकर रहने का वचन दिया था, किन्तु वह अपनी प्रेमिका के साथ अधिक आराम से रहता था। माया एक गँवार लड़की १७-१८ वर्ष की उमर में गाँव छोड़कर शहर की ओर आयी थी। उसी समय उसका उससे प्रेम हुआ था, लेकिन पति अब अधिक नागरिका को पसन्द करने लगा था। माया जीवन भर गँवार की गँवार ही रही। हमने सोचा था, माया के लिये भी राशनकार्ड मिल जायेगा, और खाने की चिन्ता नहीं रहेगा, लेकिन नये नियम के अनुसार घरू नौकरों के काम को रोटी मजूरी का नहीं समझा गया। इसलिये माया का हमें बिना राशन की चीज लाकर खिलाना पड़ता। लोला ने चिन्ता प्रकट की, तो मैंने कहा—आलू काफी ज्यादा खायेंगे, लेकिन वह भी तो ३०-४० रूबल किलो थे।

२६ अक्तूबर को अस्पताल गये, तो डाक्टर ने बतलाया कि स्कारलेट ज्वर नहीं था, हाँ, खून में डिफ्थेरिया के कीटाणु पाये गये हैं। उसी दिन हम इगर को अपने साथ घर लाये।

३१ अक्तूबर को महीना के अन्तिम दिन तथा जाड़ों का भी एक महीना बीत चुका था, लेकिन सर्दी कम थी। रास्ते में कहीं कहीं कीचड़ था। लोला को अब नौकरानी रखने का पश्चाताप हो रहा था। २०० रूबल की जगह अगर ८०० रूबल देने से काम चलता और राशन न देना पड़ता, तो वह खुशी से तैयार थीं, लेकिन अब तो राशन-कार्ड बंद था। नौकरानी को हटाने का सोच रही थीं, लेकिन उसको हटाने पर गृहव्यवस्था में गड़बड़ी पैदा होती। हमारे युनिवर्सिटी के एक प्रोफेसर ने मोटर खरीद ली थी। मोटर खरीदना बहुत मुश्किल नहीं था, उसका दाम दो रेडियो के बराबर था। प्रोफेसर साहब ने ड्राइवर और नौकरानी भी रखी थी। दोनों नौकरों की बात ही क्या अब तो स्वयं प्रोफेसर साहब की बीबी का भी राशन कार्ड छिन गया था, तीन तीन व्यक्तियों को बिना राशन की चीजों पर खिलाना पिलाना दीवालिया होने की तयारी थी। सरकारी दूकानों से हाट में चीजें कुछ सस्ती मिलती थीं, लेकिन वहां अब भीड़ बहुत होने लगी थी। आलू १२ रूबल किलो मिल रहा था। मान्या बेचारी अकेले ही अच्छा अच्छा खाना कैसे खा सकती थी, जबकि उसके दो बच्चे थे। रूसी नौकरों के बारे में यह समझ लेना चाहिये, कि काम के समय वह अवश्य नौकर थे, बाकी समय उनके साथ बिलकुल समानता का बर्ताव करना पड़ता था। मालिक के साथ वह एक ही मेजपर बैठकर चाय पीते। मान्या अपना खाना घर ले जाकर खाती थी, और बच्चों का ख्याल करके कुछ अधिक ही ले जाती थी। लोला को अपने दिवालिया होने का डर लगने लगा।

२ नवम्बर को हमारे प्रबन्ध ऑफिस की बुढ़िया सरदी के मारे बिजली की अंगीठी पर आग तापने लगी। कहीं पर आग का सम्बन्ध लकड़ी से हो गया, और वह जलने लगी। बुढ़िया और ऑफिस वालों को पता नहीं लगा, लेकिन बगल में ही हमारी कोठरी धुएं से भर चली। हम जान गये, शायद नीचे के

देखने में अधिक बूढ़ी सी मालूम होती थी। उसके एक पुत्री और एक पुत्र थे, जिन्हें लेकर वह लड़ाई के दिनों में लेनिनग्राद छोड़कर बाहर चली गई थी। उसका ड्राइवर पति यहीं रहा। तीन वर्ष तक बेचारा कहां तक संयम करता, और विशेषकर जबकि पुरुषों का इतना टोटा था? वह किसी दूसरी स्त्री के प्रेम पाश में बंध गया। माया लड़के लड़कियों को लेकर लौटी और बाप अपने बच्चों को प्यार भी करता था, लेकिन उन्हें अपनाने के लिए तैयार नहीं थी। माया को जब तब वह पैसों की मदद करता था। माया बहुत रोती धोती था। पति कभी कभी आ जाने का विश्वास भी दिलाता था, लेकिन ऐसे निश्चित किये न जाने कितने दिन बीत चुके थे, इसलिये लौट आने की आशा कम ही रह गई थी। हाँ बच्चों को देखने वह जरूर आता था। माया कभी रोती और कभी कंपित होती। एक दिन ऐसे ही समय उसकी आठवर्षीया कन्या माँ को बड़ी गंभीरता पूर्वक सलाह दे रही थी — मामा, बालों में स्थायी लहर करा ले, पाउडर तथा अधरराग भी लगा लिया कर, शायद यह देखकर पापा आ जाय। आठ वर्ष की लड़की को इतना ठोस सलाह देते वाली बतलाती थी, कि माया ने भी अपनी माँ के स्वावलम्बी जीवन से कुछ लाभ उठाया था। दूसरे दिन माया कह रही थी— मामा, पापा के आने पर उसे अच्छा अच्छा खिला, शायद वह लौट आये। माया के पापा ने अब की पहिली नवम्बर को आकर रहने का वचन दिया था, किन्तु वह अपनी प्रेमिका के साथ अधिक आराम से रहता था। मान्या एक गंवार लड़की १७-१८ वर्ष की उमर में गाँव छोड़कर शहर की ओर आयी थी। उसी समय उसका उससे प्रेम हुआ था, लेकिन पति अब अधिक नागरिका को पसन्द करने लगा था। मान्या जीवन भर गंवार की गंवार ही रही। हमने सोचा था, माया के लिये भी राशनकार्ड मिल जायेगा, और खाने की चिन्ता नहीं रहेगी, लेकिन नये नियम के अनुसार घरू नौकरों के काम को राष्ट्रीय महत्व का नहीं समझा गया। इसलिये माया को हमें बिना राशन की चीज लेकर खिलाना पड़ता। लोला ने चिन्ता प्रकट की, तो मैंने कहा—आलू गोभी ज्यादा खायेंगे, लेकिन वह भी तो ३०-४० रूबल किलो है।

२६ अक्तूबर को अस्पताल गये, तो डाक्टर ने बतलाया कि स्कारलेट ज्वर नहीं था, हां, गले में डिप्थेरिया के कीटाणु पाये गये हैं। उसी दिन हम इगर को अपने साथ घर लाये।

३१ अक्तूबर को महीना के अंतिम दिन तथा नावों का भी एक महीना बीत चुका था, लेकिन सर्दी कम थी। रास्ते में कहीं कहीं कीचड़ था। लोला को अब नौकरानी रखने का पश्चात्ताप हो रहा था। २०० रूबल की जगह अगर ८०० रूबल देने से काम चलता और खाना न देना पड़ता, तो वह खुशी से तैयार थी, लेकिन अब तो गलत-काम हो चुका था। नौकरानी का हटाना भी सोच रहा था, लेकिन उसको हटाने पर गृह-व्यवस्था में गड़बड़ी पैदा होती। हमारे युनिवर्सिटी के एक प्रोफेसर ने मोटर खरीद ली थी। मोटर खरीदना बहुत मुश्किल नहीं था, उसका दाम दो रेडियो के बराबर था। प्रोफेसर साहब ने ड्राइवर और नौकरानी भी रख ली थी। दोनों नौकरों की बात हो, पता नहीं तो खबर प्रोफेसर साहब की बीबी का भी राशन कार्ड छिन गया था, तीन चार व्यक्तियों को बिना राशन की चीजों पर खिलाना पिलाना दीवालिया होने की तयारी थी। सरकारी दुकानों से हाट में चीजें कुछ सस्ती मिलती थीं, लेकिन वहां अब भीड़ बहुत होने लगी था। आलू १२ रूबल किलो मिल रहा था। माया बेचारी अकेले हो अच्छा अच्छा खाना कम खा सकती थी, क्योंकि उसके दो बच्चे थे। रूसी नौकरों के बारे में यह समझ लेना चाहिये, कि काम के समय वह अवश्य नौकर थे, बाकी समय उनके साथ बिलकुल समानता का बर्ताव करना पड़ता था। मालिक के साथ वह एक ही मेजपर बैठकर चाय पीते। माया अपना खाना घर ले जाकर खाती थी, और बच्चों का ख्याल करके कुछ अधिक ही ले जाती था। लोला को अपने दिवालिया होने का डर लगने लगा।

२ नवम्बर को हमारे प्रबन्ध ऑफिस की बुढ़िया सरदी के मारे बिजली की अंगीठी पर आग तापने लगी। कहीं पर आग का सम्बन्ध लकड़ी से हो गया, और वह जलने लगी। बुढ़िया और ऑफिस वालों को पता नहीं लगा, लेकिन बगल में ही हमारी कोठरी धुएं से भर गयी। हमें जान पड़ा, शायद नीचे ई

तहखान में आग लगी है, जिसमें वह काम करती थे। नीचे जाकर देखा तो ताला लगा हुआ था। धुआँ इतना तेजी से मार रहा था, कि हमने खिड़की खोलकर जल्दी जल्दी पुस्तकों को बाहर ले जाने की तैयारी शुरू करदी। हमारी कोठरी के तहखाने से उपर होने से खिड़की बाहर की धरती से बहुत ऊँचा नहीं थी। लोला अपनी आदत के मुताबिक एक घड़ी का काम चार घड़ी में करना चाहती थी। उससे फायर ब्रिगेड को बुलाने के लिए फोन करने को कहा, और अपने समान समेटने लगे। फायर ब्रिगेड तुरत आगया। उन्होंने तहखाने का ताला तोड़कर देखा, तो वहां कोई आग नहीं थी। अन्त में असली बात का पता लगा। (बुढिया ने सरदी का बहाना बनाया। लेकिन सरदी का बहाना करके घर में आग लगाने का किसी को कैसे अधिकार मिल सकता था? शायद फायरब्रिगेड वालों ने बुढिया के खिलाफ रिपोर्ट नहीं दी, नहीं तो बेचारी की मुश्किल हो जाती। इससे एक फायदा हुआ आज ही शाम से घर गरम करने वाला इंजिन काम करने लगा। इंजिन का काम था, उबलते हुए पानी को चौमंजिले मकानों के हर कमरे में फैले हुए मोटे नलों के जाल में पहुंचाना। नल स्वयं गरम हो कमरे की हवा को भी गरम कर देते थे, इस प्रकार तापमान हिम बिन्दु से १०°–१८° से डीग्रेड उपर उठ जाता था। लेकिन ४ नम्बर को देखा इंजिन की घरघराहट से हमारे कान बहरे हो रहे हैं, और दूसरी ओर कमरे ठंडे के ठंडे हैं। शायद कुछ मन कोयलों की बचत दिखलाने के लिए इंजिनको भूखा रखा जा रहा था, अथवा इंजिन की मरम्मत ठीक से नहीं हुई थी। उत्पादन के आंकड़ों का राज्य जहां न हो, वहां ऐसा होना कभी अस्वाभाविक नहीं था। लेनिनग्राद के सबसे प्रभावशाली नेता अर्थात् पार्टी मंत्री को इसकी ओर देखना चाहिये था, लेकिन उनको लोगों ने गदहे का खिताब दे रखा था। न जाने कैसे वह ऐसी जिम्मेवारी के पद पर पहुंचा था। जैसा बड़ा नेता होगा, वैसे ही छोटे नेता भी हो जायेंगे, इसलिये पपोफ के कारण बड़ी अव्यवस्था थी। सोवियत रूस में ऐसे अयोग्य व्यक्तियों का भी कभी कभी दायित्व के पद पर पहुँच जाना सम्भव है, लेकिन "उघरे अन्त न होइ निबाहू" के

अनुसार पता लग जान पर फिर वह उस पद पर टिक भी नहीं सकते। पपाफ का पतन हमारे यहां स चले आने के बाद हुआ। इंजिन की यह अवस्था कुछ ही दिनों रही। ८ नवम्बर से घर के भीतर तापमान १४°–१८° सेंटीग्रेड रहने लगा।

क्रान्ति महोत्सव— क्रांति का दिन ७ नवम्बर आ पहुंचा। ४ तारीख ही से उसकी तैयारियां होने लगीं। झंडियां, तस्वीरें, तथा रंग बिरंगे बड़े बड़े विज्ञापन जगह जगह चिपकाये जाने लगे। हमारे स्नानागार के सामने एक बड़ा रंगीन चित्र चिपका हुआ था, जिसमें मशीन के सामने खड़ी जुलाहिन कपड़ा को दिखला रही थी। उसके आगे दुमंजिले के बराबर का एक और विज्ञापन चित्र था, जिसमें स्तालिन बच्चों के बीच में खड़े थे। एक जगह सड़क की दोनों बगल में लेनिन और स्तालिन के द्विपार्श्वीय चित्र खड़े किये गये थे, जिनके बीच में रात्रि को बिजली जलकर उन्हें प्रकाशित करती थी। राशन चीजों के दाम बढ जाने से लोगों को आज के उत्सव में उतना आनन्द नहीं आरहा था। राशन की चीजों का दाम बढ़ना और बे राशन की चीजों के दाम को घटाना इस प्रकार दोनों को एक तल पर लाकर राशनिंग को हटा देने का जो विचार किया गया था, वह अच्छा हो सकता था, यदि राशन की चीजों का दाम उतना ही बढ़ाया गया होता, जितनी तनख्वाह में वृद्धि हुई था। ऐसा न करने के कारण कम वेतनवालों को तकलीफ थी, ज्यादा वेतन वाले नौकरों को रख कर परेशान थे। सोभाग्य से बड़ी तनख्वाह पाने वाले भी अपना काम अपने हाथ से करने के आदी थे।

७ नवम्बर को क्रांति महोत्सव के बड़े बड़े जुलूस निकले। नगर सब तरह से अलंकृत किया गया था। मास्को की खबरों से मालूम हुआ, कि आज के महोत्सव में लाल मैदान में स्तालिन उपस्थित नहीं थे, और वार्षिक वक्तव्य को उनके सबसे प्रिय और प्रभावशाली शिष्य ज्दानोफ ने दिया था। रात को दीपमाला हुई।

११ नवम्बर को हमें बरानिकोफ के घर जाना था, आज वहां अगला

छमाही का प्रोग्राम बनाना था। कल तक बादल, बूंदों और कीचड़ से लोग परेशान थे, रातको बरफ पड़ गयी थी, जिससे जमीन डेढ़ दो इंच ढँक ही नहीं गई थी, बल्कि कीचड़ से भी जान छूट गई थी। वरान्निकोव उन अकदमिकों में से हैं, जो सोवियत में सबसे अधिक सम्मानित, सभ्रान्त और धनी व्यक्ति हैं। वरान्निकोव की आमदनी सब मिलाकर ३० हजार रूबल प्रतिमास में कम नहीं थी। अकदमिक होने से छ हजार रूबल मासिक पेंशन तो मिलती ही थी, उसके बाद प्रोफेसर, शिक्षा-परामर्शदाता, पुस्तकों की रायल्टी आदि का भारी आमदनी था। लोग एम अकदमिकों का तनख्वाह का देखकर कह बैठते हैं सोवियत में कम से कम ढाई सौ रूबल वतन जहा है, वहा अधिक से अधिक है ३०-३५ हजार। लेकिन इस हम नियम नहीं कह सकते। महान विज्ञानवेत्ताओं, और साहित्यकारों को हम साधारण कोटि में नहीं रख सकते, और उनकी संख्या भी कुछ सौ से अधिक नहीं है। यदि अपने विज्ञानवेत्ताओं और आविष्कर्ताओं को इस तरह का परितोषिक न दिया जाय, तो आखिर रूस तो आदर्शवादी कम्युनिस्ट नहीं है। उनमें से कुछ को इंगलैंड और अमेरिका बड़ी बड़ी तनख्वाहों का प्रलोभन देकर अपनी ओर खींचने का कोशिश करेगा। वैसे लघुत्तम और महत्तम वेतन का अन्तर १८-२० गुना से अधिक नहीं है। यह भी याद रखना चाहिये कि वहां एक युनिवर्सिटी के प्रोफेसर, सेना के जनरल, और सरकार के मंत्री के वेतन एक जैसे हैं, इसलिये हमारे यहा की तरह युनिवर्सिटी छोड़ कर प्रतिभाशाली तरुणों को सिविल सर्विस की ओर भागने की जरूरत नहीं पड़ता।

वरान्निकोव खाने खिलाने के बारे में बड़े ही उदार थे। जब भी अध्यापकों और छात्रों की बैठक उनके घर पर होती— और वह अक्सर होती रहती—तो खान पान की अच्छी तयारी होती थी। वह अपने पुराने मकान में ही थे, इसलिये लेनिनग्राद के मकानों की किल्लत का सामना उन्हें नहीं करना पड़ा। उनके पास चार पांच बहुत अच्छे अच्छे कमरे थे, जिनमें पुस्तकालय वाला कमरा अतिथि-सत्कार का भी स्थान था। अच्छी अच्छी शराबें तरह तरह की स्वादिष्ट

मिठाइयाँ और बहुत तरह के फल वहाँ सजाकर रखे रहते। वरानिकोफ डायबेटीज के मरीज होने से मिठाई से अपने को वंचित रखते, लेकिन अतिथियों को खिलाने पिलाने में बहुत आनन्द अनुभव करते थे। वस्तुत वह जितने अल्पभाषी थे, उतने ही अधिक सहृदय थे। वह चाहते थे कि मैं हिन्दी और संस्कृत की पाठ्य पुस्तकें लिखूँ, लेकिन अब तो अगले साल भारत जाने का मैं निश्चय कर लिया था।

१४ नवम्बर को डेढ़ मास बाद इगर स्कूल गया। गणित का मन ठीक कर दिया था और माँ ने पुस्तक पाठ का भी, इसलिये स्कूल में जाकर सहपाठियों से पीछे नहीं रहा। पहिले मुझे भय था, कि वह मन्द बुद्धि होगा, लेकिन वह ज्यादा जल्दी ही हो गया। स्कूल में प्रथम वर्ष के लड़कों के पास भी एक आगे की नाम्बुक रहता है, जिस पर अध्यापिका रोज नम्बर दे दिया करती है। पाठ्य विषय में यहाँ पूर्णाक १–५ के थे, वही आचरण के भी ५ अंक थे। नम्बर ४–५ अंक मिलने से ही मालूम हो जाता था, कि वह सभी विषयों में अच्छा है। एक दिन आचरण के सामने ३ लगा हुआ था। हमने पूछा तो बात खुल गयी — वहाँ किसी सहपाठी से हजरत झगड़ पड़े थे। स्कूल में बच्चों को किसी तरह का शारीरिक दण्ड नहीं दिया जाता। कसूर करने पर बच्चे पर सजा कर दिया जाता है, और बुरा करने पर क्लास से बाहर कर दिया जाता है, जिससे वह अपने सहपाठी लड़कों की संगति से वंचित हो जाता है। यह दण्ड पर्याप्त है।

युनिवर्सिटी में कमतरान्ग्म के समय प्रथम वर्ष में २२ के करीब छात्र छात्राएं दाखिल हुए थे। लेकिन उनमें से कई पीछे अपने आप दूसरे विषय को लेकर चल गये, हिन्दी और संस्कृत का उच्चारण हमारे विद्यार्थियों के लिये एक समस्या थी। जहाँ तक संस्कृत के संयुक्ताक्षरों का सम्बन्ध है, रूसी उनमें हमसे भी अच्छे होते हैं, और तीन तीन चार चार संयुक्त व्यंजनों का उच्चारण कर लेते हैं, लेकिन टवर्ग उनके मुँह की बात नहीं है, टवर्ग का

छमाही का प्रोग्राम बनाना था। कल
परेशान थे, रातको बरफ पड़ गयी थी
गइ थी, बल्कि कीचड़ से भी जान छ
रो है, जा सोवियत के सबसे अधिक
बरासिकोफ की आमदनी सब मिलाकर
अकदमिक होने से छ हजार रूबल म
बाद प्रोफेसर, शिक्षा-परामर्शदाता, पु
थी। लोग ऐसे अकदमिकों का तनख
कम से कम ढाइ सौ रूबल वेतन ज
हजार। लेकिन इस हम नियम नहीं
साहित्यकारों की हम साधारण कोटि
कुछ सौ से अधिक नहीं है। यदि
इस तरह का पारितोषिक न दिया ज
निस्ट नहीं है। इनमें से कुछ को
का प्रलोभन देकर अपना ओर खींच
और महत्तम वेतन का अन्तर १८
रखना चाहिये कि वहां एक युनिवर्सि
के मत्री के वेतन एक जैसे हैं, इ
कर प्रतिभाशाली तरुणों को निश्चि
पड़ता।

बरासिकोफ खाने खिला
अध्यापकों और छात्रों की बैठक
रहती—तो खान-पान की अच्छी
थे, इसलिये लेनिनग्राद के मकान
उनके पास चार पाच बहुत अच्छ
अतिथि-सत्कार का भी ख्याल था

मिठाइयाँ और बहुत तरह के फल वहाँ सजाकर रखे रहते । वरान्निकोफ डायबेटीज के मराज होने से मिठाई से अपने को वंचित रखते, लेकिन अतिथियों को खिलाने पिलाने मे बहुत आनन्द अनुभव करते थे । वस्तुत वह जितने अल्पभाषी थे, उतने ही अधिक सहृदय थे । वह चाहते थे कि मै हिन्दी और संस्कृत की पाठ्य पुस्तकें लिखूं, लेकिन अब तो अगले साल भारत जाने का मन निश्चय कर लिया था ।

१४ नवम्बर को डेढ मास बाद ईगर स्कूल गया । गणित को मैंने ठीक करा दिया था और माँ ने पुस्तक पाठ करा दी, इसलिये स्कूल मे जाकर सहपाठियों से पीछे नहीं रहा । पहिले मुझे भय था, कि वह मन्द बुद्धि होगा, लेकिन वह ख्याल जल्दी ही हट गया । स्कूल के प्रथम वर्ष के लड़कों के पास भी एक छोटी सी नोटबुक रहती है, जिस पर अध्यापिका रोज नम्बर दे दिया करती है । पाठ्य विषय मे जहाँ पूर्णांक १–५ के थे, वहाँ आचरण के भी ५ अंक थे । बराबर ५–५ अंक मिलने से ही मालूम हो जाता था, कि वह सभी विषयो मे अच्छा है । एक दिन आचरण के सामने शून्य लगा हुआ था । हमने पूछा तो बात खुल गयी वह किसी सहपाठी से हजरत भिड़ गए थे । स्कूल मे बच्चों को किसी तरह का शारीरिक दण्ड नहीं दिया जाता । कसूर करने पर बच्चे पर मना कर दिया जाता है, और कुछ करने पर क्लास से बाहर कर दिया जाता है, जिससे वह अपने सहपाठी लड़कों की संगति से वंचित हो जाता है । यह दण्ड पर्याप्त है ।

युनिवर्सिटी मे वसन्तारम्भ के समय प्रथम वर्ष मे २२ के करीब छात्र छात्राएं दाखिल हुए थे । लेकिन उनमे से कई पीछे अपने आप दूसरे विषय को लेकर चले गये, हिन्दी और संस्कृत का उच्चारण हमारे विद्यार्थियों के लिये एक समस्या थी । जहाँ तक संस्कृत के संयुक्ताक्षरों का सम्बन्ध है, रूसी उसमें हमसे भी अच्छे होते हैं, और तीन तीन चार-चार संयुक्त व्यंजनों का उच्चारण कर लेते हैं, लेकिन स्वरा उनके बस का बात नहीं है, टवर्ग का

छमाही का प्रोग्राम बनाना था। कल तक बादल, बूंदा और कीचड़ परेशान थे, रातको बरफ पड़ गयी थी, जिससे जमीन डेढ़ दो इंच ढँक गई थी, चलिए कीचड़ से भी जान छूट गई थी। बरानिकोफ उन अ से है जो सोवियत के सबसे अधिक सम्मानित, सम्भ्रान्त और धनी बरानिकोफ की आमदनी सब मिलाकर ३० हजार रूबल प्रतिमास स अकदमिक होने से छ हजार रूबल मासिक पेंशन तो मिलता बाद प्रोफेसर, शिक्षा-परामर्शदाता, पुस्तकों की रायल्टी आदि की भी थी। लोग एम अकदमिकों की तनख्वाह को टटका कर बैठने कम से कम ढाई सौ रूबल वेतन जहाँ है, वहाँ अधिक से अधि हजार। लेकिन इस हम नियम नहीं कर सकते। महान वि साहित्यकारों को हम साधारण कोटि में नहीं रख सकते, और कुछ सौ से अधिक नहीं है। यदि अपने विज्ञानवेत्ताओं और इस तरह का पारितोषिक न दिया जाय, तो आखिर समा तो निकट नहीं है। उनमें से कुछ को इंगलैंड और अमेरिका व का प्रलोभन देकर अपनी ओर खींचने की कोशिश करेगा। और महत्तम वेतन का अन्तर १८–२० गुने से अधिक न रखना चाहिये कि वहाँ एक युनिवर्सिटी के प्रोफेसर, सेना के के मंत्री के वेतन एक जैसे हैं, इसलिये हमारे यहाँ का कर प्रतिभाशाली तरुणों को सिविल सर्विस की ओर मा पड़ता।

बरानिकोफ खाने खिलाने के बारे में बड़े अध्यापकों और छात्रों की बैठक उनके घर पर होती— रहती—तो खान-पान की अच्छी तयारी होती थी। व थे, इसलिये लेनिनग्राद के मकानों की किल्लत का सा उनके पास चार पाँच बहुत अच्छे अच्छे कमरे थे, नि अतिथि के रहने का भी स्थान था। अच्छी अच्छी

वह "गाग" पढते हैं। प्रथम वर्ष के विद्यार्थियों को उच्चारण सिखाने के लिये मुझे कभी कभी जाना पड़ता था। ह्रस्व दीर्घ का विचार नहीं करते देख मैं उन्हें बतलाता था, कि नागरी वर्णमाला म दीर्घ के लिये अलग संकेत है, फिर क्यों गलता करते हो ?

देखा सिबेरिया की सबसे पिछड़ी जाति (रिक्मा जानिया म से एक) ननत्स्क जाति की दो लडकियां युनिवर्सिटी म तृतीय वर्ष म पढ रही थीं। मैंने समझा मंगोल या कज़ाक होगी। असली बात मालूम होने पर आश्चर्य की अवश्यकता नहीं थी, सोवियत ने जितना अन्दर अक्षर ज्ञान शून्य सबसे पिछड़ा जातियों को इतना आगे बढ़ा दिया, यह प्रशसा की बात अवश्य थी। क्रान्ति के बाद नेनेत्स्क और दूसरा अलिखित भाषाओं को ही शिक्षण का माध्यम बनाया गया। तब इन जातियों म कोई पढ़ा लिखा नहीं था, और न कोई लिपि ही थी। उस समय यह काम कठिन नज़र मालूम हुआ होगा, लेकिन आज तो युनिवर्सिटी से पढकर निकले कितने ही लड़के लड़कियां वहां पहुंच गये हैं। यह जातियां शुद्ध मंगोलायित हैं, क्योंकि उनके देश में अन्य जातियों का आना जाना ज्यादा नहीं हुआ, इससे यह रक्त सम्मिश्रण से बचा रहीं। शुद्ध मंगोलायित जाति का चेहरा अपेक्षाकृत शरीर से अधिक भारी और चौड़ा होता है, आखें और भौंहें कुछ तिरछी और गाल की हड्डियां अधिक उठी होती हैं। पुरुषों को दाढ़ी मूंछ बहुत कम आता है।

२० नवम्बर को नेवा को जमी देखकर बड़ा आनन्द हुआ, क्योंकि अब हम घूमकर पुल से पार होने की जगह सामने ही नदी पार कर ट्राम पकड़ सकते थे। लेकिन, यह आनन्द चिरस्थायी नहीं रहा। नेवा बहुत दिनों तक आख मिचौनी करती रही। अभी अकाल में ही उसको यह नींद आयी थी।

मेरे पसन्द के फिल्मों म आधुनिक मंगोलिया के फिल्म भी थे। २१ तारीख को "मंगोलिया पुत्र" फिल्म देखने को मिला। फिल्म निर्माताओं में सोवियत विशेषज्ञ भी थे, लेकिन अभिनेता और अभिनेत्रियां सारे ही मंगोल थे। कथानक था— उलान बातुर का एक तरुण ड्राइवर किसी तरुणी से प्रेम करता था,

जगह तवर्ग ही चलता है। दरअसल टवर्ग का दुनिया में प्रचार भी बहुत कम है। अंग्रेजी की नकल करते हुए हम लोग विदेशी नामों और शब्दों में ट की भरमार करते रहते हैं, हम यह समझ लें तो अच्छा है, कि दुनिया में टवर्ग का क्षेत्र बहुत संकुचित है इसलिये यदि टवर्ग के स्थान पर तवर्ग का इस्तेमाल करें तो बहुत गल्ती नहीं करेंगे। जापान और चीन में टवर्ग नहीं है बीच में तिब्बत टवर्ग का देश आ जाता है। उसके बाद मध्य-एसिया की तुर्की फारसी तथा रूस की सारी भाषायें, पूर्वी योरप की भाषायें, इसी तरह ग्रीस, इटाल पुर्तगाल, स्पेन और फ्रांस ही नहीं, बल्कि आधी जर्मनी की भाषा भी टवर्ग शून्य है। अंग्रेजी में टवर्ग अवश्य है। जर्मन भाषा से सम्बन्ध रखने वाली भाषायें भी टवर्ग बहुल हैं। भारत में आर्यों की भाषायें अपने पूर्वधर्म के विरुद्ध जाकर टवर्ग बहुल हो गई। टवर्ग द्रविड भाषाओं की विशेषता है। मुझे याद है बम्बई में भारत के भिन्न भिन्न भाषाभाषी लोगों का समागम था, जिसमें उन्होंने अपने यहाँ के गीत गाकर सुनाये। वहाँ हिन्दी भाषा भाषी काफी थे। लोग दूसरे प्रदेशों के गीतों को बड़े प्रेम से सुन रहे थे, लेकिन जब एक तेलगू तरुण ने अपनी भाषा में गाना शुरू किया तो जल्दी ही लोगों ने अनिच्छा प्रकट करनी शुरू की। मैंने उनसे कारण पूछा, तो बतलाया— हम समझते नहीं हैं। मैंने कहा— अभी आसामी गीत जो आपने बड़े चाव से सुना, उसे क्या आपने समझा था? वस्तुतः टवर्ग की बहुलता ही उनकी इस अनिच्छा का कारण था। एक दक्षिणी तरुण बनारस में रवीन्द्र-जयंती के समय तेलगू भाषा में अपनी नवनिर्मित कविता सुनाने की बात कर रहे थे। मैंने कहा— आपने लोगों की अनिच्छा को कैसे रोका। उन्होंने बतलाया कि मैंने तेलगू के उन्हीं शब्दों को चुन चुनकर रखा जो अधिकतर संस्कृत के थे और जिनमें टवर्ग नहीं था।

रूसी यदि टवर्ग का उच्चारण नहीं कर पाते, तो कोई बात नहीं है, लेकिन मुश्किल यह है कि वह ह्रस्व-दीर्घ का विचार नहीं रखते। बहुत-सी वर्णमालाओं की तरह रूसी वर्णमाला में भी दीर्घ स्वर के लिये अलग संकेत नहीं है, और ह्रस्व स्वर को भी इच्छानुसार दीर्घ भी पढ़ा जा सकता है, इसीलिए गया है

वह "गाग" पढते हैं। प्रथम वर्ष के विद्यार्थियों का उच्चारण सिखाने के लिये मुझे कभी कभी जाना पड़ता था। ह्रस्व दीर्घ का विचार नहीं करते देख मैं उन्हें बतलाता था, कि नागरी वर्णमाला म दीर्घ के लिये अलग संकेत हैं, फिर क्यों गलती करते हो?

दमा मिरेगिया का सबसे पिछड़ा जाति (सिक्मा जातियों म मग्रर) ननत्स्क जाति की दो लड़कियां युनिवर्सिटी म तृतीय वर्ष म पढ रही थी। मन समझा मगोल या कजाक होगी। असली बात मालूम होने पर आश्चर्य की आवश्यकता नहीं थी, सोवियत ने कितना जल्दी अक्षर ज्ञान शून्य सबसे पिछडा जातियों को इतना आगे बढा दिया, यह प्रशसा की बात अवश्य थी। क्रांति के बाद लेनेने रूस और नमरा अनिखित भाषाओं को ही शिक्षण का माध्यम बनाया गया। तब इन जातियों म कोई पढा लिखा नहीं था, और न कोई लिपि ही थी। उस समय यह काम कठिन जरूर मालूम हुआ होगा, लेकिन आज तो युनिवर्सिटी से पढकर निकले कितने ही लड़के लड़किया काम पहुच गये हैं। यह जातिया शुद्ध मगालायित हैं, क्योंकि इनके देश में अन्य जातियों का आना जाना ज्यादा नहीं हुआ, इसम यह रक्त सम्मिश्रण से बचा रहीं। शुद्ध मगालायित जाति का चेहरा अपचाकृत शरीर से अधिक भारी और चौड़ा होता है, आखें और भौंहें कुछ तिरछी और गाल की हड्डियां अधिक उठी होती हैं। पुरुषों का दाढा मूछ बहुत कम आती हैं।

२० नवम्बर को नेवाको जमी देखकर बडा आनन्द हुआ, क्योंकि अब हम घूमकर पुल से पार होने की जगह सामने ही नदी पार कर ट्राम पकड़ सकते थे। लेकिन, यह आनन्द चिरस्थायी नहीं रहा। नेवा बहुत दिनों तक आख मिचौली करता रहा। अभी अप्रैल में ही उसकी यह नाद आयी था।

मेरे पसन्द के फिल्मों म आधुनिक मगोलिया के फिल्म भी थे। २१ तारीख को "मगोलिया पुत्र" फिल्म देखने को मिला। फिल्म निर्माताओं म सोवियत विशेषज्ञ भी थे, लेकिन अभिनेता और अभिनेत्रियां सारे ही मगोल थे। कथानक था— उलान बातुर का एक तरुण ड्राइवर किसी तरुणी से प्रेम करता था,

मान धन पर रह रहे थे। उन्हें किसी से मेरे बारे में मालूम हो गया था, इसलिये पत्र में पूछ रहे थे कि मैं अनुवादों से अलग पाली और बौद्ध धर्म को कैसे पढ़ सकता हूँ। मैंने उन्हें स्वयं पाली पढ़ने का ढंग लिख दिया तथा बौद्धधर्म के परिचय के लिये कुछ आवश्यक अंग्रेजी की पुस्तकों के नाम भी दे दिए।

सोवियत में जब साधारण लोगों के सुख और निश्चिन्तता के तल को देखते हैं, तो कहना पड़ता है, कि दुनिया में अमरिका जैसे अत्यंत धनी देश में भी इतनी अच्छी हालत में लोग नहीं हो सकते, आखिर अमरिका में हर वक्त लाखों की तादाद में लोग बेकार रहते हैं। बेकार का मतलब है, दाने-दाने के लिए तरसना। रूस में कोई बेकार नहीं है, और न किसी को दाने दाने के लिए तरसने की अवश्यकता है। गरीबी का वर्ग अत्यन्ताभाव है, हां वेतन और आमदनी सबकी एक-सी नहीं है, लेकिन कम से कम वेतन पानेवाले को भी खाना कपड़ा और रहने आदि की चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। आदमी तो अपने वर्तमान में सन्तुष्ट नहीं रहता— और न उसे सन्तुष्ट रहना चाहिये, वह अपना पूर्व स्थिति से मुकाबला करना चाहता, विशेषकर यदि वह दुख और दारिद्रय की रही। जो लोग अपने आप बेवकूफी कर बैठते हैं, उन्हें तो कष्ट सहना ही पड़ता है। हमारे ऊपर की कोठरी में बच्चा की मां एक नाटा स्त्री थी। राशन-कार्ड बन्द होना ही था, जबकि उसने किसी काम को करना नहीं स्वीकार किया। अन्त में २७ नवम्बर की रात को फांसी लगा कर वह मर गई।

मान्या उस दिन सुना रही थी— मैंने आज स्वप्न में बड़ी सींगोंवाला घोड़ा (शैतान) देखा। मैंने लोला से पूछा— मान्या ने तो चोर देखा और तुमने?

लोला— मैंने कुछ नहीं देखा।

मैंने कहा— न भगवान् को ही देखा, न चोर को ही, फिर हमारे धर्म की इतनी भक्ति का क्या फायदा?

लोला अपने इगर को पूरा धार्मिक (ईसाई) बनाने की कोशिश कर रही थी। उसे निर्मरि (बिना पुत्र पतिवाला) का नाम लेकर भाग बनाता था

मिलना दिया था। भगवान् के प्रति इगर का कुछ विश्वास हो चला था। कभी कभी तो वह अपनी प्रार्थना में कहता था— "हे बोजिन्का (भगवान) ऐसा कर, कि मेरी मामा चीखना चिल्लाना छोड़ दे।" लेकिन भगवान् उसकी प्रार्थना नहीं सुन रहा था। अब मैं भारत जाने का निश्चय कर चुका था, इसलिये कभी कभी वह बोजिन्का की प्रार्थना में मेरे भारत न जाने का वरदान भी शामिल करता था। इस भगवान् भक्ति का एक प्रभाव तो तुरंत दिखाई पड़ा— वह अब अंधेरे कमरे में पैर नहीं रखता था। जब भगवान् जैसी महान् चीज बिना देखा रह सकती है, तो शायद चोर्त (शैतान) क्यों उस अंधेरे में न छिपा हो। विश्वास की पराकाष्ठा तब पहुँची, जब एडोमिन तामूया के छ महीने के बच्चे (को या) के हाथ को वह आलपीन से करेदने की कोशिश करने लगा। वह उस बच्चे को बहुत प्यार करता था, अपने हाथ से खिलाता था, इसलिये समझ में नहीं आया, कि आलपीन से उसकी हथेली क्यों कुरेदना चाहता था। पीछे मालूम हुआ हमारे शयन कक्ष के कोने में ईसामसीह की मूर्ति रखी हुई थी, जिसकी हथेली में खून लगा था। मालूम नहीं उसे असली कथा मालूम थी या नहीं कि ईसामसीह को सिर पर, और दोनों हाथों को फैलाकर उन्हें कीलों से लकड़ी की सलीब पर गाड़ दिया गया था, इसलिये उसमें उतरने पर हाथ में खून के दाग थे। इगर के दिमाग में यह बात आगई— कि उस छोटे मिश्का को भी ईसामसीह का रूप दे दिया जाय। इसी सदिच्छा से प्रेरित होकर उसने मिश्का की हथेली में आलपीन चुभोनी चाही। मैंने लोला से कहा — लो और धर्म की बातें बच्चे को सिखलाओ। उन्होंने भी कहा— हां, इसने तो अभी हाथ में ही आलपीन चुभोनी चाही थी, यदि कहीं दूसरे मर्मस्थान में चुभा देता। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं, कि इगर की धर्म शिक्षा को बन्द कम कर दिया गया।

पहिली दिसम्बर को सवेरे तापमान हिम बिन्दु से नीचे चला गया था और दिन में बर्फ भी पड़ गई। हमारी तरह और भी बहुत से लोग कहने लगे— चलो कीचड़ से जान छूटी। लेकिन अगले ही दिन बर्फ गलने भी लगी थी,

छत से बूँद टप टप चूने लगीं।

वैसे गरीबी और बेकारी के न होने के कारण रूस में भिखमंगों को नहीं होना चाहिए, लेकिन भिखमंगी को पैदा करने वाली केवल गरीबी और बेकारी नहीं है, कामचोर भी भीख मांग सकते हैं। कानून का डर होने के कारण वह लुक छिपकर अपने पेशे को करते हैं। कितनों के लिये यह अच्छा खासा पेशा है। एक दिसम्बर को एक बहुत बुढ़िया भिख-मंगिन हमारी खिड़की की तरफ आयी। उसकी आँखें भीतर धंसी हुई थीं, कमर दुहरा थी, ऐसी मूर्ति को देखकर किसको दया नहीं आयेगी? लोला ने एक टुकड़ा रोटी और मछली दी। बुढ़िया निहाल हो गई। आजकल के राशन की कड़ाई के दिनों में इतने दयालु कहाँ मिलने लगे? उसने बहुत बहुत आशीर्वाद दिया— भगवान् की माता तुम्हारी रक्षा करे, तुम फूलो फलो। मालूम होने बतलाया, उसका पति किसी स्त्री के पास रहता है, उसकी मा भी भिखमंगिन है, और दिन में इतना रोटी, आलू आदि मांग लाता है, कि तीनों प्राणियों को खाने की चिन्ता नहीं।

४ दिसम्बर को क्रमशः बर्फ और कीचड़ बारी बारी से आते जाते रहते थे। उस दिन रात को बर्फ पड़ गई, सबेरे भी पड़ती रही। तापमान हिम बिन्दु के पास था। शाम तक बहुत सी बर्फ गल गई, फिर कच्चे रास्ते में कीचड़ उछलने लगी। कई दिनों से सूर्य के दर्शन नहीं हुए थे, फिर दिसम्बर के प्रथम सप्ताह में इतना ऊँचा तापमान क्यों? इस गरमी का कारण सूर्य से अन्यत्र ढूँढना पड़ेगा।

यदि लिखी पढ़ी चाजों को तुरन्त भारत भेजने और अपने साथ बंध होता तो, शायद मेरा दिल इतनी जल्दी नहीं उचटता, लेकिन चिट्ठियाँ की यह हालत थी कि आधी भी यदि पहुँच जाये, तो मैं उसके लिए धन्यवाद देता। निराला, रवीन्द्र और प्रेमचन्द पर तीन लेख लिख कर मैंने वहाँ से भेज दिये, और एक ही के छपने का पता लगा। ऐसी अवस्था में महीनों वर्षों लगाकर लिखी गई पुस्तकों को मैं डाक के हवाले कैसे कर सकता था?

पहले रात्रि छोटी होकर शून्य तक पहुँची थी। अब दिसम्बर के प्रथम

सप्ताह में दिन छोटा होते होते ६ घंटे का रह गया था, यद्यपि सबेरे कुछ समय तक लाल किरणें, लाल आभाको दिखलाती थीं। नेवा का अभी सोने का कोई ठिकाना नहीं था। पहले सूर्य के न दिखलाई देने पर भी तापमान न ऊंचे उठकर कीचड़ फैलाया। = तारीख को सूर्य का खूब दर्शन हो रहा था, लेकिन तापमान ने नीचे उतर कर कीचड़ को बर्फ बना दिया। ६ दिसम्बर को भी सूर्य दिन भर निरभ्र आकाश में उगा हुआ था, किन्तु तापमान हिमबिन्दु से काफी नीचे था। १ को सर्दी खूब थी, लेकिन बर्फ का नाम नहीं था, नेवा भी अपनी मस्तानी चाल में चल रही थी। आज युनिवर्सिटी में रवीन्द्र दिवस मनाया गया। प्रेमचन्द दिवस और रवीन्द्र दिवस मनाने की लेनिनग्राद युनिवर्सिटी में परिपाटी सी चल गई है। यद्यपि प्राच्य विभाग के अध्यापक और छात्र ही इस अधिक मनाते हैं, लेकिन उत्सव में भाग लेने वाले सभी विभागों में आते हैं। हाल का भारी कमरा उस दिन श्रोताओं से भरा हुआ थीं, लोग चार घंटे तक भाषण सुनते रहे। बरानिकोफ ने कवि के जीवन पर प्रकाश डाला। हमारे अर्थशास्त्र और राजनीति के अध्यापक भाबी सुलेकिन ने रवीन्द्र के समय के सामाजिक और आर्थिक ढांचे का सिंहावलोकन कराया और रवीन्द्र के मानवता प्रेम तथा प्रगतिशीलता की प्रशंसा की। वेरा नावीकोवा ने "रूसी भाषा में रवीन्द्र साहित्य" के ऊपर एक सुन्दर लेख पढ़ा। फिर रवीन्द्र-महिमा पर मैंने अपना लेख हिन्दी में पढ़ा, जिसका रूसी अनुवाद दीना मार्कोवना ने पढ़ सुनाया। यह मालूम ही है, कि अंग्रेजी में अपना लेख पढ़ने पर भी उसे रूसी अनुवाद द्वारा श्रोताओं तक पहुंचाया जा सकता था, इसलिये ऐसे द्रविड़ प्राणायाम की क्या आवश्यकता थी। एक रेडियो कलाकारिणी ने रवीन्द्र का एक कहानी को नाटकीय ढंग से रूसी में पढ़ा, जिससे लोगों का बड़ा मनोरंजन हुआ। सारा कार्यक्रम का फिल्म लिया जा रहा था—युनिवर्सिटी का अपना फिल्म कम्पनी है। जय ता बहुत अच्छी तरह मनाई गई। लेकिन भारत में जो नया राजनीतिक परिवर्तन हाल में हुआ था, उसके महत्व को मानने के लिये वहां के लोग तैयार न थे। यहां भारत के महत्व का वह अच्छी तरह मानते थे, जिसका ही प्रमाण

ता यह उत्सव था।

१३ दिसम्बर को तापमान हिमबिंदु स १४° और १४ दिसम्बर को १६° सेंटीग्रेड नीचे चला गया था। नेवा अब तक बहुत अटलाती था, लेकिन आज उसे जबरदस्ती सो जाना पड़ा। १८ को भारी बर्फ देखकर मालूम हुआ, कि अब साधारण हिमकाल शुरू हो गया, लेकिन अगले ही दिन तापमान उपर उठ गया और नेवस्की राजपथ की बर्फ गल गयी। नेवा भी फिर जाग उठी, उसका पानी बहता दिखाई पड़ा। घर पर हमारे कम्प्यूनल ऑफिस की शाला म हा लड़कों को दिखलाने के लिये क्रिस आया था। महल्ले भर के लड़के जमा हुए थे, ईगर भी देखने के लिए गया, लेकिन उसकी मां हाय तोबा कर रही थी, क्योंकि लड़का साधारण लड़कों म चला गया, कहीं वह उनके साथ गुंडा न बन जाय।

२० दिसम्बर आ गया। ५ ही दिन बाद क्रिसमस (बड़ा दिन) होगा। इस साल बर्फ का जिस तरह अभाव देखा गया, उससे लोगों को डर मालूम हो रहा था, कि कहा इस साल काला क्रिसमस और काला-नववर्ष न देखना पड़े। २२ की रात क्रिसमस की सम्भावना और अधिक हो गई। बर्फ शायद ही कहीं दिखलाई पड़ती थी। शहर के भीतर तो उसका बिलकुल अभाव था। साढे ती। बजे तक सूर्य की किरण दिखलाई पड़ती थीं। २४ को क्रिसमस की सन्ध्या आयी। लोला ने त्योहार की विशेष तैयारी की। देवदार शाखा, भोजनगृह में सजा दी गई। बच्चों के पास क्रिसमस की भेंट भी भेजी गई। २५ का सबेरा भी आ गया। सरदी काफी लेकिन बर्फ का अभाव, इसलिये काला क्रिसमस ही अबके देखना पड़ा। सरकारी त्योहार न होने से आज काम से छुट्टी नहीं थी, लेकिन लोगों ने अपने पर्व को अच्छी तरह से मनाया। गिर्जा में प्रसाद के लिये खाद्य को तैयार करके भोग लगवाने के लिए जो लोग गये थे, उन्हें दो दो घंटा क्यू म खड़े रह कर इन्तजार करना पड़ा। कौन कहता है कि बोल्शेविकों ने रूस से धर्म को उठा दिया? लेनिनग्राद के गिरजा म क्रिसमस को ही नहीं इतवार को भी इतनी भीड़ रहा करती थी जो भोर

देशा म देखना मुश्किल है।

२६ दिसम्बर को १७ वीं सदी के उक्रइनी नेता "बगदान ख्मेलिस्की" फिल्म देखने को मिला। ऐतिहासिक फिल्म या नाटक इतिहास प्रेमियों के लिये स्वय एक ज्ञान-वर्द्धक पाठशाला का काम देते हैं। बगदान का अर्थ है भगवानदत्त। बग भगवान् और दान भी दत्त या दान का रूसी पर्याय है। लेकिन उक्रइनी नेता अपने नामानुसार कोई भगवान् का भक्त नहीं,बल्कि एक दूरदर्शी राजनीतिज्ञ था। बेलोरूसा, और उक्रइनी वस्तुत रूसी भाषा की ही बोलिया हैं, किन्तु अब तीनो स्वतत्र साहित्यिक भाषा मानी जाती हैं। रूसी शासक जाति थी, इसलिये क्रान्ति से पहले उक्रइनी और बेलोरूसी अपने स्वतत्र अस्तित्व की माग कर रहे थे। क्रांति के बाद उसकी आवश्यकता खतम हो गई। जहा जारशाही अग्रदर्शिता के कारण २० वीं सदी के आरम्भ तक उक्रइनी स्वतत्र होना चाहते थे, वहा आज से प्राय तीन सदी पहले के इस उक्रइनी दूरदर्शी-नेता ने समझ लिया था, कि उक्रेन का हित रूस के साथ रहने में है। उस समय उक्रेन रूस के अधीन नहीं था। उसके पड़ोस में एक ओर पोलेंड के पोल शासक उसे दबाने के लिये तयार थे,और दूसरी तरफ क्रिमिया के तातार उन्हे "कमजोर की बहु सारे गाव की भाभी" बनाये हुए थे।

उस समय के उक्रेन के लोग सिर म हिन्दुओं की तरह ही लम्बी चोटी रखते थे। प्रथम रूसी राजा (जो १० वीं शताब्दी में बिजतीन राजधानी कस्तुंतिनोपोल म पहुचा था) का भी सिर घुटा और बीच में हिन्दुओं जेसी चुटिया थी। न जाने केसे यह हिन्दुओं की चोटी उक्रेन में पहुँची, या उनकी चोटी हिन्दुओं के पास आई। अथवा हिन्दुओं म भी तो पहले सारे केश रखने की प्रथा थी, जिसे पूजा आदि के समय न बिखरने देने के लिये बाधना पड़ता था और इस प्रकार शिखाबन्धन धर्म का एक अग हो गया था। जब शिखा से लोगों को अरुचि हो गई अर्थात् फैशन बदल गया, तो धर्म की माग शिखा-बन्धन को पूरा करने के लिये केश का कुछ भाग रख छोड़ा गया, यह शिखा के क्रम विकास का इतिहास हमारे देश में और उक्रेन म एक तरह का हो रहा है। लेकिन

इसाइ हो जाने के बाद भी शिखा को रखना क्या आवश्यक समझा गया ? शायद इसमें ईसाइयों का मुसलमानों जैसा असहिष्णु न होना ही कारण था। बगदान को अगर अकबर, जहांगीर के समय किसी ने देखा होता, तो रंग के कारण चाहे सदेह पैदा होता, लेकिन चुटिया तो जरूर उसे हिन्दू बतला देती। पाल, तातार और उक्रैनी कैसी वेश भूषा और रीति रिवाज रखते थे, इसका इस फिल्म से प्रत्यक्ष ज्ञान होता था। सभी दृश्यों और चीजों को बड़े व्यापक पैमाने पर दिखलाया गया था। बगदान पोलों को भगाकर अपने देश को स्वतंत्र करने में सफल हुआ। कई लड़ाईयों में अपने सफल वार देना का दरबारियों ने स्वतंत्र राजा बनाना चाहा और उसे खिलअत लाकर पहनायी। बगदान ने उस खिलअत को वहीं फाड़ फेंका और कहा कि उक्रैन की स्वतंत्रता की रक्षा की गारण्टी अपने भाई रूसियों के साथ रहने में है।

२६ दिसम्बर को एक बैले "बखशी सराय का फावारा" देखा। यह भी १६ वीं १७ वीं सदी की ऐतिहासिक घटना को लेकर लिखी गई थी। उस वक्त पोल सामन्त दक्खिणी रूस पर मनमानी कर रहे थे, क्रिमिया का तातार खान दक्खिन से चोट कर रहा था। लेकिन उक्रैन के स्वतंत्रता प्रेमी लोग अपनी तलवार रख देने के लिये तैयार नहीं थे। तातारों के आक्रमण में नायक तरुण मारा गया और उसकी प्रेमिका को खान पकड़ ले गया। तरुणी के सामने खान के हरम की सारी सुन्दरियां फीकी पड़ गईं। ईर्ष्या के मारे खान की पटरानी (शाहबेगम) ने उसे मरवा दिया। खान शाहबेगम को पानी में डुबा अपनी किस्मत को कोसने लगा। बैले का सादर्य है देश कालानुरूप परदे, वेश भूषा और उत्कृष्ट नृत्य, यह सभी चीजें इस बैले में मौजूद थीं। नाट्यशाला में हजार से कम दर्शक नहीं रहे होंगे, और टिकट पच्चीस तीस रूबल (१८–२० रुपया)। इतनी महंगी चीजों को सामन्तवाद या साम्यवाद ही प्रस्तुत कर सकता है, वह पूंजीवाद के बस की बात नहीं है। पूंजीवादी देशों में तो सिनेमा के आते ही नाट्यशालाओं पर वज्र पड़ गया।

३१ दिसम्बर को सोवियत में बच्चों का त्योहार मनाया जाता है और उसमें

अगले दिन पहिली जनवरी को नव वर्ष का त्योहार सभी लोगों के लिये है। हमारे घर में दो देवदार शाखायें पहिले ही लाकर खड़ी कर दी गई थीं। लोला को कहीं एक और अच्छी शाखा बाजार में बिकती दिखाई पड़ा, वह उसे भी खरीद लायी। अब छोटी सी भोजनशाला देवदार वन का रूप ले चुकी थी। ईगर के स्कूल और बालोद्यान के मित्र लड़के लड़कियां भी आकर देवदार शाखा की बहार देख मिठाई भी खा गये थे। उनके गान और नृत्य का कुछ आनन्द हमें भी मिला।

आज फिर एक वर्ष समाप्त हो रहा था। हमने काम क्या किया था? मध्यएसिया के लिये कुछ पुस्तकें पढ़कर सामग्री जरूर जमा की थी, अपने साथ ले जाने के लिए कुछ पुस्तकें भी इकट्ठा कर ली थीं, लेकिन जहां तक लिखने का सवाल था, वह नहीं के बराबर था।

★ ★ ★

१७-१९४७ का आरम्भ

पहली जनवरी बुधवार का दिन आया। आज थोड़ा सा बर्फ दिखाई पड़ा, सरदी भी थी। मेहमानों की आशा से भोजन तैयार किया गया था, लेकिन मेहमान निमन्त्रित नहीं थे। त्योहार के दिन मिलने-जुलनेवाले आते ही रहते हैं, इसी ख्याल से तैयारी की गई थी। किन्तु हमारे अधिकांश मिलने जुलनेवाले ता युनिवर्सिटी के आस पास रहते थे। ५ मील ट्राम में धक्के खाते आना सबके बस की बात नहीं थी। देवदारों का प्रदर्शन केवल घरों में ही नहीं था, बल्कि बालोद्यानों और स्कूलों में उसको और भी ज्यादा धूमधाम से सजाया गया था। इगर के स्कूल में भी बड़ी देवदार शाखा खड़ी की गई था। २ जनवरी का इगर अपनी मा के साथ उसे देखने गया। उसे २ सेव १ नारंगी मिला, जिसका अर्थ है, सारे स्कूल के लड़कों को दो-दो सेव और एक-एक नारंगी मिली होगी। यही नहीं, इगर का स्कूल क्यों, लेनिनग्राद नगर ही क्यों, सारे सोवियत के स्कूलों के बच्चों को दो-दो सेव और एक एक नारंगी जैसी कोई चीज अवश्य मिली होगी।

इगर अब बराबर स्कूल जाते थे। चाहे अपने सहपाठियों से आठ ही दस महीने बड़े हों, किन्तु वह अपने को लड़का नहीं पुरुष समझते थे। व्यवहार, बातचीत का ढंग अच्छा था, इसलिये सभी संतुष्ट रहते थे। अपने क्लास की चाची (अध्यापिका) के तो स्नेह पात्र थे ही, लेकिन लड़कों के खेल के समय वह अक्सर दूसरी अध्यापिका के साथ टहला करते थे। उनकी अपनी अध्यापिका ने मज़ाक करते कहा—यदि वही पसन्द है, तो क्यों उसी की क्लास में मन दें।

इगर ने बड़ा गंभीरता से जवाब दिया—"नहीं इसकी जरूरत नहीं, तरुणी अधिक मनोहर है, इसलिये उसके साथ टहलने चला जाता हूँ।"

३ जनवरी को तापमान हिमबिन्दु से २८° नीचे चला गया था अर्थात् फार्नहाइट से लेने पर वह हिमबिन्दु से ३०°-३२° नीचे था। मुझे कोई उतनी सरदी नहीं मालूम होती थी। शरीर तो गरम कपड़े से ढका ही रखना पड़ता था। सरदी का पता लगता था कान में। घर में कान खोले ही बाहर जा सकता था, तो इसका मतलब था, कि अभी सरदी अधिक नहीं है। अगले दिन तापमान २०° (हिमबिन्दु से ३४-३६° फार्नहाइट) नीचे चला गया था। कज़ाख़ में ६° ही नीचे गया था, जबकि वहाँ ६० इंच बरफ पड़ी थी, यह रेडियो बतला रहा था। लेनिनग्राद की इतनी सरदी में बरफ मुश्किल से कहीं दिखाई पड़ती थी। उस दिन भारत के एक प्रकाशक की चिट्ठी आयी। मालूम हुआ बड़े बड़े करोड़पति सेठों ने ८० लाख की पूंजी से एक कम्पनी कायम की है, जिसके उद्देश्यों में हिन्दी के भी अच्छे अच्छे ग्रन्थों का प्रकाशन करना है। उनकी ओर से मेरे पास पत्र आया था—हम १५ सैकड़ा रायल्टी देंगे। मैंने डाइरेक्टरों के नामों को देखा। उनमें कुछ करोड़पति सेठ थे और कुछ बड़े बड़े राजनीतिक नेता तथा मंत्री। परामर्श देनेवाले बोर्ड में ३८ आदमी थे, जिनमें मुश्किल से ११ को ही कहा जा सकता था, कि वह साहित्य और संस्कृति से संबंध रखते हैं। पाँच प्रान्तों के मंत्री भी इन परामर्शदाताओं में थे। क्या यही लोग हमारी पुस्तकों का मूल्यांकन करेंगे? फिर इन्हीं ही लोगों ने आशा बँधने लगी, कि अब करोड़पतियों के रुपये साहित्य के प्रकाश-

म भा आगे आने लगे हैं। भारतीय मंत्रि-मंडल की स्थापना का एक फल तो यह जरूर था।

६ जनवरी को अब भी बर्फ के अभावकी शिकायत की जा रही थी। अब चार दिनों के लिये स्कूलों की छुट्टियां थीं, इस लिये इगर भी घर पर था। आज उसे अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता म पारितोषिक प्राप्त सोवियत फिल्म "पाषाण पुष्प" दिखाने ले गये। हमारे मुहल्ले के सिनेमाघर म ही फिल्म आया था, टिकट था १ रूबल। शाला खचाखच भरी हुई थी। सभी माताएं अपने लड़कों के साथ वहां पहुची थीं। फिल्म उरालपर्वत की एक जन कथा को लेकर बनाया गया था। सामन्त द्वारा सताया वृद्ध पाषाण शिल्पी (संगतराश) रंग बिरंगे पत्थरों की कलाकृतियां निर्माण कर रहा था। उसका दत्तक पुत्र भी प्रतिभाशाली था और मुरली बजाने म भी अद्वितीय था। तरुण का मन उराल की एक तरुणी ने मोह लिया। दोनों का विवाह हुआ। पुराने समय क वेष पुराने समय के नृत्य और पुराने समय के वैवाहिक रीति रिवाज दिखलाये गये थे, जो कि ऐतिहासिकता से ज्यादा समीपता रखते थे। शिल्पी तरुण को वनदेवी पाषाण पुष्पों का लोक दिखाती पहाड़ों के भीतर ले गई। वहां रंग बिरंगे चमकते पत्थरों के तरह-तरह के पुष्प बने हुए थे। शिल्पी स्वयं छेनी और हथौड़ा लेकर वहीं एक ऐसा विशाल पुष्प बनाता है, जो अपने सौंदर्य म वन देवी के दिखलाये पुष्पों से कम नहीं है। अन्त म दोनों प्रेमियों का मिलाप हो गया—यह फिल्म भारत में भी आ चुका है।

८ जनवरी को विश्वविद्यालय म निबंधों का पारायण चल रहा था। अध्यापक लोग अपने अपने विषय पर ज्ञानपूर्ण निबंध पढ रहे थे, जिनके सुनने के लिये काफी आता—प्रोफेसर और विद्यार्थी इकट्ठा होते थे। अकदमिक बरानिकोफ ने तुलसी की कविता पर एक निबन्ध पढा, जिसे लोगों ने बहुत पसन्द किया। प्रोफेसर फ्राइमान और दूसरे विद्वानों ने भी अपने निबंध पढे। साढे तीन हजार जहां अध्यापक हों, वहां निबंध सुनने के लिये सब का इकट्ठा होना संभव नहीं है। तो भी सबके पास निबंधमाला की रचना पहुचाने का

पूरा प्रबन्ध किया गया था। युनिवर्सिटी की अपनी एक पत्रिका थी, जिसमें सूचना निकलती थी, इसके अतिरिक्त भाषाओं के निबंधों के संबंध में संक्षिप्त विवरण के साथ एक छोटी सी पुस्तिका निकाल दी गई थी।

१२ जनवरी को बम्बई के डाक्टर सूफी ने लिखा में मेरा पता पाकर लिखा कि हमदानी संत की कब्र का हम फोटो भिजवाइये। उन्होंने सोवियत की भिन्न भिन्न संस्थाओं को कई पत्र भेजे किन्तु जवाब नहीं पाया। हमदानी की कब्र ताजिकिस्तान के खुत्तल प्रदेश में है, लेकिन फोटो मिलना मुझे भी उतना आसान नहीं जान पड़ा, तो भी मैंने स्तालिनाबाद की युनिवर्सिटी को पत्र लिख दिया। पत्रों का उत्तर न देना, यहाँ के लोगों का स्वभाव सा है। खासकर अपरिचित आदमी से पत्रोत्तर के मिलने की आशा कम ही रखना चाहिये। जो लोग पुस्तक या फोटो मँगाना चाहते हैं, उनके लिये तो और भी दिक्कत है। क्योंकि इन चीजों को दो दो राज्यों के सेन्सरों के भीतर से गुजरना पड़ता है।

१८ जनवरी को भी तापमान ऊपर उठा हुआ था इसलिये सड़कों पर जहाँ तहाँ पानी ही पानी दिखाई पड़ता था। रात को अपने मुहल्ले की क्लब (बोलोदार्स्की क्लब) के हाल में "म्यू च्यू सान दु खान" ओपेरा नाटक देखने गये। यह किसी स्थायी नाट्य संस्था की ओर से नहीं खेला जा रहा था, बल्कि नगर की ही एक नाटक मंडली ने अभिनय करने का आयोजन किया था। थी तो यह मुहल्ले के क्लब की शाला, लेकिन हमारे देश की बड़ी बड़ी नाट्यशालाओं का मुकाबिला कर सकती थी। हर तरह के मनोरंजन और कलाप्रदर्शन में चूँकि अब जन साधारण बहुत भाग लेने लगा है, इसलिये ऐसी शालाओं और संस्थानों पर पैसा खर्च करने में सरकार संकोच नहीं करती। लोग भी मंचों को भरकर काफी पैसा जमा कर देते हैं। ओपेरा अर्थात् पद्यमय नाटक मुझे पसन्द नहीं है, यह मैं पहिले कह चुका हूँ लेकिन इष्ट मित्रों के आग्रह को भी देखना पड़ता है इसलिये मैं भी चला गया। कथानक था—एक अमेरिकन अधिकारी जापान की गैशा (नर्तकी) से जापानी रीति से विवाह करता है। कुछ दिनों के दाम्पत्य जीवन के बाद पुरुष अपने देश चला जाता है। तरुण पत्नी च्यू च्यू-सान् प्या

पति के जाने के बाद पैदा हुए पुत्र को लिये आशा लगाये बाट जोहती रहती है। आर्थिक संकट का पहाड़ उसके ऊपर टूटता है। अमेरिकन की सल से आकर पूछती है, तो वह कहता है—तरुण ने दूसरी शादी करनी है। बच्चे को देखकर उसने कहा—चाहो तो इसे दे सकता हो। लेकिन मा बच्चे को छोड़ने के लिये तैयार नहीं। आशा निराशा में पांच छ साल और बात जाते हैं। पति के आने की खबर सुनकर अपने घर को फूलों से सजा सारी रात प्रतीक्षा करती है। वह खबर अपनी अमेरिकन पत्नी के साथ आता है।

अमेरिकन पत्नी अपनी निर्दोषता को प्रकट करते हुए च्यू च्यू मान् से सहानुभूति दिखलाते बच्चे के साथ प्रेम करने का वादा करके उसे मागती है, लेकिन मा अब पुत्र को भी कैसे दे दे। अंत में आर्थिक संकटों से मजबूर होकर बुद्ध की मूर्ति के सामने प्रार्थना करके वह हाराकिरी (आत्महत्या) करना चाहती है, इसी समय पुत्र आ जाता है। उसे किसी तरह बहला कर फिर वह पेट में छुरा मार लेती है। पिता अमेरिकन कासन के साथ आता है और बच्चे को उठा ले जाता है। अभिनय बहुत सुन्दर था। पुरुषों के वेश अच्छे नहीं थे, और बुद्ध की मूर्ति भी भद्दी थी, लेकिन यह तो एक व्यवसायी मण्डली द्वारा किया गया अभिनय नहीं था।

लेनिनग्राद का सबसे पुरानी और बड़ा लाइब्रेरी "लोक पुस्तकालय" (पब्लिक लाइब्रेरी) है। मैं उसमें भी अब तब जाने लगा था। मुझे ज्यादातर काम था मध्यएसियायी विभाग के ताजिक उपविभाग से। यहां मैंने बहुत सी नई नई पुस्तकें भी देखीं, जो कि न युनिवर्सिटी के प्राच्य पुस्तकालय में थीं न अकदमी के प्राच्य प्रतिष्ठान में। पुस्तकालयाध्यक्षा बड़े स्नेह से हरेक चीज को दिखलाती थीं। यह पुस्तकालय जारशाही जमाने में भी बहुत प्रसिद्धि रखता था और हर साल हजारों पुस्तकें दूसरे देशों से भी मगाई जाती थीं। सोवियत क्रांति के बाद भी उसमें किसी तरह की कमी न करके बजट को और बढ़ाया गया था। जाड़े के दिनों में रूस की और संस्थाओं की तरह यहां भी घरके भीतर जाने के बाद एक जगह अपने ओवरकोट, हैट, और हाथ के बैग को रखना पड़ता था। मकान

गरम है, और आदमी के शरीर पर गरम सूट भी है, फिर मानो सरदी का डर क्या ? कपड़े लेकर नम्बर लगाकर रखने के लिये आदमी वहाँ तैनात रहते हैं। एक लेनिनग्राद ही म ।–७ हजार से कम आदमी ओवरकोटों की रखवाली के लिये नहीं होंगे। इसे आप अपव्यय कह सकते हैं लेकिन यह आदमी के आराम के लिये ही किया जाता है। मोटे ओवरकोट के साथ कुर्सी पर बैठना भी मुश्किल है और जहां बहुमूल्य पुस्तकें पड़ी हों, वहां थैलों को ले जाने देना भी बुद्धिसंगत नहीं है, इसलिये यह प्रबंध करना ही पड़ता है। वाचनालय में मेज कुर्सियों का जंगल सा लगा हुआ था, जहाँ सैकड़ों आदमी चुपचाप बैठे अध्ययन कर रहे थे। पुस्तकों का अंक और नाम दे देने से आपकी मेजपर उनके आने में देर नहीं लगती। अनुसंधान करनेवाले विद्वानों और विद्यार्थियों को इस तरह का सुभीता लंदन म्यूजियम के पुस्तकालय में भी है।

जर्मनी के साथ युद्ध समाप्त होते ही सोवियत और उसके पश्चिमी मित्रों का अनबन प्रकट होने लगी। जापान के मुकाबिले में सोवियत सेना जिस तेजी से साथ मंचूरिया और कोरिया को दखल करती जा रही थी, और इंग्लैंड और अमेरिका की सेनायें अपनी कमजोरी को जिस प्रकार पश्चिमी युद्ध क्षेत्र में दिखला चुकी थीं, उसे देखते हुए पश्चिमी साम्राज्यवादियों को डर लगने लगा कि कहीं ऐसा न हो कि हमारे पहुँचने के पहिले ही सोवियत सेनाएं जापान पर भी काबू कर लें, इसलिये बिना सोवियत से पूछे ही चर्चिल की राय से ट्रूमन ने जापान के हिरोशिमा और नागासाकी नगरों पर दो परमाणु बम गिरा दिये। अब युद्ध बन्द हुए दूसरा साल हो रहा था, इसलिये वैमनस्य भी बहुत आगे तक बढ़ चुका था। सोवियत ने भी अपनी जनता को सजग रखने के लिये युद्ध संबंधी फिल्मों का उत्पादन बन्द नहीं किया था। बोल्शेविक क्रांति के बाद रूस को कमजोर देखकर अरमेनिया और जार्जिया के कुछ भाग तुर्की ने हड़प लिये, और सो भी हजारों अरमेनियन नर नारियों, वृद्ध-बच्चों की बड़ा निर्मम हत्या के बाद। इस हत्या को सुनकर उस वक्त सारे पश्चिमी देश बावला उठे थे। अब सोवियत अर्मेनिया अपने खोये हुए भूभाग को लौटाने की मांग कर रही थी।

तुर्की उस देन के लिए कैसे तैयार हो जाता, जबकि अमेरिका उसकी पीठ ठोकने के लिए तयार था। अरमेनिया के हाथ से छिने, ये जिले सोवियत और तुर्की के वैमनस्य के मुख्य कारण हैं। तुर्की को चेतावनी देने के लिये ही मानो "अड्मिरल नखिमोफ" फ़िल्म बनाया गया था। १८५३ की घटना है, जबकि क्रिमिया के लिये तुर्की और रूस में झगड़ा हुआ। इंगलैंड और फ्रांस ने पीठ ठोकी और तुर्की ने सारे कालासागर को अपने हाथ में करने की कोशिश की। दोनों पश्चिमी साम्राज्य पहिले गुप्त सहायता देते रहे, लेकिन जब तुर्की को पिटते देखा तो वे भी युद्ध में कूद पड़े। इंगलैंड फिर भी चालाकी करता रहा। वह चाहता था कि बलिदान अधिकतर तुर्की और उससे भी ज्यादा फ्रान्स को देना पड़े। उस समय रूसी नौसेना का सेनापति नखिमोफ था। अपने निकम्मे दरबारियों की सलाह में जार ने नखिमोफ को अपना बेड़ा डुबा देने का हुक्म दिया, जिससे कि वह दुश्मनों के हाथ में न पड़े। लाचार होकर नखिमोफ को वैसा करना पड़ा। सेवस्तापोल की रक्षा के लिये नखिमोफ ने बड़ी बहादुरी से लड़ते हुए अपने प्राण दिये। तुर्की को अन्त में फायदा नहीं हुआ। नखिमोफ ने भी तुर्की को अन्तिम उपदेश दिया था—"तुर्की ने जब जब बाहरवालों की बात सुनी, तब तब उसे मुंह की खाना पड़ा।"

फरवरी का महीना आया। ४ फरवरी को तापमान २१°, ७ को २७°, ८ को २८°, इस प्रकार सरदी बढ़ती ही गई। १० फरवरी को सरदी भी खूब थी और बर्फ भी खूब पड़ रही थी। बर्फ गिरानेवाले बादलों के बीच से निकलकर आता सारा प्रकाश वृक्षों की शाखाओं और टहनियों में लिपटे हुए बरफ को बड़ी सुन्दर राति से चमका रहा था। टहनियां तो मालूम होती थीं, जैसे सफेद मूँगे की बेलें हों। अधिक टम्परेचर गिरने से श्वास से निकलनेवाली भाप की मात्रा ज्यादा थी। इसके अतिरिक्त काम काज में मुझे कोई कष्ट नहीं मालूम होता था। २३ फरवरी को ब्लीनी (चीले) का सप्ताह समाप्त हुआ। चीला पीना और नमकीन दोनों तरह का उत्तरी भारत में बहुत पसन्द किया जाता है। मुझे तो मीठे चीले खास तौर से पसन्द हैं। चीले को रूसी भी हमसे कम

पसन्द रहा वक्त। पुराने समय में जब उतारे थे। भाना नहीं होती थी, तो गाढ़ चाने को परतें ऊपर से मधु लगा देते थे। अपने चान-प्रेम के कारण ही स्त्रियों ने इस ब्लानी सप्ताह का अब भी कायम रखा है। आज से ८ शताब्दी पहिले, जब रूसी इसाई नहीं हुए थे, तो वह सूर्य-देवता के पूजक थे। मक्खन को उपर या पूड़े की तरह मक्का में गाढ़कर पकाया जाता रूसी भाषा में ब्लीनी कहा जाता है। गोल आकार तथा आटे के रंग के कारण पकनेपर लाल रंग और उस पर भी मधु चुपड़ने से रंग का और लाल होना—सूर्योदय के समय के सूर्य का अनुकरण है। वसंत में सूर्य के उपलक्ष्य में यह त्योहार प्राचीन रूसी लोग मनाते थे। उस वक्त खूब ब्लानी खाई जाती थी, उसी तरह जैसे कि पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार में कार्तिक की छठ का ठकुआ। कार्तिक का छठ भी सूर्य पूजा का ही त्योहार है। हमारे घर में भी ब्लानी थक्कर बन जाया करता था और ब्लीना सप्ताह में तो आने-जानेवालों को भी खिलाया जाती थी।

जान पड़ता है, ब्लीनी सप्ताह के लिए ही सूर्य भगवान् ने बर्फ को रोक रखा था। देर से ही सही, किन्तु ६ फर्वरी को ६ इंच बरफ पड़ गई। वह दिन भर पड़ती रही। हवा का भी तूफान उड़ा रहा था, सरदी बहुत थी। वह स्नान का दिन था, लेकिन स्नानागार में सरदी को घुसने की आशा नहीं था। हम स्नानागार से लौटकर स्कूल में ईगर को लाने गये। देखा पहिली वारी के लड़के स्कूल से निकल रहे हैं, और दूसरी वारी के अन्दर जा रहे हैं। साढ़े बारह बजे का समय था। लड़ाई के कारण मकानों की जो क्षति हुई थी, उसके कारण स्कूलाय इमारतों की भी कमी थी, उसी के लिये एक ही स्कूल की इमारत में आगे बारी से दो बार स्कूल लगता था।

अकदमिक बरान्निकोव ने बड़े परिश्रम और अनुराग के साथ तुलसी दास के चमत्कार रामायण का रूसी में पद्यानुवाद किया था। अकदमी ने भी उसे बढ़िया से बढ़िया रूप में छापने का निश्चय किया था।। मेरे भारत आजाने पर पुस्तक छपी और साल ही भर के भीतर बिक भी गई, जिससे मालूम होता है,

कि विद्वान् और साधारण पाठक दोनों ने बरानिकोफ के अनुवाद को पसन्द किया। पुस्तक को सजाने, चित्रित करने आदि में जहां अनुवादक ने मुझसे परामर्श लिया था, वहां तुलसीकाव्य कितना उत्कृष्ट है, इसको बतलाने के लिए रेडियो ने मा उन्हें तुलसीदास पर बोलने के लिये निमंत्रित किया था। मुझे बरानिकोफ ने मूल चौपाइयों को दोहरा देने के लिये कहा। २८ फर्वरी को हम दोनों रेडियो-कार्यालय में गये। मैंने साधारण लय में मूल को पढ़ा और बरानिकोफ ने अपनी भूमिका के बाद उसका पद्यानुवाद रूसी में पढ़ा। रेडियो स्टूडियो वाले अनुलसर चाड़े स्वर जैसे फीतेपर शब्दों को उतरवा कर समय अनुकूल करने के लिये फीते को काट छांट रहे थे। मैंने देखा, दो तीन हाथ फीता नेचा से काटकर उन्होंने फेंक दिया और जोड़कर भाषण को फिरसे सुनवाया। पहिली बार मुझे अपना स्वर सुनने का मौका मिला था। मुझे विश्वास नहीं हो रहा था, कि यह मेरा ही स्वर है। हरेक आदमी समझता है, कि मैं अपने ही स्वर को सुन रहा हूँ, लेकिन वस्तुतः कोई अपने स्वर को नहीं बल्कि अपनी प्रतिध्वनि को सुनता है, जो प्रति ध्वनि उतनी साफ नहीं होती, जो अच्छे रेडियो या फोनोग्राफ के रिकार्ड से निकलती है। फिल्म को काटकर फेंक देने के बारे में रेडियोवाले कहते थे—कोई परवाह नहीं, हमें क्या दूसरे देश से मंगवाना है। हां, रूस सभी चीजें अपनी तैयार करता है, वह परमुखापेक्षी नहीं है, और न चीजों को दूसरे देशों से मगाने के लिये उसे विदेशी विनिमय की भारी रकम भेजनी पड़ती है।

आज सात बजे से ईरानी सम्मेलन भी हो रहा था। मैं वहां गया। अकदमिक फ्राइमान का ईरानी संस्कृति के किसी पहलूपर भाषण हुआ। ऐनी के भी आने की आशा थी, लेकिन स्वास्थ्य के कारण वह नहीं आये। ताजिक (फारसी) के महान् कवि लाहूती आये थे। लाहूती की कविताओं को मैं पढ़ चुका था और मेरे पास उनकी कुछ पुस्तकों का संग्रह भी था। श्वेत-केश, रूसियों जैसे गोरे, चमकीला आंखोंवाले इस महान् कवि को अपने क्रान्तिकारी विचारों के कारण ईरान छोड़ना पड़ा, किन्तु २४ साल से उसकी मातृभूमि

तानिस्तान है, जहाँ का वह महान् नागरिक और महान् कवि है।

पहिला मार्च (१९४७) को सर्दी हिमबिन्दु से २३° नीचे था। पिछले साल तापमान २८° तक पहुँचा था और इस मास–२६° तक पहुँच ही सप्ताह पहुँची था। लेकिन लंदन की तरह यहाँ कोई नहीं कहता था– ऐसी सर्दी तो पहिले सौ साल में कभी नहीं पड़ी थी। खेत में शरद में बोये गेहूँ जमकर बर्फ के नीचे दबे रहते हैं, जो बर्फ पिघलने के बाद ही बड़ी तेजी से बढ़कर वसंत के बोये गेहूँ से जल्दी पक जाते हैं। जाड़े के गेहूँ को तभी हानि पहुँचती है, जबकि बर्फ पतली या नहीं हो, और सर्दी ज्यादा पड़े। ऐसी सर्दी गेहूँ के पौधों को मार देती है। लेकिन जाड़े के गेहूँ के ठंडे होने का डर नहीं था, क्योंकि जहाँ उसकी बोआई ज्यादा हुई थी, वहाँ बर्फ की मोटी तह पड़ी हुई थी। अब तो बर्फ काफी पड़ गई थी।

मुहल्ले की क्लब की नाट्यशाला में प्रेम बालकों के लिये अक्सर फिल्म और दूसरे प्रदर्शन हुआ करते थे, कभी कभी बड़े बच्चों का भी तमाशा होता था। २ मार्च को लड़कों का प्रोग्राम था और इतना मनोरंजक था, कि शाला में बैठने की जगह नहीं रह गई थी। बन्दरों का तमाशा होनेवाला था। मुहल्ले के सैकड़ों बच्चे भी आकर तमाशा देखने के लिये अपनी सीटों पर जम गये थे। उनको हल्ला गुल्ला और मार पीट से रोकना आसान नहीं था। थोड़ी ही देर में सारा हाल उनके शोर से भर गया। लेकिन बालकों के लिये तमाशा करनेवाले उनके मनोविज्ञान से भी परिचित होते हैं। तुरन्त हारमोनियम लिये एक पुरुष और उसके साथ प्रश्नोत्तर करनेवाली स्त्री रंगमंच पर आ गई। उसने कुछ प्रश्न किये, कुछ पहेलियाँ कहीं और कुछ गाने गाये, इस तरह मिनट भी नहीं बीता, कि लड़कों के ऊपर पूरा तौर से नियंत्रण कायम हो गया। खेल के साथ सरकस भी था, जिसमें एक बन्दर, ४ भालू, ४ कुत्ते, १ भेड़िया, १ बकरी, १ गिलहरी पार्ट ले रहे थे। कुत्ते, भालू नाच भी करते थे, उनका "गाना" भी बड़ा मनोरंजक था। लड़के खेल खतम हो जाने के बाद भी और की प्रतीक्षा में उठना नहीं चाहते थे, लेकिन आखिर उठना ही पड़ा और सब अपने निवा

न थाव के खेल की चर्चा करते खुश-खुश घर लौटे।

३ मार्च को स्नान का दिन था। सरदी कम रही, लेकिन बर्फ गिर पड़ी थी। स्नानागार जाते समय भी अपने चमड़े के ओवरकोट और चमड़े की टोपी को छोड़ा नहीं जा सकता था। उस दिन स्नानागार में बड़ी भीड़ रही, क्योंकि भाड़ लड़कों की ५० ४० की दो पांतियां आ रही थीं। ये लड़के युद्ध की उपज थे। युद्ध में मां-बाप के मरने या आश्रय हीन रहने के कारण मारे मारे फिरते हुए, और जगह जगह भीख मांगते तथा सभी तरह खाते पीते दुनिया की सैर करते ऊधम मचा रहे थे। युद्ध में जो मां-बाप के लड़कों को लाखों की संख्या में लोगों ने दत्तक पुत्र बनाया था। मध्यएसिया के तुर्कों और तातिकों के परिवारों में भी यूरोपीय दत्तक पुत्र पल रहे थे। इस प्रकार अनाथ बच्चों को उतना अधिक कष्ट नहीं हुआ, जितना कि ऐसी स्थिति में किसी पूंजीवादी देश में होता, तो भी कुछ मनचले लड़के किसी के दत्तक पुत्र न हो मनमाना घूमना और मनमाना करना पसन्द करते थे। उन्हें वैसी अवस्था में छोड़ देनेपर जहां उनके बिगड़ने का डर था, वहां उनकी शिक्षा का समय भी चला जाता, इसलिये सोवियत ने जगह जगह बच्चों के घर स्थापित किये थे, जिनमें उनके पालन पोषण और शिक्षा-दीक्षा का प्रबंध था, लेकिन बिगड़े लड़के जरा सा मौका पाते ही भागने के लिए तैयार हो जाते हैं, इसलिये उन्हें कड़े शासन में रखना पड़ता था। वह हर हफ्ते पांती बांधकर स्नानागार में जाते थे। सारे देश में पुलिस की तानाशाही था, कि भगेड़ू लड़कों को पकड़कर नजदीक के बालगृह में भेज दें। इनके अतिरिक्त युद्ध में मृत सैनिकों के होनहार लड़कों के लिये सुवारोफ सैनिक स्कूल स्थापित थे, जिनमें उन्हें शिक्षा के साथ भविष्य के सैनिक अफसर बनने का अवसर दिया जाता था। क्रांति दिवस या मई दिवस में जब सुवारोफ स्कूल के बच्चे अपनी सुन्दर वर्दी में बड़ी शान के साथ परेड करते लाल मैदान में निकलते, तो कितनी ही देर तक तालियों की गूंज होती रहती।

भारत की आयी चिट्ठियों की विचित्र हालत थी। अमृतराय की चिट्ठी बनारस से एक महीने में पहुंच गई और मेरी चिट्ठी भी उन्हें एक

महाने में मिल गई, किन्तु ग्रानन्दजी के पास मेरा हवाई चिट्ठी ७ महीने में पहुँची ! हवाई डाक पर क्या भरोसा हो सकता था ? जिस दिन (६ मार्च) को यह चिट्ठियाँ मिलीं, उसी दिन मैंने दाखुन्दा का (ताजिक भाषा) का उर्दू में अनुवाद समाप्त किया था। समय काटने के लिये मैंने सोचा, भारत जाकर अनुवाद करने की जगह यहीं अनुवाद कर लूँ, तो अच्छा। उर्दू में ताजिक (फारसी) के मूल शब्द बहुत रखे जा सकते थे, इसलिये मैंने पहिले उर्दू में ही तर्जुमा किया। सोवियत में रहते ही मध्य एसिया के महान उपन्यासकार ऐनी के "दाखुन्दा" और "गुलामान" दो उपन्यासों का उर्दू में अनुवाद कर लिया था। दो दो कापी करने के लिये समय नहीं था और उसी एक कापी को डाक और सेन्सर की गड़बड़ी में भारत भेजना बुद्धिमानी की बात नहीं थी।

१७ मार्च को सरदी हिमबिंदु से १०° नीचे थी, जिसे हम गरमी मानने लगे थे। अब सूर्य के दर्शन भी अक्सर हो जाते थे, लेकिन वसन्त में अभी डेढ़ महीने की देर थी, हमारे यहाँ और लेनिनग्राद के वसन्त में इतना अन्तर होता है। हमारे यहाँ पतझड़ और वसन्त एक साथ आते हैं, किन्तु रूस में पतझड़ सितम्बर में और वसन्त मई में आता है। मद्रास की तरफ जानेपर तो वसन्त और पतझड़ का ही नहीं बल्कि सारी ऋतुओं का आगमन एक ही साथ होता है, अन्तर केवल वर्षा और अवर्षा का है।

समय बीतता जा रहा था। वह दिन भी आनेवाला था, जब युनिवर्सिटी की पढ़ाई का वर्ष खतम हो जायेगा और मैं यहाँ से चल पड़ूँगा। सबसे ज्यादा फिकर इस बात की थी, कि कौन रास्ता पकड़ा जाय ? लंदन का रास्ता बहुत चक्कर का था। ओदेस्सा (काला सागर) से जहाज पर समुद्र द्वारा बम्बई पहुँचने का रास्ता था। तीसरा रास्ता ईरान से था, किन्तु आगे रास्ते से लोग खुश पसन्द नहीं है। चौथा रास्ता स्थलमार्ग का अफगानिस्तान होकर था, जो सबसे समीप का भी था। लेकिन दिक्कत यह थी कि मेरे पास विदेशी विनिमय का ना एक था वह सोवियत या भारत में ही भुनाया जा सकता था। सोवियत रूबल का कमी नहीं थी, किन्तु वह तेरमिज (आमूदरिया तट) तक ही काम

आ सकते थे। तेरमिज में दरिया पार होते ही अफगानिस्तान आ जाता, जहाँ सोवियत के सिक्के बेकार हो जाते, और वैधानिक तौर से हम अपने साथ उन्हें ले भी नहीं जा सकते थे। पाम के पामपर उतर कर मजारशरीफ तक का किराया कहाँ से आता और मजारशरीफ से काबुल जाने का भी सवाल था। भाग्य भरोसे यात्रा करना मेरे लिये कोई नई बात नहीं थी शायद मानकर वहाँ भी रास्ता निकाल देता या पास की कुछ चीज बेचकर किराये का पैसा जमा कर लेता, किन्तु मेरे पास जो ढाई वर्षों में काम की बड़ी दुर्लभ पुस्तकें जमा हो गई थीं, और प्राय सभी रूसी भाषा में थीं, उनके लिये खतरा हो सकता था। कम्युनिज्म से सभी देशों के शासक पनाह माँगते हैं, यदि उन्होंने कुछ किताबों को रख लिया तो?

१२ मार्च को एक और दुखद घटना सुनी। लिथुआनिया में उत्पन्न बहुत सी भाषाओं के पण्डित डाक्टर मिल्कोविच मर गए। मिल्कोविच लंदन में भी रहे थे, लंदन युनिवर्सिटी के पी० एच्० डी० थे। यूरोप की नयी पुरानी तथा ईरानी और उससे संबंध रखनेवाली कितनी ही भाषाओं के अच्छे पण्डित थे। लिथुआनिया पर जब जर्मनों का हमला हुआ, तो वह वहाँ से सोवियत की ओर भाग आये। सारी लड़ाई भर कोई न कोई काम करके गुजारा करते रहे। यहूदी होने से उनको जर्मनों से जितना डर था, उससे कम सोवियत विरोधी हो नहीं सकते थे। ४–५ साल तक सोवियत में शरणार्थी होकर घूमते अब युनिवर्सिटी में आये थे। नौकरी के लिये युनिवर्सिटी में बहुत सी जगहें खाली थीं। उन्हें आशा थी, कि कोई काम मिल जायेगा। वह प्राच्य विभाग के पुस्तकालय में रोज आते, और धीरे धीरे बहुत से लोग उनके परिचित और मित्र बन गये थे। राष्ट्रीय महत्व के काम न करनेवालों के लिये राशन टिकट बन्द हो गया था, इसलिये बेचारे मिल्कोविच पर भारी विपता आयी। उनकी पत्नी और एक छोटा बच्चा था। तीनों को राशनविहीन खाद्य से गुजारा करना बहुत मुश्किल था। बड़ी दौड़-धूप लगायी, सब तैयार थे, पर हमारे विभाग का दल-सेक्रेटरी ऐसा मूर्ख मिला था, कि उसने इन्कार कर दिया। कहा—लंदन का पी० एच्०

डी० है, क्या जाने अंग्रेजों का गुप्तचर हो। उसकी इस राय के विरुद्ध किसी को जाने की हिम्मत नहीं थी। प्रो० स्टाइन हमारे डीन यहूदी थे, इसलिये वह भी कोई कदम उठाना नहीं चाहते थे। मालूम हुआ, थोड़ा बहुत जो खाना मि वोचिकम जमा कर पाते, वह अपनी शिशु बच्चेवाली पत्नी को दे देते, और खुद कोई बहाना करके भूखे रह जाते। मिल्नोचिकम का स्वास्थ्य बहुत अच्छा नहीं था। इस अनाहार से वह धीरे धीरे घुलने लगे। अन्त में एक दिन प्राणों ने उस शरीर को छोड़ दिया और एक प्रतिभाशाली भाषातत्त्वज्ञ से देश को वंचित हो जाना पड़ा। मिल्नोचिकम का खून किसी के सिरपर तो जरूर पड़ना चाहिये। लेकिन उसका दोषी हम साम्यवाद या रूस की कम्युनिस्ट पार्टी को नहीं कह सकते। लेनिनग्राद में कुछ मूर्ख उस समय पार्टी के सर्वेसर्वा हो गये थे जिन्हें दो साल बाद दण्ड अवश्य मिला, लेकिन उस वक्त तो वह अपनी हरकतों से अनर्थ कर डालने में समर्थ थे। इसी तरह एक मंगोल विद्वान् भी उस समय अध्यापक का काम ढूँढने लेनिनग्राद आया था। वह पिछले षड्यंत्रों में नाम के साथ घुन की तरह पिस गया था और कुछ मास जेल में रहकर अभी अभी छूटा था। जैसे उसने युनिवर्सिटी में साइंस की शिक्षा पाई थी, लेकिन मंगोल बौद्ध होने के कारण पहिले अपनी धर्मभाषा तिब्बती को कुछ पढ़े हुए था, और जेल में उसे और पढ़ने का मौका मिला। ८ साल में उसने तिब्बती भाषा का बहुत अच्छा अध्ययन कर लिया था। आजकल प्राच्य विभाग में तिब्बती भाषा के अध्यापक की आवश्यकता भी थी। विभागीय पुस्तकालय में हो एक ऐसे व्यक्ति की जरूरत थी। वह भी समय समय पर पुस्तकालय में बैठकर अध्ययन करता और प्रश्नकर्ताओं की मदद करता था। उसे भी अध्यापक नियुक्त करना लोग चाहते थे, किन्तु मिल्नोचिकम के साथ अन्याय करनेवाला वही मूर्ख फिर बाधक हुआ। कहा—राजद्रोह में जिसको सजा हुई है, उसे कैसे नौकर रखा जा सकता है? लेकिन मंगोल विद्वान् को मिल्नोचिकम की हालत में पहुँचने की आवश्यकता नहीं पड़ी। कुछ मंगोल (बुरियत) लेनिनग्राद में रहते थे, जिनकी सहायता से रेल पर चढ़कर वह फिर अपने देश को लौट गया। यह काले दाग हैं, जिनको

कि गयत उज्वल वस्त्र पर रहना बहुत खटकता है। इसमे शक नहीं कि सोवियत के शासक इसके लिये आरम्भ मी रखते हैं, और पता लगते ही बिना रियायत के अपराधी को दण्ड मी देते है।

पूर्वी भाषाओं के पढाने म सबमे अधिक कठिनाई उच्चारण की थी। मै अपने विद्यार्थियों के उच्चारण को ठीक करने का काफी प्रयत्न करता था। हमारे अध्यापकों ने जब सुना, कि म मारत लौट रहा हूं—यद्यपि उस वक्त मने दो वर्ष के लिये ही जाने की बात कही थी—तो उन्होंने कहा, कि मै उच्चारण के लिये कुछ ग्रामोफोन रिकार्ड म बोल दू। युनिवर्सिटी के साथ बहुत सा फोटोग्राफी का विभाग भी है। फिल्मों फिल्म और ग्रामोफोन जसे विभागों को सुनकर हमारे यहां शायद आश्चर्य किया जाय, लेकिन रूस म साधन-सम्पन्न हुए बिना शिक्षण संस्थाओं के कार्य म बाधा होती है, इसका ख्याल रखा जाता है। ग्रामोफोन रिकार्ड करने का विभाग हमारे प्राच्य विभाग की इमारत के पास म ही था। मने वहां संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, उर्दू, और तिब्बती भाषा के ग्रंथों के पाठ रिकार्ड कराये।

२४ मार्च को दिल्ली रेडियो म भारत म हुई अन्तर् एसिया कान्फ्रेंस की रिपोर्ट सुनी। वक्ताओं न अपनी भाषा म कितने ही भाषण किये थे। सोवियत के प्रतिनिधियों में गुर्जी (स्तालिन का जाति), कजाक, और उजबेक प्रतिनिधि भी थे। एसिया का इतना बड़ा सम्मेलन बहुत दिनो बाद भारत की भूमि पर हुआ था। मुझे नालंदा का ख्याल आता था, जहांपर कि मध्यएसिया तथा सारे पूर्वी एसिया के ज्ञान पढ़ने के लिये आया करते थे। भारत को फिर एकबार अपने पुराने सबधों को जाग्रत करने का अवसर मिला। यद्यपि उस समय भी बौद्धधर्म ने आक्रमणकारी संस्कृति का प्रचार नहीं किया था, बल्कि जिस देश म भी वह गया, वहा की संस्कृति की रक्षा करते हुए अपनी देन से उसे आगे बढाने का प्रयत्न किया, तो भी आज के युग में तो भिन्न भिन्न संस्कृतियों के संघर्ष का कोई कारण नहीं है। संघर्ष का कारण तो वस्तुत आर्थिक शोषण होता है। आर्थिक शोषण हटा दीजिये, तो संस्कृतियों का समन्वय बड़ा मधुरता के साथ हो

जाता है। सोवियत रूस इसका उदाहरण है। मध्य-एसिया इस्लामिक संस्कृति में पला है, रूसी अपने इतिहास के आरम्भ ही में स्लाव संस्कृति को अपना मानते आये हैं, मंगोल बौद्ध संस्कृति को अपना जाति से अभिन्न अंग देख नहीं सकते। इनके अतिरिक्त यहूदी धर्म के अनुयायी सारे रूस में बिखरे हुए हैं, और जिनकी एक भौगोलिक इकाई स्थापित करने के लिये सुदूर पूर्व में बोरोबिजान का एक स्वायत्त शासित भू-भाग स्थापित किया गया है। इन संस्कृतियों में काफी भेद है, और पिछले इतिहास को देखने पर मालूम होता है, कि उनका पारस्परिक संबंध कितना कटु था। धर्म निर्भर संस्कृति के अतिरिक्त रक्त में भी परस्पर भेद था, जो कि ऊँच नीच के भावों का उभारने का कारण बन जाता था। लेकिन आज सारी संस्कृतियाँ परस्पर नीरक्षीर हो गई हैं। एक दूसरे के भावों को आदर की दृष्टि से देखते हैं और एक दूसरे के बातों का सम्मान करने में पीछे नहीं रहते। संस्कृतियों का सुंदर समन्वय कैसे हो सकता है, इसका रास्ता सोवियत रूस ने दिखलाया है, लेकिन उसके लिये आर्थिक शोषण का अन्त होना आवश्यक है।

तिरयोकी में एक वृद्ध आरमेनियन संगीतकार से मेरा परिचय हुआ था। वह लेनिनग्राद के गिने चुने उस्तादों में से थे। ४ मास वह लेनिनग्राद की प्राचीन और प्रतिष्ठित कंसर्वतरी (संगीत विद्यालय) में प्रोफेसर का काम करते, और ८ महीने अपना जन्मभूमि की राजधानी येरवान नगरी में। उनके निमंत्रण पर २६ मार्च को हम उनके घर गये, जहाँ एक और ७० वर्षीया वृद्धा महाताचार्या निमंत्रित था। वृद्धा के साथ उनका तरुण नाती (बेटी का लड़का) भी आया था। २ वर्षीय तरुण यमी साइंस का विद्यार्थी था, लेकिन संगीत तो उसके खून में था इसलिये उसमें भी उसकी काफी गति थी। जन संगीत को वह बहुत पसन्द करता था और इसके लिये अपनी छुट्टियों को एसिया और दूसरी जगहों की जातियों के जन संगीतों के अभ्यास और संग्रह में बिताता था। भारतीय संगीत के बारे में मैं क्या बतला सकता था? मैंने पहिले ही कह दिया कि संगीत और नाच यह मेरे लिये दो सर्वथा अपरिचित से विषय हैं, उनके

और न मेरा कोई विशेष रुचि है न गति। मैं तो शायद अपने को उनके संबंध में शून्य समझ सकता था, किन्तु वृद्ध संगीत— विशेष कर जन-संगीत और कुछ कविताओं विशेषकर जनकविताएं और दूसरी कविताओं में मेरा हृदय आप्लावित हो जाता है, इसलिये अपने को सर्वथा शून्य नहीं कह सकता। भारतीय संगीत के बारे में कुछ न कह सकने की जगह मैंने अपने साथ लाए दो ग्रामोफोन रिकार्डों को रख दिया। उनमें में एक में मामूली चलता सिनेमा का गाना था, जिसे बड़ी अरुचिपूर्वक दोनों वृद्ध वृद्धाओं ने सुना और अलग रखवा दिया। सौभाग्य से "तानसेन" फिल्म में गाये दो गाने के भी रिकार्ड थे, जिनमें भारतीय संगीत का ज्यादा शुद्ध रूप था, जिसे बहुत पसन्द किया गया। मैंने दोनों संगीत विशेषज्ञों से पूछा भारतीय संगीत को अन्तर्राष्ट्रीय नोटेशन में लिखा जा सकता है? वृद्धा ने इसके जवाब में किसी अमजा शोधपत्रिका के पुराने दो तीन अंक निकाल कर रख दिये। वहां हमारे रागों को यूरोपीय नोटेशन में बद्ध किया गया था। लेकिन छपे हुए नोटेशन तो मेरे लिये भैंस के आगे बीन बजाना था। इसपर वृद्धा के नाती ने कहा मैं नोटेशन में बांधकर सुनाता हूं। रिकार्ड फिर लगाया गया। उसने जल्दी जल्दी कागजपर नोटेशन लिख लिया। फिर "बरसो रे बरसो रे" के राग को पियानोपर बजाकर दिखा दिया। उन्होंने कहा किसी भी वास्तविकता को रेखाओं में बाँधना सम्भव नहीं है, यह बात संगीतपर भी घटती है। नोटेशन का काम है स्वर और लय में वास्तविकता के समीप तक पहुँचने में सहायता करना। मैंने देखा, यह काम पूर्ण हो गया था। फिर मुझे ख्याल आया— हमें भारतीय संगीत के लिये अन्तर्राष्ट्रीय नोटेशन को अपनाना चाहिये। न अपनाकर हम अपना ही नुकसान करेंगे। नोटेशन बद्ध भारतीय संगीत की महिमा को दुनिया के वे लोग समझने लगेंगे, जिनके लिये यह बन्द हुई पुस्तक सी है। अन्तर्राष्ट्रीय नोटेशन का उद्गम चाहे यूरोप रहा हो, किन्तु आज वह जापान तक एसिया के सारे देशों में प्रचलित है। संकीर्ण राष्ट्रीयता के फेर में पड़कर उसका बायकाट करना हमारे लिये न श्रेयस्कर है, न वाञ्छनीय ही। तरुण ने कई एसियायी जातियों का

गाकर सुनाया। संगीत के लिए शुष्क सा मेरा हृदय भी उस मंडली में सरस हो उठा था।

२७ मार्च को युनिवर्सिटी जाते समय रास्ते में पानी ही पानी दिखाई पड़ा। नेवा में भी बरफ के ऊपर पानी तैर रहा था। अबके साल हमारे लिए नेवा ने रास्ते का काम बहुत कम समय दिया। अब तो लोग उसकी नमी धार पर भी विश्वास नहीं करते थे—क्या जाने कहीं बरफ पतला हो और बोझ सह न सके, फिर गड्ढे से गिरकर समुद्र में पहुंचने की किसको इच्छा होती? आज हिंदी उर्दू की कविताएं, तथा यजुर्वेद के कुछ सस्वर मंत्रों का रिकार्ड करवाया।

२८ मार्च को मानवतत्व संग्रहालय में फिर गये और वहाँ के पुरातत्व विशेषज्ञ से देर तक बातें करते रहे। अर्थोपार्जन की कठिनाई से निश्चित होने के कारण सोवियत विद्वानों को शास्त्रचर्चा करने के लिए काफी समय मिलता है और उसकी तरफ उनकी रुचि भी होती है। अपने विषय में जिसकी रुचि नहीं वह उस विषय के अध्ययन और अध्यापन की ओर पैर ही नहीं बढ़ाता—यह सभी लोगों को काम मिलने की गारण्टी का परिणाम है। उक्त विद्वान से मैं मध्यएसिया के प्रागैतिहासिक काल पर बातें कर रहा था। उन्होंने निम्न बातें बतलायीं—

उजबेकिस्तान—यहां मूस्तर (नियंडर्थल) मानव के शरीरावशेष तेशिक्ताश की गुफा में मिले हैं। पास में ही अमीर तेमूर गुफा में हड्डियाँ तो नहीं किन्तु उनके पाषाणास्त्र मिले हैं। तेरमिज के पास मचई गुफा में मूस्तर और मध्यपाषाणयुगीन हथियार मिले हैं। समरकन्द इलाके में ऊपरी पुरापाषाणयुग के हथियार प्राप्त हुए हैं।

ताजिकिस्तान—यहां पर पाषाणयुग के अवशेषों वाली बहुत सी गुफायें हैं, मगर अभी खुदाई का काम नहीं हुआ है।

तुर्कमानिस्तान—में वक्षु नदी का पुराना धार उजबोया के कास्पियन समुद्र से मिलने के स्थान पर मनक्शिलक में ऊपरी पुरापाषाण और मध्य पुरापाषाणयुगों के हथियार प्राप्त हुए हैं। यह स्मरण रखना चाहिए कि किसी समय वक्षु (आमूदरिया) आज की तरह अराल समुद्र में न गिरकर कास्पियन में

है, और यहां से जूकोफ दिल्ली जा रहे हैं। हमारे रहने तक विजयलक्ष्मी न
नहीं आई और पीछे जूकोफ नहीं, दूसरे दूत सोवियत की तरफ से दिल्ली भेज
गये। अप्रैल के पहिले हफ्ते से अब भारतीय अखबार भिन्न भिन्न भाषाओं में
काफी संख्या में मेरे पास पहुंचने लगे। यद्यपि ये दो-दो महीने के पुराने थे,
किन्तु उनसे देश की बहुत सी बातें मालूम होती थीं। ताजी खबरों के लिए
रेडियो पास था ही। हां, किसी अखबार के मारे असर नहीं मिल रहे थे।
मालूम होता था, कुछ तो समाचारपत्र भी रास्ते ही में भटक जाते हैं। लेकिन
जो भी मिल जाते थे, हम तो उन्हें ही गनीमत समझते थे। काश, यदि यह बात
डेढ़ वर्ष पहिले से हुई होती? ८ अप्रैल को एक नया भी काम हमारे पास आया।
वह था रूसी फिल्मों का हिंदी भाषांतर करना। "शपथ" फिल्म के सिनारियो
को हमारे पास रूसी से हिन्दी में तर्जुमा करने के लिये भेजा गया था। इसमें
जितना अभिनय था, उतना वार्तालाप नहीं था। कुल ७४ पृष्ठ की सामग्री रही
होगी। फिल्म विभाग ने इसके अनुवाद करने के लिये साढ़े चार हजार रूबल
पारिश्रमिक देने के लिये लिखा था। खैर, रूबल बुरे तो नहीं थे, किन्तु मुझे
उनकी उतनी परवाह नहीं थी। उन्होंने यह भी लिखा था, कि हम ऐसे बहुत से
फिल्मों का अनुवाद-कार्य आपको देंगे। उधर पत्रों-पत्रिकाओं ने भी लेख
दन का आग्रह किया था और मैंने एक लेख लिखा भी था। अब भी
में अकदमिक बराणिकोफ का रास्ता कुछ छोटे आकार में सामने
लगा था। रेडियो की भी मांग शुरू होगई थी। भारतीय इति
रखनेवाला सामग्री एकत्रित और मानवत व स्युनियमों में था
परामर्शदाता होने की बात चलने लगी। सोवियत में किसी चिज़
मुफ्त नहीं लिया जाता। हर जगह काम करने के लिये पारिश्र
इसलिये जहां तक पैसे का सवाल था, उसकी बाढ़ सी आने
की और से तीन चार कमरोंवाले अच्छे मकान की भी पू
गंभीरता से होने लगा थी। हमारे सामने अब प्रश्न था—क
का न मन रिजाये, या भारत लौटकर अपने मानसिक

पहिला रास्ता मुझे जीवन मृत्यु जैसा मालूम होता था। ऐसा आराम का जिन्दगी लेकर क्या करना था, यद्यपि वास्तविक काम को मैं यहां रहकर ठीक तरह से कर नहीं सकता था। भारत से आये ढाई वर्ष से अधिक हो गये थे। भारत में रहते इतने समय में दो ढाई हजार पृष्ठ तो जरूर लिखा होता। इन ढाई वर्षों में मेरा दिमाग खाली बैठा नहीं था, कितनी ही पुस्तकों की कल्पना मन में तैयार हो रही थी, जिनको यहां रहकर कागज पर उतारना बेकार था, क्योंकि इसमें बहुत सदेह था, कि सेंसरा की मार से बचकर वह प्रेस में पहुचने में सफल होतीं। मुझे यह निश्चय करने में जरा भी कठिनाई नहीं हुई, कि मैं जीवन मृत्यु को कभी पसन्द नहीं कर सकता। दिल में जो इसके कारण कसक होती थी, उसी को मिटाने के लिये ही मैंने "दाखुन्दा" "गुलामान" का अनुवाद करना शुरू किया था। "दाखुन्दा" समाप्त होकर ६ अप्रेल को "गुलामान" (जो दास थे) में भी ३६४ पृष्ठ तक पहुच गया था। प्रति सप्ताह २०० पृष्ठ की गति थी। लेकिन जब उनके प्रकाशित होने का ख्याल आता, तो रास्ता नहीं दिखलायी पड़ता।

६ अप्रेल को ईसाइयों का ईस्टर रविवार बहुत बड़ा त्योहार आया। कैथलिक उसे आज मना रहे थे, लेकिन रूस में ग्रीकचर्च की प्रधानता है, जिसका त्योहार अगले (१३ अप्रेल) रविवार को होनेवाला था। लोला के पितामह फ्रेंच कैथलिक थे, जिसके कारण पिता और लोला भी कैथलिक रहे। आज वह इगर को लेकर कैथलिक चर्च में पूजा प्रार्थना करने गयीं। घर में तो इगर रोज ही इसामसीह की प्रार्थना कर लिया करता था, लेकिन चर्च के भीतर जाने का उसे यह पहिली ही बार मौका मिला था। बोजिन्का (भगवान्) के दर्शन के लिये बड़ा उतावला हो रहा था। समझता था, कि गिर्जे में जरूर भगवान विराज रहे होंगे। वहां मैं तो नहीं गया था, लेकिन उसकी मां के मुह से सारी बातें सुनीं।' वह सामने बैठा रो रहा था। एक भक्तिन बुढ़िया ने देखकर कहा—"कैसा सुन्दर हृदय लड़का है, भगवान् की भक्ति में गद्गद् होकर रो रहा है।" ईगर बहुत चाहता था कि भगवान् के पास पहुचे,

है, और यहां से जूकोफ दिल्ली जा रहे हैं। हमारे रहने तक विजयलक्ष्मी जी नहीं आई और पीछे जूकोफ नहीं, दूसरे दूत सोवियत की तरफ से दिल्ली भेजे गये। अप्रल के पहिले हफ्ते से अब भारतीय अखबार भिन्न भिन्न भाषाओं में काफी संख्या में मेरे पास पहुचने लगे। यद्यपि सभी २-३ महीने के पुराने थे, किन्तु उनसे देश की बहुत सी बातें मालूम होती थीं। ताजी खबरों के लिए रेडियो पास था ही। हां, किसी अखबार के सारे अंक नहीं मिल रहे थे। मालूम होता था, कुछ को समाचारपत्र अभी रास्ते ही में भटक लेते हैं। लेकिन जो भी मिल जाते थे, हम तो उन्हें ही गनीमत समझते थे। काश, यदि यही बात डेढ वर्ष पहिले से हुई होती? ८ अप्रैल को एक और भी काम हमारे पास आया। वह था रूसी फिल्मों का हिन्दी भाषांतर करना। "शपथ" फिल्म के सिनारियो को हमारे पास रूसी से हिन्दी में तर्जुमा करने के लिये भेजा गया था। इसमें जितना अभिनय था, उतना वार्तालाप नहीं था। कुल ७४ पृष्ठ की सामग्री रही होगी। फिल्म विभाग ने इसके अनुवाद करने के लिये साढे चार हजार रूबल पारिश्रमिक देने के लिये लिखा था। खैर, रूबल बुरे तो नहीं थे, किन्तु मुझे उनकी उतनी परवाह नहीं थी। उन्होंने यह भी लिखा था, कि हम ऐसे बहुत से फिल्मों का अनुवादकार्य आपको देंगे। उधर पत्रों-पत्रिकाओं ने भी लेख लिख देने का आग्रह किया था और मैंने एक लेख लिखा भी था। अब भी आय के बारे में अक्दमिक बरान्निकोफ का रास्ता कुछ छोटे आकार में सामने दिखाई पड़ने लगा था। रेडियो की भी मांग शुरू होगई थी। भारतीय इतिहास से संबंध रखनेवाली सामग्री एर्मिताज और मानवतत्त्व म्यूजियमों में थी, वहां पर विशेषज्ञ परामर्शदाता होने की बात चलने लगी। सोवियत में किसी विद्वान् से कोई काम मुफ्त नहीं लिया जाता। हर जगह काम करने के लिये पारिश्रमिक नियत था। इसलिये जहां तक पैसे का सवाल था, उसकी बाढ सी आने वाली थी। युनिवर्सिटी की ओर से तीन चार कमरोंवाले अच्छे मकान की भी पूछताछ अब ज्यादा गंभीरता से होने लगी थी। हमारे सामने अब प्रश्न था — क्या यहां रह कर आराम का जीवन बितायें, या भारत लौटकर अपने साहित्यिक काम को जारी करें।

पहिला रास्ता मुझे जाता मृत्यु जैसा मालूम होता था। ऐसा आराम की जिन्दगी लेकर क्या करना था, जबकि वास्तविक काम को मैं यहां रहकर ठीक तरह से कर नहीं सकता था। भारत से आये ढाई वर्ष से अधिक हो गये थे। भारत में रहते इतने समय में दो-ढाई हजार पृष्ठ तो जरूर लिखा जाता। इन ढाई वर्षों में मेरा दिमाग खाली बैठा नहीं था, कितनी ही पुस्तकों की कल्पना मन में तैयार हो रही थी, जिनको यहां रहकर कागज पर उतारना बेकार था, क्योंकि इसमें बहुत सन्देह था, कि सैंसर की मार से बचकर वह प्रेस में पहुंचने में सफल होतीं। मुझे यह निश्चय करने में जरा भी कठिनाई नहीं हुई, कि मैं जीवन मृत्यु को कभी पसन्द नहीं कर सकता। दिल में जो इसके कारण कसक होती थी, उसी को मिटाने के लिये ही मैंने "दाखुन्दा" "गुलामान" का अनुवाद करना शुरू किया था। "दाखुन्दा" समाप्त होकर ६ अप्रेल को "गुलामान" (जो दास थे) में भी २६४ पृष्ठ तक पहुंच गया था। प्रति सप्ताह २०० पृष्ठ की गति थी। लेकिन जब उनके प्रकाशित होने का ख्याल आता, तो रास्ता नहीं दिखलाया पड़ता।

६ अप्रेल को ईसाइयों का ईस्टर रविवार बहुत बड़ा त्योहार आया। कम्युनिस्ट उसे आज मना रहे थे, लेकिन रूस में प्राक्सवर्च की प्रधानता है, जिसका त्योहार आने (१३ अप्रेल) रविवार को होनेवाला था। लोला के पितामह फ्रेन्च कैथलिक थे, जिसके कारण पिता और लोला भी कैथलिक रहे। आज वह इगर को लेकर कैथलिक चर्च में पूजा प्रार्थना करने गयीं। घर में तो इगर रोज ही ईसामसीह की प्रार्थना कर लिया करता था, लेकिन चर्च के भीतर जाने का उसे यह पहिला ही बार मौका मिला था। बोजिन्का (भगवान्) के दर्शन के लिये बड़ा उतावला हो रहा था। समझता था, कि गिरजे में जरूर भगवान् विराज रहे होंगे। वहां मैं तो नहीं गया था, लेकिन उसकी मां के मुह से सारी बातें सुनीं। "वह सामने बैठा रो रहा था। एक भक्तिन बुढ़िया ने देखकर कहा—"कैसा सुन्दर हृदय लड़का है, भगवान् की भक्ति में गद्गद होकर रो रहा है।" इगर बहुत चाहता था कि भगवान् के पास पहुंचे,

लेकिन त्योहार के कारण भाड़ बड़ी थी, वहाँ तक पहुँचने का मौका नहीं मिला। फिर वह जल्दी करने लगा—"मांमा, किनो (सिनेमा) खतम हो जायेगा। जल्दी करो।" यहाँ ईगर की भक्ति नगी हो गई थी, उसे बोजिन्का के दर्शन से ज्यादा फिल्म अपनी ओर खींच रहा था। मालूम नहीं बुढ़िया ने इस मक्त हृदय शिशु के इस रूप को देखा या नहीं। रात के वक्त ईगर कभी-कभी में भी बोजिन्का की बात करता, और दुनिया के सारे दुःख सुख, अन्याय पक्षपात का जिम्मेवार उस सर्वशक्तिमान को बतलाकर ऐसा चित्रित करता, कि वह बोजिन्का (भगवान्) नहीं बल्कि चोर्त (शैतान) दीखने लगता। लोला को यह बात बहुत बुरी लगती, वह खीझकर कहती—बच्चों के सामने ऐसा नहीं कहना चाहिये। मैं कहता—बच्चों के हृदय को कोरी स्लेट की तरह रहने देना चाहिये। वह ईश्वर विश्वासी हो या नास्तिक, इस बात को उन्हीं के ऊपर छोड़ देना चाहिये।

यह बतला चुके हैं, कि रूस में भीख मांगना कानूनन नहीं व्यवहारत भी उठ गया है, लेकिन कुछ कामचोर इसे अच्छे लाभ का पेशा समझकर मौका पा करने से बाज नहीं आते। गिरजों के पास ऐसे भिखमंगे कभी-कभी मिल जाते हैं। किसी बुढ़िया को लोला ने उस दिन पैसा दिया था, जिसपर क्रिस्तुस के लिये कह कर बुढ़िया ने अपने दाहिने हाथ की अंगुलियों से सिर छाती और दोनों कंधों को छूकर क्रास बनाया। उस दिन घर लौटकर ईगर को जब माँ ने मिठाई दी, तो उसने ठीक बुढ़िया की तरह ही "क्रिसतुस्" के लिये कहकर क्रास बनाया। क्रिसतुस् की भक्ति में आकर पड़ोसी तोस्या के ७-८ महीने के बच्चे कोल्या की हथेली में सुई चुभोने की कोशिश करते हुए ईगर पकड़ा गया था और उस बच्चे को क्रिसतुस् नहीं बना सका। उसका स्मरण दिला कर मैं लोला से बहुत कहता कि थोड़ा होश सम्भालने दो, इस अभी से धर्म की गहरी घुट्टी मत दो, लेकिन वह कहाँ होनेवाला था।

१८ अप्रैल को मास्को की खबर से मालूम हुआ कि वहाँ नदी मुक्त धार होकर बह रही है, यहाँ नेवा की नींद अभी भी नहीं खुली थी, हाँ कहीं कहीं पानी धार निकल कर टेढ़ी-मेढ़ी नाली से दूर तक जा बर्फ में घुस है

जाता था।

हमारे विमान में हिन्दी पुस्तकों का कमी था, नयी पुस्तकें तो आती ही नहीं थीं। ११ अप्रल का मेरा अपना लिखा ११ पुस्तकें पहुँची, जिनमें "जीवनयात्रा", "मानव समाज", "दिमागी गुलामी", "सतमी के बच्चे", "नई समस्यायें", "इस्लाम का रूपरेखा", "विस्मृति के गर्भ में", "शैतान की आंख", "साम्यवाद ही क्यों", "बाइसवीं सदी" था। मैंने एक एक प्रति युनिवर्सिटी को दे दी। प्रकाशक ने यह देखने के लिये थोड़ी ही और हल्की हल्की पुस्तकें भेजी थीं, कि वह यहां पहुंचता है या नहीं, लेकिन अब दूसरा पुस्तकें मंगाने का अवसर नहीं रह गया था। मैंने कुछ हिन्दी संस्थाओं को कुछ नयी पुस्तकें मुफ्त भेजने के लिये लिख दिया। दाम भजने में विदेशी विनिमय का झगड़ा इतना था, जिसके परे में पड़कर काम होना मुश्किल था। हां, सोवियत के राजदूत के दिल्ली में पहुंच जाने पर यह कठिनाई दूर होने की संभावना थी।

१३ अप्रल रविवार को और चर्च का पास्का (ईस्टर) दिन था। प्राक् चर्च के अनुयायियों की संख्या अधिक होने से आज सभी घरों में उत्सव मनाया जा रहा था। इगर ने पूछा—मामा, उत्सव का दिन है, तो झंडा, पताका क्यों नहीं?

लोला—यह सरकारी महोत्सव नहीं है, बेटा।

लड़के को बात समझ में नहीं आरही था सरकारी महोत्सव क्या और गैर सरकारी महोत्सव क्या। आज कई मेहमान घर में निमंत्रित थे, जिनमें तीन लालायें और दो सिरियोजा थे। एक लोला, लाला की भतीजी थी, और दूसरी लाला उसके बहिन के लड़के सिरयोजा की बीबी। सिरियोजा के बहनोई का नाम भी सिरियोजा था। भोज में पान की छूट थी। भोज भी अच्छा था। दो सप्ताह के बछड़े के मांस का सूप उसके बाद भेड का मांस, बेकन, केक थी। पनीर और दूसरी चीजों को मिलाकर बहुत स्वादिष्ट पास्खा बना था। सब लोग चपक उठा रहे थे, तो ईगर क्यों चुप बैठता। उसे शरबत में

नीबू का रस डालकर दिया गया। पहिले ही चषक म वह मतवाला होन लगा। जान पडता है, लडके म अभिनेता बनने के कुछ गुण अवश्य हैं, शायद दूसरे ही चषक पाते पीते वह लोट पोट होजाता, किन्तु शरवत देते उसने देख लिया, इसलिये नशा बहुत नहीं चढा। माया आज काफी पी गई थी, उसपर नशा का असर ज्यादा था। वैसे सभी की आखें लाल थीं। पावा वहां साधारण पान को कहते हैं, जिसमें नशा नाम मात्र होता है, लेकिन वोद्का बहुत मशहूर और कड़ी शराब है, जो आजकल अधिकतर आलू स बनाई जाती है। शब्दार्थ को लीजिये तो पीवा सस्कृत का पेय है और वोदका संस्कृत का उदक। रूसी में वदा (उदा) पानी को कहते हैं, लेकिन क और जोड़ देने से वदका (वोदका) कड़ी शराब का वाचक हो जाती है। हमारी पड़ोसिन ने अपने सात मास के बच्चे को पीवा नहीं वदका का प्याला चखाया। आखिर उसे बचपन ही से तो आदत लगाना था। पासख त्यौहार ठहरा। त्यौहार में अगर इतनी चीजें न पकाई जायें, जो कि दो-तीन दिन चलें, तो वह त्यौहार ही क्या?

१६ अप्रल से हफ्ते भर ईगर को बराबर बुखार पकड़े रहा। खैरियत यही थी, कि छूत की बीमारी नहीं थी, इसलिये वह घरपर ही रहा। दूसरे ही दिन डाक्टर बुलाया गया और फिर वह प्रतिदिन आता रहा। यदि फीस देनी होती, तो सारी बीमारी में हजारों रूबल खर्च होते। चिकित्सा के लिये सोवियत में किसी को एक पैसा भी खर्च करने की अवश्यकता नहीं है। बीमारी का कोई साफ पता नहीं लगता था, इसलिये हम डाक्टर की सलाह से इगर को मुहल्ले के अस्पताल में ले गये, जो कि समीप में ही था। उसकी तिमजिला विशाल और भव्य इमारत और कर्मचारियों की सेना को देखकर विश्वास नहीं होता था, कि यह मुहल्ले का अस्पताल है, वहां चिकित्सा का इतिजाम सरकार ने खुद कर रखा था। चाहे शिशुशाला हो या बालोद्यान, पाठशाला हो या चिकित्सा-स्थान, जितने बड़े पैमानेपर उनका इतिजाम है, और उनका जो सालाना खर्च है, उसे देखकर तो हम भारत से तुलना करते वक्त निराश हो जाते थे। सोवियत सरकार जितना लेनिनग्राद के अस्पतालों पर खर्च करती है, उतना तो हमारे उत्तरप्रदेश

का सारा बजट होगा। फिर उसका अनुसरण हमारे यहां कैसे हो सकता है? रोंतेगेन (एक्सरे) के कमरे में ले जाकर डाक्टर ने ईगर के फेफड़े आदि की अच्छी तरह परीक्षा की—हमारे यहां जिसे एक्सरे कहते हैं, उसके आविष्कारक जर्मन वैज्ञानिक रोंतेगेन के नाम से उसे रूस और दूसरे देशों में पुकारा जाता है। एक्सरे के डाक्टर ने कहा टी० बी० का असर नहीं है। दूसरे डाक्टर ने कहा लगातार ज्वर है, इसलिये अस्पताल में रखें। लेकिन लाला की खोपड़ी में यह बात जल्दी आनेवाली नहीं थी, उसे डाक्टर और दवा से ज्यादा अपने हाथ के भोजन पर भरोसा था। फिर हम एक बड़े हाल में गये जहां बीसों स्त्रियां काम कर रही थीं। चिट के देने पर एक महिला ने कई ट्यूबों और स्लाईडों पर ईगर का खून लिया। यह स्पष्ट ही है, कि यहां के डाक्टर अत्युग्र मोतिक्वादी हैं और पूजा-तावीज पर उतना विश्वास नहीं रखते, जितना कि अपने यांत्रिक साधनों पर। लड़की ने एक दर्जन ट्यूबों में ईगर का खून ले ईगर का नम्बर चिपका दिया। अब वह कहीं दूसरे अपरिचित व्यक्ति के पास जांच करने के लिये जायेगा, जहां से वह अपने अपने विषय की बीमारियों के कीटाणुओं के होने या न होने की सूचना देगा। खून लेने में महिला बड़ी दक्ष थी और उसका औजार भी यंत्र चालित था, जिसमें शायद सैकन्ड के सैकड़े हिस्से में घाव होकर खून निकलने लगता था। दिमाग में घाव की सूचना पहुंचने से पहिले ही काम हो जाता था, फिर कष्ट मालूम क्यों होता? इस विशाल कार्यालय को देखते समय हमारे दिल में यह भी ख्याल आ रहा था, कि यह लेनिनग्राद के एक मुहल्ले का चिकित्सालय है।

२४ अप्रेल को युनिवर्सिटी जाते वक्त देखा, नेवा अब पूरी तौर से जल-स्रोत मुक्तप्रवाह है। शायद दो एक दिन पहिले ही वह हिममुक्त हुई थी। अब बर्फ का कहीं पता नहीं था। आज गरमी भी मालूम होती थी। चमड़े के ओवरकोट और टोपी को घरपर रखकर गये थे, लेकिन जब शाम के वक्त लौटने लगे, तो सर्दी भी लौट आई थी, इसलिये अपनी बेवकूफी पर हंसी आती थी।

पहिली मई को फिर मई का महोत्सव आया, फिर झंडे पताके और

नेताओं के फोटो, योजनाओं के रेखाचित्र जगह जगह चिपकाये गए। मुझे मई दिवस देखने की आवश्यकता नहीं थी, इसलिए घर में रेडियो से ही उत्सव का सारा बातें सुनता रहा। हा, उस दिन तीन लड़के लिये एक स्त्री माथ मारता फिर रही थी। हमारा मुहल्ला एक कोने में था, पुलिस आस पास में नहीं थी, इसलिये वह निडर हो अपने व्यवसाय को कर सकती थी, केवल एक लम्बा छा रने की जरूरत थी, फिर ऐसा लज्जा हीन कौन होगा, जो एक टुकडा गया या एक रूबल देने से इन्कार करे।

नेवा लदोगा नाम की एक बड़ी भाल से निकलकर आती है, जिसकी बर्फ जल्दी खतम नहीं होती, इसलिए मलप्रवाह नेवा की धारा में अब लदोगा से बहकर आते बर्फ के बड़े बड़े खण्ड आ रहे थे। लोग कह रहे थे। कि उन्हीं के कारण आजकल सरदी बढ़ी हुई है, वैसे सूर्य का दर्शन बराबर हो रहा था। बहते हुए हिमखण्डों के साथ हवा ने भी कुछ महायता की थी, इसलिये हम वसन्त को पूरी तौर से अपने पास नहीं पा रहे थे। १० मई को एक जगह कुछ छोटी छोटी पत्तिया मैंने देखी, एक-दो जगह हरी घास भी निकली हुई थी। नगर में वैस बालोद्यानों के सिवाय हरियाली की कमी था पाच पाच महाने तक हरियाली के लिए तरसती आखें क्यों न हरी-पत्तियों और घासों की ओर एकटक लग जायं ? वसन्त का मूल्य यहा के लोग समझ सकते हैं।

लोला की बहन का लड़का सिरियोजा था मस्त-मौला, घुमक्कड़ तापनेवाला, शराब पीने पिलाने में बिलकुल खुले हाथ। लेकिन, आदमी बड़ा अच्छा था, कामचोर नहीं था। हा, किसी एक काम पर उसका मन नहीं लगता था। सेना से हटे काफी दिन हो गये थे, अब तक चाहता तो अच्छी स्थायी नौकरी मिल जाती, लेकिन उसे तो बराबर काम बदलते रहना पसन्द था। लोग समझते हैं, सोवियत रूस में लोगों से जबरदस्ती काम लिया जाता है, यह धारणा कितना गलत है, इसका उदाहरण सिरियोजा था। वस्तुतः वहाँ भूखे मरने के लिये तैयार लोगों को कोई रुकावट नहीं थी, सरकार किसी को जबर्दस्ती कामपर नहीं लगाती। अबकी बार वह फिनलैंड की सीमा की ओर कामपर गया था, जहां

एक साधी-सादी मामाय लड़की को विवाह लाया। उनके पास न राशनकार्ड था और न पैसा ही। लेकिन मिरियोजा को कोई परवाह नहीं था। वह हमारे यहां कुछ दिन रह जाते और कुछ दिन कहीं अलग जगह। लड़की बेचारी काम ढूंढ रही थी, लोला भी कोशिश कर रहा थी।

यात्रा के रास्ते की फिर चिन्ता होनी जरूरी थी, क्योंकि अप्रैल का आधा महीना बीत गया था और शायद जून में ही यहां से जाना हो। लंदन के एक मित्र को लिखा, तो मालूम हुआ वहां से बम्बई तक का जहाज का किराया ७२ पौंड है। जहाजों की कमी और यात्रियों की अधिकता के कारण कभी कभी महीना भर इन्तिजार करना पड़ता है। उन्होंने यह भी लिखा, कि लंदन में महीने भर के लिये ४० पौंड खर्च चाहिये। ११२ पौंड का मोटा हिसाब बन रहा था, और यहां अपने पास ६० ही पौंड का चेक रह गया था, इसलिये वहां होकर जाने का ख्याल छोड़ने का मन हो रहा था। कालासागर के रास्ते की ओर कभी कभी मन जाता था। पता लगाने पर मालूम हुआ कि ओदेस्सा बन्दर से सोवियत के जहाज बराबर आया करते हैं। सोवियत जहाजों में सबसे बड़ा फायदा यह था, कि हम सोवियत के सिक्के का इस्तेमाल कर सकते थे, लेकिन और पूछने पर मालूम हुआ, कि सोवियत जहाज बम्बई या और नहीं जाता वह फिलस्तीन के बन्दरगाह पर उतारकर अमेरिका की ओर चला जायगा। फिलस्तीन से पोर्तसइद तक का पैसा कहां से आयेगा और पोर्तसइद से बम्बई के लिए भी तो किराया चाहिये। अगर लड़ाई नहीं होती, तो हमारे साठ पौंड के चेक पर रूस का नाम दर्ज होने की आवश्यकता नहीं थी, फिर तो हम आसानी से फिलस्तीन या पोर्तसईद में अपने चेक को भुना सकते थे, लेकिन वह तो होनेवाली बात नहीं थी। अभी हम यात्रा-मार्ग के बारे में किसी निश्चय पर नहीं पहुंच पाये, यही कह सकते थे, कि अब भारत जाना निश्चित है। ईगर इस साल दो-दो बार बीमार पड़ा, जिससे उसकी पढ़ाई में हर्ज हुआ। आखिर में परीक्षा के समय भी बीमार हो घर पड़ा रहा। लेकिन सोवियत के शिक्षा विभाग को सिर्फ पढ़ाने की ही नहीं बल्कि बच्चों को आगे बढ़ाने की भी फिक्र रहती है इसलिये

ईगर की अध्यापिका ने घर आकर उसकी परीक्षा ली। गणित और रूसी भाषा की परीक्षा में उसे ५—५ अंक मिले यानी शत प्रतिशत। लिखना उतना अच्छा नहीं था, इसलिये ४ अंक मिले, चित्रण में भी ४ अंक। सबसे कम अंक उसे शारीरिक व्यायाम में मिले अर्थात ३ जो कि नाम मात्र है। आज सभी मां बाप अपने बच्चों की सफलता के बारे में जानने के लिये स्कूल में इकट्ठा हुए थे। अध्यापिकाओं ने साल भर का हिसाब दिया। ईगर अपनी क्लास में प्रायः सभी विषयों में प्रथम रहता रहा, यह जान कर खुशी हुई।

★ ★ ★

१८— अन्तिम महीने

सिनेमा कोई दुर्लभ नहीं था, मेरे लिये ही नहीं, बल्कि दूसरे नागरिकों के लिये भी यही बात थी। वह तो गांवों तक में सुलभ था, लेकिन नाटक दुर्लभ चीज थे, उसमें भी बैले (नृत्याभिनय) मेरी सब से प्रिय चीज था। अब चलते चलाते उसके देखने के किसी अवसर को मैं हाथ से छोड़ने के लिये तैयार नहीं था, तो भी प्रतिसप्ताह एक से ज्यादा देखना पसंद नहीं करता था। उस वक्त "जोलुश्का" नामक बैले हो रही थी। रूस अपने बैले के लिये अद्वितीय है, सर्वोत्कृष्ट नृत्य और अभिनय देखना हो तो रूसी बैले को देखें। मैं सोच रहा था, सोवियत के अभिनेता यूरोप तक अपनी कला का प्रदर्शन करने जाते हैं, फिर क्या इसे भारत नहीं भेजा जा सकता। यहां भाषा का भी सवाल नहीं, उसके लिये जैसा लेनिनग्राद, वैसा ही लंदन और वैसा ही दिल्ली। लेकिन फिर ख्याल आता — अभिनय के सामान और कलाकारों के सम्बन्ध में जो सावधानी यहां बरती जाती है, उसे ले जाना मुश्किल होगा। आध हजार नटों और नटियों, वादकों और वादिकाओं को यहां से हिन्दुस्तान भेजना कितना व्यय-साध्य होगा। यदि उन्हें कम कर दिया जाय, जिसके लिये बैले

के पक्ष में ही मिल रहे थे, इसलिये उसे उम्मीद था, कि सारी सम्पत्ति उसे मिल जायगी। उस एक-कप बोर्ड (अलमारी) की बड़ी चिन्ता थी। कह रही थी, उसके दराज के एक कोने में मेरे पिता ने अपने घर के पुराने रत्नों को छिपा रखा है जिसका पता पिता और पुत्री के सिवा और किसी को नहीं है। वह किसी तरह से उस खजाने को अपने हाथ में करना चाहती थी, लेकिन अभी तक उसमें सफल नहीं हुई थी, बीच में बेचारी दो तीन महीने से एक बुरी बीमारी में फंस गई थी और मरने के मारे उसने अपनी भावनाओं को भी अभी अभी सूचित किया। लेकिन इस उदाहरण से सोवियत के दीवानी मुकदमे की भी थोड़ी सी जानकारी मिल जाती है। सोवियत में वैयक्तिक सम्पत्ति है, यद्यपि धरती और कल-कारखाने आदि उत्पादन के साधन किसी की वैयक्तिक संपत्ति नहीं हो सकते। दूसरे रूप में आदमी लाखों की संपत्ति रख सकता है। वस्त्राभूषण, बहुमूल्य रत्न, बर्तन, चित्रपट, घर सामान आदि आदि बहुत सी चीजें बनी वैयक्तिक हैं, जिन पर सोवियत सरकार स्त्री और बच्चों का उत्तराधिकार मानती है और उस पर लालचभरी नजर नहीं डालता।

२२ अप्रैल को ईगर को लिये प्राणी संग्रहालय में गये। अबकी एक सिंह आया था, बाकी करीब करीब वही जन्तु थे, जिन्हें हमने पिछले साल देखा था। हां, एक ऊंट और एक सफेद भालू भी शायद नये थे। ऊंट पर लड़कों को चढ़ाकर घुमाया जाता था। ईगर को देखने में बड़ी दिलचस्पी थी, किन्तु चढ़ने के लिये न वह ऊंट पर तैयार था न कठघोड़े पर।

इधर उधर घूमते रहे, इस ख्याल से कि अब चला चलूं का बेना है, लेकिन २५-२० पौंडों के बिना काम बिगड़ रहा था। सोचते थे यदि काबुल तक विमान जाता, तो कितना अच्छा रहता किन्तु अच्छा कहने से थोड़े ही ऐसा हो सकता था। तेहरान तक विमान जाता था, लेकिन भरसक हम ईरान के रास्ते लौटने के लिये तयार नहीं थे। हम अपनी खिड़की पर बैठे इसी तरह की बातें सोच रहे थे, और लोग बाहर की पड़ी जमीन में आलू और दूसरी तरकारियां बो रहे थे। २५ अप्रैल को वर्षा हो गई थी लोग अपने काम में

जुट गये थे। यहां साग-भाजी और गांवों में गेहूं आदि खेतों में बोये जा रहे थे, उसी समय तुर्कमानिया में अभी अभी फसल काटी गई थी। तुर्कमानियां यद्यपि सोवियत का सबसे गरम प्रदेश माना जाता है, लेकिन वहां भी ऐसा स्थान नहीं है, जहां पर साल में एक बार बर्फ न पड़ती हो।

२५ अप्रेल की दिल्ली रेडियो की खबरों को सुनकर मैं कहने लगा क्या हो गया, जो अब हिन्दी शब्द भी आने लगे। दिल्ली रेडियो तो हिन्दुस्तानी के नाम से उर्दू का पृष्ठपोषक था। कभी कभी सिर दर्द पैदा करने वाला प्रोग्राम भी हमारे रेडियो पर चला आता था। २७ अप्रेल को अशोक के कलिंग विजय का नाटक प्रसारित किया गया, जिसमें लेखक ने बारूद का धमाका भी करवाया था। ईश्वर देव राजा का भी डर नहीं। ऐतिहासिक कहानी और नाटक खेलते वक्त तत्कालीन समाज के ज्ञान की बिलकुल आवश्यकता ही नहीं समझी जाती। दुनिया में यहां वहां और कैसे कैसे लोग ऐसे नाटकों को सुनते होंगे, वह हमारे उथलेपन पर कितना हसते होंगे?

२६ अप्रेल आया। अब विदेशी विनिमय और सोवियत से बाहर जाने का (निर्यात) विजा लेने की चिंता हुई। पढ़ाई का काम बस दो ही तीन दिन का रह गया था, जिसके बाद वार्षिक छुट्टी हो जाने वाली थी। सरकारी बैंक में गये। कहा गया — विदेशी चेक या विदेशी सिक्का नहीं मिल सकता, वह रूबल देने के लिये तैयार थे, लेकिन हमारे पास तो हजारों रूबल थे। यही दिखलाई पड़ने लगा कि और रास्ता न निकलने पर लंदन का रास्ता ही लेना पड़ेगा। लंदन और काबुल बस दो ही तरफ नजर थी। जल्दी जाने और कुछ नई चीजों को देखने के लिये तो काबुल का रास्ता अच्छा था लेकिन निश्चिन्तता पूर्वक जाना लंदन के रास्ते ही हो सकता था। इन्टूरिस्तवाले हमारी विशेष सहायता नहीं कर सकते थे। वह मास्को जाने की सलाह दे रहे थे। मैं सोच रहा था, अगर मास्को जाना हो तो फिर उधर से उधर ही जाना अच्छा होगा। तेहरान जाने में कोई दिक्कत नहीं थी, वहां इतने परिचित थे, कि भारत लौटने के लिये रुपया मिल सकता था, अगर दो चार दिन रह कर

नाव से रुपया मंगा सकता था, लेकिन चार मन निस्वार्थ जो साथ न थे।

जून का महीना शुरू हो गया। ३ तारीख को ८.३० में ८२° फ़ारेनहाइट तापमान था, लोग गर्मी के मारे तड़प रहे थे। और यहाँ आज बादल नहीं था, तो भी सरदी गरम लाइन के लिए तयार नहीं था। मई के अंतिम सप्ताह में हर साल सर्वराष्ट्रीय शुरू हो गई थी, जिसमें यहाँ बराबर पकवान दमन को मिल रहा था। इस साल ज्यादा जरूरी मालूम होता था। लड़ाई के दिनों में उदास हो गये लेनिनग्राद का एक विशाल उद्यान पावुश्किन का कारी सजा हुआ था। पान, मालग आदि की दुकानें खुल गई थीं, लड़कों के झूलों का अखाड़ा भी लग गया था। रंगाई और सफाई का काम भी हो चुका था। एक तरफ पावुश्किन पर हिटलरी आक्रमण का चिह्न नहीं रह गया था, जो घर से बहुत दूर नहीं था इसलिये आइन तो रोज पावुश्किन उद्यान जा सकते थे, लेकिन इगर को टहलने का और इगर को परिश्रमवाला खेल खेलने का कम शौक था। ५ जून को जब हम वहाँ गये, तो इगर की समवयस्क लड़कियाँ जितनी अच्छी तरह खेल रही थीं, वह उतना भी खेल नहीं सकता था। चार साल का बच्चा भी यदि भिड़ के, तो वह डर जाता था। मैं सोचता था—इतना डरपोक क्यों? क्या यह स्वाभाविक भीरुता है, या बाबरू माँ के लालन-पालन का परिणाम। शायद दोनों था। पढ़ने में वह अच्छा रहता, इसमें शक नहीं। तीसरे दर्जे में पढ़ाई जाने वाली साहित्यिक पुस्तकों को वह घंटों अकेले में पढ़ता रहता था, कविताओं को भी समझता और रस लेता था, लेकिन जान पड़ता है, शारीरिक साहस के कामों में वह पीछे ही रहेगा। शायद पीछे बुद्धि के ताले जब पूरी तोर से खुल जायें, तो वह अपने ही कुछ सोचकर इतना डरना पसन्द न करें।

७ जून को वस्तुत गरमी मालूम हुई। लेकिन गरमी का मतलब हमारे यहाँ का गरमी का मौसम नहीं। किसी वक्त अपनी स्कूली पाठ्य पुस्तक में पढ़ा था—

> "मई का आन पहुँचा है महीना। बहा चोटी से एड़ी तक पसीना।"

लेकिन यहाँ मई में तो अभी ऊनी कपड़ों को छोड़ने की हिम्मत नहीं

था, लेकिन आज तापमान ३०° सेंटीग्रेड से नीचे ही था। यह तो यहाँ का सर्वोच्च तापमान समझा जाता है। लेकिन प्रतिमास वही तापमान दुहराया जाये, यह कोई आवश्यक नहीं है। ६ तारीख को हम सांस्कृतिक उद्यान में गये। पिछले साल जून में मैं नदी में तैरा था, लेकिन अब के पानी ठंडा था, इसलिए लोग पिछले साल की तरह नहाने की हिम्मत कैसे कर सकते थे?

इतूरिस्त ने बतलाया कि आज (७ जून) यहाँ से लंदन का जहाज छूट रहा है और अब से हर पखवारे एक जहाज जायेगा। अगले महीने में ८ जुलाई के आस-पास उसके जाने की बात सुनकर मैंने उसी दिन को प्रस्थान दिन मित्रों को बतलाया। जाने का समय निश्चित सा हो रहा था। मन में विचित्र सा भाव पैदा हो रहा था। २५ महीने लेनिनग्राद में रह कर उस स्थान को छोड़ना था। वहाँ के अनुभव अधिकतर मधुर थे, कटु अनुभवों की मात्रा बहुत कम थी, और उसमें भी जो बात दिल से खटकती थी, वह थी लेखनी का रुका रहना। ओदेसा चिट्ठी भेजकर इतूरिस्त ने खबर मँगवायी थी, इतना ही मालूम हुआ कि वहाँ से अमेरिका जानेवाला जहाज जुलाई के प्रथम सप्ताह में जायेगा और हैफा (फिलस्तान) में मुझे छोड़ देगा। आगे की समस्या का कोई हल नहीं था।

१८ जून (रविवार) को संस्कृति उद्यान में एक दिन की छुट्टी बिताने गये। सचमुच ही इस साल उसकी कायापलट हो गई थी। उद्यान बहुत साफ सुथरा और सुव्यवस्थित था। इमारतों की भी मरम्मत होगई थी और उन पर रंग भी पुत गया था। भोजन की अब कोई शिकायत नहीं थी, और न मेज पर बैठे देर तक प्रतीक्षा करने की आवश्यकता थी। पिछले साल से भारी उन्नति हुई थी, इसमें शक नहीं। उतनी गरमी नहीं थी, इसलिये आज नदी में नहाने वाले कम थे। एक जगह मैदान में अमेरिकन बाजा बज रहा था, वहीं और दूसरी जगह वाद्य, गान और नृत्य हो रहे थे। आज यह देखकर प्रसन्नता हुई कि पिछले दो सालों में लोगों को जिन बातों की शिकायत थी, वह दूर हो गई।

स्पुतुक ... गार्डिनर जाने प्रथम ग्राम को प्रथम दर्जा मानते हैं। पहले मार्गों

और कारखानों को रहन और उत्पादन के लायक बनाने की आवश्यकता थी, इसलिये उनका सारा ध्यान उधर लगा था, अब वह बाकी चीजों पर भी ध्यान दे रहे थे। नेव्स्की राजपथ और दूसरी सड़कों पर गिरे पड़े, या टूट-फूटे मकान बिलकुल तैयार हो गये थे— मुख्य नगर में एक तरह से युद्ध का कोई चिह्न बच नहीं रहा था। मकानों के निर्माण और मरम्मत का ख्याल ही ध्यान नहीं दिया गया था, बल्कि उन पर सुन्दर रंग भी पोता गया था। रंग के काम में अब धात्रियों के संगठनों ने बड़ी सहायता की थी और इस तरह उन्होंने दूसरे मजदूरों को अन्य कामों के लिये मुक्त कर दिया था।

मैं पता लगा रहा था, कि कोई सुदूर पूर्व की ओर जाने वाला जहाज जाता मिले। सोचा था शायद भारत समुद्र से व्लादीवोस्तोक का जहाज जाता हो, जिसमें हम कोलम्बो में जाकर उतर सकते। बहुत ढूंढ ढाँढ करने पर भी ऐसा कोई जहाज नहीं मिला। ओदेस्सा से ८ जुलाई को अमेरिका जाने वाला जहाज हैफा में छोड़ देगा, इतना मालूम हुआ। एक सहृदया महिला ने अपने पास देर से रखे १२ डालर मुझे दे दिये, लेकिन तीन साढ़े तीन पौंड से क्या हो सकता था? हां, इतने से बसु तट से मजार शरीफ तो मैं पहुँच सकता था। लेकिन १६ जून को मेरे मित्र डा० बांके बिहारी मिश्र का पत्र लंदन से आया, जिससे फिर विचार बदलना पड़ा। उन्होंने कहा यहां से दूसरे दर्जे का बम्बई तक का किराया ५२ पौंड है और लंदन में रहने के लिये ४ पौंड सप्ताह से काम चल जायेगा। ६० पौंड का चक मेरे पास था, इसलिये बिना किसी की ओर मुह ताके यह बात होने लायक थी। बाकेजी मेरे पुराने सत्याग्रही मित्र थे। बिहार में किसान-सत्याग्रह करके मैं जेल चला गया, तो उन्होंने एक हाई स्कूल की प्रधानाध्यापकी छोड़कर किसान सत्याग्रह को सम्भाला और बड़ी लगन से काम किया। इधर वह इतिहास में पी० एच० डी० करने के लिये लंदन आये थे। उनकी सलाह थी, साथ ही भारत चलने की। मैंने उनको लिख दिया, कि पांच जुलाई के जहाज से यहां से चलूंगा और १६ जुलाई को लंदन पहुँच जाऊँगा।

खिड़की से देख रहा था २० जुलाई, को लोग खेतों से आलू निकाल रहे थे। निराइ करके पानी देना भी शुरू कर दिया था, लेकिन हमारे आलू रामभरोसे चल रहे थे।

२१ जून से यात्रा की तैयारी को कुछ चीजें भी खरीदा, जान लगा। कपड़ा लत्ता हमें लेना नहीं था। १५ रूबल की एक टूथपेस्ट खरीद लाये। पोर्टफेल का दाम ११० रूबल था। हमने सोचा बाहर और सस्ता मिल सकता है, इसलिये खरीदने की क्या आवश्यकता? हमारे पड़ोसी इन्जीनियर-महिला से जब साग सब्जी के बारे में पूछा, तो उसने कहा— हम में से कुछ ने लेनिनग्राद से ३० किलोमीटर पर अपनी तरकारी की खेती कर रखा है। छुट्टी के दिन हर सप्ताह चले जाते हैं। जब बीस तीस रूबल किलोग्राम आलू खरीदना हो, तो लोग क्यों न २० मील तक का धावा बोले। हां, ये खेत रेलस्टेशन के पास थे। युद्ध के कारण बहुत से गांव उजड़ गये, इसलिये खेतों के मिलने में कोई दिक्कत नहीं था। पूंजीवादी देश में यह नहीं हो सकता था, चाहे खेत परती रहता किन्तु मालिक को बदखल कैसे करते?

तिलाक के कानून के कड़ा करने से कैसी अवस्था हो सकती है, इसका उदाहरण हमारी पड़ोसिन महिला तोस्या थी। वह बिजली मिस्तिरी था। उसने पहिला पति छोड़ दिया था, शराब खोरी और मार पीट शायद कारण था, अब दूसरे पुरुष की पत्नी थी, जिसके साथ वह कई सालों से रह रहा थी। पति लड़ाई के बाद सेना से मुक्त होकर घर आया था। दोनों का ७-८ महीने का बच्चा कोल्या था। चूंकि तिलाक लेना मुश्किल था, इसलिये पहिले पति से विवाह विच्छेद नहीं हुआ था और अब कोल्या कागज-पत्र में अपने बाप का नहीं बल्कि अपनी मां के पहिले पति का पुत्र था। इगर की मोसरा बल्कि लम्बी न भी विवाह कर लिया था, लेकिन उसके पति का भी पहिला पत्नी मौजूद थी। तिलाक लेने के लिये दो हजार रूबल दण्ड देने पड़ते, इसलिये दोनों ने बिना रजिस्ट्री के ही विवाह करके साथ रहना शुरू किया था। यह विचित्र सी बात मालूम होती थी एक स्वच्छन्द समाज में इतने कठोर वैवाहिक नियम क्यों हैं

जाय और क्यों पुत्र को अपने बाप को छोड़कर दूसरे का नाम रखने के लिये मजबूर किया जाय ? लेकिन इसके समाधान में कहा जाता था "तिलाक को सुलभ करना अच्छा नहीं है। स्त्री पुरुष के संबंध का प्रभाव केवल उन्हीं तक सीमित नहीं है,बल्कि वह उनकी सन्तान पर भी लागू होता है। तिलाक का सुलभ कर देने पर कितने ही परिवार जल्दी जल्दी बनते बिगड़ते रहेंगे, जो कि सन्तान के लिये अच्छा नहीं होगा, यद्यपि तोम्या और कोल्या की स्थिति को हम अच्छा नहीं समझते, तो भी पारिवारिक स्थायित्व को अधिक लाभदायक समझ कर हमें तिलाक के लिये कड़ा नियम बनाना ही पड़ा।"

२८ जून को हम निर्गम विज़ा (देश के बाहर जाने का आज्ञापत्र) के लिये आवेदनपत्र दे गये। अधिकारी ने कहा यदि दक्षिणी सीमान्त (अफगानिस्तान के रास्ते) से जाते, तो हम दो दिन में विज़ा दे देते, लंदन के रास्ते जाने के लिये विज़ा मास्को का स्वीकृति से देना पड़ता है, जिसमें काफी दिन लग सकता है। जुलाई ८ का जाना फिर सन्दिग्ध होने लगा। फिर लंदन के रास्ते को छोड़ने का विचार मन में आने लगा। सोचने लगे, क्या न अफगानिस्तान के रास्ते ही चलें।

अब बोरिया बिस्तरा बांधना और देखना सुनना ही बाकी रह गई थी। २७ जून को मैं फिर रूसी म्युज़ियम देखने गया। अभी सारे कमरे तो नहीं सजाये जा चुके थे, किन्तु काफी चित्र और दूसरी चीजें देखने को मिला। चित्रों को देखने से मालूम हुआ, कि ग्यारहवीं से चौदहवीं सदी तक यहाँ भी पुराने ढंग के अधिकतर काल्पनिक और धार्मिक चित्र बनाये जाते थे। हमारे यहाँ की तरह वास्तविकता से उनका नजदीक का संबंध नहीं था। इसलिये पोर्ट्रेट (व्यक्ति) चित्र नहीं बन सके थे। भारतीय कला गुप्तकाल में उन्नति के शिखर पर पहुँची थी। उस समय चित्र और मूर्तियाँ दोनों ही बड़ी सुन्दर और भावपूर्ण बनती थीं, लेकिन यहाँ तक पोर्ट्रेट का संबंध है,हमारे कलाकार बिल्कुल बच्चे से थे, यह गुप्त काल के सिक्कों को ग्रीकोबाख्तरी सिक्कों से मिलाने से साफ मालूम हो जाता है। १४ वीं सदी तक यही हालत रूस की भी था। इस रूसन

को अवश्यकता नहीं, कि ईसाइ होने से पहले के चित्र और देवमूर्तियां रूस में प्राप्य नहीं हैं। हाल में पुराने शिरों के कुछ पुराने नगरों की खुदाइयां हुई हैं, जिनमें कुछ मूर्तियां मिली हैं उनपर स्राक प्रभाव हाफ है। विशाल स्क-जाति —जो ईस्वी सन् के आरम्भ के समय चीन की सीमा से दन्यूब के तट तक फैली हुई थी— के पूर्वांचल पर जहाँ भारतीय संस्कृति अपना प्रभाव डाल रही था, वहां पश्चिमांचल पर ग्रीर प्रभाव पड़ रहा था। १६ वीं शताब्दी में रूस की चित्रकला का जरा-जरा वास्तविकता की ओर खिचाव होने लगा, लेकिन अभी भूतकाल के भूत ने पाछा नहीं छोडा था। १७ वीं में वह कुछ कुछ छूटा, १८ वीं सदी में प्रथम पीतर ने रूस को पश्चिमी यूरोप से मिलाना चाहा, जिसके कारण नये प्रकार के वस्तु वादी चित्र बनने लगे, पोतरेत भी अच्छे खास तयार होने लगे, जिसमें पश्चिमी कला-गुरुओं की सहायता बहुत लाभदायक हुई। लेकिन अभी भी बहुत सी तस्वीरों में अलैक मुख का पृथक व्यक्तित्व रेखाओं में अंकित करना बहुत कम हुआ था। यह काम १६ वीं सदी के शुरू से होने लगा। इवानोफ, रेपिन, सुरिकोफ जैसे महान् चित्रकारों के तूलिका पकड़ने पर रूसी चित्रकला विश्व की चित्रकला में सिर उभार खड़ी होने लायक हो गई।

उसी दिन "स्तारिकी वोदोविल" नामक सोवियत रंगीन फ़िल्म देखने गये। १९४६ में बनने से, यह बिलकुल नयी चीज थी। इसमें, १९१४ ई० के आस पास के रूसी समाज और मास्को का बड़ा ही वस्तुवादी चित्रण किया गया था। अभी तक सोवियत फिल्मों में युद्ध और वारता अथवा आर्थिक योजनाओं का प्रधानता रहती थी, जिसके कारण जो अमरिकन या ब्रिटिश फैशन और प्रेम के फिल्म आते थे, उनमें भाड़ लग जाती थी। "लेडी हेमिल्टन" चित्र को लोगों ने न जाने कितनी बार देखा, क्योंकि उसमें अंग्रेज सेनापति नेल्सन और उसकी प्रेमिका का रंगीला जीवन चित्रित किया गया था। शायद सोवियत फिल्म-उत्पादक भी अपनी त्रुटि को समझने लगे थे— केवल रूखे सूखे ज्ञानवर्द्धक चित्रों के प्रति लोगों के मन में आकर्षण नहीं पैदा किया जा सकता, अतएव सोवियत

पृष्ठ भूमि पर बिलकुल वस्तुवाद के आधार पर बन इस फिल्म म प्रेम की मात्रा ज्यादा थी, इसलिये दर्शकों की भीड बहुत होती थी । क्रान्ति के पहिले कितने ही वर्षों तक या पहिली पंच वर्षीय योजना के समय में भी मुख्यपूर्ण, अधराग जैसा विलाससामग्रियों का उत्पादन और व्यवहार सोवियत में अच्छा नहीं समझा जाता था, लेकिन उन्होंने देखा, कि स्त्रियों के इस स्वाभाविक आकर्षण को इस तरह हटाया नहीं जा सकता, इसका परिणाम यही होता है कि परिश्रम और स्वास्थ्य के लिये हानिकारक वस्तुओं का उपयोग बढ जाता है । इसलिये उन्होंने कितना हा विलास-सामग्रियों के उत्पादन के लिये कारखाने खोल दिये ।

२९ जून को अब हम साथ ले चलने की पुस्तकें छाँट रहे थे । दो साल में ६–७ मन पुस्तकें जमा हो गई थीं— वैसे जहाज द्वारा चलने के कारण सभी को ले चलने में किराये के अधिक होने का डर नहीं था लेकिन डर लग रहा था कहीं साहित्य कस्टमवाले कहने न लगें— "यह सारा पुस्तकालय यहाँ से उठाये लिये जा रहा है ।" यह डर पीछे गलत साबित हुआ, लेकिन उस समय कितनी ही पुस्तकों को छोड़ देना पड़ा । हमारे बड़े चमड़े के सूटकेश और दूसरे बक्सों में भी सारी पुस्तकें नहीं आ सकती थीं । एक लकडी का पुराना मामूली बक्स हमने माया से खरीदा । लोला की भागिनेयी लोला कुजमिना के पति ने जब सुना, तो वह एक बहुत बड़ा बक्स बना के ले आये । उनका पेशा बढइ का नहीं था, लेकिन सभी तरह के कामों का अभ्यास करना यहां वालों की शिक्षा और रुचि में सम्मिलित हो गया है । हम पुस्तकों के रखने का चिन्ता नहीं रही ।

३० जून को निशा के लिये एक और झगडा पैदा हो गया । विद्यादनवान ने कहा युनिवर्सिटी से छुट्टी पत्र लाओ । मैंने सोचा था, साधारण काम की छुट्टियां दो महीना चलेगीं ही, चलने तक और आगे के लिये छुट्टी की दरख्वास्त दे दूंगा । छुट्टी-पत्र में मुश्किल यह थी कि उस पर रेक्टर का हस्ताक्षर होना चाहिये । दिन ५ रह गये थे, और रैक्टर बहुधन्धी थे, भय था, शायद फिर मास्को का ही रास्ता लेना पड़े, क्योंकि सारी तैयारी करके दूसरे जहाज के लिये

पन्द्रह दिन और प्रतीक्षा करना मेरे बस का बात नहीं था। लोला को मेरा जाना पसन्द नहीं थी, यह स्वाभाविक था।

पहली जुलाई को इसी अनिश्चित अवस्था में कुट्टीपन के घर में पड़े, युनिवर्सिटी गये। लोला के कहने से पता लगा, कि शायद अब वह इतना जल्दी न मिल सकेगा। दोनों मार्कोनुगार रूसी में आवेदन पत्र लिख दिया। मैंने रेक्तर के सेक्रेतरी को दे दिया। उन्होंने कहा— शायद कल तैयार मिले। कुछ आशा बढ़ी, लेकिन अगले दिन तिरयोको भी जाना था, ईगर से अन्तिम भेंट करने।

उस दिन हमारे विभाग की वार्षिक बैठक हुई। यह जानकर हमें और छात्राओं को भी प्रसन्नता हुई, कि पांचवें वर्ष की दोनों तरुणियां— बेर्बल्युक और तानिया शोगलोवा उत्तीर्ण हो गईं और पांच वर्ष की पढ़ाई के बाद, विश्वविद्यालय की स्नातिका बनीं। लड़ाई के समय उनका एक-दो वर्ष खराब हो गया था, नहीं तो पहले ही पढ़ाई समाप्त कर किसी काम में लगी होतीं।

वार्षिक बैठक और मेरी विदाई थी, इसलिये अकदमिक बरान्निकोव के यहां विशेष तैयारी थी। कितनी ही मिठाइयां और फलों के साथ उत्कृष्ट जाति का मद्य भी मौजूद था। हमारे सहकारियों में विस्कोवतनी की तबियत ठीक नहीं थी, इसलिये वह नहीं आ सके, नहीं तो सभी वहां मौजूद थे। प्रो० कालियानाफ संस्कृत महाभारत के रूसी अनुवादक डा० श्चेर्बात्स्की के प्रिय शिष्यों में थे, जिसके कारण उनके साथ मेरा अधिक घनिष्ठता होनी ही चाहिये थी। वह संस्कृत के विशेषज्ञ तथा उसमें विशेष रुचि रखते थे। वह मुझसे बहुत मिलते और संस्कृत की अप्राप्त पुस्तकों का पता देते रहते थे। दोनों मार्कोवना गान्दमान हिन्दी पढ़ाती थीं। "सप्तसरोज" का उन्होंने रूसी में अनुवाद किया था। सुलेकिन, अब्रामाफ भी आज की पान गोष्ठी में सम्मिलित थे। अकदमिक बरान्निकोफ ने विदाई के समय अपने हार्दिक भाव प्रकट किये। अमूरी शराब से मैं आज भी वंचित रहा, शायद जीवन भर वंचित रहूँ।

२ जुलाई को रेल से तिरयोकी गये। लोला ने देर करदी, ट्रेन छूट

गर यात मेड पएग फ्लिनलैंड स्टशन पर प्रतीक्षा करना पड़ा। दो घण्टे म नहीं परिचित दृश्यों के बीच मे गुजरते ट्रेन ने हमें तिरयोकी पहुँचाया। मात मास म देश कितना आगे बढ़ा, इसकी नाप के लिये आज स्टेशन से उपवन म से जाने के लिये लारी नहीं बल्कि युनिवर्सिटी की बस खड़ी थी— सब गली पुती चाकचक्य,नई बस। उपवन में देखा वहाँ बहुत से नये घर बन गये थे,कमरे भी साफ थे, सभी घरों में बिजली लग गई थी। क्लब में रेडियो भी था। किनारे से समुद्र के जल तक लकड़ी के तख्तों का रास्ता तैयार हो गया था। भोजन भी पहिले से बहुत अच्छा था। कितना जल्दी युद्ध का प्रभाव लुप्त हो गया था। पिछले साल दावाग्नि स्वच्छन्दतापूर्वक युद्ध ही मिल पर जल रही थी, और कोई उसकी ध्यान इधर लेने वाला नहीं था, इस साल जगह जगह दावाग्नि से सावधान रहने के लिये नोटिसें टंगी थीं। हमारे पिछले परिचित चहरे बहुत कम दिखाई पड़ रहे थे। परिस में मिला प्रास एक महिला अपनी दूसरी सखी के साथ समुद्र तट पर धूप और हवा लेने आई थीं। वह अपने साथ स्वास्थ्य लाभ के लिये अपनी बिल्ली भी साथ थीं, जो एक बड़ी समस्या हो गई था। अपरिचित नई जगह थी, बेचारी को वह पसन्द नहीं आती थी, और वह रात भर चिल्लाती रहती थी। शाम को टहलते वक्त अकदमिकों की नगरी में गये। अब वह अपने मेहमानों के स्वागत करने के लिये बहुत कुछ तैयार थी। घर सारे काठ के थे, लेकिन बहुत ही सुरुचिपूर्ण और सुखद थे। उस रात तिरयोकी में हीं रह गये। आज दिन भी चार बजे तक वहीं रहना था, इसलिये कितना ही दूर तक घूमने गये। सभी जगह साल भर बेकार न रहने वाले हाथों का करामात का परिचय मिल रहा था। यह निश्चय था, कि अबकी मास आने वाले अतिथियों का बहुत सा पानी की शिकायत नहीं रह जायेगी।

४ बजे चलने के लिये तैयार हुये। ईगर भाड़ी दूर तक आया। ६ वर्ष का हो रहा था, उसी के अनुसार उसकी समझ भी बढ़ी थी। विदाई लेते वक्त वह फूट फूटकर रोने लगा। मैंने बहुत समझाया— लेकिन वह धैर्य धरने के लिये तैयार नहीं था। कहता था— तुम नहीं आओगे। क्या जाने

उसका भविष्यवाणी ठीक निकले, यह ख्याल मेरे मन में भी आया, लेकिन जीवन कर्तव्य किसी माया-मोह के फंदे को मानने के लिये तैयार नहीं था। दवित हृदय को कुछ कड़ा करके उससे छुट्टी ली। लोला वहीं रह गई, और मैं पाँच बजे शाम की गाड़ी पकड़ कर लेनिनग्राद की ओर चल पड़ा—किराया ४ रूबल था। ट्रेन शायद तिरयोकी से भी पीछे से आरही थी। उस वक्त उसमें खाली जगह बहुत थी, लेकिन नगर के पास के स्टेशनों से तरकारी वाले खेतों के नर-नारी शाम को लौट रहे थे, इसलिये भीड़ बहुत थी।

४ जुलाई को सबेरे उठने पर भी चिन्ता का बोझ हमारा बढ़ता ही जा रहा था। पुलिस में जाने पर विजा-सहित पास-पोर्ट मिल गया। जहाज में बड़ी भीड़ नहीं थी, इसलिये एक दिन पहले टिकट मिलने में कोई दिक्कत नहीं हो सकती थी। मैंने पासपोर्ट और लंदन तक का ४५१ रूबल किराया इतूरिस्त को दे दिया। लोला उस दिन दोपहर को तिरयोकी से आयी। उसने बतलाया, कि कल मोहर लगवानी है, नहीं तो मेरे दो महीने के वेतन के पैसे नहीं मिलेंगे। वेतन साढ़े चार हजार रूबल मासिक था, लेकिन उसमें चन्दे, मजूर सभा की मेम्बरी का शुल्क, इश्यारेंस तथा पंचवार्षिक योजना के ऋण आदि के लिये डेढ़ हजार के करीब निकला जाता था। खैर, पैसे न मिलने की दिक्कत से मैं कल की यात्रा को स्थगित करनेवाला नहीं था, तो भी यह जरूर चाहता था कि रुपये उसे मिल जायें।

५ जुलाई का दिन भी आ गया। आज मुझे लेनिनग्राद से प्रस्थान करना था। युनिवर्सिटी में जा यह देखकर प्रसन्नता हुई, कि दो महीने के वेतन के रूबल लोला को मिल गये। हमारे खर्च के लिये ४५१ रूबल जहाज का किराया और भोजन तथा मोटर कुली आदि के लिये ११० रूबल खर्च हुए थे। लोला के पास कई हजार रूबल रह गये। मासिक दो हजार रूबल उसको मिलते ही रहेंगे यदि भूगोल भाषा की अध्यापकी पाकर उसने पुस्तकालय का काम नहीं छोड़ दिया। लंदन में पैसों की कमी होगी, इसलिये अपने प्रकाशक के पास रुपया भेजने के लिये तार दे दिया, बाकेजी को भी लंदन आने की सूचना दी।

द्वारा दे दी, कितने ही मित्रों का चिट्ठियां लिख दीं। युनिवर्सिटी में दोस्तों से भी मुलाकात हो गई। सभी अफसोस प्रकट कर रहे थे, लेकिन मैं कहता था— दो वर्ष में मेरा लिखने का काम खतम हो जायेगा, फिर मैं यहां आजाऊँगा लोला मेरी बात पर विश्वास नहीं करती थी। हम दोनों की प्रकृति में सामजस्य नहीं था। मैं पुस्तकों का एकांत प्रेमी था और वह उस उतनी आवश्यक बात नहीं समझती थी। कितनी ही बार हमारा मन मुटाव भी हो जाता था, यद्यपि झगड़ा करने का स्वभाव न मेरा था न उसका ही, इसलिये बात दूर तक नहीं बढ़ती थी। मुझे कविरत्न सत्यनाराण की पंक्तियां याद आतीं थीं— "भयो क्यों अन चाहत को संग।" तो भी मैं उसका कृतज्ञ अवश्य था, क्योंकि कुछ स्वभाव सी बन गई बातों को छोड़ देने पर उसमें गुण भी अनेक थे।

उस दिन रेवनर के कार्यालय में मालूम हुआ, कि अभी भी छुट्टी पत्र तैयार नहीं हुआ। इन्तूरिस्तवालों ने ४७ दिन के मेरे विश्राम पत्र को पाकर कह दिया, कि इससे काम चल जायेगा। मेरे सहकारी मित्र जहाज पर पहुँचाने आना चाहते थे, लेकिन इन्तूरिस्तवालों ने बतलाया कि पास बिना बन्दर के फाटक के भीतर जाने की इजाजत नहीं है। इन्तूरिस्त की कार सामान लेने हमारे घर पर आयी। सवा दस बजे निकलकर हम पहिले इन्तूरिस्त के आफिस में गये। सामान भेजने का काम उनका था। जहाज पांच बजे जानेवाला था, इसलिये अभी हमारे पास दो तीन घंटे थे, जिन्हें हमने जाकर युनिवर्सिटी में अपने मित्रों के साथ बिताया। फिर कार पर लोला के साथ बन्दरगाह के फाटक पर पहुँचे। फाटक वाले ने रोका, इसलिये फाटक पर से ही लोला को विदा करना पड़ा। बेचारी निराश और विकल थी। हमने शोकातिरेक का अधिक दिखलाने की कोशिश नहीं की। वह वहां से चली गई। कार हमें समुद्र के तट पर पहुँचाने गई। मेरे साथ इन्तूरिस्त के एजेन्ट थे। जहाज में चले जाने के बाद पानी बरसने लगा। मैंने समझा था अब सबसे विदाई ले चुका, लेकिन कलियानोफ नहीं माने। भींगते हुए, पास को दिखलाते को न जाने कैसे दूर करते जहाज तक पहुँचे।

जहाज में कस्टम वालों ने आकर चीजों की देखभाल की, लेकिन उसमें बहुत दिक्कत नहीं हुई। एक पुरानी छपी हुई पुस्तक को उन्होंने निकाल लिया। इतूरिस्त के आदमी ने जब मेरा परिचय दिया, तो उन्होंने उसे भी दे दिया और दो एक बक्सों को तो खुलवाया भी नहीं। "कैमरे में फिल्म तो नहीं है।" पूछने पर मैंने समझा था, नहीं है, लेकिन ३६ एक्सपोजर वाला सोवियत लाइका (फेद) फिल्म इतनी जल्दी थोड़े ही खतम होने वाला था। फिल्म वहां मौजूद था। खैर उसको निकाल लिया। अब मालूम हुआ, जैसे हृदय के ऊपर से भारी भार उतर गया। कनिगानोफ्स्की ने बहुत अभिवादन और अनुनय विनय के साथ विदाई की, जरूर शेवाल्स्की के बाद उनके साथ ही मेरा बहुत घनिष्ठ स्नेह था।

★ ★ ★

१९—लंदन के लिये प्रस्थान

निश्चय और अनिश्चय के झूले में झूलते आखिर महाशय मैं पहिले निश्चय किये दिन (५ जुलाई) को मैं लेनिनग्राद से विदा हुआ। ३ जून १९४५ को मैं सोवियत सीमा में दाखिल हुआ था। ८ को लेनिनग्राद पहुँचा था। गोया २५ महीने तीन दिन रहने के बाद मैं सोवियत भूमि छोड़ रहा था।

हमारे जहाज का नाम "बेलोस्त्रोफ" अर्थात् "श्वेतद्वीप" था। पाँच बजे वह रवाना हुआ। 'श्वेतद्वीप' बहुत सुन्दर नया पोत था। केबिन आदि शाला की सफाई और सजावट आदि में कमाल किया गया था। बिजली के लैम्प कलापूर्ण थे, और यही बात कुर्सियों और मेजों की थी। १२ नं० का केबिन मुझे मिला था, जिसमें एक ही आदमी के लिये स्थान था। चारपाई, बिछौना और केबिन की भीतरी स्थिति बहुत साफ सुथरी थी, भीतर ही गर्म ठंडे पानी के नलों के साथ चीनी का प्रक्षालनपात्र भी चमक रहा था, कोने में काठ फलक से ढाँक देने पर वह छोटी सी मेज का काम देता था। केबिन में दो बत्तियाँ भी थीं। गवाक्ष समुद्र की तरफ खुलता था जिससे दूर तक का दृश्य हम चारपाई पर बैठे

बैठे देख सकते थे। सभ्यता और स्वच्छता का कमोड, रहने का कमरा नहीं, बल्कि पाखाना होता है। हमारा शौचालय भी बहुत साफ था, शीशे का कमोद चम चम चमक रहा था। पालिश की हुई लकड़ी या दीवारों में चेहरा देखा जा सकता था। गादगी को हाथ से न देते हुए भी काफी सजावट और सफाई हर जगह पाई जाती थी। मैं इसकी तुलना उस हवाई जहाज से कर रहा था, जिस पर चढ़ कर तेहरान से सोवियत भूमि में आया था। शायद अगर दो वर्ष पहिले सामुद्रिक यात्रा करनी पड़ती तो उस समय "श्वेतद्वीप" जैसा जहाज न मिलता। लड़ाई बन्द होने के दो वर्षों को सोवियत राष्ट्र ने हर काम में बड़ी तत्परता के साथ इस्तेमाल किया। उसका ही हमारे सामने यह फल था। लेकिन बाद का बन्दरगाह सीधे समुद्र के तट पर न होकर जरा भीतर की ओर है, लेकिन वह बहुत बड़ा है, उसमें दुनिया के बड़े से बड़े जहाज सैकड़ों की संख्या में लंगर डाल सकते हैं। जहाज के चलते वक्त किनारे पर हम देख रहे थे—मालगोदामों की पंक्तियाँ दूर तक चली गई। यहाँ लड़ाई का प्रभाव अब भी था। बहुत-सी पट्रोल की टंकियाँ टूटी फूटी पड़ी थीं। युद्ध के समय पेट्रोल की टंकियों को सबसे पहिले लक्ष्य बनाया जाता है। उनके तेल को ही नष्ट करना आवश्यक नहीं समझा जाता, बल्कि भीषण आग की लपट पैदा करके शत्रु के नगर को भी तबाह करने की कोशिश की जाती है, यद्यपि तेल टंकियों को नगर से दूर रखा जाता है।

कुछ ही समय में हमारा "श्वेतद्वीप" अब फिनलैंड-खाड़ी के खुले समुद्र में आ गया। समुद्र चचल नहीं था। ७ बजे रात्रि भोजन हुआ—कटलेट, मकरोनी, कोई मिठाई, रोटी मक्खन और मेव। भोजन सुस्वादु था। हमारा जहाज उत्तर की ओर जा रहा था। साढ़े ग्यारह बजे रात्रि को अभी गोधूलि थी, रात केवल रूढिवश ही कह सकते थे। समुद्र हिलोरें लेने लगा था, किन्तु हमें तो प्रकृति समुद्र भी विचलित नहीं कर सकता था।

हलसिंकी— ६ बजे सवेरे जब खिड़की से बाहर की तरफ देखा, तो सामने फिनलैंड की हरित भूमि दिखलाई पड़ रही थी। देवदार वृक्षों से ढँकी

पहाड़ियाँ मानो समुद्र में डुबकी खेल रही थीं। बहुत से छोटे छोटे द्वीप थे, जिनमें से अधिकांश आदमियों के बास लायक नहीं थे। ६ बजे "श्वेतद्वीप" किनारे से जा लगा। मालूम हुआ, कि अब २४ घंटे जहाज को यहीं रहना है। हमारे जहाज में ४० से ज्यादा मुसाफिर नहीं थे। १६ घंटे में हम लेनिनग्राद से हेलसिंकी पहुँचे थे। अब अगले २४ घंटों में अठारह बीस घंटे तो हम घूमने फिरने में लगा सकते थे।

फिनलैंड के एक भूतपूर्व नगर — विपुरी को एक साल पहिले मैं देख चुका था, लेकिन विपुरी युद्ध-ध्वस्त और पुराने निवासियों से परित्यक्त था, उससे हम किसी फिन-नगरी का अच्छी तरह अंदाजा नहीं लगा सकते थे। यहाँ हमारे सामने फिनलैंड की राजधानी थी— किला, विशाल घर और गिरजे दूर तक दिखाई पड़ रहे थे। जहाजों के ठहरने के घाट एक नहीं, अनेक थे। समुद्र इतना गहरा था, कि जहाज किनारे आकर लग सकता था। बन्दर पर कोई युद्ध चिन्ह नहीं दिखाई पड़ा। पास पोर्ट देखते समय नगर देखने का आज्ञा पत्र भी मिल गया, लेकिन बादल और वर्षा का डर था। मक्खन, गोभी, जाम, आमलेट, कोको का प्रातराश हुआ। १ बजे मध्याह्न भोजन भी किया, फिर अपराह्न चाय तक हमारा घूमना फिरना अधिकतर बन्दरगाह के पास ही रहा। वस्तुतः यात्रा में दो सैलानियों की बहुत आवश्यकता होती है, नहीं तो आदमी आलस्यवश या अरुचिवश देखने-भालने में अपने समय का पूरा उपयोग नहीं कर सकता। हमारे लिये हेलसिंकी नई नगरी थी, लेकिन वह यूरोप के दूसरे ही नगरों जैसी होने से कोई अधिक आकर्षण नहीं रखती थी। प्राकृतिक सौंदर्य को हमने ६ बजे से ही देखना और आनन्द लेना शुरू किया था। फिर पाँच बजे शहर देखने के लिये निकले। यहाँ हमें कलकत्ते के धर्मतल्ला जैसा मालूम होता था— मकान चौमंजिले-पचमंजिले ज्यादा थे, और उसमें भी अधिकांश १९१७ के बाद के बने थे। कितनों ही की छतें सीमेंट की थीं, और कुछ पर लाल टाइल भी दिखाई पड़ती थी— खास कर पास के द्वीपों में जो मकान थे, उनकी लाल टाईलवाली छतें, हरियाली के बीच में सुन्दर मालूम होती थीं। चौड़ी सड़कों के ऊपर छायादार

घुस लग हुए थ। लेनिनग्राद म यहा की ट्राम और मोटर उसमें अधिक माग सुधरी था, लेकिन हेलसिंकी को लेनिनग्राद जसी युद्ध की ऐसी भयकर मार्ग में से गुजरना नहीं पडा था। यहा वर्ग भेद का रूप स्पष्ट दिखाई पड़ता था। लेनिनग्राद म मजदूरिनें भी बाजार या सिनेमाघर म जाते समय मध्यवर्ग की महिलाओं जैसा कपड़ा पहिन कर निकलती थीं, वहां फटे बुरे कपडे पहिने नर नारी मिलते नहा थे, किन्तु यहां मजूरों के ऊपर दरिद्रता की झलक स्पष्ट दिखाई पड़ रही थी, और उसके विरुद्ध उच्च और मध्यम वर्ग का फैशन से भरी नारियां सौंदर्य प्रदर्शन करतीं देखने म आती थीं। जरा ही आगे बढ़ने पर एक और बात ने दोनों ससारों के अन्तर को स्पष्ट कर दिया। एक आदमी ने आकर अंग्रेजी म कहा— "बहुत सुन्दर लड़कियां और बढ़िया अंगूरी शराब तैयार है, चलिये रात की मेहमानी कीजिये। मैंने कहा 'धन्यवाद, मुझे दोनों नहीं चाहिये।" सोवियत भूमि म यह कभी सोचने की भी बात नहा थी। रविवार के कारण आज दूकानें बन्द थीं, खुला रहने पर भी खरीदने के लिए हमारे पास पैसा कहाँ था? १२ डालर जो किसी सहृदयजन ने दिये थ, उन्हें इतनी जल्दी खतम कर देना अच्छी बात नहीं थी। नगर के घरों, कारखाना, सम्पत्ति, तथा नागरिकों का पोशाक और जीवनतल को देखकर मैं सोचता था— फिनलैंड हमारे एक गोरखपुर जिले के बराबर भी नहीं है, लेकिन क्या गोरखपुर जिले म हेलसिंकी और विपुरी जैसे नगरों की कल्पना की जा सकती है? क्या कारण है जो गोरखपुर इतना दरिद्र है और यह इतना धनी? इसका उत्तर कोई मुश्किल नहीं था। यह तो साफ था कि गाँधीवाद गोरखपुर का हेलसिंकी के बराबर नहीं बना सकता। यहा के लोग अपने हाथ और मस्तिष्क का उपयोग करते हैं, साइंस के नये नये आविष्कारों का तुरन्त वर्तने के लिये तैयार रहते हैं। पूंजीवादी बाधा होन के बाद भी यह इतनी सम्पत्ति पैदा कर सके हैं। फिनलैंड के अन्दर काष्ठ की खान है। यहा कितनी ही खानें भी हैं। इनके कारण इसके उद्योगीकरण में बहुत सुभीता हुआ, लेकिन हमारे यहा भी तो गढ़वाल और कमाऊं में इतना ज्यादा खनिज और वानस्पतिक सम्पत्ति है फिर क्यों दरिद्रता का क्यों समय

राय है। यदि फिनलैंड कागज का भूमि है, तो गोरखपुर चीना की भूमि है। वह अपनी चीनी स देश भर की आवश्यकता को पूरा कर सकता है, फिर पैसा पैदा करने के लिये तम्बाकू, सिगरेट के कारखाने, कपास और सूती मिलें जैसे बहुत से उद्योग धधे वहा चल सकते हैं, धन से उस भूमि का पाट सकते हैं। यही सोचते हुए स्थावर जगम वस्तुओं पर दृष्टि डाले हेलसिंकी की सड़कों पर पैरों को आगे बढाता जा रहा था। किताब की दूकानें आयीं। शीशे के भीतर पचासों बहुत ही सुन्दर छपी नई नइ पुस्तकें सजी हुइ दिखाइ पड़ रही थीं। एक नहीं, कइ किताबों की दुकान थीं। क्या गोरखपुर शहर म इस तरह की किताब की दुकानें देखी जा सकती थीं? क्या जिस भाषा क ३५ लाख बोलनेवाले हों, उस भाषा में इतनी पुस्तकें भारतवर्ष म छप सकती है? ३५ लाख क्या १५–१६ करोड़ नर-नारियों की भाषा होन पर भी हिन्दी की इतनी संख्या में ऐसा पुस्तकों क छापने का सौभाग्य प्राप्त नहीं है। इसके लिये शिक्षा प्रचार इतना होना चाहिये, कि देश में कोई स्त्री पुरुष अनपढ न रहे, साथ हा धन पैदा करने के आधुनिक साधनों के उपयोग से लोगों का जेबों मे पैसे भर देने चाहिये। राजधानी के दो तीन उद्याना को भी हमने देखा। आज छुट्टी का दिन था इसलिये नर-नारी वहां मनोविनोद क लिये आये थे। दो रेस्तोरा खूब सजे हुए थे, जिनम नर-नारी खचाखच भरे हुए थे। उनकी सजावट को देखकर पहले मालूम हुआ, कि फूलों का बाजार है। "सिना सवाय" मिला। उसके सामने टिकट खरीदनेवालों की इतनी लम्बी पाती थी, जिससे मालूम होता था, शायद इनमें से कितने हा आज तमाशा देखन से वचित रह जायेंगे। लेनिनग्राद म सिनेमा घरों की संख्या बहुत अधिक है, वहां दर्शकों से सीटें सदा भरी रहती हैं। लेकिन वहा सिनेमाघरों की अधिकता क कारण भीड़ नहा होती, हरेक सिनेमाघर में एक और भी विशालशाला दर्शकों के प्रतीक्षा गृह के तौर पर अवश्य होती है। टिकट न पानेवाले वहां जाकर बैठ जाते है। टिकट लेकर भी लोग प्रतीक्षा करने के लिये वहां चले जाते हैं। किन्हीं किन्हीं प्रतीक्षागृहों म तो गान वाद्य का भी इतजाम है। इसे हरेक पूजीवादी देश फिजूलखर्ची समझेगा। सिनेमा का

पुते लगे हुए थे। लेनिनग्राद में यहां की राम और मोटर उससे अधिक साफ सुथरी थी, लेकिन हेलसिंकी को लेनिनग्राद जैसी युद्ध की ऐसी भयंकर भट्टी में से गुजरना नहीं पड़ा था। यहां वर्ग भेद का रूप स्पष्ट दिखाई पड़ता था। लेनिनग्राद में मजदूरिनें भी बाजार या विनोदोद्यान में जाते समय मध्यवर्ग की महिलाओं जैसा कपड़ा पहिन कर निकलती थीं, वहां फटे बुरे कपड़े पहिन नर नारी मिलते नहीं थे, किन्तु यहां मजूरों के ऊपर दरिद्रता की झलक स्पष्ट दिखाई पड़ रही थी, और उसके विरुद्ध उच्च और मध्यम वर्ग की फैशन से भरी नारियां सौंदर्य प्रदर्शन करती देखने में आती थीं। जरा ही आगे बढ़ने पर एक और बात ने दोनों संसारों के अन्तर को स्पष्ट कर दिया। एक आदमी ने आकर अंग्रेजी में कहा— "बहुत सुन्दर लड़कियां और बढ़िया अंगूरी शराब तैयार है, चलिये आप मेहमानी कीजिये। मैंने कहा 'धन्यवाद, मुझे दोनों नहीं चाहिये।" सोवियत भूमि में यह कभी सोचने की भी बात नहीं थी। रविवार के कारण आज दूकानें बन्द थीं, खुला रहने पर भी खरीदने के लिए हमारे पास पैसा कहाँ था? १२ डालर जो किसी सहृदयजन ने दिये थे, उन्हें इतनी जल्दी खतम कर देना अच्छी बात नहीं थी। नगर के घरों, कारखाना, सम्पत्ति, तथा नागरिकों की पोशाक और जीवनतल को देखकर मैं सोचता था— फिनलैंड हमारे एक गोरखपुर जिले के बराबर भी नहीं है, लेकिन क्या गोरखपुर जिले में हेलसिंकी और विपुरी जैसे नगरों की कल्पना की जा सकती है? क्या कारण है जो गोरखपुर इतना दरिद्र है और यह इतना धनी इसका उत्तर कोई मुश्किल नहीं था। यह तो साफ था कि गाँधीवाद गोरखपुर को हेलसिंकी के बराबर नहीं बना सकता। यहां के लोग अपने हाथ और मशीन के का उपयोग करते हैं, साइंस के नये नये आविष्कारों को तुरन्त वर्तने के लिये तैयार रहते हैं। पूँजीवादी बाधा होने के बाद भी यह इतनी सम्पत्ति पैदा कर रहे हैं। फिनलैंड के जंगल कागज की खान हैं। यहां कितनी ही खानें भी हैं। इनके कारण इसके उद्योगीकरण में बहुत सुभीता हुआ, लेकिन हमारे यहां भी तो गढ़वाल और कुमाऊं में इससे भी ज्यादा खनिज और वानस्पतिक सम्पत्ति है फिर वहां दरिद्रता का क्यों साम्राज्य

राज्य है। यदि फिनलैंड कागज की भूमि है, तो गोरखपुर चीनी की भूमि है। वह अपनी चीनी से देश भर की आवश्यकता को पूरा कर सकता है, फिर पैसा पैदा करने के लिये तम्बाकू, सिगरेट के कारखाने, कपास और सूती मिलें जैसे बहुत से उद्योग धंधे वहां चल सकते हैं, धन से उस भूमि को पाट सकते हैं। यही सोचते हुए स्थावर जंगम वस्तुओं पर दृष्टि डाले हेलसिंकी की सड़कों पर पैरों को आगे बढ़ाता जा रहा था। किताब की दूकानें आयीं। शीशे के भीतर पचासों बहुत ही सुन्दर छपी नई नई पुस्तकें सजी हुई दिखाई पड़ रही थीं। एक नहीं, कई किताबों की दुकान थी। क्या गोरखपुर शहर में इस तरह की किताब की दुकानें देखी जा सकती थीं? क्या जिस भाषा के ३५ लाख बोलनेवाले हों, उस भाषा में इतनी पुस्तकें भारतवर्ष में छप सकती हैं? ३५ लाख क्या १५-१६ करोड़ नर-नारियों की भाषा होने पर भी हिन्दी को इतनी संख्या में ऐसी पुस्तकों के छापने का सौभाग्य प्राप्त नहीं है। इसके लिये शिक्षा प्रचार इतना होना चाहिये, कि देश में कोई स्त्री पुरुष अनपढ़ न रहे, साथ ही धन पैदा करने के आधुनिक साधनों के उपयोग से लोगों की जेबों में पैसे भर देने चाहियें। राजधानी के दो तीन उद्यानों को भी हमने देखा। आज छुट्टी का दिन था इसलिये नर-नारी वहां मनोविनोद के लिए आये थे। दो रेस्तोरां खूब सजे हुए थे, जिनमें नर नारी खचाखच भरे हुए थे। उनकी सजावट को देखकर पहले मालूम हुआ, कि फूलों का बाजार है। "किनो सवाय" मिला। उसके सामने टिकट खरीदनेवालों की इतनी लम्बी पांती थी, जिसमें मालूम होता था, शायद इनमें से कितने ही आज तमाशा देखने से वंचित रह जायेंगे। लेनिनग्राद में सिनेमा घरों की संख्या बहुत अधिक है, वहां दर्शकों से सीटें सदा भरी रहती हैं। लेकिन वहां सिनेमाघरों की अधिकता के कारण भीड़ नहीं होती, हरेक सिनेमाघर में एक और भी विशालशाला दर्शकों के प्रतीक्षा गृह के तौर पर अवश्य होती है। टिकट न पानेवाले वहां जाकर बैठ जाते हैं। टिकट लेकर भी लोग प्रतीक्षा करने के लिये वहां चले जाते हैं। किन्हीं किन्हीं प्रतीक्षागृहों में तो गान वाद्य का भी इंतजाम है। इसे हरेक पूंजीवादी देश फिजूलखर्ची समझेगा। सिनेमा का

टिकट आप १ रूबल में खरीदें, और मुफ्त में गान-वाद्य का आनन्द भी मिले। सोवियत के इन प्रतीक्षा गृहों के साथ खाने पीने की चीजों की दुकानें होती हैं। प्रतीक्षकों के यहां रहने से चीजों की बिक्री भी होती है। शायद इन बिक्री से प्रतीक्षागृह का खर्च निकल आता हो। फिनलैंड के लोग उसी वंश से सम्बन्ध रखते हैं, जिससे हमारे देश के द्रविड़ मुंडा लोग। भाषातत्त्वज्ञों का विचार है, कि नव-पाषाण युग में द्रविड़ों की पूर्वज जाति की एक शाखा उत्तर की ओर फैल दी गई। उसी की सतानें कोमी, इस्तोनिया, और फिनलैंड में आजकल रह रही हैं। हमारे यहां शुद्ध द्रविड़ की पहचान शरीर का काला होना है, लेकिन हेलसिंकी में काले बाल वाले नर नारी भी मिलने बहुत मुश्किल थे। क्या ६-७ हजार वर्षों तक अतिशीतल प्रदेश में रहने के कारण इतना अन्तर हो गया? हां, हेलसिंकी की गलियों में भी ऐसे नर-नारी बहुत थे, जिनका फोटो लेकर यदि किसी शुद्ध द्रविड़ पुरुष-स्त्री के फोटो से मिलाया जाता तो समानता साफ दिख लायी पड़ती— फरक रंग का ही था, नहीं तो नाक, चेहरे की हड्डी और बनावट, तथा शरीर की खर्वकायता एक ही जैसी थी।

हेलसिंकी को "श्वेतद्वीप" ने ७ जुलाई के सबेरे छोड़ा। रास्ते में कई जगह उसने थोड़ी थोड़ी देर तक रुक्कर, कहीं कोयला लिया और कहीं यात्री। अब जहाज में खाली स्थान नहीं रह गया था। मेरे दिमाग में अब भी फिनलैंड हलचल मचाये हुए था। ३८ लाख की आबादी वाले देश में हेलसिंकी जैसे नगर, ट्राम, रेल, जहाज, विमान, युद्ध के बहुव्ययसाध्य यंत्र और आदमियों का सारा लिफाफा। फिर वहां के सैंकड़ों यात्री मनोविनोद या किसी और काम के लिये स्वीडन, और इंग्लैंड की यात्रा पर रहे थे। हमारे देश के लिये तो यह स्वप्न की-सी बात थी। पुराने रूस के पितरबुर्ग जैसे नगरों में भी अभिजातवर्ग की सुख-सम्पत्ति बहुत रही होगी, लेकिन जन साधारण रूसी तथा पराधीन एसियायी दरिद्रता की क्रूर चक्की में पिस रहे थे। सोवियत शासन का बहुत बड़ा काम यह है— समाजवाद के आधार पर उसने अपने उद्योग धंधे को बहुत तेजी से अत्यन्त विशाल रूप में प्रस्तुत करना। समाजवाद ने इतनी शक्ति

साधन पैदा किये, जिसके कारण रूस ने युद्ध में अपने को अजेय साबित कर दिया। संस्कृति और शिक्षा का जितना सार्वजनिक प्रसार वहाँ पर है, उतना कहीं पर भी देखने को नहीं मिलेगा। अभी भी उसको करने को बहुत काम है। अपनी कितनी ही त्रुटियों को दूर करने की आवश्यकता है, लेकिन जो काम सोवियत शासन ने किया, उसके लिये हम उसके सात खून नहीं हजार खून माफ करने के लिये तयार हैं। समय के साथ सोवियत का नौकरशाही यांत्रिकता से अवश्य हटेगा, और उनके कार्यों में ज्यादा विकेन्द्रीकरण होगा। नगण्य से लोग जिनकी संख्या शायद हजार क्या लाख में एक हो, यदि चाहते हैं, कि सोवियत तंत्र और उनके नायकों के खिलाफ कुछ कहें, तो उन्हें भी पूरा मौका दिया जायगा क्योंकि उससे कोई हानि नहीं हो सकती। ऐसी कुछ त्रुटियाँ— जिनका असर बहुत ही नगण्य सी संख्या पर पड़ता है, उन्हीं हैं जिनको लेकर सोवियत और समाजवाद के शत्रु दुनिया में तरह तरह का प्रोपेगण्डा करते हैं। केवल इस ख्याल से भी उन्हें हटाना होगा।

८ बजे कर १० मिनट पर "श्वेतद्वीप" ने हेलसिंकी छोड़ा। यहाँ से हमने हवाई डाक से कई चिट्ठियाँ भेजीं।

स्टाकहोम— ८ जुलाई को सबेरे समुद्र कुछ तरंगित था। ५ बजे शाम को देवदारों से आच्छादित स्वीडन की पथरीली भूमि दिखाई पड़ी। ६ बजे "श्वेतद्वीप" फ्योर्ड में घुसा। स्वीडन और नार्वे अपने इन फ्योर्डों के लिये मशहूर हैं— समुद्र की मूँछें फ्योर्ड के रूप में स्थल के भीतर घुसी चली गई हैं। इनके किनारे बालुकाहीन तथा पथरीले हैं, किन्तु मिट्टी अवश्य है, तभी तो इन पथरीली पहाड़ियों और द्वीपों पर सब जगह हरे भरे देवदारु-जातीय वृक्ष दिखाई पड़ते हैं। एक एक फ्योर्ड से निकल कर हमारा टेढ़े-मेढ़े सोते दूर तक चले गये हैं। एक घूम घुमौवे फ्योर्ड के भीतर हमारा जहाज चला जा रहा था। किनारे की पहाड़ियों पर जगह जगह लाल टाइल के लाल-गृह बने हुए थे, जिनमें यातायात का साधन नौकायें थीं, जो कि अधिकतर मोटर परिचालित थीं। हम राजधानी की ओर बढ़ रहे थे, इसलिये एकाध किलाबन्दी न हो, तो

कम नाम चलना? लेकिन स्वीडन अपनी तिना बन्दों पर नहीं, बल्कि तटस्थता पर ज्यादा विश्वास रखता है। दो-दो महायुद्धों में वह तटस्थ बना रहा और हमारे देश के दो तीन जिलों के बराबर के देश ने धन से अपने देश को माला माल कर दिया। कभी यह छोटा सा देश इतना शक्तिशाली था, कि इसके विजेता रूस तक धावा मारते थे। उन्होंने ही वहाँ के राइकि राजवंश को जन्म दिया। २४ घंटे की यात्रा के बाद ६ बजे सबेरे "श्वेतद्वीप" स्वारहम के तट पर जा लगा। शहर यहीं से शुरू हो जाता था। पास पोर्ट देखने देखने में काफी देर लगी, शायद बोल्शेविकों के देश का जहाज था, इसलिये पूजावादी स्वीडन को बहुत भय था। मालूम हुआ, अब परसों शाम तक जहाज यहीं रहेगा। देखने के लिये बहुत समय था। काश, अगर पंद्रह ही पौंड और हमारी जेब में होते, तो हम आधे स्वीडन को देख आते। केवल १२ डालरों पर क्या भरोसा कर सकते थे, जबकि लंदन में कुली और टैक्सी का पैसा भी इन्हीं में से चुकाना था। स्वीडन के अधिकारी ने पास पोर्ट देख-दाख कर वहीं राशन का कार्ड भी दे दिया। लेकिन हमारा राशनकार्ड लेकर क्या करते, हमें तो "श्वेतद्वीप" के भोजन पर ही संतोष करना था। नगर भी सामुद्रिक धाराओं के किनारे ही बसा हुआ है। जन संख्या में स्वीडन फिनलैंड से दूना बड़ा है, इसलिये उसकी राजधानी भी हेलसिंकी से अधिक विशाल और भव्य होनी चाहिये। कितने ही मकान पास की पहाड़ियों पर बने होने से और भी अधिक बड़े मालूम होते हैं। लोग प्रायः सभी पिंगल या पांडु केश थे। खोपड़ियाँ उनकी लम्बी तथा कद ऊँचे थे। इन्हें असली हिन्दी-यूरोपीय (आर्य) जाति का नमूना माना जाता है। अपवादों को छोड़ यहां के लोगों में सौंदर्य भी अधिक है यह मानना पड़ेगा।

६ जुलाई का सारा दिन स्टाक होम में रहना था। स्वीडन के सिक्के पास तो नहीं थे भूखे रहने का भी डर नहीं था, इसलिये चाय और भोजन के समय को छोड़कर बाकी समय हमने अपने पैरों चलाने में लगाया। टामस-कुक की यहां शाखा थी, हमारा यात्री चैक भी उसी का दिया हुआ था, किन्तु उसने उसे भुनाने में अपनी असमर्थता प्रकट की, क्योंकि बैंकों पर स्वीडन का ...

नहीं था। १२ डालरों में से ७ डालरों को ३ ६ क्रानर प्रति डालर से भुना लिया, क्रोनर करीब करीब एक रुपये के बराबर था। देखने में सस्ती मालूम हो रही थीं। ४३ क्रानर की अच्छी बरसाती मिल रही थी। सो सवा सौ क्रोनर का गरम सूट अवश्य सस्ता था। किताबें उतनी सस्ती नहीं थीं। स्टाकहोम गाइड (अंग्रेजी) को ४ क्रानर में खरीदना पड़ा। अन्न इफरात का पता इसी से मालूम होता था, कि एक बाग में चिड़ियों के लिये रोटी के टुकड़े नहीं बल्कि तीन चार थोड़ा थोड़ा रोटियां फेंकी हुई थीं। कई डिपार्टमेन्ट स्टोर (महा दूकानें) था। फैशन भी खूब देखने में आता था। राजा का प्रासाद विशाल और बहुत दूर तक फैला हुआ था। पार्लियामेन्ट का भवन भी बहुत ही भव्य था। नगर के पास में ही कई विलास गृह थे। मजूरों की वेश भूषा देखने पर मालूम होता था, कि नगर और देश का सारा वैभव उनके लिये नहीं है, हालाँ कि सबसे कठोर काम उनसे ही लिया जाता है। यहां की भी ट्रामवे और बसें अधिक साफ थीं और भाड़ भी कम थी। लदन के अखबार हवाई जहाज से यहां आते थे, हमने " टाइम्स " और दूसरे दो एक पत्र लिये। मालूम हुआ, कलकत्ता में फिर हिन्दू मुसलमानों में झगड़ा हो गया, खून की नदी बह रही है। पाकिस्तान ने अनाज देना रोक दिया है। अब तक पाकिस्तान बन चुका था, यद्यपि अभी सीमा कमीशन ने अपना कार्य नहीं खतम किया था।

१० जुलाई को फिर मेरे पैर स्टाकहोम की सड़कों पर थे। शहर पहाड़ी जगह में बसा हुआ है, लेकिन पहाड़ शिमले या मसूरी की तरह ऊँचे नहीं हैं, घरों और सड़कों के बनाने में अच्छी योजना से काम लिया है। नगर में जगह जगह कितने ही उद्यान हैं। मैं एक बड़े उद्यान में गया। यहां पता लगा, लोग विलासोपवनों में देवदारों को क्यों नहीं रखते। इनके पतझड़ का समय नियत न होने के कारण वह बराबर सूखे पत्ते गिराते रहते हैं, यदि नीचे घास भी हो, तब तो इन पत्तों का झाड़ना आसान नहीं है। उद्यान बड़ा मनोरम था।

६८ क्रानर अर्थात् प्रायः एक रुपये में बाल बनाने का साबुन सस्ता

नहीं कहा जा सकता। पोशाक जरूर सस्ता थी, यदि सिलाई के महगी दाम का भी उसमें शामिल कर लिया जाय। उस दिन घूमते हुए मैंने लिखा था— "स्वीडिश नर नारी रूस में ही बड़े नहीं होते, बल्कि अपेक्षाकृत ज्यादा सुन्दर भी होते हैं। सभी दीर्घकाय हैं।" स्वीडन हमारे दो बड़े मिलों के बराबर है और उसका यह वैभव! वह अपने लिये ही नहीं, सोवियत के लिये भी दर्जनों जहाज बना रहा है, जिसके लिये सारी सामग्री इसके कारखानों में तैयार होती है। हा, मोटर और विमान यहा भी अधिकतर बाहर से आते हैं। बाजार में दूसरी चीजें भी काफी विदेशी हैं। भारत की चीजों की एक दुकान थी, जिसमें हाथी दांत की चीजें रखी थीं।

६॥ बजे शाम को "स्वेनद्वीप" ने फिर लगर उठाया। ११ ४० बजे रात को अभी गोधूलि ही था, फिर रात का क्या आशा की जा सकती थी। ११ जुलाई को हमने समुद्र में बिताया। आज समुद्र तरगित था, किन्तु बहुत अधिक नहीं, तो भी लोगों ने खाना छोड़ दिया था, मुझे झूला झूलने का आनन्द आ रहा था। हमारा पोत समुद्रतट से नातिदूर चल रहा था। उसका मुंह दक्षिण और कभी कभी दक्षिण पश्चिम की ओर होता था। मैं कभी शाला में जाकर वहा रखी सोवियत सम्बन्धी अंग्रेजी पुस्तकें पढ़ता और कभी बाहर की ओर समुद्र और तट भूमि का दृश्य देखता। कुछ अंग्रेजी भाषा भाषी लोग भी हमारे जहाज में थे, लेकिन मेरा किसी से अधिक परिचय नहीं हुआ।

१२ जुलाई को सवेरे से हा तटभूमि दिखाई देने लगी। पश्चिम दाहिनी ओर डेनमार्क की भूमि और बायीं तरफ जर्मनी की। सवा दो बजे दिन को "स्वेनद्वीप" कील नहर के मुंह पर पहुंचा। इस नहर में हमें ६ घण्टा चलना था। अगर नहर न होती, तो डेनमार्क और नार्वे के बीच से होते दो दिन से अधिक का चक्कर काटना पड़ता। तीन बजे से साढ़े नौ बजे तक "स्वेनद्वीप" चलता रहा। गति १५ किलोमीटर प्रति घंटा रही होगी। नहर के दोनों तरफ पहिला नगर आया। घरों की छतें अधिकतर लाल खपड़ैल की थीं। बागानें

की चिमनियां अधिकांश निर्धूम थीं। नहर में दो उल्टे पड़े जहाज विगत महायुद्ध का परिचय दे रहे थे। कारखाने भी जरमी थे और तेल की टंकियां विदीर्ण पड़ी हुई थीं। वैसे युद्ध का ध्वंसलीला लेनिनग्राद की तुलना में बहुत ही कम थी। एक सहयात्रिणी अंग्रेज महिला कह रही थीं— "प्रदेश समृद्ध है।" इधर तो युद्ध केवल वैमानिक बमवर्षा तक ही सीमित था। काल नहर स्वेज से दुगनी से अधिक चौड़ी है, इसमें एक साथ दो नहीं तीन जहाज चल सकते हैं। कुछ दूर तक नहर आस पास की भूमि से ऊपर थी। नहर के आस-पास कुछ कारखाने वाले कस्बे भी थे। बहुत सी खेती लायक भूमि गोचर छोड़ दी गई थी, आखिर दूध और मांस का भी तो इस देश में अधिक जरूरत होती है। सारा प्रदेश हरा-भरा था। देवदार वन भी जहां-तहां थे। जर्मनी का यह भाग अंग्रेजों के हाथ में था, इसलिये कहीं कहीं अंग्रेजी सेना की छावनियां भी दिखाई पड़ती थीं। यह वह जर्मनी था, जो संसार विजय के लिये उठकर अब पराजित पड़ी हुई थी। यदि युद्ध का मद हिटलर के सिर पर सवार नहीं हुआ होता, तो आज उसकी यह दशा क्यों होती? लेकिन पूंजीवाद का तो मतलब ही है युद्ध। शांति के वक्त में वह अपनों का खून पीता है, और युद्ध के समय परायों का। यदि शोषण समत न होता, तो देश के अधिकांश लोगों को दरिद्रता की मार न खाना पड़ता, यदि शोषण का लोभ न होता, तो दूसरे देशों से युद्ध करने की इच्छा न होती।

नहर के दूसरे छोर पर पहुंच कर घंटे भर ज्यादा जहाज खड़ा रहा। आठ पौन दस बजे (लेनिनग्राद समय) वह फिर अतलांतिक-समुद्र की ओर चला।

बाहरी समाचार हम जो कुछ मिला था, वह स्टाकहोम में रखाद अखबारों द्वारा हो। अब फिर सन्नाटा था। रेडियो बहुत कम काम देता था। खेल में शतरंज की दो जोड़ी के सिवाय और कुछ नहीं था। शतरंज के मोहरे को मैंने देवली की नजरबन्दी के समय हाथ लगाया तो था, लेकिन उसके लिये जितने समय की आवश्यकता है, उसे देने के लिये मैं कभी तयार नहीं हुआ, इसलिये

पुस्तकों और प्रकृति-निरीक्षण के सिवाय मन बहलाव का कोई साधन नहीं था। हाँ, इस समय में अपने ताजिक भाषा के अनुवाद के लिये "दाखुन्दा" और "गुलामान" की आवृत्ति जरूर कर लेता था।

१३ जुलाई (रविवार) का दिन भर तटभूमि दिखाई नहीं पड़ी। "श्वेतद्वीप" इतनी तेजी दिखला रहा था, कि परसों शाम की जगह कल ही लंदन पहुँचने की उम्मीद थी। आज जहाज हिल डुल ज्यादा रहा था। रेडियो की खबरों में पता लगा कि मिलहट ने २० हजार के मताधिक्य से पार्लियामेंट में जाने का निश्चय किया है।

१४ जुलाई (सोमवार) को सबेरे ८ बजे ही "श्वेतद्वीप" टेम्स के भीतर चल रहा था। लंदन की धुन्ध ने आगे बढ़कर हमारा स्वागत किया, लेकिन लंदन डॉक पर पहुँचते पहुँचते वह छट गई। साढ़े दस बजे हम तट पर पहुँचे। पास पोर्ट मामूली तौर से देखा गया। यात्रियों की सुख-सुविधा का ख्याल अंग्रेज बहुत ज्यादा रखते हैं। जो देश ऐसा करेगा, वही अपने यहां पाकेट खाली कराने के लिये अधिक यात्रियों को बुला भी सकेगा। मेरे बड़े बक्स का कस्टम वाला न मुँह भर खोला, बाकी हमारे यह कह देने पर, कि सभी पुस्तकें हैं, उन्होंने देखने की भी जरूरत नहीं समझी। यद्यपि वहीं मालूम हुआ, कि भारत से चेकोस्लोवाकिया जाने के लिये आयी एक भारतीय महिला के साथ की सब पुस्तकों को रखवा लिया गया था। उन पुस्तकों में शायद साम्यवाद के प्रचार की सामग्री हो, लेकिन मैं तो साम्यवाद की जन्म भूमि से आ रहा था। जहाज समय से ३० घंटा पहिले आया था। मैंने समझा शायद बाके जी इसी कारण नहीं आ सके। अब भारत का जहाज मिलने तक के लिये लंदन में कहीं ठौर ठिकाना ढूंढने की जरूरत थी।

* * *

२०— इंग्लैण्ड में

जहाजघाट से टेक्सी करके मैं टामसकुक के मुख्य कार्यालय में गया, क्योंकि पहिले अपने बेंक के बारे में पूछना था। वहां तक पहुंचने में घंटा भर लगा। सोचा था, सामान रखने की जगह मिल जायेगी, किन्तु वहां उसके लिये कोई स्थान नहीं था। शायद होटल का इतिजाम हो सकता था, किन्तु उसमें अपने पाकेट को देखना था। टेक्सा ड्राइवर ने सलाह दी कि सामान को स्टेशन में रख देना अच्छा होगा। मैंने वहां असबाब घर में सामान रखा और भलमानुस टेक्सी ड्राइवर ने साढ़े तीन शालिंग में १६ हिलग्रोव रोड में पहुँचा दिया, जहां पर बाकेजी का रहना होता था। पता लगा, बाकेजी तीन सप्ताह से एडिम्बरा की ओर चले गये हैं। हमारा तार आया था, जिसे वहां भेज दिया गया है। नहीं मालूम हो सका, वह भारत चलने के लिये तैयार हैं या नहीं, लेकिन अभी सबसे पहिले तो ठहरने का कोई सस्ता प्रबन्ध करना था। इस बिल्डिंग होस में बिहार के एक दो विद्यार्थी थे। उन्होंने ३५ लौंगरिज रोड पर वेयरली होटल का नाम दिया। मैं उक्त होटल में पहुंचा। वहां बहुत से भारतीय

थे। तीन गिन्नी, ३ पौंड ३ शिलिंग या ४० रुपये के करीब प्रति सप्ताह में एक कमरे में जगह मिली, जिसमें पहिले से ही एक भारतीय छात्र रह रहे थे। इसी में दो वक्त का भोजन भी शामिल था। ७ शिलिंग खर्च पड़ा, स्टेशन से टैक्सी पर सामान लाने में। अब हाथ में ५५ पौंड रह गये थे। यह कहने की आवश्यकता नहीं, कि रूस के लिये दिये गये चैक को टामसकुक यहां भुनाने को तैयार था। अब पैर जमीन पर था, इसलिये बहुत भय नहीं लग रहा था। अभी यह नहीं मालूम था, कि कितने दिनों बाद जहाज मिलेगा। पहिली चिट्ठी में मैं एक महीना प्रतीक्षा करने के लिये तैयार था।

लंदन में जहां तहां अब भी गिरे हुए मकान पड़े थे। लेनिनग्राद में ऐसा दृश्य देखने के लिये नगर के छोर पर जाने की आवश्यकता होती। लेनिनग्राद उस तरह भी लंदन से बहुत सुन्दर था, उसकी सड़कें बड़ी प्रशस्त थीं। दोनों ओर के मकान भी बड़े भव्य थे। सफाई यहां भी कम नहीं था। हरेक चौरस्ते पर बड़ी भीड़ दिखाई पड़ती थी, जो लेनिनग्राद में दिन के किसी किसी समय ही देखने को मिलती थी। लेनिनग्राद की सड़कें भी अधिक चौड़ी थीं, और यहां की सड़कें, कुछ तो टेढ़ी मेढ़ी थीं। आज पता लगा, पाकिस्तान डोमीनियन के गवर्नर जनरल मुहम्मद अली जिन्ना हुए।

दूसरे दिन ... जी के एक मित्र से मालूम हुआ, कि वह आजकल ग्लासगो में पड़े हुए हैं। यह भी मालूम हुआ, कि वहां उनके एक डाक्टर मित्र हैं। खैर, यह तो निश्चिन्तता हुई कि वह अपरिचित स्थान में नहीं पड़े हैं। टामसकुक और इंडिया आफिस में जाकर भारत की यात्रा के लिये कुछ करना था, सोचा उसके बाद ग्लासगो चलेंगे। मेरे पास के ५५ पौंड काफी नहीं थे।

शायद मैं अच्छी तरह सैर कर सकता था, लेकिन कुछ ऐसा बातें बना, कि दो हफ्ते और रहना पड़ा, लेकिन मेरे उतनी नहीं हो सका। इंडिया हाउस में अब भारत के उच्च आयुक्त मिस्टर मेनन का दरबार था। अंग्रेजों के रहते ही अब भी बेदर्दी से नौकर चाकरों पर पैसा खर्च किया जा रहा था।

नौकरशाही मशीन भी उसी तरह चल रही थी, लेकिन वहाँ के अंग्रेज कर्मचारी मिस्टर हार्डिंग ने बहुत सहृदयता दिखलायी। पी० ओ० कम्पनी के दफ्तर में फोन कर के बी० दर्जे के टिकट का प्रबन्ध करा के चिट्ठी लिख दी। मैंने सोचा था, बाकेजी भी जायेंगे, इसलिये दो टिकटों का इंतिजाम करवाया। किराया ५४ पौंड देना था, अर्थात् किराया चुका देने के बाद हाथ खाली हो जाता था। इंडिया आफिस से कुछ कर्ज लेने के लिये प्रान्तीय सरकार से इजाजत मंगवाने की जरूरत थी। खैर इतना हो जाने से यह तो मालूम हुआ, कि चिट्ठियों में जिस तरह जहाज के न मिलने का डर दिखलाया गया था, वह बात नहीं थी।

अभी देखना सुनना था, प्रस्थान तिथि आदि के बारे में अभी कुछ तै नहीं हो पाया था। कम्युनिस्ट-पत्र "डेली वर्कर" से कोने कुछ पता लगेगा, इस ख्याल से मैं ढूंढते ढांढते वहां पहुंचा। मालूम हुआ, कि मुरादाबाद के साथी शरफ अतहर यहीं पर हैं। मजूरों और किसानों की अवस्था देखने के लिये बतलाया गया, कि लंदन पार्टी आफिस से उसका इंतिजाम हो जायगा। लंदन कोई छोटा शहर थोड़ा ही है। ७०-७८ लाख की आबादी के शहर को एक जिला ही समझिये, इसलिये एक जगह से दूसरी जगह जाने में समय काफी लगता था। पैसे खर्च कम करने का इंतिजाम लोगों ने कर रखा था और भूगर्भी रेलों तथा बसों के द्वारा वह बहुत सस्ता पड़ता था। पार्टी आफिस ने परसों (१८ जुलाई) मजूरों की बस्तियों को दिखलाने का वचन दिया। साथी शरफ को भी टेलीफोन कर दिया था। वह मेरे पुराने परिचित थे। शाम को वह मेरे स्थान पर आगये और कहा कि किसानों और खेती हर मजूरों की अवस्था को भी देखिये, उसका भी प्रबन्ध कर दिया जायेगा। १७ जुलाई को आसमान पर बादल घिरा हुआ था, जब तब बूंदें पड़ती रहीं, शाम को तो अच्छी खासी वर्षा हो गई। उस दिन रीजेंट पार्क लंदन के बड़े उद्यान को देखने गये। दूसरी जगह के चिड़ियाघरों को युद्ध ने उजाड़ दिया था। यहां के चिड़ियाघर में सांपों का बहुत ही विशाल संग्रह था, लेकिन जापानी बम पड़ने से मक्त हजारों सांप कहीं नगर में न घुस जायें, इसलिये उनमें से बहुत

को न र और कितनों को स्थानान्तरित कर देना पड़ा। लंदन का चिड़िया घर अब भी अच्छी हालत में था। वानर, चिड़िया, चिम्पांजी, ऊँट, भालू, बाघ सिंह सभी थे— सिर्फ बाघ काफी संख्या में थे। लेनिनग्राद का चिड़िया घर अच्छी हालत में रहते समय भी इससे छोटा ही था, अब तो वह उजड़-सा गया था। जार की सामन्तशाही सरकार चिड़िया घर का महत्व केवल तमाशे के लिये समझती थी, लेकिन पूंजीवादी इंग्लैंड में उसको विज्ञान की प्रयोगशाला माना जाता था, इसलिये उसे समृद्ध रखने की पूरी कोशिश की गई थी। तभी अत्यन्त घने बसे हुए लंदन के बीच में इतनी बड़ी हुई जमीन कुछ अधिक से अधिक मालूम होती थी। पर जब कि एक बार जगह, प्राणी-उद्यान के लिये छोड़ दी गई, तो फिर आबादी के लिये उसमें से कोई कैसे ला सकता था? आज कोई रविवार या छुट्टी का दिन नहीं था, लेकिन दर्शकों की संख्या भारी थी।

रीजेन्ट्स-पार्क के पास ही में कहीं पर ग्लासेस्टर रोड था, जिसके एक मकान में पन्द्रह वर्ष पहिले मैं तीन महीना रह गया था। सोचा, चलो उसे भी देख लें। ढूँढ़ते ढाढ़ते वहाँ पहुँचा, किन्तु अब ग्लासेस्टर रोड की जगह उसका नाम ग्लोसेस्टर क्रसेन्ट हो गया था। उसके ४१ नं० वाले मकान में अब कोई महाबोधि सभा नहीं थी। पुरान आदमी ने एक दूसरा घर बतलाया, वहां बात करने से मालूम हुआ, कि अब लोग हैम्पस्टन रोड के पास २६ इस्केन्ड स्क्वायर में चले गये हैं। खैर, आदमी तो मेरे परिचित नहीं होंगे, ऊपर से बूँदे भी पड़ने लगी थीं, इसलिये वहां जाने का ख्याल मैंने छोड़ दिया। आधुनिक युग के महान बौद्ध मिशनरी अनागारिक धर्मपाल ने जिस मकान को खरीदा था, वह इसलिये कि इंग्लैंड में बौद्ध धर्म का एक अच्छा मंदिर और प्रचार केन्द्र बने, अब वहां उसका कोई पता नहीं था। मकान लड़ाई का बम वर्षा से बच गया था। लेकिन मालूम नहीं अब भी वह महाबोधि सोसायटी का है। मेरे पहुँचने से कुछ ही समय पहिले भारत स्वतंत्रता कानून को इंग्लैंड की कॉमन सभा ने पास कर दिया था। आज लार्ड सभा ने भी उसे पास कर दिया। भारत न स्वतंत्रता अपने बलिदानों से नहीं पास की, बल्कि अंग्रेजों की

मदिच्छा से— यही इस का अभिप्राय था।

मजदूरों की बस्ती— पूर्व निश्चयानुसार १८ जुलाई को एक कम्युनिस्ट तरुण हैरी वाटसन मुझे मजदूरों की बस्ती की ओर ले चले। ६ बजे से ३ बजे तक मैंने वेस्ट इंडिया डॉक, ईस्ट इंडिया डॉक, विक्टोरिया डॉक आदि का चक्कर लगाया। डॉक अर्थात् जहाज घाट इंग्लैंड के लिये बड़े महत्व रखते थे। एक छोटा सा छोटा टापू अपने व्यापार के बलपर ही विश्व की एक महान् शक्ति बना और वह व्यापार इन्हीं डॉकों से होता था। ईस्ट इंडिया से मतलब भारत और पूर्व के देश थे, जहा आने-जाने वाले जहाज इस घाट पर खड़े होते थे। गोया यह तीन शताब्दियों का इंग्लैंड की समृद्धि का कीर्ति स्तंभ था। वेस्ट इंडिया डॉक से अमेरिका की ओर जहाज जाते रहे होंगे। डॉक में जहाज से माल की उतराई-चढाई का काम होता था, जिसमें मजदूरों के हाथ ही काम आ सकते थे। वहाँ के मजदूर यद्यपि अधिकतर अंग्रेज थे, लेकिन ब्रिटिश साम्राज्य और दूसरे देशों के कितने ही आदमी भी यहा दिखाई देते थे। चीनी और भारतीय रेस्तोरा भी थे। युद्ध के समय यहा बड़े जोर की बम वर्षा हुई, इसलिये अधिकतर मकान ध्वस्त हो गये थे। कुछ घरों को अस्थायी तौर से रहने लायक बना दिया गया था। वैसे जिस गति से लेनिनग्राद में पुनर्निर्माण का काम हुआ, उसकी आधी गति से भी काम किया गया होता, तो यहा बहुत से मकान तैयार हो गये होते। सैकड़ों घर ऐसे थे, जिनकी छतें खिड़कियां-दरवाजे नष्ट थे। उन्हें आसानी से मरम्मत करके आदमियों के रहने लायक बनाया जा सकता था लेकिन लेनिनग्राद और लंदन में बहुत अंतर है। कहने को लंदन में मजदूरों की सोसलिस्ट गवर्मेन्ट शासन कर रही थी, लेकिन अब भी वैयक्तिक सम्पत्ति बहुत पवित्र समझी जाती थी। मकानवाले इन दीवारों को न स्वयं रहने लायक बना सकते थे, न नगरपालिका को ही इसके लिये अधिकार देते थे। खरीदने पर जो पैसा देना पड़ता, वह नगरपालिका की शक्ति के बाहर था। यह भी मालूम हुआ, कि यहां के सारे मकानों के बनाने का काम ठेकेदार ही करते हैं। वह ऐसा ठेका लेने के लिये क्यों तैयार होंगे, जिसमें नफा कम हो। नये मकानों

के बनाने के लिये वह तैयार थे, किन्तु इन मजबूत दीवारों पर छत रखने के लिये नहीं। हैरी ने बतलाया, कि यहा पर सीधे बमों से मकानों को उतना नुकसान नहीं पहुँचा, जितना कि आग और हवा के धक्के से। एक पचतल्ले मकान को दिखला कर हैरी ने बतलाया इसपर बम गिरते समय में पास में था। एक चटियल सी पटी जगह को दिखला कर कहा यहीं उडन गोला (राकेट) गिरा था। पास म एक बडा जूट का गोदाम था, जो हफ्ते भर जलता रहा। स्कूल की एक चौमंजिला इमारत का अब ढाँचा भर खडा था। वैयक्तिक स्वार्थ और नाम चोरों के कारण, न जाने, कितने समय बाद का यह उजडा नगरोपान्त फिर आबाद हो सकेगा। और यह देश भी अभिमान कर रहा था कि उसके यहाँ समाजवादी मजदूर पार्टी का राज्य है। ऐसे समाजवाद से भगवान् बचाये, जिसको देखने के लिये बहुत शक्तिशाली अणुवीक्षण की जरूरत पड़ेगी। लेनिनग्राद और रूस से निश्चय ही अभी लदन और इग्लैंड बहुत दूर है। लदन नगरपालिका चाहती है माल गोदामों ने यहा भारी जगह घेर रखी है उन्हें हटा कर नगर का विस्तार किया जाय, लोगों के लिये अच्छे अच्छे घर बनाये जायें, किन्तु भूमि के मालिक इतना दाम माग रहे हैं, कि जिसे दिया नहीं जा सकता।

एक जगह पर चीनी नाविकों के सघ का ऑफिस देखा। मुहल्ले में चीनियों का काफी संख्या थी। यद्यपि वह सारे शुद्ध चीनी न होकर अग्रेज माताओं की सतान थे। चीनी मुखमुद्रा इतनी जबरदस्त होती है, कि एक पीढी म जरा सा सम्पर्क हो जाने पर कई पीढियों के लिये वह स्थिर हो जाता है, इसलिये चीनी मुखमुद्रावाले किसी पुरुष के जानने के लिये अग्रेज माता के बारे म पूछना पड़ेगा। इस मुहल्ले म भयकर ध्वस लीला हुई था। जो बा आदमी रह गये थे, उनके घर द्वार बहुत ही मैले कुचैले थे। १ बजे ब्राउमन मुझे लाल मजूरों की सभा म ले गये। व्याख्यान मुझे नहीं देना था। ब्राउमन के खड़े होते ही दो सौ मजूर आसपास जमा हो गये। छोटा-सा व्याख्यान था, कोयला वाले मजदूर कम से कम ६ पौंड प्रतिसप्ताह मजूरी की माग कर रहे हैं, उसका समर्थन करना चाहिये। अर्जन्तीन के तानाशाही का बीबी ईवा पेरान

यदि लदन आये, तो उसे सिलाट थाम स्तान और प्रदर्शन होना चाहिये। ईस्ट इंडिया डॉक के पार्क पर सभा हुई, फिर घूमते हुए हम विक्टोरिया डॉक की तरफ गये। यहाँ भी प्रेम-लीला उसी तरह थी। इंग्लैंड का आहार इन्हीं डॉकों पर उतरता था, इसलिये हिटलर ने चाहा, कि इनको नष्ट कर अंग्रेजों को भूखों मारा जाय। हम नगरपालिका के बनाये घरों की ओर गये। किराया २५ से ३० शिलिंग था, जो घरोंदे जैसे घरों के लिये बहुत अधिक था। निचले तल के घरों का किराया १० ११ शिलिंग था। सप्ताह में एक आदमी के भोजन पर २४ शिलिंग से कम खर्च नहीं होता था, यदि स्त्री पुरुष और दो बच्चे हों, तो ३८ शिलिंग अपना तथा ३ शिलिंग प्रति बच्चा स्कूल में देने पर उन्हें एक समय का भोजन मिलता। ४ व्यक्तियों के परिवार के लिये प्रति सप्ताह ५ पौंड की आवश्यकता थी। पुस्तकों का दाम भी ज्यादा था। वह इतनी दुर्लभ हो गई थीं, कि लड़कों को पढ़ाने के लिये पुरानी पुस्तकों को काम में लाया जाता था। सबसे सस्ते (यूटिलिटी) सूट का दाम ४ पौंड १० शिलिंग अर्थात् ६० रुपये से अधिक था। ओवर कोट २० पौंड, जूता ढाई से तीन पौंड मजूरों का जूता (वर्किंग बूट) २५ से अट्ठाइस शिलिंग अर्थात् १८ रुपया, जूते की मरम्मत पर १० शिलिंग (६ रुपया से ऊपर), एक सूट के धुलवाने में ३० शिलिंग, सिनेमा का टिकट १ से साढ़े चार शिलिंग तक, मामूली शराब एक पिंट का १ शिलिंग, २० सिगरेट का ढाई शिलिंग। जीवन इतना महंगा था, जब कि हर आदमी के लिये काम का मिलना निश्चित नहीं था। घर में बीमार होने पर अस्पताल सेविंग ऐसोसियेशन की मेम्बरी का चन्दा देने वालों की ही मुफ्त चिकित्सा होती, नहीं तो साधारण डाक्टर के लिये भी ३–४ गिनी प्रति सप्ताह देना पड़ता। पिता के बेकार होने पर बच्चे को मुफ्त दूध नहीं तो पाँच शिलिंग पर १ छटाँक दूध चूर्ण मिलता। वाटसन अपने एक परिचित घर में ले गये। ज्येष्ठ अविवाहित पुत्र माँ के साथ रहता था, और राज का काम करता था, जिसमें उसे ४ पौंड ५ शिलिंग प्रति सप्ताह मिलता। दियासलाई के डब्बों की तरह के छोटे छोटे चार कमरे थे, जिनमें २ शयन कोठरियाँ और एक भोजन

पाइट, रसोई की कोठी ५ वीं थी। मकान का किराया १० शिलिंग प्रति सप्ताह था— यदि ऊपरी मंजिल पर होता, तो साढ़े ग्यारह शिलिंग देना पड़ता। बिजली का चार शिलिंग। चूल्हे की गैस का ८ या ६ शिलिंग प्रति सप्ताह अलग लगता। घर कमाने वाला केवल साढ़े चार पौंड, यानी (८८ शिलिंग) प्रति सप्ताह पाता था। हम कह चुके हैं, २ बच्चे और २ मियाँ बीबी के भोजन का खर्च १०० शिलिंग होता था। अंग्रेज-मजदूर परिवारों की क्या अवस्था होनी होगी, इसका अनुमान आप आसानी से कर सकते हैं। सोने की कोठरियों में लोहे की चारपाई पर ओढ़न बिछौना और मेज तथा बिजली बत्ती थी। इन मजूरों के सीने पर बैठे जमीन का मालिक, मकान का मालिक और किराया उगाहने वाला एजेंट तीन-तीन शाम चैन से मौज कर रहे थे। इनका नाम लेने पर लेनिनवाद वाले हम पड़ते। मजदूर सरकार इसमें कोई दखल देने के लिये तैयार नहीं थी। कभी तो लड़ाई और कभी कम्युनिज्म के हाने के नाम पर अमरीका से रोटी मक्खन आ रहा था, मजदूर नेता समझते थे, इसी तरह उनकी नैया पार हो जायगी। लेकिन पहले से आज की स्थिति में इतना कम परिवर्तन होने के कारण लोग कहाँ तक मजदूर साम्राज्यवादियों की लम्बी लम्बी बातों पर विश्वास करते? एक दिन जरूर वह उन्हें निकाल बाहर करके ही रहते। प्रश्न यही था— मजदूर साम्राज्यवादियों को हटाकर टोरी साम्राज्यवादियों के निकृष्टतम शासन में जायेंगे या ऐसे शासन तन्त्र में जो यहाँ से सारी दरिद्रताओं और दुखों को सदा के लिये नष्ट कर दे।

लंदन में अब खबरों का कोई घाटा नहीं था। दुनिया भर की मोटी मोटी खबरें बात की बात में यहाँ के अखबारों में छप जाती, और अंग्रेजों की गुलामी के कारण हमें सुभीता था अंग्रेजी अखबारों को पढ़ सुन लेने का। २० जुलाई को पता लगा, बर्मा में औंग सांग और पांच दूसरे मन्त्रियों को गोली का शिकार बनाया गया। विरोधी पार्टी को तलवार से कुचलना अच्छा नहीं है, क्योंकि तलवार के बदले फिर तलवार उठने लगती है। भारत की अस्थायी सरकार बन गई, और सारे विभाग को दो में बाँट कर नये मन्त्रियों को सुपुर्द कर दिये।

गये। लंदन में अब भी भारतीय छात्रों का आगमन कम नहीं हुआ था, चूंकि जान पड़ता था इधर छात्रवृत्तियों के देने में अधिक उदारता दिखलायी जा रही थी। पौंड-पावना बहुत सा इकट्ठा हो गया था, इसलिये उसे बड़ी बेदर्दी से खर्च किया जा रहा था— आखिर बेरिस्टरी या सस्ते का पी० एच० डी० कर आने के लिये पौंड को बरबाद करने की क्या आवश्यकता थी? यदि छात्रवृत्ति देना था, तो वह साइंस और टेक्नीकल शिक्षा के लिये होना चाहिये।

२१ जुलाई को बहुत सबेरे मैं घूमने निकला। सोचा पैसा कहीं खर्च न हो जाय, इसलिये पहले जहाज का टिकट ले आऊँ। पी० ओ० कम्पनी का जहाज स्ट्रेथमोर पहली अगस्त को यहाँ से चलकर १७ तारीख को बम्बई पहुँचने वाला था। मैंने ५४ पौंड देकर बम्बई का टिकट ले लिया। २१ जुलाई और १ अगस्त में १० दिनों का अन्तर था, जिसके लिये अब पास में पैसा नहीं रह गया था। २० पौंड कर्ज लेने से काम चल सकता था। लेकिन इंडिया हाउस में तो प्रान्तीय सरकार से पूछ कर ही रुपया मिलता, जो कि नौ मन तेल पर राधा के नाचने की शर्त थी। किसी ने हाई कमिश्नर को लिखने को कहा। टामसकुक के पास इधर कई दिनों न आकर मैंने गलती की थी। वहाँ जाने पर मालूम हुआ कि ५०-५० पौंड के दो बार दो ड्राफ्ट इम्पीरियल बैंक के नाम मेरे लिये आ चुके हैं। इम्पीरियल बैंक ब्राड-स्ट्रीट में था जहाँ सारे बैंक ही बैंक थे। लक्ष्मी का प्रताप जहाँ रात दिन विराज रहा हो, वहाँ की सड़कें, बनारस की कचौड़ी गली जैसी हों, यह कोई ठीक बात नहीं थी। सोचा अब तो पैसा काफी आ गया, और इसको पौंड के रूप में भारत लौटाना अच्छा नहीं है।

अब निश्चिन्त होकर सैर-सपाटे की बात सोचने लगा। २२ तारीख को ब्रिटिश म्यूजियम गया। सिर्फ एक शाला खुली थी, जिसमें थोड़ा थोड़ा सभी चीजों का संग्रह था। उसके देखने में ३० मिनट भी नहीं लगे। जाने के बारे में जो पता मालूम हुआ, उससे तो शायद सालों लगेंगे, ब्रिटिश म्यूजियम को फिर से सजाने में। इसकी तुलना लेनिनग्राद के एर्मिताज म्यूजियम से करने पर अंग्रेजों के सांस्कृतिक श्रम की गति की मंदता साफ मालूम होती थी। एर्मिताज

में पिछले ही साल पच्चासों हाल खुल गये थे और अब का साल तो सा क दस हाल सजाये जा चुक थे। मैंने वहा सिर्फ अपने काम का चीजों को देखा, फिर भी ६ ७ घंट पयात नहीं हुए। आज मैंने एक सफरी रेडियो खरीदा। यद्यपि अभी यह निश्चित नहीं था, कि मुझे भारत में बिजली वाले नगर म रहना पड़ेगा। कोशिश की, कि कोई बैटरी और बिजली दोनों वाला मिल जाता, किन्तु वैसा नहीं मिल सका। उस दिन ८–६ घंट का चक्कर कहीं पैदल कहीं बस या भू गर्भी ट्रेन म रहा। शामको बिहार के परिचित अध्यापक छात्र डाक्टर ब्रह्मचारी, प्रो दिवाकर विद्यार्थी आदि के साथ कई घंटा बातचीत होती रही। उन्होंने अपने आने से पहिले का भारत का स्थिति का बतलाया।

२३ जुलाई को कई म्युजियमों को देखा, जिसमें विक्टोरिया अल्बर्ट म्युजियम भूतत्व म्युजियम, और साइंस-म्युजियम भी थे। भूतत्व और साइंस म्युजियमों को करीब करीब पूरा तौर से सजा दिया गया था, लेकिन ऐतिहासिक सामग्री तथा कला का चीजों के संग्रहालय विक्टोरिया अल्बर्ट म्यूजियम के सूक्ष्म चित्र वाले कुछ ही कमरे तैयार हो पाये थे। एसियायी चीजों के संग्रह को अभी बिलकुल ही नहीं रखा गया था। मैं मध्य एसिया से संबंध रखने वाली चीजों का देखने के लिये बड़ा उत्सुक था, लेकिन ब्रिटिश म्यूजियम की तरह इस म्यूजियम से भी हताश होना पड़ा। भूतत्व और साइंस के म्युजियमों को इतनी जल्दी सजा देने से मालूम हो गया कि अंग्रेज कितने यथार्थ वादी हैं। इंग्लैंड की भूमि में क्या क्या सम्पत्ति है, और उसकी भूमि का निर्माण कैसे हुआ, इसे बतलाने के लिये एक एक इलाके को भूतत्व म्यूजियम म अच्छी तरह दिखलाया गया था। वहां से निकलने वाली चीजों का जहा संग्रह करके रखा गया था, वहां साथ ही नक्शे और रेखाचित्र बनाकर उन्हें अच्छी तरह समझा दिया गया था। लेक्चर का भी प्रबंध था। उस समय भीतर बहुत सी छात्रायें घूम रही थीं। अणुबम के युग म अब उरानियम (उरान) धातु का महत्व ज्यादा था, इसलिये उसके ढेले भी रक्खे हुए थे। मुझे ख्याल आ रहा था, भारत की भूमि भी रत्न गर्भा है, कब वहा के भू गर्भ की सामग्री इस तरह दिखा आदि म इकट्ठी

की नायिका और उस द्वारा गोरे लोगों को जानने का मौका मिलता। साइंस म्यूजियम में रेल, मोटर विमान, जहाज, इंजन, सिलाई आदि सबकी प्रकार की मशीनों के विकास का इतिहास दिखलाया गया था। कुछ मशीनें तो वहां ऐसी रखी हुई थीं, जिन्हें आविष्कारक पहिले पहल निर्माण किया था। अल्बर्ट म्यूजियम की चित्रशाला में देखने से मालूम होता था, कि इंग्लैंड पन्द्रहवीं सदी में ही वस्तुवादी हो गया था, जब कि रूस को वहां पहुंचने में १८ वीं सदी तक इंतिजार करना पड़ा। पार्कों में एक दो मातायों के भी चित्र थे।

अभी तो भारत के डमानियन-स्वतन्त्रता का आरम्भ हुए समय ही कितना बीता था, तो भी दोनों पन्ना था कि स्वतन्त्रता के कारण देश की मनोवृत्ति में जो परिवर्तन होना चाहिये, उसका अभाव काफी समय तक रहेगा। भारतीय विद्यार्थियों की लंदन में भरमार थी, संख्या शायद पहिले से भी अधिक थी। आश्चर्य तो यह था कि अभी अनुज और कला की डिग्रियों के लिये लोग दौड़े आ रहे थे। इंडिया हाउस में अब भी अंग्रेज कर्मचारियों की अधिकता थी और भारतीय कर्मचारियों के मनोभावको देखकर काले साहब से अधिक नहीं कहा जा सकता था। इसी मुहल्ले में भारत विद्यार्थी संघ (इंडिया स्टूडेंट्स ब्यूरो) था, जहां भारतीय खाना मिल जाता था। हमारे होटल में दिल्ली के एक व्यवसायी सज्जन ठहरे हुए थे। यद्यपि अब जन होना असाधारण प्रमाण नहीं था, किन्तु उक्त सज्जन इस बात में ईमानदार थे। दिल्ली में उन्होंने स्टेशनरी का कारबार काम वर्ष से अधिक हुए आरम्भ किया था। वह उन व्यवसायियों में नहीं थे, जिनको थोड़ा-सा लाभ हो जाने पर तेली के कोल्हू के बैल की तरह उतनी ही सामा में घूमने और अधिक लाभ उठाने का ख्याल रहता है। उन्होंने स्टेशनरी तैयार करने में काफी तरक्की की थी, जो कि उनके पास की छपी हुई सूचियों से मालूम होता था। वह महीने भर से अधिक समय से लंदन में उसी संबंध में धुनी रमाये थे, और इंगलैंड के कई नगरों में घूम घूम कर वहां से सीखने और लेने की चीजें ले रहे थे। पीछे वह इसी सिलसिले में जर्मनी और अमेरिका में भी घूमे। दिल्ली निवासी होने से दिल्ली की वह खिचड़ी मुसलमानी पोशाक उनके

लिये अपरिचित नहीं था, जिस कि नेहरूजी ने भारत की राष्ट्रीय पोशाक बनाने का बाड़ा उठाया है। पैर से सटा हुआ पतला पाजामा, शेरवानी और उपर किश्तीनुमा टोपी— दुबले पतले नहीं थे, नहीं तो " शंकर " को कार्टून बनाने क लिये कलाकार को अधिक पैसा देने की आवश्यकता नहीं होती और फाटो से ही काम चल जाता। खैर, जैन भाइ स पता लगा कि यहां पर भारतीय खाना भी मिलता है। इसी लालच से वह दसों मील का चक्कर काटकर भूरा री भोजनशाला म जाते थे। यद्यपि यहां होटल में उनको निरामिष भोजन मिलने में कोइ दिक्कत नहीं थी— यूरोप के किसी देश में रूस में भी— निरामिष भोजन मिलने म कोई कठिनाइ नहीं होती, क्योंकि रोटी, मक्खन, दूध, फल वहां काफी मिलते हैं, उबले आलू, गोभी के खाने का तो वहाँ रिवाज है। हाँ, निरामिषाहारियों को तली हुई चीजों से परहेज करना चाहिये, क्योंकि वहाँ तली हुई चीजों में चरबी इस्तेमाल की जाती है। पाव रोटी म कोई अडा डालनेवाला वेवकूफ वहाँ नहीं मिलेगा, क्योंकि अडा बहुत महगी चीज है। पर अच्छे बिस्कुट और केक में उसके होने का डर अवश्य है। जैन भाइ भारतीय भोजन शाला में आया करते थे। २५ को हम भी गये। वहा घास-मास दोनों तरह का प्रबन्ध था। मिर्च बहुत तेज मालूम हुई। मैं ऐसे देश से २५ महीने बाद आया था, जहां के आदमी मिर्च का नाम भी मुह से निकलने पर तीखापन अनुभव करते हैं, जहा मसाले देखने को भी नहीं मिलते। मेरे पास कुछ काली मिर्च थी। एक दिन मैंने कपडे की पोटली में चार-पाच मिर्चे डाल कर मास सूपमें रख दिया। ईगर और लोला दोनों ही शिकायत कर रहे थे, कि उनका हलक जल गया। आखिर मेरा हलक भी दो बर्ष से मिर्च की मार से मुक्त था। वैसे मैं मिर्च का बायकाट तो नहीं करता, लेकिन बहुत कम मिर्च खाता हूँ। बहुत दिनों से परित्यक्त होने से उस दिन मेरा भी हलक भारतीय भोजनालय के भोजन से जलने लगा और मैं फिर वहा नहीं गया। भारत में आने के बाद छ महीने तक मिर्च से अभ्यस्त होने के लिये गलनाली को तैयार करना पड़ा। विद्यार्थियों और व्यापारियों की इतना भीड़ रहती थी, कि लोगों को इंतिजार

करना पड़ता था। उस रेस्तोरां के लिये जगह भी छोटी थी। दूसरा जगह बना घर किराये का मिल सकता था, लेकिन वह इंडिया होम से दूर नहीं जाना चाहते थे, क्योंकि इंडिया के कर्मचारी, भारतीय व्यापारी, विद्यार्थी इधर आसपास अधिक रहते थे। व्यापारी काफी संख्या में लंदन में रहते हैं। हमने देखा, स्यालकोट के बने खेल का सामान बेचनेवाले व्यापारी अपनी मजबूत, सुन्दर, और सस्ती खेल की चीजों से अपने और देश को काफी लाभ पहुँचा रहे हैं। विद्यार्थियों का यह बाढ़ तो बन्द होनी चाहिये। लेकिन वह बन्द कैसे हो सकता है, जबकि हरेक मंत्री और उच्च भारतीय कर्मचारी अपने भाई भतीजों को यहां की डिगरी दिलाकर बाजी मारना चाहता है, और उच्च नौकरियों के देने में अभी भी अंग्रेजी भाषा का अंग्रेजों जैसा परिचय आवश्यक समझा जाता है। अंग्रेजों की टकसाल में ढली खोपड़ी अभी भी अंग्रेजी को उसके स्थान से पदच्युत करने के लिये तैयार नहीं है। इंडिया हौस को पढ़ने से भी इसी का प्रमाण मिलता था। वहां पत्र पत्रिकाएं बहुत थीं। किन्तु सरकारी पत्र "आजकल" और "फौजी अखबार" के अतिरिक्त सभी अंग्रेजी के थे। भारतीय खबरों के देने के लिए भी मेनन साहब और उनके अनुचरों को कोई परवाह नहीं थी। रूटर की मशीन से जो स्वयं मुद्रित खबरें निकलती रहती थीं, उन्हें वहां खड़े हाकर आप पढ़ लीजिये। सप्ताह में एक बार बुलेटिन निकलता, उसमें भी मंत्रियों की कीर्ति और सरकार के कामों की ही बातें भरी रहतीं।

उस दिन मन में आया इंग्लैंड में आये हैं, तो यहां की चीजों को भी खाना चाहिये इसके लिये फल से शुरू किया। फलों की दुकानों से सेब और काले अंगूर खरीद लाये। अंगूर अच्छे नहीं तो बुरे भी नहीं थे, लेकिन सेब तो इतने खट्टे थे कि उनकी चटनी ही खाई जा सकती थी, सो भी चीनी डालकर। इंग्लैंड के लोग जब अपने कारखानों की उपज और साम्राज्य की लूट से मक्खन, रोटी, मांस और अच्छे अच्छे फल बाहर से सस्ते मंगाकर खा सकते हैं, तो उन्हें क्या आवश्यकता है, अच्छी जाति के फलों के उत्पादन की।

२६ जुलाई को अब पांच ही दिन रह गये थे। इसमें शक नहीं, कि इतने

दिनों को हमने लदन में बेकार नहीं खोया था, लेकिन स्काटलैंड तक के घूमने की जो आशा थी, वह पूरी होती दिखाई नहीं पड़ी। मैं तो कहूँगा सैलानियों के लिये एक से दो रहना आवश्यक है, क्योंकि दोनों का रुचि के समन्वय के लिये यात्रा ज्यादा अच्छी होती है। यदि मेरे साथ कोई और सैलानी होता, तो इतने दिनों में मैं इंग्लैंड, स्काटलैंड ही नहीं आयरलैंड की भी सैर कर आता। उत्तरी स्काटलैंड और वेल्श के बारे में मैंने जो पढ़ा था, उसके कारण वहां जाने की बड़ा इच्छा थी। खैर भाई अतहर की कृपा से लदन के बाहर जाकर दो-तीन दिन बिताने का अवसर मुझे मिल गया। मैं २६ जुलाई को ६ बजे अपने स्थान से चला। अर्लकोर्ट स्टेशन हमारे पास था, वहां से विक्टोरिया स्टेशन तक भू गर्भी रेल से गया। लदन की भू गर्भी रेल बहुत पुरानी और बहुत कार्यक्षम भी है। यदि यह रेल न होती तो लदन में यातायात करना मुश्किल हो जाता। हर पांच पांच मिनट पर ट्रेनें छूटती रहती हैं, और रास्ते में कोई डर न होने के कारण हवा से बातें करती चलती हैं। लदन की भू-गर्भी रेल और उसके स्टेशन मास्को का कभी मुकाबिला नहीं कर सकते, क्योंकि मास्को में वहां के शासकों ने कार्योपयोगी ट्रेन नहीं बनाई है, बल्कि हर स्टेशन को ताजमहल का रूप देने की कोशिश की है, बहुत रंग के संगमरमर के पत्थर बड़ा कलापूर्ण रीति से लगाये गये हैं। मजूरा दारों को भी बड़े कमनीय रूप में रखा गया है। भला पूंजीवादी लदन अपनी भूगर्भी रेल पर इतना श्रम और धन क्यों खर्च करने लगा। विक्टोरिया स्टेशन पर हमने भूगर्भी रेल छोड़ी और ऊपरवाला रेल पकड़ी। बीच में क्लैपहेम में ट्रेन बदल कर टेम्सडिक्टन पहुँचे।

इग्लैंड का ग्राम— टेम्सडिक्टन लदन के बाहर है, लेकिन उसके घरों और सड़कों, बिजली और पानी के इतिजाम को देखकर उसे गाँव नहीं कह सकते। निवासी भी खेती का काम नहीं, बल्कि अधिकतर लदन या आसपास के कारखानों और कार्यालयों में काम करते हैं। अतहर भाई ने शायद सूचना दे दी थी, लेकिन समय नहीं बतलाया था। मुझे मिस्टर जान कौमर के घर का पता लगाने में दिक्कत नहीं हुई। वहां तक पहुँचने में एक घंटा लगा होगा।

यहां अधिकतर निम्न मध्यम-वर्ग के लोग रहते थे। उच्च मध्यम वर्ग के लोगों के घर सरा में थे, जहां बहुत से पेंशनर भारतीय आइ० सी० एस० परिवार भी रहा करते थे। जान कापर और उनकी पत्नी मार्गरेट कापर ने स्वागत किया। वहीं कम्बरले (कालाज) के एक माथी मिले। उन्होंने केम्बरलैंड के बारे में बहुत सी बातें बतलायीं। इस द्वीप के उत्तरी अंचल में यह बहुत पिछड़ा हुआ प्रदेश है। लोग ज्यादातर भेड़ पालते हैं। अधिकतर किसानों के अपने खेत हैं जो अच्छी हालत में हैं। उनके नौकर खेत-मजदूरों की हालत बड़ी बुरी है। वह अपने मालिक के साथ रहते हैं। उनके पास न अपनी जमीन होती है, न अपना मकान। हमारे यहां के खेत मजदूर कम से कम अपना झोपड़ी तो रखते हैं। किसान अपने मजूरों के लिये चाहे बाहर झोंपड़े बना देता है, या अपने साथ रखता है। झोपड़ी में बचे हुए यह दाम में हैं, इसीलिये इस प्रथा को वहां "टाइड काटेज" (बंधा झोपड़ा) कहते हैं। सचमुच खेत-मजदूर घर के बंधुए हैं। वह काम छोड़ने की हिम्मत नहीं कर सकते, क्योंकि उसका अर्थ है, परिवार सहित नौकरी ही नहीं, बेघर हो पथ का राही बनना। मजदूर सरकार ने कानून बनाया है, नियम से ४ पौंड १० शिलिंग (६० रुपया) प्रति सप्ताह मजूरी देनी पड़ेगी। लेकिन बेघर तथा जगह जगह बिखरे हुए लोग अपने अधिकार को पूरी तरह इस्तेमाल कम कर सकेंगे। उक्त मित्र ने बतलाया कि कैंबरलैंड में "टाइड काटेज" प्रथा बहुत ही सख्त है। इस इलाके में सात हजार खेत मजदूर होंगे। अब भी वहां पर मजदूर हाट लगता है, जहां पर मजूर अपना श्रम बेचने, और किसान उन्हें खरीदने के लिये आते हैं। यह दास हाट का अवशेष है। पुराने काल की तरह ही मालिक मजूर को खरीदते वक्त उनके हाथ-पैर टटोलकर देखते हैं वह काम करने की कितनी शक्ति रखता है। पहिले इंगलैंड में बहुत सी देहातों में यह हाट (हायरिंग मार्केट) लगती थी। अब उसके अवशेष केम्बरलैंड जैसे पिछड़े इलाकों में ही हैं इस पर भी अंग्रेज दुनिया को सभ्यता सिखलाने का दम भरते हैं। वस्तुतः अंग्रेज पूंजीपतियों साम्राज्यवादियों की लूट से इंगलैंड की साधारण जनता को बहुत फायदा नहीं हुआ है।

कुछ फायदा न होता, तो वहा पर कब का नोल्शेविज्म आ गया होता और एटली की साम्राज्यशाही मजदूर पार्टी राज्य नहीं करने पाती। कैम्ब्रिज का वर्णन सुन कर मेरे मुह में पानी भर आता था, लेकिन अब दिन रहा था। जब दिन था, तो हाथ में पैसा नहीं था, और जब हाथ मे पैसा है, तो दिन नहीं। रिचार्ड-लेम्प एक किसान था। किसान कहने से भारतीय किसान नहीं समझना चाहिये। इग्लैंड का किसान (फार्मर) अब छोटा किसान नहीं है। छोटे किसान पीढियों पहिले अपना सब कुछ बेचकर या तो कारखाना के मजदूर बन गये या "टाइट काटेज" वाले खेत मजदूर। लेम्प ने २८ जुलाई के टाइम्स में लिखा था—"खेत मजदूरों की मजदूरी को बढाया जायेगा, तो गजब हो जायेगा, यदि मजूरी की वृद्धि के अनुसार खेत की उपज के दाम में वृद्धि न की गई।" इग्लैंड की खेती में विज्ञान का भी बहुत उपयोग नहीं किया जाता, इसलिये वहा की उत्पादित चीजें महगी होती हैं। इसमे भी और महगा करने पर बाहर से मॅगाई चीजें बहुत सस्ती हो जायेंगी। देश की चीजों को कौन खरीदेगा, यदि विदेशी मुकाबले को दबाने के लिये भारी कर की दीवार नहीं खडी की गई। पिछली शताब्दी में दीवार खडी की गई थी, जिसका परिणाम अच्छा नहीं निकला था, क्योंकि इग्लैंड स्वय अपनी चीजों को दुनिया के बाजारों में निबाध रूप से बेचने का हिमायती था।

उक्त मित्र बतला रहे थे कि वहा १२–१४ साल के विद्यार्थी भी खेतों में आलू चुनने के लिये जाते हैं। किसान खाने पीने का प्रबंध करता है और कुछ पैसे दे देता है। बेचारे लडके चाहते हैं, कि कुछ पैसा कमा कर परिवार के खर्च मे मदद करें। खेत मजदूरों मे इधर सगठन हुआ है, उनके लिये पत्र भी निकाले गये हैं, लेकिन वह कारखानों की तरह एक जगह नहीं रहते, कि कारखाने के फाटक पर खडे होकर आप उन्हें व्याख्यान दे सगठित कर सकें। उस पर से किसान अपने झोपडी में बसाये मजूरों पर कड़ी निगाह रखता है, जिसमें उस पर बाहरी प्रभाव न पडे। कम्युनिस्ट सारी दुनिया की तरह इग्लैंड में भी सबसे अधिक मेहनती और स्वार्थ त्यागी हैं। वह इन खेतिहर मजूरों को सगठित करने

भी कोशिश कर रहे हैं, लेकिन इंग्लैंड की सारी संख्या में यह इतने कम हैं, कि अपने संगठन और वोट द्वारा यह गवर्नमेंट पर प्रभाव नहीं डाल सकते। मजूरों पर अभी मजूर-पार्टी का प्रभाव है। खेतिहर मजदूरों के ऊपर हर वक्त भूख और विपत्ति की तलवार लटकती रहती है। बीमार होने पर मालिक घर छोड़ने को मजबूर करता है। किसानों का संगठन— नेशनल फार्मर्स यूनियन (राष्ट्रीय किसान संघ) बहुत मजबूत है, किन्तु खेतिहर मजूर राष्ट्रीय संघ उतना मजबूत नहीं है, तब भी वह इस बात पर जोर दे रहा है कि सरकार अपनी ओर से खेतिहर मजदूरों के लिये जगह जगह मकान बनवाए, सस्ते किराये पर उन्हें दे दे। लेकिन फार्मर इसका बड़ा विरोध कर रहे हैं, अगर उनको झोपड़ों से बाहर निकल गए, तो अपनी मजूरी के लिये उसी तरह लड़ेंगे, जिस तरह कारखानों के मजदूर। यह किसान टोरियों के सबसे अधिक समर्थक हैं। १९५१ के ब्रिटिश चुनाव में चर्चिल को जितानेवालों में सबसे बड़ा हाथ इन्हीं देहाती फार्मर किसानों का रहा।

मिस्टर कोमर ने बतलाया— पश्चिमी इलाके में यहां छोटे छोटे किसान हैं, और पूर्व में बड़े बड़े। नार्फोक में कोमर का अपनी १५० एकड़ का खेत है, जिसमें एक हजार एकड़ एक जगह और बीस एकड़ दूसरा जगह है। २० एकड़ बेकार और २५ एकड़ घास की जमीन छोड़कर बाकी में गेहूँ, जौ, बन्दगोभी, चुकन्दर लगकर बोयी जाती है। उन्होंने अपने खेत को हुवाट नाम के एक किसान को दे रखा है। १९५५ ५० में हजार पौंड में यह खेती उन्होंने खरीदी, ५०० पौंड और लगाया, फिर ६५ पौंड साल-गुजारा पर दे दिया, जिसमें २८ पौंड सरकार को मालगुजारी ३० पौंड टाइ (टिथे, धर्म-कर) सरकार के पास देना पड़ता है। जिस किसान ने ठेके पर खेती संभाली है, उसके स्त्री पुरुष और बाल-बच्चे चार प्राणी खेत में काम करते हैं। कानून के मुताबिक खेत का मालिक तभी अपने असामी को हटा सकता है, जब कि वह खुद खेती करना चाहे। यदि कोमर स्वयं खेती करना चाहें, तो भी उन्हें एक साल पहिले नोटिस देना होगा और दो साल की मालगुजारी अर्थात् १६० पौंड खेती करनेवाले को क्षति पूर्ति के तौर पर लौटाना पड़ेगा। उस वक्त जो कानून पार्लियामेंट में पास

होने वाला था, उसके पास हो जाने पर जोतदार का हटाना और भी मुश्किल हो जायगा। कोमर बतला रहे थे कि हमारे ठेकेदार के पास १२ गायें, २ छोटे बड़े ट्रैक्टर, एक दहने की मशीन, एक मोटर, एक लोरी, दो घोड़े, दो सूअर, १२ सुअरियां और बहुत सी मुर्गियां हैं। उसे अपनी गायों का दूध बेचने के लिये चिंता करने की आवश्यकता नहीं, दुग्धशाला की लोरी घर पर आकर दूध ले जाता है।

उस खेतिहर की प्रगति के इतिहास को बतलाते हुए कोमर ने कहा—पहिले पहल वह १६२० में एक आटा मिल का मजूर था। १६२० से १६४५ तक वह एक छोटी दुकान के साथ पोस्टमास्टर भी था, जिसको तीन पौंड सप्ताह वेतन मिलता था। पहिले उसने एक एकड़ भूमि लेकर तरकारी की खेती शुरू की, तरकारियां काफी महंगा बिक रही थीं, उसके लाभ को देखकर उसने ८० ऐकड़ जमीन में खेती शुरू की। १६४६ में कोमर की १६० एकड़ की खेती ठेके पर ले ली, और उसी साल उसने पोस्टमास्टरी छोड़ दी। कोमर को हजार पौंड (१३ हजार रुपया) खराद पर खर्च करने के अतिरिक्त १०० पौंड लगा कर पानी का रास्ता तैयार कराना पड़ा, जिसमें से आधा सरकार ने लौटा दिया। सीमेंट करार, एक कमरा और रसोई घर तैयार कराने में ७०० सौ पौंड और लगे। सबसे अच्छी जमीन चचेरे भाई को २० पौंड प्रति एकड़ पर बच दी, जिससे बाकी जमीन १२ पौंड प्रति एकड़ पड़ी। जमीन में खलिहान शाला, डेरी, अश्वशाला, पशुशाला के अतिरिक्त नीचे ३ और ऊपर ३ कमरे तथा एक रसोई घर है। भूमि बहुत उपजाऊ नहीं है। यदि १६५० का सर्व होता तो ६८ की जगह २५ पौंड की मालगुजारी मिलती। डेढ़ हजार पौंड हर साल पौंड का लाभ। कोमर दम्पति अपनी खेती का इस तरह दूसरे के हाथ में देकर अपने आप अब यहां नोकरी कर रहे थे। शायद यह अधिक शिक्षा का परिणाम हो। हमारे यहां भी यह बला फैल रही है। लेकिन दोनों पति पत्नी कम्युनिज्म के समर्थक हैं, इसलिये यह नहीं कहा जा सकता, कि वह जीवन से भागना चाहते हैं।

फलवाला इलाका इंग्लैंड में दक्षिण की ओर है। हिमालय में भी सात हजार फुट से उपर की जगहों में सरदी की अधिकता के कारण सेव और दूसरे फल खट्टे होते हैं और उनको फलों की भूमि में परिणत नहीं किया जा सकता। उत्तरी इंग्लैंड की यही हालत है। दक्षिण इंग्लंड कार्नवाल में इस बार पहला बार बरफ पड़ी। वह बतला रहे थे, कि नार्थरोड से पूरब में उपजाऊ भूमि है। मालूम नहा दक्षिणी इंग्लेंड के सब भी वैसे ही होते हैं जैसे कि मैंने उस दिन खरीद।

इंग्लैंड और वेल्स के दुग्ध का व्यवसाय एक बड़ी डेरी संस्था के हाथ में है, जिसका हेडक्वार्टर टेम्सडिट्टन में है। केवल उसके ऑफिस में ८८० कर्मचारी हैं। कोमर वहां अफसर हैं। हिसाब करना व लिखना आदि सभी मशीनों से होता है, नहीं तो कर्मचारियों की संख्या और भी अधिक होती। कार्यालय की इमारत देखने गये। वह बहुत विशाल थी। दूध का रोजगार ज्यादातर पेशवालों के हाथ में हैं। उपडाइरेक्टर भी इस संस्था का एक वंश जन था। कार्यालय का मकान बहुत साफ और हवादार था। कोमर हमें शाम के वक्त रायल आर्सनल कोपरेटिव डेरी के कारखाने को दिखाने के लिये ले गये। यहां सौ सौ मील दूर से लोरियों पर ढोकर हजारों मन दूध प्रतिदिन आता है। दूध एक सौ साठ डिग्री की भारी गरमी में तपाकर निष्कृमित बनाया जाता है, फिर मशीनों में ठंढा करके बिना हाथ लगाये ही बोतलों में भर दिया जाता है, भरी हुई बोतलें छोटे छोटे खुले ढाचों में रख कर लोरियों में पहुँच जाती हैं जहां से वह ग्राहकों के दरवाजों की ओर जाती हैं। सबेरे के वक्त हरेक ग्राहकों के दरवाजे पर दूध से भरा बोतलें मौजूद रहती हैं। दूध में मिलावट का वहां कोई सवाल नहीं है। कारखाने के कर्मचारी ने एक एक चीज को घुमाकर दिखलाया और हम रात को १२ बजे घर लौटे।

कोमर परिवार को देखकर हम साधारण अंग्रेजी परिवार का अनुमान नहीं कर सकते थे। कम से कम रसमार में तो भारी अन्तर था। कोमर दम्पति कम्युनिस्ट के मत होने से बनियापन को भूल चुके थे। उनके यहां मैं हां नहीं

बल्कि एक और भी उतनी इंग्लैंड में काम करनेवाले पुरुष मेहमान थे, साथ ही एक महिला भी परिवार में रहती थीं। हम दोनों मेहमानों का बैसा दन का मौका देने के लिये वह तयार नहीं थे, वैसे मैं प्राचीन भारतीय प्रथा को पसन्द करता हूँ कि मेहमानी में आने पर आदमी को खाली हाथ नहीं आना चाहिये, आज के भारत में तो उस प्रथा की ओर भी आवश्यकता है। मासकर ऐसा करना चाहिये, जिससे गृहपति का महमान का बोझ हल्के में हल्का मालूम हो। हरी मटर का छिमिया का उबाल या तलकर खाना यहाँ भी अच्छा समझा जाता है। श्रीमती कोमर छिलकों को फेंक रही थीं। मैंने उन्हें बतलाया कि इन छिलकों का भी उपयोग हो सकता है, केवल उनके भीतर के कड़े चमड़े को निकाल देना चाहिए। मैंने उनको दबाकर निकाल कर दिखला भी दिया। उन्हें मेरे इस आविष्कार पर बड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने कहा— यह मेरा आविष्कार नहीं है, किन्तु में मैंने नरम फलियों के छिलकों को इसी तरह छीलकर कच्चा खाते देखा था, और इसका तरकारी बनाकर स्वयं इसके स्वाद को परखा भी है। मन्नी सब्जी में छिलकों का भी उपयोग लाभदायक है, यह गृहिणी को मालूम था, क्या जान देखा-देखी पीछे और गृहिणियों ने भी छिलकों को फेंकना छोड़ दिया हो।

टेम्पडिंगटन एक नदी के किनारे बसा हुआ है, जिसके पास ही हेम्प्टन कोर्ट का प्रसिद्ध ऐतिहासिक प्रासाद है। १७२२ ई० में कार्डिनल (रोमन कैथलिक पादरी) वोल्सेला ने इस प्रासाद को बनवाया था। सामने एक छाया सा सरोवर, वाटिका, हरे भरे विशाल उपवन और मैदान हैं। २७ का रविवार का दिन था, इसलिये हजारों लोग उस वक्त हेम्प्टन-कोर्ट में मनोविनोद के लिये आये थे। इसके बनाने में फ्रांस के मशहूर प्रासाद वर्साइ की नकल करने की कोशिश की गई है। आजकल यह प्रासाद विनोद वाटिका का रूप ले चुका है लेकिन पहले यहाँ भुक्खड़ लार्ड-परिवार के लोग रहा करते थे। पूर्वाह्न में हमने जाकर हेम्प्टन कोर्ट को देखा।

अपराह्न में ३० मील दूर की एक खेती (फार्म) को दिखलाने के लिये लोग में हम मि० कोमर ले गये। यह फार्म जंगल के बीच में है। इसमें

की शस्य श्यामला भूमि का सौंदय यहा दिखलायी पड रहा था। प्रकृति ने इग्लैंड को दरिद्र नहीं बनाया, यदि वह दुनियां का शोषण नहीं करता, तो भी समृद्ध जीवन बिता सकता था। हॉं, भूमि सारी नीची ऊची है। यह फार्म किसी लाड का था, लेकिन उसके पास लदन म बहुत सी जमीन और मकान हैं, शायद कम्पनियों में भागीदार भी था, इसलिये उसे फार्म का क्यों चिन्ता होने लगी? किसी खेतिहर परिवार को यहां बसा दिया था जो कि कामर के भूतपूर्व पोस्टमास्टर की तरह अपनी खेती समझ कर काम नहीं करता—शायद उसके पास उतने शक्ति शाली हाथ भी नहीं थे। खेती शायद डेढ़ दो सौ एकड की होगी, लेकिन एक तिहाई के करीब खेतों म बोये आलू को छोडकर सारी खेती बेकार था। मशानें उपेक्षित पड़ी थीं, जई, गेहू, और गोभी के खेतो को देखकर यह कहना मुश्किल था, कि वह घास के खेत हैं, या फसल के। जहा अन्न का इतना कष्ट हो राशनिंग इतनी कडी रखनी पड़ती हो, वहा सो दो सौ एकड जमीन की इस तरह की बर्बादी! सोवियत रूस में तो इसे भारी अपराध समझा जाता। फार्म के आस पास दूर तक जगल था, जिसमे लोमड़ी जसे जानवर थे। इग्लैंड के लार्डो को लोमडी के शिकार का बहुत शौक है, और जगह जगह हजारों एकड़ जगल केवल इस शिकार का शौक मिटाने के लिये छोड रखे गये हैं। इग्लैंड वस्तुत खाद्य में स्वावलम्बी हो सकता है, यदि इन शिकार क शौकीनों का खतम करके बहुत से जगलो को खेत के रूप म परिणत कर दिया जाय, और विज्ञान के आधुनिकतम साधनों को व्यापक पैमाने पर इस्तेमाल किया जाय। हम भी जगल में दूर तक घूमते रहे। इतवार के दिन के सैलानी नर नारी हजारों की सख्या में आये हुए थे। यातायात का हर जगह सुभीता होने के कारण लोग लदन की गलिया और उदासीन वातावरण को छोडकर दिल बहलाव के लिये ऐसी जगहों मे आ जाते हैं। एप्पिंग्हम में हमने लौटते वक्त रेल पकड़ी। लदन के आस-पास दूर तक रेलों का बिजलीकरण हुआ है, लेकिन बम्बई या दूसर देशों की तरह बिजली के तार आदमियों की पहुँच से दूर खम्भों पर नहीं टागे गये हैं, बल्कि दो रेलों के बीच म एक और रेल लगा दी गई है जिसमें बिजली भरी रहती है।

यदि प्राणी का पर जरा सा उसमें छू जाय, तो एक सैकण्ड में मौत अपना काम कर सकती है। मैंने पूछा— तब तो पशुओं और जंगली जानवरों में बहुत मरते होंगे। कौमरेड ने कहा— पहिले पहल बहुत मरे, लेकिन अब वह भी जानते हैं, कि यहां पर मौत खड़ी है। पालतू पशुओं के रोकने के लिये तो किनारे तार भी लगे ही हुए थे।

दो दिन पूरा बिता, इंग्लैंड के ग्रामीण जीवन का थोड़ा-सा परिचय प्राप्त कर २८ जुलाई को मैं कौमरेड-दम्पति को बहुत बहुत धन्यवाद दे साढ़े दस बजे लंदन लौट आया।

मालूम हुआ था कि उत्तरी इंग्लैंड में घूमने के लिये मासिक टिकट मिल सकता है, जिससे कहीं पर भी उतर कर हम देख भाल कर सकते हैं। लेकिन अब समय कहां था? आश्चर्य तो बहुत हुआ, किन्तु मजबूरी। उस दिन अधिकतर अखबार और साथ लायी चीजें पढ़ते रहे। रेडियो की कम्पनी ने घर पर भेज दिया था। रेडियो उसमें सुदूर देशों की खबरें नहीं आ रही हैं। भारत के बारे में इतना मालूम हुआ कि मजदूर साम्राज्यवादियों ने भारत छोड़ते वक्त जो षड्यन्त्र किया था, वह अब फल लानेवाला है। भारत को हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में बांटकर ही अंग्रेजों को सन्तोष नहीं हुआ, बल्कि उन्होंने पुराने सन्धि पत्रों का बहाना करके हमारे यहां के छत्रधारियों को बिलकुल स्वतन्त्र कर दिया था। ट्रावनकोर, हैदराबाद, भोपाल आदि कितने ही रजुल्लों ने अब अपने को सर्वतन्त्र स्वतन्त्र घोषित करने का संकल्प किया था और नवस्थापित राष्ट्रीय सरकार परेशान थी। लेकिन इन रजुल्लों को पता नहीं था, कि अब भारतीय जनता सामन्तशाही युग से दूर हो चुकी है। अब नई अंग्रेजों की सुरक्षित गुड़िया का अधिक दिनों तक छाती पर कोदों दलन नहीं चली।

लंदन में राशन की कड़ाई थी। किसी भोजनालय में जाने पर तीन चीजें ही खाने को मिलती थीं। लेकिन अगर पास में पैसा हो, तो आपको भूखे रहने की आवश्यकता नहीं। आप एक रेस्तोरां से उठकर दूसरे रेस्तोरां में जाकर खा सकते थे, क्योंकि रूस की तरह राशन कार्ड का कड़ा नियम नहीं था।

३ शिलिंग में वह मिल गई और मैंने ५ पौंड के बीमा के साथ उसे लेनिनग्राद भेज दिया। भारतमें पीछे देखा कि यहां से सोवियत रूस में पुस्तकों को भेजना जितना मुश्किल है उतना लंदन में नहीं था। यहां तो उसके लिये विशेष अनुमति लेने की आवश्यकता पड़ती है, इसी कारण मैं अपनी पुस्तकों को रूस नहीं भेज सका। लंदन में कुछ विशेष प्रकार के बहुत सस्ते रेस्तोरां हैं। ए बी सी की भोजनालय की सैकड़ों शाखायें नगर के भिन्न भिन्न भागों में फैली हुई हैं। भोजनशाला में मेज कुर्सियां पड़ी रहती हैं, परसने वाले नौकरों की आवश्यकता नहीं होती, भोजन करने वाले स्वयं प्लेटें उठाकर परोसने वालों के पास जा खाने की चीजों को लेकर अपनी मेज पर बैठते हैं। दूसरी भोजनशालाओं से इनका भोजन बुरा नहीं होता, और कम पैसा रखने वाला आदमी भी मजे से खा लेता है। भोजनशाला की संचालिका कम्पनी हरेक वस्तु को थोक दाम पर खरीदती है, इसीलिये वह रुपया-डेढ़ रुपया में आदमी को भोजन करा सकती है।

११ जुलाई का अखिरी दिन आया। अपने तीन बक्सों को पहिले वाटरलू स्टेशन पर सौथम्पटन के लिये दे आया। अपनी चीजों को रेलवे कम्पनियों या दूसरी यात्रा एजंसियों को दे आइये, फिर चिन्ता करने की जरूरत नहीं, वह आपके गन्तव्य स्थान पर पहुंची रहेंगी। डिपार्टमेंट स्टोर (महा दूकान) की तरह रेलवे एजेन्सियां भी सामान को घर पहुंचा दिया करती हैं।

प्रथम श्रेणी का टिकट लेकर सामान को सोथम्प्टन के लिये बुक कराने का किराया ६ शिलिंग के करीब पड़ा। टैक्सीवाले को सवा चार शिलिंग देना था, ५ शिलिंग देने पर भी उसने इनाम मांगा। मालूम हुआ कि अब इनाम और बखसीस का सार्वजनिक व्यवहार इंग्लैंड में भी होने लगा। मध्याह्न-भोजन के लिये मैं एक रेस्तोरां में गया, जहां ३ रुपये में आधपेट भोजन मिला। ३८ आना सेर नासपाती, १२-१२ आने का एक एक आड़ू, खरादते वक्त पता लगा कि फल भी यहां कितने महंगे हैं। आज पार्लियामेंट भवन को देखा और पास में वेस्टमिनिस्टर एबे को भी। पार्लियामेंट भवन को युद्ध के समय कुछ क्षति

पहुँची था, किन्तु अब उसकी मरम्मत हो चुकी था। वेस्ट मिनिस्टर एबे इंग्लैंड के सम्मानीय मुर्दों के कब्रिस्तान का भी काम देती है। पहिले यह एक मठ था, और आज भी इंग्लैंड के राजा का अभिषेक इसी में होता है। वीर पूजा सभी देशों और कालों में पाई जाती है। वेस्ट मिनिस्टर एबे में शरीर या शरीरावशेष का गाड़ा जाना, अथवा नाम की तख्ती का लग जाना बड़े सम्मान की बात है।

★ ★ ★

२१—भारत के लिये प्रस्थान

लंदन से नजदीक के मशहूर बंदरगाह सौथम्प्टन से पहिली अप्रैल का "स्ट्रैथमोर" जहाज को पकड़ना था। चार पाँच तैयार हो गया, लेकिन टैक्सी मिलने में देर हुई। ६ शिलिंग (४ रुपया) पर वाटर्लू स्टेशन के लिए टैक्सी मिली, जहाँ मैं सवा ग्यारह बजे पहुँचा, लेकिन जहाज सौथम्प्टन के लिए सवा बजे रवाना हुई। २ घंटे का रास्ता था। यह कहने की आवश्यकता नहीं, कि इस ट्रेन में सभी सामुद्रिक यात्री थे, जिनमें बहुत से भारतीय भी थे। ट्रेन बहुत बड़ी था। ४ शिलिंग में हमें सप्ताह भोजन मिल गया और दो घंटे की यात्रा के बाद ट्रेन जहाज के पास लगा। टिकट, पासपोर्ट देखा गया। स्टीमर में गये। थ्री० क्लास में काफी भीड़ थी, बल्कि "श्वेतद्वीप" से मुकाबिला करने पर दोनों में स्वर्ग और नरक का अन्तर था। कहाँ श्वेतद्वीप की सफाई बढ़िया, सजावट, सुख सुविधा का हर तरह का ध्यान और कहाँ यह जानवरों का पिंजड़ा। एक क्लास में केबिन (कोठरी) था, किन्तु थ्री क्लास तो नीचे ऊपर मचान बँधा नील का गोदाम था। मुझे २६ वर्ष पहिले की बात याद आई। जब प्राइमरी स्कूल पास कर मैं मिडिल स्कूल में पढ़ने के लिये निजामाबाद, आजमगढ़

गया था। निजामाबाद से प्लेग होने के कारण स्कूल उठकर टोमनदी के परले पार एक परित्यक्त नील गोदाम में हो रहा था। नील का व्यवसाय तब तक जर्मनी के कृत्रिम रङ्ग (ऐना लाइट) द्वारा खत्म हो चुका था, लेकिन अभी भी लोग आशा लगाये थे, इसलिये गोदाम ध्वस्त नहीं हो पाया था। नील की क्रियाओं को सुखाने के लिये नीचे ऊपर कई तरह के मचान बने हुये थे। यहाँ विद्यार्थियों का बोर्डिंग था। लेकिन वह इतना महँगा नहीं था। यही मचान अब १७ दिन के लिये हमारा घर था। भीड़ भी काफी था। यदि केबिन का इन्तिजाम नहीं कर सकते थे, तो किराया कम करना चाहिये था, लेकिन युद्ध ने हरेक चीज की दर बढ़ा दी थी। युद्ध के समय अधिक से अधिक सैनिकों को भर कर एक जगह से दूसरी जगह ले जाना पड़ता था, इसलिये केबिन तोड़ कर मचान स्थापित हुये। कह रहे थे, मचान तोड़कर फिर केबिन बनेगा, लेकिन तब किराया ७०-७२ पौंड हो जायेगा। युद्ध ने केवल मुसाफिरों के किराये को ही नहीं बढ़ाया था बल्कि मजदूरों की मजदूरी भी बढ़ा दी थी। सबसे कम वेतन कोयला वाले का था, युद्ध के पहिले २३ रुपया मासिक था, अब वह ६० रुपया हो गया था, ८० रुपया पानेवाला सारंग अब २०० पा रहा था। 'स्टीमर' में दूसरे जहाजों की तरह हिन्दुस्तानी मल्लाहों को रखा जाता था। अंग्रेज मजदूर इतने वेतन पर नहीं मिलते, इसलिये अंग्रेज सेठ हिन्दुस्तानियों को भरती कर चौगुना नफा कमाने की फिकर में थे।

१६४० से १६४२ तक के ढाई वर्षों के जेल जीवन में मैंने सिगरेट पीना शुरू किया था। बाहर निकलने पर भी वह जारी रहा। ईरान के सात महीने में भी वह दिल बहलाव का साधन था। लेकिन मुझे सिगरेट में कभी रस नहीं आया। मेरे सिगरेटची दोस्त कहते थे, कि ८० सिगरेट रोज पीने पर किसी किसी समय रस आता है। मेरा वहाँ तक पहुँचने की सामर्थ्य नहीं थी। मुझे तो ऐसा ही मालूम होता था, मानो आदत पड़ जाने से कोई लकड़ी मुँह में दे ली हो, इसलिये जिस दिन तेहरान से सोवियत जाने के लिये विमानपर पैर रखा, उसी दिन (३ जून १६४५) सिगरेट पीना छोड़ दिया। सारे सोवियत और

लंदन प्रवास में सिगरेट नहीं पिया। वैसे बढ़िया सिगरेट कौन होता है और घटिया कौन, नरम कौन होती है, और कड़ी कौन, इसकी परख मालूम हो गई थी। कर का कोई झगड़ा न होने के कारण "स्ट्रैथमोर" पर बहुत बढ़िया सिगरेट सस्ते दाम पर बिक रही थी। १७ दिन के जहाजी सफर में अब मुझे कोई गंभीर काम करने का मौका मिलने वाला नहीं था। भला मचानों में एक दूसरे के साथ लेटे लोग क्या पढ़ लिख सकते थे? बाहर डैक पर कपड़े की कुर्सियां पड़ी थीं, जिनकी संख्या इतनी नहीं थी, कि हरेक मुसाफिर बैठ सके। बैठने पर फिर गप शप शुरू हो जाती थी। एक तो बहुत साला बाद भारतीयों से भेंट हुई था, इसलिये मुझे भी बहुत सी बातें जानने की उत्सुकता था, दूसरे रूस में २५ महीने रहकर मैं लौट रहा था इससे हमारे भारतीय बन्धु भी उस रहस्यमय देश के बारे में बहुत सी बातें जानना चाहते थे। यह कह सकता हूँ कि १७ दिनों में प्राय प्रतिदिन ६-७ घंटों के लिये कहने की बातों का मेरे पास टोटा नहीं था। बस श्रोता बदलते रहते थे, और उनकी जिज्ञासायें भी बदलती रहती थीं। बात करने में सिगरेट का कश अगर बीच बीच में लिया जाय, तो रस जरूर कुछ अधिक आने लगता है, चाहे यह कारण समझिये, या सस्ते बढ़िया सिगरेटों का सुलभ होना समझिये, जिस दिन मैंने "स्ट्रैथमोर" पर पैर रखा, उसी दिन से सिगरेट को फिर शुरू कर दिया, जिसका अन्त गांधीजी की अस्थियों के प्रयाग में प्रवाह के दिन ही हुआ।

ए और बी क्लास का निवास अलग अलग था। ए क्लास के केबिन अच्छे थे, लेकिन खाना दोनों क्लासों का एक ही जैसा था। स्नानागार पाखाना भी ए का बेहतर था। बी क्लास में सारे भारतीय थे, जिनमें अधिकांश विद्यार्थी थे, जो बैरिस्टर, डाक्टर या और कोई डिगरी प्राप्त कर लंदन से भारत लौट रहे थे। ग्वालियर के शंकरराव विसाल दर्जी का डिपलोमा लेने आये थे, और दो मास रहकर सफल लौट रहे थे। उनके ग्राहकों पर लंदन से डिपलोमा प्राप्त दर्जी का रोब जरूर पड़ेगा। लेकिन सीवन कला पर उनकी पुस्तकें पहिले से ही चलती था कितने ही समय से वह सीवन कला पर अपना पत्र भी

निकाल रहे थे। क्या यह पर्याप्त नहीं था? और लंदन में उन्हें बहुत अधिक सीखना नहीं था। डिप्लोमा देने वाले भी उनकी योग्यता को जानते थे, इसलिये दो महीने से अधिक ठहरने की जरूरत नहीं पड़ी। हमारे साथियों में एक भारतीय मेजर थे, जो बलिया की हलटशान्ति में सैनिक अफसर रह चुके थे। वह बलिया के लोगों पर सैनिकों के अत्याचार से बिलकुल इन्कार करते थे। कहते थे—"वह सब काम पुलिस का था, जिसे सैनिकों के मत्थे मढ़ा गया।" "स्ट्रेथमोर" का खाना बुरा नहीं था, और कभी कभी भारतीय भोजन भी मिल जाता था।

"स्ट्रेथमोर" उस शाम को किसी वक्त चला था। २ अगस्त को साढ़े तईस हजार टन का यह भारी जहाज अब तट से इतना दूर चल रहा था, कि हमें किनारा दिखलाया नहीं पड़ता था। जहाज की गति काफी तेज थी। २४ घंटा मचान में रहने के बाद तो हम कहने लगे, कि यह तीसरे दर्जे में भी बुरा है। वहां सब से असह्य चीज थी गंदा पाखाना। पीछे कुछ परिचय प्राप्त हो जाने पर स्नान का प्रबंध हमने एक क्लास में कर लिया। उस वक्त सभी भारतीयों में १५ अगस्त (१९४७) की चर्चा थी। हमारे लिये क्यों यह हमारे देश के लिये सबसे बड़ी घटना थी, क्योंकि उस दिन तलवार के जोर पर दखल करनेवाली अंग्रेजों की सेनाएं भारत को छोड़ जाने वाली थीं, हमारा देश अपने भाग्य का विधाता होने वाला था। मैंने हमेशा इसको इस रूप में लिया, यद्यपि इसका यह मतलब नहीं कि अपनी स्वतंत्रता को मैं परिसीमित नहीं समझता था। लेकिन वह परिसीमन अंग्रेजों के हाथों से नहीं हो रहा था, बल्कि उनके चने चांटे जो भारत में पैदा हुए, अमेरिका के मुक्त हब्शी गुलाम की तरह अपने बेरा को मालिक के अस्तबल में ही रखना चाहते थे, और अब भी चाह रहे हैं। देश में स्वतंत्रता के लिये कितना बार बड़े बड़े बलिदान सामूहिक और वैयक्तिक रूप में हुए, उन्हीं बलिदानों और राष्ट्र की नवजागृति के कारण अंग्रेजों ने समझा, कि अब इस देश पर शासन करना बहुत महंगा पड़ेगा, जिसके लिये हमारे पास साधन और शक्ति दोनों नहीं हैं। भारतीय जो

सैनिकों के विद्रोह ने खतरे की घंटी बजा दी और दिवालिया ब्रिटिश सरकार को जल्दी जल्दी अपना बोरिया बधना बाध कर भारत छोड़ने के लिये मजबूर होना पड़ा।

यह कैसे हो सकता था कि "स्ट्रैथमोर" के भारतीय १५ अगस्त मनाने के लिये लालायित न होते? हम १७ अगस्त से पहिले बम्बई नहीं पहुँच सकते थे, इसलिये उस महोत्सव को देश में नहीं बल्कि जहाज में ही मना सकते थे। लेकिन जहाज में भारतीय और पाकिस्तान दोनों के नागरिक थे और जिस मनोवृत्ति के कारण एक देश के दो देश बने, वह वहाँ पर मौजूद था, इसलिये महोत्सव को इस तरह मनाना था, जिसमें भारतीय और पाकिस्तानी दोनों सम्मिलित हो सकें। तै हुआ दोनों देशों के झडे फहराये जाय। भारत और पाकिस्तान के महामन्त्रियों के पास शुभ सदेश भेजे जाय, बच्चों को मिठाइयां खिलाई जाय, और इसके साथ ही कुछ मनोविनोद और मनोरजन के प्रोग्राम रखे जाय।

महोत्सव कमीटी जहाज पर चढने के दूसरे ही दिन बनाली गया थी। चौबीस घंटे ही में भारतीयों में मेरा कुछ अधिक परिचय शायद रूस से आने के कारण हो गया, उसका परिणाम यह हुआ कि मैं भी कमीटी का मेम्बर बना दिया गया— राजनीतिक जीवन के बाहर इस तरह के सार्वजनिक प्रदर्शन के पर्दों पर रहना मैं कभी पसन्द नहीं करता था।

३ अगस्त को परिचय बढने का और परिणाम यह हुआ, कि अब मैं कुछ पढ नहीं सकता था और जिन अनुवादों (गुलामान) का मैं आवृत्ति करना चाहता था, वह भी नहीं हो सकता था। अधिकतर समय बात चीत में लगता था। पाकिस्तान के हिन्दू घबड़ाये हुये थे, यह हमारे साथ के यात्रियों की बातों से मालूम हो रहा था। एक सिंधी व्यापारी कह रहे थे हमारी पूजा तो इधर होती है, इसलिये हम अपने हैड क्वार्टर को भारत में परिवर्तित कर देंगे। देश के भीतर पंजाबियों के पराक्रम और अध्यवसाय का बहुत से लोगों को परिचय है, लेकिन सिंधियों के बारे में बहुत कम लोग जानते हैं। दुनिया का कोई देश नहीं जहा सिंधी दुकानदार न पहुँचे हों। क्रांति के पहिले वह रूस के बहुत से

नगरों में भी थे, और बाकू के सिन्धी व्यापारियों ने तो वहाँ की बड़ी ज्वालामाई को अपनी श्रद्धा भक्ति से खूब जागृत कर रखा था। ज्वालामाई के मठ में हमेशा भारतीय साधु रहा करते थे। दूसरे देशों में, चाहे जापान को ले लीजिये, या कोरिया को, मंचूरिया को ले लीजिये या मिस्र को, अफ्रिका के उत्तर दक्षिण, पश्चिम के भिन्न भिन्न देशों को ले लीजिये या दक्षिणी अमेरिका को, वहाँ भी रेशमी तथा दूसरे बढ़िया कपड़े के व्यापारी सिन्धियों को अवश्य पायेंगे। इन व्यापारियों के घर कराँची हैदराबाद शिकारपुर में हैं लेकिन वह घर पर कभी दो तीन वर्ष बाद ही आते हैं। वह अपने गुमाश्तों और मुनीमों को अपने देश से लाते हैं, जिन्हें देश की अपेक्षा कहीं अधिक वेतन मिलता है, और दुनिया की सैर करने का सुभीता भी, यद्यपि सभी नाजुक सलोनी तबियत के नहीं होते। पाकिस्तान के कारखानों में जिनकी पूँजी लगी है, उन हिन्दुओं के लिए भारी दिक्कत थी, और वह बहुत परेशान थे।

अभी जहाज के हिन्दू-मुसलमानों को आगे आनेवाले संकट का पता नहीं था। वह समझते थे, जैसे कागज पर आसानी से देश का बँटवारा हो गया वैसे ही आदमियों के मनों का भी परिवर्तन हो जायेगा। एक लाहोर के सरदार साहब हमारे सहयात्री थे। अभी सीमा कमीटी ने अपनी रिपोर्ट नहीं दी थी। लेकिन उनका पूरा विश्वास था, कि लाहोर पाकिस्तान को नहीं, भारत को मिलकर रहेगा, क्योंकि लाहोर में मुसलमानों की नहीं गैरमुसलमानों की संख्या अधिक है। मैंने कहा—" कोई बहुत भूभाग किसी देश में द्वीप की तरह दूसरे देश के अधीन नहीं रह सकता और यह आप जानते हैं कि लाहोर के आस पास के गाँवों में मुसलमान ही सबसे अधिक हैं।" इस पर उन्होंने कितने ही सिक्खों के मनोभावों को प्रकट करते हुए कहा— "खून की नदियाँ बह जायगी, यदि लाहोर को पाकिस्तान के हाथ में दिया गया।" मेरा कहना था— "खून की नदियाँ बह सकती हैं, लेकिन उसका परिणाम जो आप चाहते हैं वह नहीं होगा। असल में पिछले २५ सालों में जब हिन्दुओं और सिक्खों के लिये मुसलमान प्रधान पंजाबी इलाकों में अपनी सूद सवाई और दुकानदारी का उतना सुभीता

गाँवों म नहीं रहा, न गाव वालों का जमीन ही तिस्म स से अपने हाथ म करर उससे खूब फायदा उठाया जा सकता था। तब वह भाग भाग कर शहरों की ओर आने लगे। लाहोर का आकर्षण उनके लिये बहुत अधिक था। मैं पहिले-पहिल १९१६ में लाहोर गया था। उस समय मैंने जो लाहोर देखा था, उसमे १९४३-१९४४ के लाहौर में बहुत अतर पाया। सिख हिन्दुओं का बदौलत शहर बहुत बढ गया था, और रामनगर, कृष्णनगर, सतनगर जसे कितने ही लाहोर के शाखानगर आबाद हो गये थे। वहां लोगों ने अपना कमाई लगा कर पक्के प्रासाद और मकान खड़े कर दिये थे। उन्हें अपने इस धन और श्रम का मोह था, जिससे उनको पूरी आशा थी कि लाहोर को अंग्रेज पाकिस्तान के हाथ में नहा देंगे। वह भूल जाते थे, कि अंग्रेज किसी सदिच्छा मे प्रेरित होकर हिन्दुस्तान का परित्याग या बँटवारा नहीं कर रहे हैं। यदि बँटवारे के परिणामस्वरूप देश में खून की नदियां बहें, तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता होगी और वह कहेंगे— देखा हमारे रहने से देश की क्या हालत थी और अब निकलने से क्या हालत हुई। जितना अधिक से अधिक झगड़े का कारण हिन्दुस्तान में रहे उतनी ही अंग्रेजों को प्रसन्नता होगी और उतना ही हिन्दुस्तान के दोनो देश अपने पुराने प्रभुओं की खुशामद के लिये तैयार रहेंगे। रियासतों को वह ऐसी अवस्था में रख गये थे, जिसके कारण तरह तरह का भय होने लगा था। हमारे साथियों में से कुछ का विश्वास था कि छोटी छोटी रियासतें न सही, हैदराबाद, मैसूर, ट्रावनकोर, बडोदा, कश्मीर जैसी १५–२० बडी रियासतें अवश्य स्वतंत्र राज्य का रूप धारण करेंगी। मैं कहता था— यह तभी जबकि हमारे वर्तमान शासक नेताओं की अकल मारी जायेगी। अभी यह गुडिया राजा अंग्रेजों के साथ की गुलामी की सन्धियों पर कूद फाँद रहे हैं। वह समझते हैं, जैसे किसी अदालत में विजय के लिये कागजी सबूत काफी होता है वैसे ही जातियों का भाग भी कागज के पुर्जों पर सदा के लिये बेचा खरीदा जा सकता है। वह नहीं जानते, कि तोपें जब रक्षा के लिये नहीं रह गईं, तो निपटारा कागज नहीं करेगा, बल्कि अब फैसला उनकी मूक बहुसंख्यक प्रजा के हाथों में होगा। अभी इस छिपी हुई

व्यक्ति का वह अन्त नहीं हुआ है, लेकिन जब गुप्तिया राजा महान् मुगल का अनुकरण करने चलेंगे, तब यह नये पने भागों चार में जीवन के लिये उठेंगे और इन्हें मैल के मैल पड़ जायेंगे।

हमारे साथियों में हैदराबाद (सिंध) के शर्माजी भी थे, जो साहसी और व्यापार-कुशल थे। अफ्रीका के किसी भाग में उनकी या उनके मालिक की दूकान था, व्यापार ही के सम्बन्ध में ही वह लंदन आये थे, और अब भारत लौट रहे थे। व्यापार में कर उगाहनेवालों को धोखा देना, चोरबाजारी करना, सट्टे-बाजी की तरह कोई अधर्म की बात नहीं समझी जाती, इसलिये जो भी आदमी इस तरह का काम करता हो, उसे हम जन्म सिद्ध अपराधी नहीं मान सकते। उनमें अच्छे भी हो सकते हैं। बाजार में जब देखते हैं, कि अगर दूसरों का रास्ता हम नहीं स्वीकार करते, तो हार उठाना पड़ेगा और अपने ही नहीं बल्कि अपने परिवार को भूखे मरना पड़ेगा। इसलिये वह भी गलागुनतिर हो जाते हैं। शर्माजी के पास कई टंकों में कीमती रेशम के कपड़े थे। कस्टमवाले उस पर भारी टैक्स लेते, इसलिये उनको बड़ी फिकर थी, कि कस्टम को चकमा देकर अपने सामान को उतारा जा सके। हो सकता है सोना भी उनके पास हो। हमारे देश में सोने के आयात पर भारी कर लगाकर उसे अवश्यकता से अधिक महंगा बना दिया गया था, इसलिये चोरी छुपे सोने को लाना भी एक बड़े नफे का व्यवसाय था। शर्माजी से बहुत बातें हुआ करती थीं। हैदराबाद में उनका घर भर था, जिसकी उन्हें बहुत परवाह नहीं थी।

तीसरे दिन दोपहर के करीब हमारा जहाज जिब्राल्टर के पास से गुजरा। उस समय अफ्रीका और यूरोप दोनों के तट हमारे दाहिने बायें थे। शर्माजी ने बतलाया जिब्राल्टर में हमारे सिंधियों की एक दर्जन से अधिक दूकानें हैं। मुझे ख्याल आ रहा था जिब्राल्टर का असली नाम जबलुत्तारिक अर्थात् (तारिक-पर्वत) था। जिब्राल्टर एक पहाड़ के किनारे बसा हुआ है, इसलिये अरबी में इसका जब्र नाम होना ही चाहिये, लेकिन तारिक कौन था? उमैय्या खलीफों का मशहूर सेनापति तारिक, जो इस्लाम के प्रचार तथा साम्राज्य के विस्तार

ने लिये अपना अरब सेना के साथ आज से १२ सदी पहिले यहीं उतर यूरोप की भूमि पर पैर रख कर उसने अपनी सेना को ताड़ते हुए सैनिकों से कहा था— "जीतो या मरो, अब तुम्हारे लिये तीसरा रास्ता नहीं है।" इसके बाद की ५–६ शताब्दियों में स्पेन मुसलमानी देश हो गया था, और स्पेन के मार्ग सारा यूरोप अपनी गौरव गाथा गा रहा था। उसी स्पेन की एक बगी तराद में ईसाई सेना ने मुसलमानी सेना पर सारा विजय प्राप्त की, जिससे इस्लाम फ्रांस से भीतर घुस कर आगे नहीं बढ़ सका। उसी जबल्-तारिक को अपने वाणिज्य सम्बन्धी महा अभियानों में अंग्रेजों ने स्पेन से छीन लिया और अपने व्यापारी मार्ग की रक्षा के लिये उसे एक सुदृढ़ दुर्ग और व्यापारिक नगर का रूप दे दिया। सदियाँ बीत गईं। २० वीं सदी में भी दो दो विश्व युद्ध हो गये, लेकिन अंग्रेजों का पंजा जबल्-तारिक से नहीं उठा। उन्होंने दूसरे देशों के गाढ़ों और नामों की तरह इसका भी नाम बिगाड़कर जिब्राल्टर बना दिया। पूरब में स्वेज और पश्चिम में जिब्राल्टर को अपने हाथों में रखकर अंग्रेज भूमध्यसागर को अपना झील बनाये हुए हैं। भूमध्यसागर के तट के यूरोपीय देश— स्पेन, फ्रांस, इताली, ग्रीस, तुर्की मुंह ताकते ही रह गये, और वहाँ तूती बोल रही है अंग्रेजी नौसेना की। मैं सोच रहा था, द्वितीय महायुद्ध ने इंग्लैंड का दिवाला निकाल दिया है। वह अमेरिका के दिये टुकड़ों पर पेट पाल रहा है। उसकी सारी जिल्लावदियाँ अब अमेरिका की जिल्लाबन्दियाँ हैं। अब तो गैंठ की भी बात नहीं है, जबकि एटली के बाद फिर इंग्लैंड का प्रधान मंत्री बनने वाला चर्चिल ब्रिटेन को अमेरिका का ४९ वीं रियासत बनाने के लिये तैयार है। जब तक पराई भूमि पर इस तरह जबरदस्ती कब्जा रहेगा, तब तक कैसे विश्व में शान्ति रह सकती है।

हमें जहाज में अब रेडियो से टाइप की हुई खबरें पढ़ने को मिलती थीं। उस दिन मालूम हुआ गांधी जी इसके लिये नाराज हैं, कि भारत के डोमिनियन होते तक राष्ट्रीय झंडे के साथ यूनियन जेक (अंग्रेजी झंडे) के रखने के उनके इन्कार को लोगों ने ठुकरा दिया, अब भारत की सरकारी इमारतों पर यूनियन

जेक नहीं फहरायेगा। मैंने उस दिन लिखा था— "बूढ़ा सठिया गया है, इसमें तो सन्देह नहीं।" क्या ६० वर्ष की अवस्था को पार कर जाने पर शरीर की तरह आदमियों की बुद्धि भी क्षीण हो जाती है? हो सकता है, कितनी ही बार यह बात सच्ची हो, लेकिन सठियाने का एक और कारण है आदमी समय के साथ आगे नहीं बढ़ता। हमने २५ साल पहिले बच्चे को नंगा देखा था, २५ साल बाद भी उसे वही समझना चाहते हैं। नहीं समझते, कि अब वह शिशु नंगा नहीं बल्कि शरीर और मस्तिष्क दोनों से प्रौढ़ मानव है। तरुण होने से हरेक नवीन प्रगतिशील चीज को ग्रहण करने के लिये तैयार है, इसलिये उसको ६० वर्ष के वृद्ध से अधिक सक्षम मानना चाहिये। साइंस के बड़े बड़े आविष्कारों के बारे में हम इसी बात की सच्चाई को अच्छी तरह जानते हैं। आविष्कारकों में सबसे अधिक संख्या तरुणों की मिलेगी। यदि ६० वर्षों और तेजी से बढ़ते दिमाग तरुणों की क्षमता पर विश्वास करने के लिये तैयार हो जायें और सदा अपने ही पथ प्रदर्शक बनने की लालसा को छोड़कर उन्हें भी पथ प्रदर्शन करने की आज्ञा दें, उस पर चलने के लिये तैयार हों, तो किसी का सठियाना की अवश्यकता नहीं पड़ेगी।

महोत्सव के लिये चन्दा जमा हो रहा था। ५ अगस्त तक वह ८० पौंड के करीब पहुँच गया था। पंजाब के एक पेंशनर पोस्टमास्टर जनरल अंग्रेज भारत लौट रहे थे। कह रहे थे— "इंग्लैंड में हमारी पेंशन खर्च के लिये अपर्याप्त है, क्योंकि वहाँ जीवनोपयोगी चीजें बहुत महंगी हैं। साथ ही हम भारत में नौकर चाकर रखने की आदत थी, और इंग्लैंड में वह बहुत महंगे हैं। टैक्स भी यहाँ अधिक है, जब भारत से आने वाली पेंशन पर ही जीना है, तो क्यों न भारत में ही चलकर आराम से रहें।" बूढ़ा ७० वर्ष का था। बहुत स्वस्थ भी नहीं मालूम होता था। उसके ऊपर परिवार का बोझ भी नहीं था, इसलिये हिन्दुओं के काशीवास की तरह वह भारतवास के लिये आ रहा था। पाकिस्तान वास पर उसका विश्वास नहीं था। अंग्रेजों ने यद्यपि हिन्दुओं के मुकाबले में मुसलमानों को हमेशा प्रोत्साहन दिया, लेकिन अपने मन के भीतर वह इस्लाम पर विश्वास नहीं करते थे। शायद इसके पीछे शताब्दियों पार गुजरे ~

जर्गा (धार्मिक युद्धों) के युग का अनुभव काम कर रहा था, जब कि इस्लाम के गाजी और इसाइयत के क्रुसेडर धर्म के नाम पर एक दूसरे के ऊपर हर तरह के अत्याचारों को उचित समझते थे। उक्त वृद्ध अंग्रेज ने जब सुना, कि स्वतंत्रता महोत्सव के लिये चंदा जमा हो रहा है, तो उसने शिकायत की—"हमसे क्या नहीं चन्दा मांगा गया, हमने भारत का नमक खाया है और जीवन की अंतिम घड़ियाँ हम वहीं बिताने की इच्छा रखते हैं।" खैर वृद्ध ने एक पौंड चन्दा दिया। हमारे जहाज में वह अकेले ऐसे पेंशनर अंग्रेज नहीं थे, जो भारत में अपना शेष जीवन बिताने के लिये लौट रहे थे।

कमीटी को प्रोग्राम ठीक करना था। वहाँ दो तरह के विचार के लोग थे। कुछ हमारे परिचित शर्माजी की तरह बहुत कुछ पुराने विचारों का प्रतिनिधित्व करते थे, जिसे वह शुद्ध भारतीयता का नाम देते थे, और कुछ अल्ट्रा मोडर्न (चरम आधुनिक पंथी) थे, जो चाहते थे कि उत्सव ऐसी शान से मनाया जाय, जिसमें यूरोपीय यात्रियों पर अच्छा प्रभाव पड़ सके। ए० क्लास में यूरोपियन यात्रियों की संख्या अधिक थी, जहाँ पर कि हमारे अल्ट्रामोडर्न भद्र पुरुष और भद्र महिलायें रहती थीं, और जिनसे उनका संभाषण और नृत्य आदि से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो गया था। वह समझते थे, कि जब तक पान और नृत्य हो, तब तक उसे सभ्य दुनिया में महोत्सव नहीं माना जा सकता। कमीटी के कुछ लोग अपने यूरोपीय मित्रों को शराब पिलाना चाहते थे— पैसे का सवाल नहीं था वह शायद अपनी जेब से शराब खरीदकर भी पिला सकते थे, लेकिन कुछ लोग सिद्धांततः इसके विरोधी थे। उनका कहना था— गाधीजी के नेतृत्व में हमने स्वतंत्रता को प्राप्त किया, हमारे गाधीवादी शासक धर्मेण शराब बन्दी के पक्षपाती हैं, इसलिये इस महोत्सव में शराब पीना महान् पाप है। मैंने जीवन में कभी शराब नहीं पी, लेकिन शराब को कोई महापाप की बात वैसे ही नहीं समझता जैसे कि अपने माँस भक्षण को। असंयम सभी जगह बुरा होता है, यह नियम शराब पर भी लागू हो सकता है। हमारे शर्माजी को अन्धा पुराणपंथी नहीं माना जा सकता था। अपनी तरुणाई में अब ५०-६० के बीच में

पहुँचने समय तक ऐसिया, यूरोप, अफ्रीका के भिन्न भिन्न नगरों की खाक छानते उन्होंने भी शराब पी थी, लेकिन वह समझते थे, इस पवित्र महोत्सव के समय कमीटी की ओर से पान का प्रबन्ध उचित नहीं है। ५ अगस्त को इस पर बहुत गरमागरम बहस हुई, लेकिन उसका निर्णय उस दिन नहीं हो सका।

६ अगस्त को हम भूमध्य सागर में चल रहे थे। गरमी बहुत बढ़ गई थी, या शायद मुझे ही अधिक मालूम होती थी। थर्ड क्लास के केबिनों का ताइफर मचान बनाते समय कुप्पियों को उखाड़ नहीं फेंका गया था, यही खैरियत थी, इसलिये हम कुप्पिया हवा की पिचकारी छोड़ते प्राण दान कर रही थीं। दिन में वैसे डेक पर बैठने से खुला हवा मिल जाती थी, लेकिन रात के वक्त तो यह वायु-कुप्पियाँ ही प्राणाधार थीं। भोजन के लिये जहाज का नियम था— सबेरे बिस्तर पर चाय, आठ बजे प्रातराश, १ बजे मध्याह्न भोजन (लंच), साढ़े चार बजे ब्यालू। भोजन को अच्छा ही कहना चाहिये और वह पेट भर मिलता था। ता० ६ को उत्सव के लिये ६० पौंड चन्दा हो गया था। उसदिन बहुमत से भोजन में शराब शामिल करने के प्रस्ताव को ठुकरा दिया गया। यह भी निश्चय हुआ, कि भारतीय नाविकों को भोजन दिया जाय और बच्चों को मिठाइयां।

६ को कुछ टापू जब-तब दिखाई भी पड़ रहे थे। किन्तु ७ अगस्त को कोई स्थल चिह्न नहीं दिखाई पड़ा। हां, जब तब एकाध जहाज उल्टी दिशा की ओर जाते हमें देखकर भोंपू बजा देते थे। अपने सामने तो विस्तृत नील सागर और अनन्त नील नभ ही दिखाई पड़ते थे। हां, हमारी जहाज की भी एक दुनिया थी, जिसे हम एक थर्ड क्लास के अधिकांश यात्रियों के लिये हँसी खुशी की दुनियां कह सकते थे। अस्सी भारतीय यात्रियों में बड़ी बड़ी उमंगें लेकर कोई डाक्टरी या दूसरी डिगरी प्राप्त कर देश लौट रहा था, कोई व्यापार के धंधे को करके और कुछ सैलानी भी अपना मौजी जीवन बिता देश को जा रहे थे।

८ अगस्त को भी पहिले की तरह मौसिम अच्छा था, लेकिन भूमि का कहीं दर्शन नहीं होता था। अगले दिन ६ बजे सबेरे ही हमारा जहाज पोर्तसइद में पहुँच कर मिश्र की भूमि से लग गया। कमीटी ने तै किया था, कि भोजकी

सामग्री पोर्तसईद में खरीदी जाय। इससे आगे जहाज के खड़े होने का कोई ऐसा स्थान नहीं था, जहाँ सभी चीजें सस्ती और आसानी से मिल सकें। "स्ट्रैथमोर" ने नहर के मुह के पास लंगर डाला। आस पास बहुत से देशों के जहाज पड़े थे, जिनमें तुर्की और अमेरिका के काफी थे। कुछ उतरनेवाले यहीं उतर गये। सैर करनेवालों के पासपोर्टों पर मिश्री अफसर ने मुहर लगा दी और हमारी तरह वह भी पोर्तसईद की सैर करने के लिये निकले। पोर्तसईद अन्तर्राष्ट्रीय नगर है। है यह अफ्रीका के उत्तर-पूर्वी छोर पर बसा, लेकिन इसके उत्तर तरफ भूमध्य सागर के परले तट पर यूरोप है, एशिया तो यहां अफ्रीका से मिल गया है। इसको ही बाधा समझकर स्वेज नहर बनाई गई, जिससे भारती महासागर या अरब समुद्र-लाल सागर से भूमध्य सागर को मिलाया जा सके। तीन महाद्वीपों का सम्मिलन स्थान होने से तीनों महाद्वीपों की जातियों के समागम का यह स्थान है, वहां तीनों महाद्वीपों के गुंडे, गिरहकट और वेश्याओं का भी यह भारी अड्डा है। जिसमें भी गली कूचे में अकेले निकलना खतरे से खाली नहीं है। हमारे एक सहयात्री किसी गली में जा रहे थे। एक बदमाश ने उन्हें "हारे" की अगूठी खरीदने के लिये कहा। उनको संदेह हो गया, लेकिन "हारा" बेचने वाले ने छुरा दिखला कर एक पौंड में अगूठी उनके मत्थे मढ़ दी। दूसरे जोशी महाशय को भी छुरा दिखलाया गया था। बात यह है जहाज कुछ घंटों के लिये ठहरनेवाला था, यदि कोई दुर्घटना हो गई, तो भी जहाज किसी यात्री के लिये निश्चित समय से अधिक ठहर नहीं सकता। यात्री भी अपने गंतव्य स्थान पर पहुंचने की धुन में रहता है, इसलिये वह छुरे का जवाब न छुरे से दे सकता है और न पुलिस तथा अदालत की शरण लेने के लिये तैयार हो सकता है। इस कमजोरी को पोर्तसईद के गुंडे अच्छी तरह जानते हैं। हम चार आदमी एक साथ शहर घूमने गये। ढाई घंटे तक घूमते रहे। रमजान का महीना होने से रोजे का दिन था, लेकिन इस्लामिक देश में किसी को इसकी परवाह नहीं थी— सारे रेस्तोराँ खुले हुए थे। गरमागरम तंदूरी रोटियां बिक रही थीं। शासक तो मुसलमान गाजी होने पर भी किसी देश भर

किसी हाल में इस्लाम के साधारण नियमों की भी पाबन्दी करना अपने लिये आवश्यक नहीं समझते थे। इस्लाम के नाम पर भारत के लाखों लोगों का खून बहानेवाले, मंदिरों और नगरों को ध्वस्त करनेवाला महमूद गजनवी, रात रात भर अपनी शराब की महफिलें लगाता था। भला शासकों को रोजा, नमाज की उतनी पाबन्दी की क्या आवश्यकता थी। यदि उनकी देखादेखी अब पोर्तसइद या कहीं की मुसलिम जनता रमजान की धता बतलाये, तो इसमें आश्चर्य करने की क्या आवश्यकता? यहाँ पर नंगी और बहुत ही अश्लील तस्वीरों का तो, जान पड़ता था, बाकायदा रोजगार होता है। कितने ही आदमी इन तस्वीरों को हाथ में रखे चुपके से दिखाकर बेच रहे थे। इसमें कभी-कभी लोग बुरी तौर से फँस जाते हैं। सीलोन के एक भिक्षु यूरोप से लौट रहे थे, उन्होंने यह तस्वीरें खरीद ली थीं, जब कोलम्बो में जहाज पर से उतरे और उनकी चीजों की देखभाल हुई, तो वह तस्वीरें निकल आईं। उनकी बड़ी भद्द हुई। पिछली यूरोप यात्रा में जब मैं लौट रहा था, तो एक चीनी छात्र ने इस तरह की बहुत सी तस्वीरें यहाँ खरीद ली थीं। जब मैंने उसे कोलम्बो वाली घटना सुनायी, तो कोई परवाह न करते वह कह रहा था— हमारे बन्दरगाहों में कोई नहीं पूछता। वेश्या नगरी के दलालों का निमंत्रण तो पग पग पर था— "बड़ी सुन्दर मिस-तरुणी है," या और कुछ कहकर उस रास्ते के लिये पथ प्रदर्शन करनेवाले दर्जनों आदमी घाटपर मौजूद थे। मैंने डेढ़ पौंड में एक चमड़े का थैला बक्स खरीदा। शमाजी हदराबादी हमारे साथ थे, इसलिये दाम काम करने में कोई दिक्कत नहीं हुई। दो तीन पौंड के कपड़े और कागज उत्सव के लिये खरीदे गये, और १६ पौंड का मिठाइयाँ भी। इसी तरह कुछ और चीज खरीदी गईं। लौटकर जहाज की ओर जाते समय कस्टम वालों ने रोका। खरीदी हुई चीजों पर भारी टैक्स माँग रहा था, पर शायद १०–१५ पौंड और खर्च करना पड़ता। शमाजी साथ थे। उन्होंने समझाने की कोशिश की कि हम भारतीय स्वतंत्रता दिवस के उत्सव के दिन के लिये यह चीज खरीद कर लेजा रहे हैं। लेकिन मातृकतापूर्ण अपील करने में सफलता नहीं हुई, फिर उन्होंने रोकनेवाले के हाथ में २ पौंड

थमा दिये और सारा झिम्मा मिट गया। उसने इकट्ठी की हुई चीजों के अलग अलग भाग कर दिये और बंद किया, थोड़ा थोड़ा हाथ में लेकर जाया। सारा थोड़ा ले आने के लिये हमारी समस्या कम नहीं थी, लेकिन इस बाधा को हमने पहिले समझा नहीं था, इसलिये बहुत से लोग पहिले ही चले आये थे। खैर, दो पौंड में काम चल गया। पोर्तसईद और आगे स्वेजनहर के पास थानवाले स्थानों में हमने देखा, मिश्री लोग अंग्रेजों को बड़ी मद्दी मद्दी गालियाँ दे रहे थे। यह १६५१ का अन्त नहीं बल्कि १६४७ का अगस्त था। उस समय भी मिश्री अंग्रेजों को अपना भारी शत्रु समझते थे और अपने गुस्से को गन्दी गालियों द्वारा उतारना चाहते थे। स्वेज नहर में लड़के भी जहाँ तहाँ यह गालियाँ दुहराया करते थीं — घृणा प्रदर्शन का उन्होंने यह अच्छा तरीका निकाला था। मिश्री मुसलमान औरतें पर्दा रखती हैं, लेकिन मुँहपर नाक का दाने आखें खुली रखने के लिये जाली रखती हैं। इन जालियों के भीतर से उनके ओठ और कपोल भी दिखलायी पड़ते हैं। इंग्लैंड की अपेक्षा पोर्तसईद में चीजें बहुत सस्ती थीं। जिस बेग को हमने डेढ़ पौंड में लिया था, वह इंग्लैंड में चार-पाच पौंड से कम में नहीं मिलता।

१० अगस्त को "स्ट्रैथमोर" लाल सागर में चल रहा था। लाल सागर, जान पड़ता है, हर समय ही गुस्से में लाल रहता है। अपने यात्रियों को परेशान करना वह अपना काम समझता है। पिछली यात्रा का भी मेरा ऐसा ही अनुभव था। अबकी बार भी जब हवा चल पड़ती, तो जान में जान आती, नहीं तो बड़ी परेशानी होती। उसदिन पता लगा, कि जहाज के कप्तान ने १५ अगस्त के महोत्सव मनाने के प्रोग्राम में स्वतंत्रता के शहीदों के लिये २ मिनट मौन रखने पर एतराज किया। फिर क्या था, लाल-सागर का प्रभाव हमारे लोगों पर भी पड़ा, लोग लाल पीले होने लगे।

११ अगस्त को भी हम लाल सागर ही में थे। यहाँ शरीर से पसीना चूता रहा। हवा बन्द सी दीख पड़ रही थी। यात्री हवा की तलाश में एक ओर से दूसरे डेक की ओर डोल रहे थे, यह जानकर सन्तोष हुआ, कि कप्तान ने

सार आग्राम को मान लिया । सारे अंग्रेजों पर शीतल जल पड़ गया । लोग विरोध प्रदर्शन के तरह तरह के तरीके सोच रहे थे । डेक पर बैठे पसीना बहाते किसी तरह दिन का समय तो कट गया, लेकिन रात को पसीने में तर शरीर के कारण नींद कैसे आती ? अब सर्वशीतला रूस भूमि के गुण याद आ रहे थे । १२ अगस्त को भी गरमी का परेशानी पहिले ही जैसी रहा ।

१३ अगस्त को अरब सागर में दाखिल होते ही, तरंगित समुद्र आ गया । हवा के बिना समुद्र तरंगित नहीं हो सकता है, उसाने अब गरमी को कम कर दिया— भूमध्य रेखा के समीप तथा गरमी के मौसम के कारण हवा भी गरमी से बिलकुल छुट्टी देने के लिये समर्थ नहीं थी ।

१४ अगस्त को समुद्र अति तरंगित था । कितने ही लोग लुढक पड़े थे, जिनमें महोत्सव के दिन खेले जानेवाले "विलायत से लौटा" नाटक के अभिनेता भी शामिल थे । जल्दी जल्दी उत्सव कमेटी में परिवर्तन कर लिया गया । कमेटी का अध्यक्षा महोदया के विचार में सभ्यता का स्वरूप वही ठीक है, जो कि यूरोप में देखा जाता है । ऐसे विचारों से सहमत होना ऐसे भारतीयों के लिये मुश्किल था, जो कि बरसों इंग्लैंड में बिता कर लौट रहे थे । मेहमानों का शराब पिलाने की बात तो खैर समाप्त कर दी गई थीं, लेकिन प्रोग्राम में कमेटी से बगैर पूछे ही नृत्य रख दिया गया था । विरोध का कोई उचित कारण नहीं था— भारतीय नृत्यों पर कोई उज्र नहीं और यूरोपीय नृत्यों पर विरोध, इसमें क्या तत्व था ? समुद्र के उद्वेग के कारण बहुत से लोग आज खाने पर नहीं आये कुछ लोगों को कै भी हुई । हम अचल अटल रहे । साढे तेइस हजार टन का भारी भरकम "स्ट्रैथमोर" उत्ताल तरंगों पर कागज की नाव की तरह ऊंचे नीचे उछल रहा था, लेकिन मुझे झूले का आनन्द आ रहा था । यही नहीं, मैंने तरंगों के बल को नापने के लिये डेक के किनारे की रेलिंग का इस्तेमाल शुरू किया— हमारी दृष्टि, रेलिंग और पानी की एक रेखा में मिलाकर जब पांचवी रेलिंग तक पहुँच जाती, तब हम समझते थे कि समुद्र पूरे वेग से उछल रहा है ।

१८ अगस्त— आखिर पंद्रह अगस्त का दिन आया, लेकिन आज तो क्षितिज आठवीं रेलिंग तक उठ जाता था। उत्सव का काम अच्छा तो नहीं हो सकता था। खड़ा होना भी लोगों के लिये मुश्किल था, क्योंकि जब जहाज एक तरफ खड़ा होने लगता, तो आदमी दूसरी तरफ लुढ़कने लगते। खैर, उत्सव तो करना ही था। १० बजे झंडा फहराया गया। चारों तरफ भारतीय और अभारतीय यात्री खड़े थे। अध्यक्षा महादया बम्बई की एक गुमनाम अंग्रेजी पत्र की सम्पादिका भी थीं, उन्होंने वाही तबाही जो भी मनमें आया कह डाला। भाषण की गम्भीरता तो उसमें थी नहीं, पूरा छछूंदरी भाषण था। खैरियत यही था, कि हवा के मारे भाषण पांच सात आदमियों से आगे ना नहीं सकता था। पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के झंडों को दो बहिन भाई बच्चों ने ऊपर उठाया था। भारत के लिये राष्ट्रीय गान "जन गण मन" हुआ और पाकिस्तान के लिये "पाकिस्तान हमारा"। शहीदों की स्मृति में दो मिनट का मौन भी रहा। इकबाल के बनाये पाकिस्तानी राष्ट्रगान में— "चीनो अरब हमारा, सारा जहां हमारा।" "तलवारों की साया में हम पले हैं।" अंत में नारये तकबीर कह कर "अल्लाहो अकबर" जैसा पुराने इस्लामिक गाजियों का नारा बुलन्द किया गया— कितनी खोखली सी बात था। एक युग में अगर जहाद के नाम पर इस्लामी गाजियों ने शिथिल दलित काफिरों के भीतर सफलता प्राप्त करली, तो सदियों से एक इस्लामिक देश पश्चिमी काफिरों के पैरों के नीचे रौंदे भी जा रहे हैं, यह भी बात सत्य है। जहाद का युग बीत गया, अब साइंस का युग है, लेकिन पाकिस्तानी मुसलमान समझते थे, कि उन्होंने इस्लामी छुरे बाजों के बलपर पाकिस्तान कायम किया, और जिन्ना ने अपनी अक्ल का चमत्कार दिखला कर पाकिस्तान बनाने में सफलता पाई। वह यह मानने के लिये तैयार नहीं थे, कि अंग्रेजों ने अपना नाक कटा कर अशगुन पैदा करने के लिये पाकिस्तान को बनाया। खैर, उत्सव और तरह से सानन्द समाप्त हुआ। यदि समुद्र देवता और वायु देवता ने प्रकोप न किया होता, तो जो लोग सामुद्रिक बीमारी के कारण स्वस्थ नहीं थे, वे भी आनन्दभागी होते।

लड़कों में निराशा छा गई। लश्कर के आदमियों ने पताकोत्तोलन में न बुलाये जाने के कारण विदाई लेने से इन्कार कर दिया। लश्कर एक पारिभाषिक शब्द है, जो कि यूरोपीय जहाजों के हिन्दुस्तानी मल्लाहों के लिये उपयुक्त होता है। किसी जगह से नाविकों को छोड़कर वह इस जहाज द्वारा देश भेजे जा रहे थे, उनमें से अधिकांश चटगाँव, अब पाकिस्तान के थे। जान-बूझकर उन्हें न बुलाने की बात नहीं की गई थी। सभी लोग जानते थे, कि अमुक समय अमुक स्थान पर पताकोत्तोलन होगा। लोग अपने आप चले आये थे। लश्कर को मालूम हुआ, कि औरों को निमंत्रित किया गया था, और हमें नहीं। उनको समझाने की कोशिश की गई, किन्तु वह न माने।

साढ़े चार बजे बच्चों का "फैन्सी ड्रेस" हुआ। दो लड़के गांधी और जिन्ना की शकल बनाकर आये। लोगों ने बहुत पसन्द किया। भोजन में विशेषता लाने के लिये जहाजवालों ने भी सहयोग दिया था और कुछ भारतीय भोजन भी तैयार हुआ था। रात के ९ बजे से मनोरंजन की दूसरी बातें हुईं। "विलायत से लौटा" नाटक हुआ। किसी ने जादू का खेल भी दिखलाया और किसी ने और कुछ। हम भारत भूमि से दो दिन के रास्ते पर अरब समुद्र में थे, लेकिन हमने भी आज के महान् दिवस को अच्छी तरह मनाया।

अगले दिन (१६ अगस्त) जहाज में रहने का आखिरी अहोरात्र था। आज हवा भी चल रही थी और वर्षा भी हो रही थी।

१७ अगस्त रविवार का दिन आया। प्रातः १० बजे से भारतीय तट दिखलाई पड़ने लगा, ३४-३५ महीने बाद मैं फिर भारत भूमि का दर्शन कर रहा था। रह रह कर "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" याद आ रहा था और साथ ही यह भी कि अब हमारी मातृभूमि अंग्रेजों के हाथ से मुक्त है। १२ बजे के करीब जहाज समुद्र तट से लगा। मानो मातृभूमि का स्पर्श हो गया, इसलिये हृदय और आह्लादित हो उठा। अफसर ने आकर जहाज ही पर पासपोर्ट पर मुहर लगा दी। पास के पौंडों में से, कुछ भुनाये। जहाज का आखिरी भोजन भी हो गया। जहाज के नीचे लाल झंडा लिये हुये कुछ आदमी खड़े

लगा रहे थे। मुझसे पूछने पर मैंने कहा— शायद आदिल साहिब के लिये। आदिल साहब मजदूरों के नेता थे, शायद कांग्रेस या सोशलिस्ट पार्टी से संबंध रखते थे। मुझको यह ख्याल नहीं आया, कि यह मेरे स्वागत में हो सकता है। लेकिन जब साथ साथ कामरेड राहुल का नाम सुनाई देने लगा, तो इन्कार करने से काम नहीं चलता। जो लोग १७ दिन तक मेरे साथ बातचीत करते रहते थे, उनको इतना ही मालूम था कि मैं लेनिनग्राद में संस्कृत का अध्यापक था। अब नारे ने बतला दिया, कि नहीं यह तो कोई नेता है, जिसके लिये बम्बई के मजूर भी नारे लगा रहे हैं। फिर तो कितने ही सहयात्री "गुस्ताखी माफ" की बात करने लगे। इसमें कोई आत्मगोपन की बात नहीं, यदि मैं कहूं कि कम से कम अपने लिये प्रदर्शन मुझे पसन्द नहीं है। एकान्त में चुपचाप काम करने में जितना आनन्द मुझे आता है, प्रदर्शन में उतना ही चित्त को विक्षोभ होता है। हमारे सहयात्री न इंडोलोजी के विद्वान थे, न भाषातत्त्व या इतिहास के। उनकी जो जिज्ञासायें सोवियत के बारे में थीं, उतने ही तक बोलने पर मैं संतोष करता था। मैं मिशनरी मार्क्सवादी प्रचारक नहीं था, कि हरेक को कन्वर्ट (मत परिवर्तन) करने के नशे में २४ घंटे चूर रहूँ। अपने जीवन में मुझे ऐसा करने की आवश्यकता इसलिये भी नहीं थी, कि मोके-बेमोके बोलने से जितना काम नहीं हो सकता था, उतना मेरी किताबें कर रही थीं।

कम्युनिस्ट नेता कामरेड मिरजकर, अधिकारी, रमेश, ओमप्रकाशसंगल, महेन्द्र आचार्य आदि पुराने मित्र जहाज पर आ मिले। किसी ने डरा दिया, कि कस्टमवाले किताबों के लिये बहुत तंग करेंगे। उनका कहना गलत नहीं था, लेकिन मैं १५ अगस्त के दो ही दिन बाद आया था। १५ अगस्त के ऐतिहासिक दिन के सामने पुराना नौकरशाही सहम गया थी। सचमुच ही उस समय यदि बुद्धिमानी से काम लिया जाता, तो उसका रुख बहुत कुछ बदल जाता, लेकिन जब पीछे उन्होंने अपने मालिकों के असली रूप रंग को देखा, तो "वही रफ्तार बेढंगी, जो पहिले थी सो अब भी है" को स्वीकार कर लिया। हमारे पास सबसे बड़ा धन रूस में संगृहीत पुस्तकें थीं, जिनमें कम्युनिज्म के बारे में

दो चार ही होंगी, नहीं तो अधिकतर मध्य-एसिया के इतिहास से संबंध रखनेवाली थीं, तो भी वह रूसी में थीं, इसलिये कस्टम वालों को क्या पता था, यदि अटकाना चाहते, तो वह वैसा कर सकते थे; लेकिन १५ अगस्त की आंधी के कारण बड़ी आसानी से छुटकारा मिल गया। मामूली तौर से देखा, एक दो बक्सों को तो खोला ही नहीं, हाँ रेडियो के ऊपर १५० रुपया टैक्स जरूर लग गया। शायद इससे कम में ही हमें वैसा रेडियो भारत में मिल सकता था। कस्टम से छुट्टी लेते-लेते चलकर अपने निवास-स्थान में पहुंचने से ४ बज गया। आज भी बम्बई की सड़कों पर अभी १५ अगस्त की तैयारी दिखलाई पड़ रही थी। आज भी महोत्सव संबंधी दीपमाला हुई। तिरंगे झंडे और बन्दनवार-पताकायें सभी जगह फहरा रही थीं, सभी जगह उत्साह दिखाई पड़ रहा था। मुझे भी नये भारत में लौट आने का बड़ा आनन्द हुआ।

—०—